



श्रीः ।

अन्वयांकसमेत

श्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विषेदीकरचित

मुम्बईमें

श्रीकृष्णदासात्मज—

इनोंने

श्रीवेङ्कटेश्वरनामनिजयन्त्रमें मुद्रित किया.

श्रीसम्बत् १९४८ वैक्रमा

कार्तिक कृष्णपक्ष १३





## सूचनम्

प्रगट होय कि यह मानव धर्मशास्त्र अति उत्तम है इसमें मनुजीने अति उत्तम रीति पूर्वक सृष्टिके क्रमसे आरंभकरि सब वर्णोंकी उत्पत्ति और उनके संस्कार आचार आदि सब स्फुट करके उत्तमरीतिके अनुसार कहे हैं यह मनुस्मृति ग्रंथ हमारे सब धर्मशास्त्रके स्मृतिआदि ग्रंथोंका शिरोमणि है बहुधा कोई स्मृति इससे विरुद्ध नहीं है और जो कदाचित् कोई किसी अंशमें विरुद्ध है तो उसकी प्रशंसा नहीं है कारण यह है कि ये मनुजी संपूर्ण वेदार्थ के तत्त्वको अति उत्तम रीतिसे जानते थे सो इन्होंने वेदार्थ हीका अपनी स्मृतिमें उत्तमतासे वर्णन किया है सोई लिखा है ॥ वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्रामाण्यमनुरूपम् ॥ मनुस्मृतिविरुद्धायासास्मृतिप्रशस्यते ॥ इति ॥ अर्थ ॥ वेदार्थके अनुसार कहेनेके कारण मनुका प्रामाण्य है और मनुस्मृतिसे विरुद्ध जो स्मृति है उसकी प्रशंसा नहीं है और भी उपनिषद्में लिखा है ॥ यथायद्वैमनुरवदत्तपञ्चभेषताया ॥ इति ॥ अर्थ ॥ निश्चयकरि जो मनुने कहा है वह भेषजताका भेषज है अर्थात् औषधकी भी औषध है इत्यादि वचनोंसे भी मनुस्मृतिकी सर्वोत्तमता प्रकट होती है अब देखिये ऐसे उत्तमग्रंथको सहस्रशः मनुष्य संस्कृत विद्यामें व्युत्पात्ति न होने के कारण कुछनहीं समझ सकते इस निमित्त मैंने श्रीकुल्लूकभट्टकृत टीकाके अनुसार वदश्रमसे सरल मनुष्य भाषामें सबोंके समझनेयोग्य यह टीका बनाई है यद्यपि और भी दोतीनि इसकी भाषा टीका बनी हैं परन्तु उनमें किसी २ नेतौ बहुतही अनर्गल लिखा है कि मूलका कुछ आशय है और टीकामें कुछ औरही लिखा है धन्य हैं वे टीका बनाने और छापने वाले उनकी प्रशंसा नहीं हो सकती और दोएकमें पहले सेतौ आरम्भ अच्छा है परन्तु पीछे से केवल श्लोकहीका संक्षिप्त आशय लिखा है अब देखिये यह धर्मशास्त्रका ग्रंथ है जो मूलहीसे काम चलता तो इस पर गोविन्दराज मेधाविधि आदि आचार्य टीका बनानेका श्रम क्यों करते इन सब बातोंको शोचि समझके मैंने यह कलकत्तेकी छपी हुई कुल्लूकभट्टकी बनाई टीका जो इन दिनोंमें बहुधा प्रचलित है और सब विद्वन्मण्डलोंमें प्रसिद्धि है उसके अनुसार आद्योपांत ग्रंथ बनाया है जिसकीसिको शंका होय वह ग्रंथ भरमें जहांके चाहें वहांके श्लोकटीकासे मिले कि यह उक्त भट्टजीकी टीकाके अनुसार है भ्रान्ती और इस सटीक पुस्तकको बनानेके शुद्धकरि वैश्यकुलोत्पन्न श्रीयुत गंगाविष्णु स्मरराजको मुंबईमें छापने तथा रजस्टर करानेका अधिकार दिया इस पुस्तकको उनके सिवाय अन्य यंत्राधिप छापनेका उद्योग न करे इति । संवत् १९४८ कार्तिकवदि ८ रवौ

**श्रीपण्डित केशवप्रसाद शर्मा द्विवेदी**

**आगराकालेजका पेनशिनर हैड पण्डित**

**सम्प्रति संस्कृत प्राफेसर सेन्टजान्सकालेज आगरा**

## टीकाकारप्रस्तावः ॥

ब्रह्मावर्तात्प्रतीच्यांमुनिनिर्दिष्टवर्त्तरेणधनारुयोग्रामस्तस्मिन्निर्दिष्टोद्विजकुल-  
तिलकः श्रीभवानीप्रसादः ॥ तत्सुनुः श्रीद्विवेदीसमजनिर्विदितोदेवमण्याख्ययाय  
स्तस्माज्जातस्सुबुद्धिःपरमसुखइतिख्यातिमान्पण्डिताग्र्यः ॥ १ ॥ तस्यांत्मजः  
केशवपूर्वकोऽहंप्रसादनामाबहुधाप्रसिद्धः ॥ अकारियेनेयमनुप्रणीतशास्त्रस्पटीकानु-  
गिराऽऽगराख्ये ॥ २ ॥

टीका—ब्रह्मावर्त्त जिसको विठूर कहते हैं उससे पश्चिमदिशामें गंगाजीके तट  
पर राधनाम ग्रामहै उसमें ब्राह्मणोंके कुलमें श्रेष्ठं श्रीयुक्तभवानीप्रसाद उत्पन्न  
हुए उनके पुत्र देवमणि नामसे विदितद्विवेदी हुए उनसे सुंदर बुद्धिवाले पण्डितों  
में मुख्य परमसुख इसी नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनका पुत्र केशवप्रसादनाम मैं  
बहुधा प्रसिद्ध हों जिसने मनुजीके वनाये हुए शास्त्रकी यह टीका मनुष्योकी मा  
आगरानाम नगरमें बनाई ॥ २ ॥ इति ॥

श्रीः

## मनुस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
टीकाकारकान्तगल .....	१	१	अंजन .....	११	४४
टीकाकारका विनय ....	१	२	स्वेदज. ....	११	४५
<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>			उद्भिज्ज .....	११	४६
मनुसे मुनियोंने धर्मपूछा....	१	१	बनस्पति और वृक्ष ....	१२	४७
मनु उनसे बोले !....	३	४	गुच्छ मूलम आदि .....	१२	४८
जगत्की उत्पत्तिका करना	३	५	महाप्रलय ....	१३	५४
पहले जल सृष्टि ....	४	८	जीवका निकलना ....	१३	५५
ब्रह्माकी उत्पत्ति ....	४	९	दूसरी देहका ग्रहणकरना	१३	५६
नारायण शब्दका अर्थ....	४	१०	इस शास्त्रके प्रचारका कहना	१४	५८
ब्रह्मका स्वरूप कथन ....	४	११	मन्वन्तरका कहना .....	१५	६१
स्वर्ग भूमि आदिकी सृष्टि	५	१३	अहोरात्र आदिके प्रमाण कहना	१५	६४
महत् आदिके क्रमसे ज-			पितरोंके रातिदिनका कहना	१५	६६
गत्की उत्पत्ति ....	५	१४	देवताओंके दिनरातिका कहना	१६	६७
देवगण आदिकी सृष्टि....	७	२२	चारों युगोंका प्रमाण.....	१६	६९
तीनों वेदोंकी सृष्टि ....	७	२३	देवताओंके युगका प्रमाण	१६	७१
काल आदिकी सृष्टि ....	७	२४	ब्रह्माके दिनरातिका प्रमाण	१६	७२
काम क्रोध आदिकी सृष्टि	७	२५	मनुसे आकाशका प्रकट होना	१७	७५
धर्माधर्मविवेक ....	८	२६	आकाशसे वायुका उत्पन्न होना	१७	७६
सूक्ष्मस्थूलआदिकी उत्पत्ति	८	२७	वायुसे तेजका प्रकट होना	१७	७७
कर्मकी सापेक्ष सृष्टि.....	८	२८	तेजसे जल और जलसे पृथ्वी	१७	७८
ब्राह्मणादिक सृष्टि....	९	३१	मन्वन्तरका प्रमाण .....	१७	७९
स्त्रीपुरुषकी सृष्टि ....	९	३२	सत्य युगमें चर्मरे पाँच धर्म	१८	८१
मनुकी उत्पत्ति ....	९	३३	और युगमें धर्मके पादपाद		
मरीचि आदिकी उत्पत्ति	९	३४	कीहानि....	१८	८२
यक्ष गंधर्व आदिकी उत्पत्ति	१०	३७	युगयुगमें आयुका प्रमाण ...	१८	८३
मेघ आदिकी सृष्टि....	१०	३८	युगयुगमें धर्मकी विलक्षणता	१९	८५
पशुपक्षी आदिकी सृष्टि....	१०	३९	ब्राह्मणका कर्म कहतेहैं ....	१९	८८
कृमिकीट आदिकी उत्पत्ति	१०	४०	क्षत्रियका कर्म कहतेहैं ....	१९	८९
जरायुज. ....	११	४३	वैश्यका कर्म कहतेहैं ....	१९	९०

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
शूद्रका कर्म कहतेहैं ....	१९	९१	१. को. कहतेहैं ....	२७	१९
ब्राह्मणका श्रेष्ठत्व ....	१९	९२	उस देशके ब्राह्मणोंसे सदा—		
ब्राह्मणोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ....	२०	९७	चार सिद्धि ....	२७	२०
यह शास्त्र ब्राह्मणको पढ़ना—			मध्य देश कहतेहैं....	२७	२१
चाहिये ....	२१	१०३	आर्यावर्त्त कहतेहैं ....	२७	२२
इस शास्त्रके पढ़ने का फल ....	२१	१०४	यज्ञ करनेयोग्य देश कहतेहैं	२७	२३
आचार मुख्य धर्महै.....	२२	१०८	वर्णोंके धर्म आदि कहतेहैं	२८	२५
ग्रंथके अर्थकी अनुक्रमणिका	२२	१११	द्विजोंका वैदिक भंत्रोंसे—		

### अथ द्वितीयोऽध्यायः।

धर्मका सामान्य लक्षण ....	२४	१	गर्भाधान आदि करने चाहिये	२८	२६
कामात्मताका निषेध ....	२४	२	क्षय कारणपन कहतेहै	२८	२७
व्रत आदि संकल्पसे उत्पन्नहै	२४	३	स्वाध्याय आदिको मोक्ष—		
अकामकी कोई क्रियानहीहोती	२४	४	कारणपन	२८	२८
धर्मके प्रमाण कहतेहैं ....	२५	६	जातकर्म कहतेहैं ....	२८	२९
धर्मका वेद मूलपन कहतेहैं....	२५	७	नामकरण	२८	३०
श्रुति स्मृतिकरि कहा हुआ			उपपदका नियम कहो	२९	३२
धर्म करना चाहिये ....	२५	९	स्त्रियोंका नामकरण....	२९	३३
श्रुति स्मृतिका परिचय....	२५	१०	निष्क्रमण और अन्नप्राशन	२९	३४
नास्तिककी निंदा ....	२६	११	चूडाकरणका समय ....	२९	३५
चारप्रकारसे धर्मका प्रमाण			यज्ञोपवीतका काल ....	२९	३६
कहते हैं ....	२६	१२	यज्ञोपवीतकालकी विधि....	३०	३७
श्रुतिके स्मृतिके विरोधमें			व्रात्य कहतेहैं ....	३०	३९
श्रुति बलवती ....	२६	१३	रुष्ण मृग चर्म आदिका धारण	३०	४१
श्रुतिके द्वैविध्यमें दोनो प्रमाण	२६	१४	मौजीआदिका धारण ....	३०	४२
श्रुतिके द्वैधमें दृष्टान्त कहतेहैं	२६	१५	मौजीके न मिलनेमें कुश आदिकी		
दशकर्माकार युक्तका			मेखला करनी चाहिये ....	३१	४३
इसमें अधिकार है ....	२६	१६	यज्ञोपवीत कहतेहैं ....	३१	४४
धर्मकरनेके योग्य देशोंको			दंड कहतेहैं ....	३१	४५
कहते हैं ....	२७	१७	भिक्षा कहतेहैं....	३१	४९
ब्रह्मावर्त्त देशको सदाचार	२७	१८	पहली भिक्षाका नियम....	३२	५०
कुरक्षेत्र आदि ब्रह्मर्षि देशों			पूर्वाभिमुख आदिकाम्य—		

# अध्याय २]

## मनुस्मृति

३

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
भोजनका फल .....	३२	५२	सावित्रीके जपका फल ....	३६	७८
भोजनकी आदि और अं-			सावित्रीके हजार जपका फल ३६		७९
तमें आचमन ....	३२	५३	सावित्रीके जपनकरनेमें निंदा ३६		८०
श्रद्धासे अन्नका भोजन करे ३२		५४	प्रणव व्याहृति तथा सावित्रीकी-		
अश्रद्धाके भोजनका निषेध ३२		५५	प्रशंसा ....	३७	८१
भोजनमें नियम ....	३२	५६	प्रणवकी प्रशंसा ....	३७	८४
अतिभोजनका निषेध ....	३३	५७	मानसजपकी अधिकता ....	३७	८५
ब्राह्म आदि तीर्थसे आच-			इन्द्रियोंका संयम ....	३८	८८
मन पितृतीर्थसे निषेध ....	३३	५८	ग्यासह इन्द्रियां ....	३८	८९
ब्राह्म आदि तीर्थ कहतेहैं ३३		५९	इन्द्रियोके संयमसे सिद्धि होतीहै-		
आचमनविधि ....	३३	६०	भोगसे नहीं ....	३८	९३
आचमनकेजलकाप्रमाण....	३३	६१	विषयोंकी उपेक्षा करनेवाला-		
अनुष्णआदिजलकानियम--			श्रेष्ठ ....	३८	९४
कहतेहैं ....	३३	६२	इन्द्रियोंके संयमका उपाय कह-		
सव्यअपसव्यकहतेहैं ...	३४	६३	तेहैं	३९	९६
पहलीमेखलाआदिकेनष्टहोनेपर दूसरी-			काममें आसक्तको यज्ञआदि-		
ग्रहण करनी चाहिये ३४		६४	फल देनेवाले नहीं होतेहैं ३९		९७
केशान्त नाम संस्कार ....	३४	६५	जितेंद्रियका स्वरूप कहतेहैं ३९		९८
स्त्रियोंका संस्कार मंत्ररहित ३४		६६	एक इन्द्रियका असंयम भी निवारण-		
स्त्रियोंकी विवाहविधि वैदिक-			करने योग्यहै ....	३९	९९
मंत्रोसे होनी चाहिये....	३४	६७	इन्द्रियोंका संयम पुरुषार्थ का-		
उपनीतके कर्म कहतेहैं ....	३५	६९	कारणहै ....	३९	१००
वेदपठनेकी विधि कहतेहैं....	३५	७०	तीनो कालका संध्यावंदन ४०		१०१
गुरुके प्रणमकी विधि ....	३५	७२	अध्याहीन शूद्रके तुल्य ....	४०	१०३
गुरुकी आज्ञासे पढ़ना और-			वेद पाठकी अशक्तियों सावित्री-		
बंदहोना ....	३५	७३	मात्रका जप ....	४०	१०४
अध्ययनकी आदि तथा अंतमें-			नित्यकर्म आदिमें अनध्याय-		
ओंकार का उच्चारण....	३५	७४	नहींहै ....	४०	१०५
प्राणायाम ....	३६	७५	जपयज्ञका फल ....	४०	१०७
प्रणव आदिकी उत्पत्ति ....	३६	७६	ब्रह्मचर्यसे गृहस्थ होनेतक होम-		
सावित्रीकी उत्पत्ति ....	३६	७७	आदिकरना चाहिये....	४१	१०८

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
कैसा शिष्य पढाना चाहिये	४१	१०९	आदिकों करि पिताके तुल्य बंदना--		
...	४१	११०	करने योग्य है ....	४९	१३५
निषेधके उल्लंघनमें दोष....	४१	१११	वित्त आदि सामान्यता	१	
गुरेशिष्यको विद्या न देनी-			करनेवाले हैं ....	४९	१३६
चाहिये ....	४१	११२	रथ आदिमें चढ़े हुएको		
अच्छे शिष्यको देनी चाहिये	४२	११५	मार्ग देना चाहिये....	४९	१३८
अध्यापककी आज्ञाविना दूसरेसे--			स्नातकको राजाकारिणी		
फटनेका निषेध नहीं....	४२	११६	मार्ग देना चाहिये ....	४९	१३९
अध्यापकको मान्यत्व कहते हैं	४२	११७	अथ आचार्य ....	४६	१४०
विहितके न करनेमें निंदा	४२	११८	अथ उपाध्याय ....	४६	१४१
गुरुके अभिवादन आदिमें	४२	११९	गुरु ....	४६	१४२
वृद्ध अभिवादनमें ....	४२	१२०	ऋत्विक् ....	४६	१४३
अभिवादनका फल ....	४३	१२१	अध्यापककी प्रशंसा ....	४६	१४४
अभिवादनकी विधि ....	४३	१२२	माता आदिका उत्कर्ष ....	४६	१४५
बदलेके अभिवादनमें ....	४३	१२३	वेद पढानेवालेकी श्रेष्ठता	४६	१४८
बदलेके अभिवादन जानुनेका--			बालकभी आचार्य पिताके समान	४७	१४९
दोष ....	४३	१२६	इसमें दृष्टान्त देते हैं.....	४७	१५१
कुशल पूछने आदिमें ....	४४	१२७	वर्णके क्रमसे ज्ञान आदिसे		
दीक्षित आदिके नाम लेनेका--			जिठापन ....	४८	१५५
निषेध ....	४४	१२८	मूर्खकी निंदा....	४८	१५७
पराई स्त्री आदिके नाम लेनेका--			शिष्यसे मीठी वाणी		
निषेध ....	४४	१२९	कहनी चाहिये .....	४८	१५९
छोटे मामा आदिके बंदनका--			मनुष्यके वाणी और मत्तके		
निषेध ....	४४	१३०	रोकनेको कहते हैं ....	४८	१६०
मावसी आदि गुरुकी स्त्रीके			परके द्रोह आदिका निषेध	४८	१६१
समान पूज्य ....	४४	१३१	परकरि अपमान करने परमी क्ष--		
भार्यकी स्त्री आदिके अभि-			माकरनी चाहिये ....	४९	१६२
वादनमें ....	४४	१३२	अपमान करनेवालेका दोष	४९	१६३
फूफी आदिके अभिवादनमें	४४	१३३	इस विधिसे वेद पढना चाहिये	४९	१६४
पुरोवासियोंके सख्य आदिमें	४५	१३४	वेदके अभ्यासकी श्रेष्ठता	४९	१६६
दशवर्षका भी ब्राह्मण क्षत्रिय--			वेदाभ्यासकी स्तुति.....	४९	१६७

प्रकरण	पृ.	श्लो.
वेदको न पढ चेदांग- अवि-	५०	१३८
द्याके पढनेका निषेध	५०	१३८
द्विजत्व निरूपणके लिये-	५०	१३९
कहतेहैं :... ..	५०	१३९
यज्ञोपवीत किये हुएका-	५०	१७१
अनधिकार :... ..	५०	१७१
यज्ञोपवीत किये हुएका-	५०	१७३
वेदपढना :... ..	५०	१७३
गोदान आदिमें नवीन दंड आदि	५०	१७४
येनियम करने योग्यहैं....	५०	१७५
नित्य स्नानतर्पण और होम	५१	१७६
ब्रह्मचारीके नियम :... ..	५१	१७७
कामधे वीर्यपातका निषेध	५१	१८०
स्वप्नमें वीर्यपात होनेमें प्रायश्चित्त	५१	१८१
आचार्यके लिये जलकुश	५२	१८२
आदिका लाना :... ..	५२	१८२
वेद तथा यज्ञोपवीत युक्त धुरों	५२	१८३
से भिक्षा लेनी योग्यहैं	५२	१८३
गुरुकुल आदिका भिक्षामें	५२	१८४
कलंक युक्तसे भिक्षाकानिषेध	५२	१८५
संध्या तथा प्रातःकालके	५२	१८६
होमकी समिध :... ..	५२	१८६
होम आदिके न करनेमें	५२	१८७
एक घरसे भिक्षाका निषेध	५२	१८८
निर्मज्जितको एकका अन्न	५२	१८९
खाना चाहिये :... ..	५२	१८९
क्षत्रिय तथा वैश्यके एक	५३	१९०
अन्नके भोजनको निषेध	५३	१९०
अध्ययन तथा गुरुके हित-	५३	१९१
में यत्नकरै :... ..	५३	१९१
गुरुकी आज्ञा करना कहतेहैं	५३	१९२

प्रकरण	पृ.	श्लो.
गुरुके सोने पर सोना आदि	५३	१९४
गुरुकी आज्ञा करनेका प्रकार	५३	१९५
गुरुके समीप चंचलताका निषेध	५४	१९८
गुरुकानाम ग्रहण आदि न	५४	१९९
कस्ना :... ..	५४	१९९
गुरुकी निंदा सुनने निषेध....	५४	२००
गुरुके अपवाद करनेका फल	५४	२०१
समीपके गुरुका पूजनकरै	५५	२०२
गुरु अम्रदिके पीछे कुछ न कहै	५५	२०३
यान आदिमें गुरुके साथ	५५	२०४
वैठनेमें :... ..	५५	२०४
गुरुके गुरुमें गुरुकेसी वृत्ति-	५५	२०५
रखै :... ..	५५	२०५
विद्यागुरुके विषयमें :... ..	५५	२०६
गुरु पुत्रके विषयमें :... ..	५५	२०७
गुरुकी स्त्रीके मध्ये :... ..	५६	२१०
स्त्रीके स्वभाव का कहना....	५६	२१३
माता आदिको के साथे एकांत-	५६	२१५
वैठने का निषेध :... ..	५६	२१५
तरुणी गुरुकी स्त्रीके प्रणाम-	५७	२१६
करनेमें :... ..	५७	२१६
गुरु की सेवाका फल :... ..	५७	२१८
ब्रह्माचारीके तीनप्रकार-	५७	२१९
कहतेहैं :... ..	५७	२१९
सूर्यके उदय और अस्तकालके-	५७	२२०
सोने में :... ..	५७	२२०
संध्योपासन अवश्य करना	५७	२२२
स्त्री आदिके श्रयकरनेमें	५७	२२३
स्त्री वर्ग कहते हैं :... ..	५८	२२४
पितृ आचार्य अम्रद अपमान-	५८	२२६
योग्य नहीं हैं :... ..	५८	२२६



प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
उनकी सेवा करने आदि में	६८	२२८	ग्रहण .....	६४	१३
उनके अनादरकी निंदा....	६९	२३४	ब्राह्मण और क्षत्रियको—		
माता आदिकी सेवा की—			• शूद्रास्त्रीका विषय ....	६४	१४
मुख्यता ....	६०	२३६	हीन जातिके विवाह का—		
नीच आदिकोंसे भी विद्या—			निषेध ....	६५	१५
लेना ....	६०	२३८	• शूद्राके विवाहके मध्ये ....	६५	१६
आपत्तिमें क्षत्रि आदिसेभी वेद—			आठ विवाहके प्रकार ....	६५	२०
पढ़ना परंतु उनके पावधोना—			वर्णोंके धर्म संबंधी विवाह—		
आदि न करै ....	६०	२४१	कहतेहैं ....	६५	२२
क्षत्रिय आदि गुरुमें अतिवास—			पैशाच तथा आसुर विवाह—		
कानिषेध ....	६०	२४२	कि निंदा ....	६६	२५
जीवन पर्यंत गुरु की सेवामें	६१	२४३	ब्राह्मविवाहका लक्षण ....	६६	२७
गुरु की दक्षिणा आदिमें ....	६१	२४५	दैव विवाहका लक्षण ....	६६	२८
आचार्यके मरने पर उसके—			आर्ष विवाहका लक्षण ....	६७	२९
पुत्र आदि की सेवा ....	६१	२४७	प्राजापत्य विवाहका लक्षण	६७	३०
जीवन पर्यंत गुरुकुलकी सेवा—			आसुर विवाहका लक्षण ....	६७	३१
का फल ....	६२	२४९	गांधर्व विवाहका लक्षण....	६७	३२
<b>अथ तृतीयोऽध्यायः ।</b>			राक्षस विवाहका लक्षण ....	६७	३३
अथ ब्रह्मचर्यकी विधि ....	६२	१	पैशाच विवाहका लक्षण....	६७	३४
गृहस्थाश्रमका वास कहते हैं	६२	२	जल्के देने से ब्राह्मणका—		
वेद ग्रहण करने वाले का पिता—			विवाह ....	६७	३५
आदि करि पूजन ....	६३	३	ब्राह्म विवाहका फल ....	६८	३७
ब्रह्मचर्य को पूराकरि विवा—			ब्राह्म आदि विवाहमें उत्तम—		
हकर ....	६३	४	संततिकी, उत्पत्ति ....	६८	३९
असपिंड आदि विवाहने योग्य	६३	५	निंदित विवाहमें निंदित—		
विवाहमें निंदित कुल ....	६३	६	संततिकी उत्पत्ति ....	६८	४१
अथ कन्याके दोष ....	६३	८	सवर्णा विवाह विधि ....	६९	४३
कन्याके लक्षण ....	६४	१०	असवर्णा विवाह विधि ....	६९	४४
पुत्रिका विवाह की निंदा	६४	११	स्त्रीके गमनमें ....	६९	४५
सवर्णा स्त्री उत्तमा ....	६४	१२	ऋतुकाल की विधि ....	६९	४६
चारीवर्णा की स्त्रियों का—			स्त्री गमनमें निंदित काल	६९	४७

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
गुग्म तिथिमें पुत्रकी उत्पत्ति	६१	४८	होम करने चाहिये....	७४	७५
स्त्री पुरुष तथा नपुंसककी			होमसे वृष्टि आदि की-		
उत्पत्ति में कारण ....	७०	४९	उत्पत्ति ....	७४	७६
वानप्रस्थकों भी ऋतुका-			गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा ...	७४	७७
लमें गमन करते है....	७१	५०	ऋषि अदिकोंका पूजन-		
कन्याके वेचनेमें दोष ....	७३	५१	अवश्य करना चाहिये ....	७४	८०
स्त्री बनके लेने में दोष ....	७०	५२	नित्यश्राद्ध कहते है ....	७५	८२
वरसे कुछ थोड़ा भी न लेना-			पितरोंके लिये ब्राह्मण-		
चाहिये....	७०	५३	भोजनमें ....	७५	८३
कन्याके लिये धन का-			बलि वैश्वदेवकर्म कहतेहै	७५	८४
देना कहते है ....	७०	५४	बलि वैश्वदेवका फल कहतेहै	७६	९३
वस्त्र अलंकार आदिसे कन्या-			भिक्षा का देना ....	७७	९५
शोभिद करने योग्य ....	७१	५५	सत्कार करिक भिक्षा देना	७७	९६
कन्या आदिके पूजन करने तथा-			अपात्रका दान निष्फल	७७	९७
न करने का फल ....	७१	५६	सत्पात्रमें देनेका फल ....	७७	९८
उत्सवोंमें विशेष करि-			अतिथिके सत्कारमें ....	७७	९९
पूज्य है ....	७१	५९	अतिथिके न पूजनेकी मिंदा	७७	१००
स्त्री पुरुषके सत्पात्र का फल	७१	६०	मीठे बचन जल आसन-		
स्त्रीको अलंकार आदिके-			आदि के देने में ....	७८	१०१
देने न देनेमें ....	७१	६१	अतिथिकालक्षण कहते है	७८	१०२
कुल घटनेके कर्म ....	७२	६३	पराये पाकमें रुचिका-		
कुलघटने कि कर्म कहते है	७२	६६	निषेध ....	७८	१०४
पांच महायज्ञोका करना			अतिथि नही मनें करने-		
कहते है ....	७२	६७	योग्य है ....	७८	१०५
पांच सूत्रा ( वधस्थान )-			अतिथि भोजन कराये विना-		
कहते है ....	७२	६८	आप न खाना चाहिये	७८	१०६
पांचयज्ञ नित्य करने चाहिये	७३	६९	बहुत अतिथि होनेपर यथायोग्य-		
पांच यज्ञोंको कहते है....	७३	७०	सेवाकरनी चाहिये....	७९	१०७
पंचयज्ञ न करने की निंदा	७३	७२	अतिथिके लिये फिरि पाककरिकै-		
पाँचो यज्ञो के दूरसे नाम	७३	७३	बलि कर्मकरै ....	७९	१०८
असामर्थ्यमें ब्रह्मयज्ञ तथा-			भोजनके लिये कुल तथा गोत्रन-		

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
	७९ १०९	ज्ञाननिष्ठोंको कव्य आदिदेने—	
ब्राह्मणके क्षत्रिय आदि अतिथि—		चाहिये .... ८३ १३५	
नहीं होते .... ७९ ११०		श्रोत्रियको पुत्रकी प्राप्ति ८३ १३६	
पीछे क्षत्रिय आदिको भोजन—		श्राद्धमें मित्रआदिके भोजन का—	
करावै .... ७९-१११		निषेध .... ८३ १३८	
मित्रादिकोंको सत्कार करिकै—		मुखमें श्राद्धका दान निष्फल ८४ १४२	
भोजनकरावै .... ८०-११३		पंडितमें दक्षिणादेना फल देने—	
पहले गर्भिणी आदि भोजन—		वालाहै .... ८४ १४३	
कराने योग्यहै .... ८० ११४		विद्वान् ब्राह्मणके न होनेमें मित्रको—	
गृहस्थको पहले भोजनका—		भोजनकरावै शत्रुको नहीं ८४ १४४	
निषेध .... ८० ११५		वेदपारंगामी आदिको यत्नसे—	
स्त्री तथा पतिको सबसे पीछे—		भोजनकरावै .... ८५ १४५	
भोजन .... ८० ११६		श्राद्धमें मातामह आदिको भी—	
अपनेलिये पाकका निषेध ८० ११८		भोजनकरावै .... ८५ १४८	
घरमें आयेहुए राजा आदिकी—		ब्राह्मणोंकी परीक्षामें .... ८५ १४९	
पूजा कहतेहैं .... ८१ ११९		स्तेनपतित आदि निषिद्धहैं ८५ १५०	
राजा और ब्रह्मचारीकी पूजामें—		श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मण .... ८६ १५१	
संकोच कहतेहैं .... ८१ १२०		अध्ययन शून्य ब्राह्मणकी—	
स्त्रीको विनामंत्रके बलि करनी—		निंदा .... ८६ १६८	
चाहिये .... ८१ १२१		अपांक्त्यके देनेमें निषिद्ध फल ८९ १६९	
अथ अमावास्यामें पार्वण श्राद्ध		परिवेत्तादि लक्षण कहतेहैं ८९ १७१	
कहतेहैं .... ८१ १२२		पस्विदनके संबंधियोंका फल—	
मांसकरिकश्राद्धकरना चाहिये ८१ १२३		कहतेहैं .... ८९ १७२	
पार्वण आदिमें भोजनयोग्य—		दिधिषूपतिकका लक्षण .... ८९ १७३	
ब्राह्मणोंकी संख्या .... ८१ १२५		कुंड और गोलक कहतेहैं ८९ १७४	
ब्राह्मणोंका विस्तार न करै ८२ १२६		उनको दानका निषेध .... ९० १७५	
पार्वणके अवश्य कर्म .... ८२ १२७		जैसे स्तेन आदि न देखैं ऐसे—	
देवताओं और पितरोंके अन्न—		ब्राह्मण भोजन होना चा—	
श्रोत्रियको देने चाहिये ८३ १२८		हिये .... ९० १७६	
श्रोत्रियकी प्रशंसा .... ८२ १२९		शूद्र याजकका निषेध .... ९० १७८	
मंत्ररहित ब्राह्मणका निषेध ८३ १३३			

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
ब्रूयाजकसे दानलेनेका--		पितृआदिके ब्राह्मणोंका भोजन--	
निषेध .... ९७	१७९	करावै .... ९६	२१९
सोमविक्रय आदिकी भोजन तथ्य--		पिताके जीवते पितामह-	
दानमें निषिद्ध फलहै ९७	१८०	आदिका पार्वण ... ९१	२२०
पंक्ति पावणोंको कहतहैं ... ९१	१८३	पिताके मरणपर पितामह-	
ब्राह्मणके निमंत्रणमें ... ९२	१८७	आदिका पार्वण ... ९१	२२१
निमंत्रितके नियम ... ९२	१८८	पितृ ब्राह्मण आदिके भोजनकी-	
न्योता मानिके भोजन न करनेमें--		विधि .... ९८	२२३
दोष .... ९२	१९०	परोसने की विधि .... ९८	२२४
न्योते हुएकी स्त्री गमनमें ९३	१९१	व्यंजन आदिके दानमे .... ९८	२२६
भोजनकरने वाले और श्राद्धकरने-		रोना और क्रोध आदि-	
वालेको क्रोध आदि न करने-		न करना .... ९८	२२९
चाहिये .... ९३	१९२	ब्राह्मणके चाहे हुए व्यंजन-	
पितृगणकी उत्पत्ति ... ९३	१९३	आदिका देना ..... ९९	२३१
पितरोंका चांदीका पात्र उत्तम ९४	२०२	वेद आदि ब्राह्मणकी सुनावै ९९	२३२
देवकार्यसे पितृकार्य विशिष्ट ९४	२०३	ब्राह्मणोंको संतुष्ट करै .... ९९	२३३
दैवकार्य पितृकार्यका अंशहै ९४	२०४	दौहित्रको श्राद्धमे यत्नसे...	
पितृकार्यके अंतमें दैवकार्य हो-		भोजन करावै .... ९९	२३४
ताहै .... ९५	२०५	दौहित्र तिलकुतुप आदि-	
अथ श्राद्धके देश .... ९५	२०६	श्रेष्ठ .... ९९	२३५
निमंत्रितको आसन आदिदेना ९५	२०८	उष्ण अन्नक भोजन तथा हविके-	
गंध पुष्पआदिसे उनका पूजन ९५	२०९	ग्रहण आदिका न कहना ९९	२३६
उनकरिके आज्ञादियाहुआहो-		भोजनमें पगडी आदिका-	
मकरै .... ९५	२१०	निषेध .... १००	२३८
अग्निके न होनेमें पितरोंके हाथ--		भोजनके समय ब्राह्मणोंको-	
मेहोंमें .... ९६	२१२	चांडाल आदि न देखै १००	२३९
अप सव्यसे अग्नौ करण आदि ९६	२१४	कुत्ताकी दृष्टि आदिका-	
पिंडदान आदिकी विधि ९६	२१५	निषेध .... १००	२४१
कुशोंके मूलमें हाथोंको पोछना ९६	२१६	उप्त स्थानसे खंज आदि-	
ऋतुओंको नमस्कार आदि ९६	२१७	दूर करने योग्य है .... १००	२४२
प्रत्यवनेजन आदि .... ९६	२१८	भिक्षुक आदिके भोजनमें १०१	२४३

प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ. श्लो.
अग्निदग्धके अन्न दानमे	१०१ २४४	तृप्ति देनेवाले हैं	१०४ २६७
भूमिगत और उच्छेषण दास—		मांस आदिके भेदसे तृप्तिकालके	
का अंशहै	१०१ २४६	अवधिका नियम	१०४ २६८
सर्पिडन पर्यंत विश्वेदेवा—		मघा आदि श्राद्धोंमें मधुमिश्रित	
आदि रहित श्राद्ध	१०१ २४७	अन्नके दानका फल	१०४ २७३
सर्पिडो करनेके पीछे पार्वण—		गजकी छायामें दान का फल	१०४ २७४
की विधिसे श्राद्ध	१०१ २४८	श्राद्धसे दानका फल	१०५ २७५
श्राद्धमें उच्छिष्टशूद्रको न—		पितृपक्षमें उत्तमंतिथि	१०६ २७६
देना चाहिये	१०१ २४९	गुप्तमतिथि तथा नक्षत्र उत्तमहैं	१०६ २७७
श्राद्धमें भोजन करने वाले को—		कृष्णपक्ष, और अपराह्न काल	
स्त्री गमन का निषेध	१०१ २५०		१०६ २७८
भोजन किये हुए ब्राह्मणोंको—		कुशा ग्रहण पूर्वक अपसव्यसे	
आचमन करावे	१०२ २५१	पितृकर्म	१०६ २७९
वे ब्राह्मण स्वधाहो ऐसे कहै	१०२ २५२	रात्रि श्राद्धका निषेध	१०६ २८०
उनकी आज्ञासे वाकीके—		प्रत्येकमास श्राद्ध करनेकी असामर्थ्य	
अन्नका विनियोग करै	१०२ २५३	हो तो वर्षमें तीन बार करै	१०६ २८१
एकोद्दिष्ट आदिकी विधिको—		साम्निको अग्नौ कर्णमें	१०६ २८२
कहते हैं	१०२ २५४	तर्पणका फल	१०७ २८३
अप्सरा आदि	१०२ २५५	पितरोंकी प्रशंसा	१०७ २८४
श्राद्धमें कहे हुए अन्न—		ब्राह्मणभुक्तशेष और यज्ञ	
आदि	१०३ २५७	शेषका भोजन करै	१०७ २८५
ब्राह्मणोंका विसर्जन कर व—			
रकी प्रार्थना	१०३ २५८	अथ चतुर्थोऽध्यायः ।	
पिण्डों को गौ आदिके लिये दै	१०३ २६०	ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्यका	
पुत्र चाहने वाली स्त्रीको पितृमह		काल कहते हैं	१०७ १
को पिण्ड खाना चाहिये	१०३ २६२	शिलउज्ज आदिश्रुतिसे	
फिर जाति आदिको भोजन—		निर्वाह करै	१०८ २
करावै	१०४ २६४	उचित धनका संग्रह करै	१०८ ३
बाकी अन्नसे गृह बलि—		आपद रहित कालमें जीवि-	
का कार्य	१०४ २६५	काका उपाय कहते हैं	१०८ ४
तिल आदि पितरों को मांस पर्यन्त		ऋतु अमृत आदि शब्दों का-	
		अर्थ कहते हैं	१०८ ५

प्रकरण	पृ. श्लो.
कितने धनका भस्त्रय करै इस-	
विषय में कहते हैं .... १०९	७
एक दिनसे अधिक भोजनान्न इ-	
खने वाले की प्रशंसा .... १०९	८
याजन, अध्मापन आदितें-	
जीविका करे ..... १०९	९
शिल, उच्छसे जीविकामें	
विधान ..... १०९	१०
निन्दित जीविका न करै .... ११०	११
सन्तोषकी प्रशंसा .... ११०	१२
व्रतका करना .... ११०	१३
वेदोक्तकर्म करने योग्य है ११०	१४
गीत आदिसे धनके सञ्चय-	
का निषेध .... ११०	१५
विषयोंमें आसक्त होनेका-	
निषेध .... १११	१६
वेदार्थ विरोधि कर्मोंका त्याग १११	१७
अवस्था कुल आदिके अनु-	
सार आचरण करै .... १११	१८
नित्यप्राति शस्त्र आदिका-	
देखना .... १११	१९
जबतक शक्ति हो तबतक पंच-	
यज्ञोका त्याग न करै ११२	२१
कोई इन्द्रियों का संयम-	
करते है .... ११२	२२
कोई वाणीसे यज्ञ करते है ११२	२३
कोई ज्ञानसे यज्ञ करते है ११२	२४
दोनों संध्यामे अग्निहोत्र-	
और दर्श, पौर्णमास करै ११२	२५
सोमयोग आदिका करना ११२	२६
नवान्नसे श्राद्धनकरने-	

प्रकरण	पृ. श्लो.
का निषेध .... ११३	२७
यथा शक्ति अतिथिका-	
पूजन करे ..... ११३	२९
पाखण्डी आदिके पूजम-	
का निषेध .... ११३	३०
श्रोत्रिय आदिका पूजन करै ११३	३१
ब्रह्मचारी आदिके लिये	
अन्नदान ..... ११४	३२
क्षत्रिय आदिसे धन ग्रहण ११४	३३
धन होनेपर क्षुधित न रहै ११४	३४
पवित्र और वेदाध्ययन आदिसे	
युक्त रहै ..... ११४	३५
दण्डकमण्डलु आदिका	
धारण ..... ११४	३६
सूर्यके दर्शनका निषेध ..... ११५	३७
वच्छेकी रस्सीका छेदन, और जलमें	
अपनी छायाके दर्शनका	
निषेध ..... ११५	३८
मार्गमें गौ आदिको दक्षिण	
करे .... ११५	३९
रजस्वलास्त्रीके ममन आदिका	
निषेध .... ११५	४०
स्त्रीके साथ भोजन आदिका	
निषेध ..... ११६	४३
स्त्रीदर्शन न करनेके समय ..... ११६	४४
नग्नहोके स्नान आदि करनेका	
निषेध ..... ११६	४५
मार्ग आदिमें मलमूत्रके त्यागका	
निषेध ..... ११६	४६
मलमूत्रके त्यागके समय सूर्यादिके	
दर्शनका निषेध ..... ११६	४८

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
मलमूत्रके त्यागकी विधि ११६	४९	नांजने, आदिका निषेध.... ११८	६४
दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको		कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन	
मुख करना .... ११६	५०	तथा फूटे आदि पात्रमें	
अन्धकार आदिमें चाहे जिस दिशाको		भोजनका निषेध ११८	६५
मुख करे .... ११६	५१	दूसरेसे धावण किये हुए यज्ञोपवीत	
अग्निआदिके सम्मुख मलमूत्र त्यागका		आदिके धारणका निषेध.... ११९	६६
निषेध .... ११६	५२	अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका	
अग्निमें परोका तपाने आदिका		निषेध .... ११९	६७
निषेध .... ११७	५३	धुर्यका लक्षण कहतेहैं .... ११९	६८
अग्निके लंघन आदिका		प्रेत धूमका तथा नख आदिके	
निषेध .... ११७	५४	छेदनका निषेध..... ११९	६९
संध्याकालमें भोजन आदिका		तृण आदिके छेदनका निषेध ११९	७०
निषेध .... ११७	५५	लोष्ठमर्दन आदिका निषेध ११९	७१
जलमें मूत्र आदिपटकानेका		मालाके धारण तथा वृषकी सवारी	
निषेध .... ११७	५६	आदिके विषयमें..... ११९	७२
शून्य घरमें शयन आदिका—		द्वारके विना गृह गमन आदिका	
निषेध .... ११७	५७	निषेध .... १२०	७३
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे—		जूआ खेलना आदि तथा शय्यापर	
बाहर करै .... ११७	५८	स्थित होके भोजन आदिको	
जल चाहनेवाली गौका निवारण		निषेध ..... १२०	७४
न फूरे तथा इन्द्र धनुषको		रात्रिमें तिल भोजन तथा नम्र	
न दिखवै .... ११८	५९	होके शयन करने आदिका	
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मा—		निषेध..... १२०	७५
गर्भे एकाकी गमन आदिका		गीले परोसे भोजन करे.... १२०	७६
निषेध .... ११८	६०	दुर्ग गमन मर्ल दर्शन नदी—	
शूद्र राज्य आदिमें निवासका		तरणका निषेध ..... १२०	७७
निषेध .... ११८	६१	केश, भस्म, आदिपर स्थिति	
अत्यंतभोजन आदिका —		न करना .... १२०	७८
निषेध .... ११८	६२	पातित आदिके साथ निवास	
अञ्जलिसे जलपान आदिका		न करै .... १२१	७९
निषेध .... ११८	६३	शूद्रके लिये व्रत कथन आदि—	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
का निषेध ..... १२१	८०	अकालके अनध्यायको	१२४ १०२
शिरका खुजालना तथा स्नान			
आदिके विषयमें ..... १२१	८२	सब कालके अनध्यायको	१२४ १०३
क्रोधसे शिर ग्रहण केश ग्रहण—		कहतेहैं ..... १२५	१०५
के विषयमें ..... १२२	८३	संघाके गर्जने आदिमें ..... १२५	१०६
तैलसे स्नान किये हुएको फि—		नगर आदिमें नित्य	
र तैलके स्पर्शमें ..... १२१	८३	अनध्याय ..... १२५	१०७
क्षत्रिय भिन्न राजा आदिसे प्रति		श्राद्धके भोजनमें और सूर्य चंद्र आ—	
ग्रहणका निषेध .... १२१	८४	दिके ग्रहणमें तीनिरात्रि	
तेरी आदिसे प्रतिग्रहका		अनध्याय .... १२६	११०
निषेध .... १२२	८५	गंध तथा लेपयुक्त वेदको	
शास्त्र विरुद्ध मार्गमें चलने वाले		न पढ़ै ..... १२६	१११
रम्भासे प्रतिग्रहकानिषेध १२२	८७	शय्या आदि पर न पढ़ै .... १२६	११२
तामिस्र आदि इक्कीस नरको—		अमावास्या आदि अध्ययनमें	
को कहतेहैं ..... १२२	८८	निषिद्ध है ..... १२६	११४
ब्राह्म मु ..... १२३	९२	सामवेदकी ध्वनि होनेपर दूसरा—	
प्रातःकालमें कर्तव्य आदि १२३	९३	वेद न पढ़ै ..... १२७	१२३
प्रातःकर्तव्यको आयुकीर्त्ति		तीनो वेदोंके देवताओंका	
आदिको वर्द्धकता .... १२३	९४	कथन .... १२७	१२४
श्रावणीमें उपाकर्म करना		गायत्री जपके अनंतर वेदपाठ १२७	१२५
चाहिये .... १२३	९५	गौ आदिकोंके बीचमें नि—	
पुष्यमें उत्सर्ग कर्म करै .... १२३	९६	कलनेपर .... १२७	१२६
उत्सर्ग करनेपर अनध्याय		शुद्ध देशमें शुद्ध होकै पढना	
काल ..... १२४	९७	चाहिये ..... १२७	१२७
फिर वेदोंको शुक्लपक्षमें और वेदांगो		ऋतुकालमेंभी अमावास्या	
कों कृष्णपक्षमें पढ़ै .... १२४	९८	आदिमें स्त्रीगमन न करे १२८	१२८
अस्यष्टपाठ, तथा निशाके अन्तमें		आतुर आदिकोंको स्नानका	
सोनेका निषेध .... १२४	९९	निषेध ..... १२८	१२९
गायत्री आदि नित्य पढ़ै १२४	१००	गुरु आदिकी छायाकालां—	
अनध्यायोंको कहतेहैं ..... १२४	१०१	घनेका दोष .... १२९	१३०
वर्षाकालके अनध्यायोंको			



प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
मलमूत्रके त्यागकी विधि ११६	४९	नांजने, आदिका निषेध.... ११८	६४
दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको		कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन	
मुख करना .... ११६	५०	तथा फूटे, आदि पात्रमें	
अन्धकार आदिमें चाहे जिस दिशाको		भोजनका निषेध ११८	६५
मुख करे .... ११६	५१	दूसरेसे धाड़ण किये हुए यज्ञोपवीत	
अग्निआदिके सम्मुख मलमूत्र त्यागका		आदिके धारणका निषेध.... ११९	६६
निषेध .... ११६	५२	अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका	
अग्निमें पेरोंका तपाने आदिका		निषेध .... ११९	६७
निषेध .... ११७	५३	धुर्यका लक्षण कहतेहैं .... ११९	६८
अग्निके लंघन आदिका		प्रेत धूमका तथा नख आदिके	
निषेध .... ११७	५४	छेदनका निषेध..... ११९	६९
संध्याकालमें भोजन आदिका		तृण आदिके छेदनका निषेध ११९	७०
निषेध .... ११७	५५	लोष्ठमर्दन आदिका निषेध ११९	७१
जलमें मूत्र आदिपटकानेका		मालाके धारण तथा वृषकी सवारी	
निषेध .... ११७	५६	आदिके विषयमें..... ११९	७२
शून्य घरमें शयन आदिका—		द्वारके बिना गृह गमन आदिका	
निषेध .... ११७	५७	निषेध .... १२०	७३
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे—		जूआ खेलना आदि तथा शय्यापर	
बाहर करे .... ११७	५८	स्थित होके भोजन आदिको	
जल चाहनेवाली गौका निवारण		निषेध ..... १२०	७४
न करे तथा इन्द्र धनुषको		रात्रिमें तिल भोजन तथा नम्र	
न दिखावै .... ११८	५९	होके शयन करने आदिका	
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मा—		निषेध..... १२०	७५
गर्भ एकाकी गमन आदिका		गीले पेरोंसे भोजन करे.... १२०	७६
निषेध .... ११८	६०	दुर्ग गमन मर्ल दर्शन नदी—	
शूद्र राज्य आदिमें निवासका		तरणका निषेध ..... १२०	७७
निषेध .... ११८	६१	केश, भस्म, आदिपर स्थिति	
अत्यंतभोजन आदिका —		न करना .... १२०	७८
निषेध .... ११८	६२	पातित आदिके साथ निवास	
अञ्जलिसे जलपान आदिका		न करे .... १२१	७९
निषेध .... ११८	६३	शूद्रके लिये व्रत कथन आदि—	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
वा निषेध ..... १२१ ८०		ह ..... १२४ १०२	
शिरका कुशाक्षता तथा स्नान		अकालके अनध्यायको	
आदिके निषेध ..... १२१ ८१		कहतेहैं ..... १२४ १०३	
क्रोधसे शिरा प्रहार केश ग्रहण—		सब कालके अनध्यायको.	
के निषेध ..... १२२ ८३		कहतेहैं ..... १२५ १०५	
तैलेसे स्नान किसे हुयेको फि—		संध्याके गर्जने आदिमें ..... १२५ १०६	
र तैलेके छप्पिमें ..... १२२ ८३		नगर आदिमें निन्य	
क्षत्रिय भिक्षु राजा आदिते प्रति		अनध्याय ..... १२५ १०७	
ग्रहणका निषेध ..... १२१ ८४		श्राद्धके भोजनमें और सूर्य चंद्र आ—	
तेली आदिके प्रतिग्रहका		दिके ग्रहणमें तीनिरात्रि	
निषेध ..... १२२ ८५		अनध्याय ..... १२६ ११०	
शास्त्र विवद मार्गमें चलने वाले		गंध तथा लेपयुक्त वेदको	
स्नानादि प्रतिग्रहकानिषेध १२२ ८७		न पढ़ै ..... १२६ १११	
तामिस आदि इक्षीस नरको—		शय्या आदि पर न पढ़ै ..... १२६ ११२	
को कहतेहैं ..... १२२ ८८		अमावास्या आदि अध्ययनमें	
ब्राह्म सुतमें उठें ..... १२३ ९२		निषिद्ध है ..... १२६ ११४	
प्रातःकालमें कर्तव्य आदि १२३ ९३		सामवेदकी ध्वनि होनेपर दूसरा—	
प्रातःकालमें आयुकीर्त्ति		वेद न पढ़ै ..... १२७ १२३	
आदिको वर्द्धकता ..... १२३ ९४		तीनो वेदोंके देवताओंका	
श्रावणमें कृष्णकर्म करना		कथन ..... १२७ १२४	
चाहिये ..... १२३ ९५		गायत्री जपके अनंतर वेदपाठ १२७ १२५	
पुण्यमें उत्तम कर्म करै ..... १२३ ९६		गौ आदिकोंके बीचमें नि—	
उत्सर्ग करनेपर अनध्याय		कलनेपर ..... १२७ १२६	
काल ..... १२४ ९७		शुद्ध देशमें शुद्ध होकै पढ़ना	
फिर वेदोंको शुक्लपक्षमें और वेदांगो		चाहिये ..... १२७ १२७	
कों कृष्णपक्षमें पढ़ै ..... १२४ ९८		ऋतुकालमेंभी अमावास्या	
अस्थाप्याय, न्याय निशाके अन्तमें		आदिमें स्त्रीगमन न करे १२८ १२८	
सोनेकर्म निषेध ..... १२४ ९९		आतुर आदिकोंको स्नानका	
गायत्री आदि त्रितय पढ़ै १२४ १००		निषेध ..... १२८ १२९	
अनध्यायोंको कहतेहैं ..... १२४ १०१		गुरु आदिकी छायाकाला—	
वर्षाकालके अनध्यायोंको		घनेका दोष ..... १२९ १३०	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
श्राद्धभोक्ताके चौराहेके		आचारका फल .....	१३२ १५६
जानेमें .... १२३	१३१	दुराचारकी निन्दा.....	१३३ १५७
रक्त कफ आदिके ऊपर नबैठै १२९	१३२	आचारकी प्रशंसा .....	१३३ १५८
शत्रु चोर और पराई स्त्रीकी		परवश कर्मके त्याग आदिमें १३३	१५९
सेवाका निषेध..... १२९	१३३	मनकासंतुष्ट करनेवाला	
पराई स्त्रीकी निन्दा..... १२९	१३४	कर्म करे .... १३३	१६०
क्षत्रिय सर्प तथा ब्राह्मण अप-		आचार्य आदिकी हिंसाका	
मानके योग्य नहीं हैं..... १२९	१३५	निषेध .... १३३	१६१
अपने अपमानका निषेध १२९	१३६	नास्तिक्य आदिका निषेध १३३	१६३
प्यारा और सत्य वचन कहै १३०	१३८	अन्यके ताड़न आदिका--	
बुधावादन करै .... १३०	१३९	निषेध..... १३४	१६४
प्रातःकाल आदिमें अज्ञातके		ब्राह्मणके ताड़नके उद्योगमें १३४	१६५
साथ न जाना चाहिये .... १३०	१४०	ब्राह्मणके ताड़नमें .... १३४	१६६
हीन अंग आदिको पर		ब्राह्मणके रुधिर निकालनेमें १३४	१६७
आक्षेप .... १३०	१४१	अधर्मी आदिको सुखनही १३५	१७१
उच्छिष्टक आदिके		अधर्ममें मन न लगावै .... १३५	१७२
दर्शनमें .... १३०	१४२	हौले २ अधर्मके फलकी उत्प-	
अपने इन्द्रिके छूने आदिमें १३०	१४४	त्ति होता है .... १३५	१७३
मङ्गलचार युक्त हेय .... १३१	१४५	शिष्य आदिके शासनमें... १३५	१७५
वेदाध्ययनकी मुख्यता .... १३१	१४६	अर्थ कामके त्यागमें .... १३५	१७६
अष्टकां-श्राद्ध आदिमें अवश्य		हाथ पांवकी चपलताका--	
करना चाहिये .... १३१	१५०	निषेध .... १३६	१७७
अग्नि गृहसे दूर मूत्रं		कुलके मार्गमें चलना .... १३६	१७८
आदिका त्याग..... १३२	१५१	ऋत्विक् आदिसे वादनकरै १३६	१७९
पूर्वाह्नमें स्नान मूर्जा आदि १३२	१५२	इनके साथ विवादकी उपेक्षा--	
पर्वोंमें देवता आदिका		का फल कहते हैं..... १३७	१८१
दर्शन .... १३२	१५३	प्रतिग्रहकी निन्दा .... १३७	१८६
आये हुए वृद्ध आदिके		विधिके विना जाने प्रतिग्रह न-	
सत्कारमें .... १३२	१५४	करना चाहिये .... १३७	१८७
स्मृतिमें कहा हुआ		मूर्खको सोने आदिके छेनेमें १३८	१८८
आचार करना चाहिये १३२	१५५	वैडाल-व्रतिक आदिमें दानका--	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
निषेध .... १३८	१९२	शूद्रकरि पक्कअन्नका निषेध १४४	२२३
वैडाल व्रतिकका लक्षण.... १३९	१९६	कृपण श्रोत्रिय तथा व्याज खा—	
वक व्रत्तिका लक्षण..... १३९	१९६	नेवालैका अन्न निषिद्ध १४४	२२४
उन दोनोको निन्दा .... १३९	१९७	श्रद्धासे दियेहुए दाता तथा व्या—	
प्रायश्चित्तमें वंचना न करनी— :		ज ज्ञानेवालैके अन्न.... १४४	२२५
चाहिये .... १३९	१९८	श्रद्धासे यज्ञ आदिकरै .... १४४	२२६
छलसे व्रतके करनेमें .... १४०	१९९	श्रद्धासे दियेहुए दानका फल १४५	२२७
छलसे कर्मडलु आदिके धार—		जल भूमि दान आदिका फल १४४	२२८
णमें .... १४०	२००	वेदके दानकी प्रशंसा .... १४५	२३३
पराई बनाई हुई पुष्करिणी—		जिस २ भावसे दान देताहै उसी—	
आदिके स्नानमें .... १४०	२०१	को जन्मांतरमें पाताहै १४५	२३४
विना दियेहुए यान आदिके—		विधिसे दानदेने तथा लेनेमें १४६	२३५
भोग का निषेध .... १४०	२०२	द्विजकी निंदाका दानके कहने—	
नदी आदिमें स्नानकरना—		का निषेध .... १४६	२३६
चाहिये .... १४०	२०३	अनृत आदिका फल .... १४६	२३७
यम और नियम कहतेहैं... ४०	२०४	हौले २ धर्मकरै .... १४६	२३८
अश्रोत्रिय यज्ञमें भोजनका—		धर्मकी प्रशंसा .... १४६	२३९
निषेध .... १४१	२०५	उंचोसे संबध करना हीनोसे—	
क्रुद्ध आदिका अन्न तथा केश—		नही .... १४७	२४४
आदिसे मिलाहुआ न भोजन—		फल मूल आदिके लेनेमें.... १४८	२४७
करै .... १४१	२०७	दुष्कृत कर्मकी भिक्षालेना १४८	२४८
रजस्वलाकरि छुएहुए अन्न—		भिक्षाके न लेनेमें .... १४८	२४९
आदिका निषेध..... १४१	२०८	विना मागी भिक्षामें.... १४८	२५०
गऊ करि मूँचाहुआ और गुणिका—		कुटुंबकोलिये भिक्षा .... १४८	२५१
आदिके अन्नका निषेध १४१	२०९	अपनेलिये साधु भिक्षा .... १४८	२५२
स्तेन आदिके अन्न अभोज्या—		जिनका अन्न भोजनके योग्य—	
नहैं .... १४१	२१०	ऐसे शूद्र .... १४९	२५३
राजा आदिके अन्न भोजनमें—		शूद्रोंको अपना निवेदन कर—	
मंद फल .... १४३	२१८	ना चाहिये .... १४९	२५४
उनके अन्नके भोजनमें प्राय—		झूठ कहनेमें निन्दा .... १४९	२५५
श्रित्त .... १४३	२२२	योग्य पुत्रको कुटुंबका भारदेना—	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
चाहिये ....	१४९ २५७	निन्दा ....	१५६ ३९
ब्रह्मकी चिन्ता .....	१४९ २५८	अप्रोक्षित मांस न खाय ....	१५६ ३६
कहे हुए फल का कहना १५० २६०		यज्ञकेलिये ब्राह्मणकी पशंसा १५७ ३९	
<b>अथ पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		पशुके मारनेमें कालका नियम १५७ ४१	
मनुष्यों की कैसे मृत्यु होती—		वेदमें न कही हुई हिंसाका नि—	
है यह प्रश्न ....	१५० २	षेध ....	१५७ ४३
मृत्युके पहुँचाने वाले को—		अपने सुखकी इच्छासे मारनेमें १५८ ४५	
कहते हैं ....	१५१ ३	वध और बंधन न करना चा—	
लशुन आदि अभक्ष्य—		हिये ....	१५८ ४६
कहते हैं .....	१५१ ५	मांसके वर्जनेमें ....	१५८ ४८
वृथा मांस आदिका निषेध १५१ ७		अथ घातक कहिये मारने—	
अभक्ष्य दूध .....	१५१ ८	बाले ....	१५८ ५१
शुक्तो मे दही आदि भक्ष्य १५२ १०		मांसके वर्जनका फल ....	१५९ ५३
अथ अभक्ष्य पक्षी ....	१५२ ११	सर्पिण्डोंका दशदिन आदि—	
सौन और सूखे मांस आदि १५२ १३		आशौच ....	१६० ५८
गाँवके शूकर मछली आदि १५२ १४		अथ सपिण्डता . ...	१६० ६०
मछली खाने की निन्दा ....	१५३ १५	जननेमें माताका न छुना १६० ६२	
खाने योग्य मछली कहते हैं १५३ १६		वार्यिके गिरने और पर पूर्व—	
सर्प वानर आदिका निषेध १५३ १७		अपत्यके मरनेमें ....	१६१ ६३
खाने योग्य पंच नख—		शवके स्पर्श और समानोदकके—	
कहते १५३ १८		मरनेमें ....	१६१ ६४
लशुन आदिके खानेमें—		गुरूके मरनेका आशौच ....	१६१ ६५
प्रायश्चित्त ....	१५३ १९	गर्म स्त्राव होनेपर रजस्वला—	
यज्ञके लिये पशुहिंसा—		की शुद्धिमें १६१ ६६	
की विधि .....	१५४ २२	बालक आदिका आशौच १६१ ६७	
वासी भी भक्ष्य ....	१५४ २४	दो वर्षसे न्यूनका भूमिमें ग्राहना १६१ ६८	
मांसके भक्षणमें ....	१५५ २७	इसके अभिसंस्कार आदि न—	
प्रोक्षित मांस खाने का—		१६२ ६९	
नियम ....	१५५ ३१	बालकके जल दानमें ....	१६२ ७०
वृथा मांस खानेका निषेध १५६ ३३		सहपाठीके मरनेमें ....	१६२ ७१
श्राद्धमें मांसके न खानेमें—		वाग्दत्ता स्त्रीका आशौच १६२ ७२	

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
हविष्यका भक्षण आदि .... १६२.	७३		क्षत्रधर्मेसे मारे हुएकी शीघ्रही		
अथ विदेशका आशौच १६३	७५		शुद्धता..... १६३	९८	
आचार्यके और उंसके पुत्रके			आशौचके अंतका कृत्य.... १६६	९९	
मरनेमें .... १६३	८०		असपिंडका आशौचकहतेहैं १६६	१००	
श्रोत्रिय तथा मामा आदिके			मृतक असपिंडके लेजानेमें १६७	१०१	
मरनेमें .... १६३	८१		आशौच वालेका अन्नखानेमें १६७	१०२	
राजाके अध्यापक आदिके			मृतक लेजानेवालोंके साथ		
मरनेमें .... १६३	८२		जन्मेमें ..... १६७	१०३	
संपूर्ण आशौच कहतेहैं .... १६४	८३		ब्राह्मणको शूद्रोंसे न उठवावै १६७	१०४	
अग्निहोत्रके लिये स्नानसे			ज्ञान आदि शुद्धिके साधनहैं १६७	१०५	
शुद्धि .... १६४	८४		अर्थ कहिये धनमे शुद्धकी		
छूनेके कारण आशौच .... १६४	८५		प्रशंसा .... १६७	१०६	
आशौचके दर्शनमें .... १६४	८६		क्षमा दान जप तथा तप शोधने		
मनुष्यके अस्थिके स्पर्शमें १६४	८७		वालेहैं .... १६८	१०७	
ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्ति तक प्रेतको			मैली नदी स्त्री तथा द्विजकी		
जलदान आदि न करै १६५	८८		शुद्धिमें ..... १६८	१०८	
पतित आदिकोंको जलदान			शरीर मन आत्मा बुद्धिकी		
आदि न करै .... १६५	८९		शुद्धिमें .... १६८	१०९	
व्यभिचारिणी आदिको जलदान			द्रव्य शुद्धि कहतेहैं..... १६८	११०	
न करै ..... १६५	९०		सुवर्ण आदि तथा मणिकी		
ब्रह्मचारीको मृतपिता आदिके			शुद्धिमें ..... १६८	१११	
लेजानेमें ..... १६५	९१		घृत आदि शय्या आदि तथा काष्ठ		
शूद्र आदिकोंके मृतकको दक्षिण आदि—			की शुद्धिमें ..... १६९	११५	
पुरद्वास्ते निकलै..... १६५	९२		यज्ञके पात्रोंकी शुद्धिमें.... १६९	११६	
राजा आदिकोंको आशौच			धीन्य तथा वस्त्रकी शुद्धिमें १६९	११८	
न होनेमें ..... १६५	९३		चर्म वांस्का पात्र शाक मूल		
राजाकी शीघ्रही शुद्धता १६५	९४		तथा फलकी शुद्धिमें ..... १७०	११९	
वज्र आदिसे मरे हुएकी शीघ्रही			कंबल पटवस्त्रकी शुद्धिमें १७०	१२१	
शुद्धता .... १६६	९५		तृणकाष्ठ गृह मृदांडकी		
राजाके आशौच न होनेकी			शुद्धिमें ..... १७०	१२२	
स्तुति .... १६६	९६		रुधिर आदिसे दूषित मृदां—		
			डका त्याग .... १७०	१२३	

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
भूमिकी शुद्धिमें ....	१७०	१२४	किसके वशमें रहै सो		
पक्षीके खाये और गौके—			कहते हैं ....	१७४	१४८
सूये आदिमें ....	१७१	१२५	प्रसन्न हो घरका काम करै	१७४	१५०
गंधलेपयुक्त द्रव्यकी—			स्वामीकी सेवा ....	१७५	१५१
शुद्धिमें ....	१७१	१२६	स्वामीपन का कारण		
पवित्र कहतेहैं ....	१७१	१२७	कहते है ....	१७५	१५२
जलकी शुद्धिमें ....	१७१	१२८	स्वामी की प्रशंसा ....	१७५	१५३
नित्य शुद्ध कहतेहैं ....	१७१	१२९	स्त्रियोंके पृथक् यज्ञका—		
छूनेमें नित्य शुद्ध ....	१७२	१३२	निषेध ....	१७५	१५५
मूत्र आदिके त्यागकी शुद्धि	१७२	१३४	स्वामीका अमप्रिय न करै	१७५	१५६
अथ बारह मल ....	१७२	१३५	जिसका पतिमरगया है—		
मिट्टी और जलके लेनेमें			उसके धर्म ....	१७६	१५७
नियम ....	१७२	१३६	पराये पुरुषसें गमन—		
ब्रह्मचारी आदिको द्विगुण आदि			की निंदा ....	१७६	१६०
प्राचमनके अनंतर इद्रिम			पतिव्रतापनका फल	१७७	१६५
आदिका छूना ....	१७३	१३७	भार्याके मरने पर श्रौत—		
आचमनकी विधि ....	१७३	१३९	अग्निसे दाह ....	१७७	१६७
शूद्रोंको मासुमें शिर मुडाना और			फिर स्त्रीके ग्रहणमें ....	१७७	१६८
द्विजोच्छिष्ट भोजन ....	१७३	१४०	गृहस्थके कालकी अवधि	१७७	१६९
मुखके बिंदु और मूछ आदि					
उच्छिष्ट नहींहैं ....	१७३	१४१			
पार्ष्णिमेषिरी कुछेकी बूंद					
शुद्ध है ....	१७३	१४२			
द्रव्य हस्तको उच्छिष्टके					
छूनेमें ....	१७३	१४३			
वसन विरेचन तथा मैथुन—					
की शुद्धिमें ....	१७३	१४४			
न । शुधा भोजन आदिकी					
शुद्धिमें ....	१७४	१४५			
अथ स्त्री धर्मोंको कहते हैं	१७४	१४६			
स्त्री की स्वतंत्रद्वाना चाहिये	१७४	१४७			

### अथ षष्ठोऽध्यायः ।

वानप्रस्थ आश्रम कहतेहै	१७८	१
भार्या और अग्निहोत्र—		
सहित वनमें वसै ....	१७८	३
फल मूलसे पंचप्रज्ञ करना	१७८	५
मृगचर्म चौर जटा आदि—		
का धारण ....	१७८	६
अतिथिचर्या ....	१७८	७
वानप्रस्थके नियम ....	१७९	८
मधुमांस आदिका वर्जन ....	१७९	१४
आश्विनमें संकय किये हुए—		
नीवार आदिका त्याग ....	१८०	१५

# अध्याय ६]

## मनुस्मृति

१९

### प्रकरण

पृ.

श्लो.

### प्रकरण

पृ.

श्लो.

फालसे जुते हुए अन्न—			अकेला मोक्षके लिये विचरै	१८४	४२
आदिका निषेध .... १८०	१६		संन्यासीके नियम .... १८४	४३	
अशमकुष्ठ आदि ..... १८०	१७		मुक्तका लक्षण .... १८४	४४	
तृणधान्य आदिके इकट्ठे—			जीवने आदिकी कामनासे र—		
करनेमें ..... १८०	१८		हित होवै ..... १८५	४५	
भोजनके काल आदि .... १८०	१९		संन्यासीका आचार ..... १८५	४६	
भूमि परिवर्तन आदि .... १८०	२२		भिक्षाके ग्रहणमें ..... १८५	५०	
ग्रीष्म आदि ऋतु औकालत्य १८१	२३		दंडकमंडलु आदि .... १८६	५२	
अपने देहको सुखावै .... १८१	२४		भिक्षाके पात्र .... १८६	५३	
अग्निहोत्रका समाप्त करना			एक कालमें भिक्षा करना १८६	५५	
आदि .... १८१	२५		भिक्षाका काल ..... १८६	५६	
वृक्षोकेनीचे तथा भूमिमें सोना			मिलने न मिलनेमें हर्ष विषाद—		
आदि .... १८१	२६		न करै ..... १८६	५७	
भिक्षा करनेमें ..... १८१	२७		पूजा पूर्वक भिक्षाका निषेध १८६	५८	
वेद पाठ आदि ..... १८२	२९		इन्द्रियोंका रोकना ..... १८७	५९	
महा प्रस्थान .... १८२	३१		संसारकी गतिका कथन .... १८७	६१	
संन्यासीका काल कहैतहै १८२	३३		सुखदुःखके धर्मअधर्म कार—		
ब्रह्मचर्य आदिके क्रमसे संन्या—			णहै ..... १८७	६४	
स लेवै .... १८२	३४		चिन्हमात्र धर्मका कारण		
ऋणशोधे विना संन्यास न			नहीहै ..... १८७	६६	
लेवै ..... १८३	३५		भूमिको देखकै भ्रमण करै १८८	६८	
पुत्र विना उत्पन्न किये संन्यास			छोटे जीवोंकी हिंसाका प्राय		
न लेवै .... १८३	३६		श्चित ..... १८८	७९	
प्राजापत्य यज्ञ करिकै संन्यास			प्राणायामकी प्रशंसा .... १८८	७०	
लेवै .... १८३	३८		ध्यानके योगसे आत्माको		
अभय दानका फल ..... १८३	३९		देखै ..... १८९	७३	
बांछा रहितहो संन्यास लेवै १८४	४१		ब्रह्मके साक्षात्कारमें मुक्ति १८९	७४	



प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
मोक्षके साधक कर्म .....	१८९	७५	दंडके योग्योंको दंड न	
देहका स्वरूप ....	१८९	७६	देनेमें निंदा .....	१९६ २०
देहके त्यागमें दृष्टांत कहतेहैं	१९०	७८	फिरि दंडकी प्रशंसा .....	१९७ २२
प्रियअप्रियमें पुण्यपापका			दंड देनेवाला कैसा होय इस-	
त्याग ....	१९०	७९	पर कहतेहैं ....	१९७ २६
विषयोंकी इच्छा न करनी	१९०	८०	अधर्म दंडमें राजा आदिकोंका	
आत्माका ध्यान ....	१९०	८२	दोष ....	१९८ २८
संन्यासिका फलं ....	१९१	८५	मूर्ख आदिकोंको दंड देनेका	
वेद संन्यासियोंके कर्म कहतेहैं	१९१	८६	निषेध .....	१९८ ३०
चारि आश्रम .....	१९१	८७	सत्य प्रतिज्ञा वाले करि दंड	
सब आश्रमोंका फल .....	१९१	८८	देना योग्य है ....	१९८ ३१
गृहस्थकी श्रेष्ठता ....	१९२	८९	शत्रुमित्र ब्राह्मण आदिमें दंड-	
दशप्रकारका धर्म सेवन कर-			की विधि ....	१९८ ३२
ने योग्य है .....	१९२	९१	न्यायमें चलनेवाले राजाकी	
दश प्रकारकी धर्म कहतेहैं	१९२	९३	प्रशंसा .....	१९९ ३३
वेदहीका अभ्यास करै ....	१९३	९५	राजाके कृत्यमें बृद्धकी सेवा	१९९ ३४
वेदसंन्यासका फल ....	१९३	९६	विनयका ग्रहण ....	१९९ ३७
<b>अथ सप्तमोऽध्यायः ।</b>			अविनयकी निन्दा ....	१९९ ३९
राजधर्मोंको कहतेहैं ....	१९३		यही दृष्टांत कहतेहैं .....	२०० ४०
संस्कार किये हुएका प्रजाका			विनयसे राज्य आदि पानेका	
रक्षण ....	१९३		दृष्टांत ....	२०० ४१
रक्षाके लिये इंद्र आदिकोके			विद्याका ग्रहण .....	२०० ४३
अंशसे राजाकी उत्पत्ति	१९४	३	इन्द्रियोंका जीतना .....	२०० ४४
राजाकी प्रशंसा ....	१९४	६	कामक्रोधसे उत्पन्न व्यसनका	
राजासे द्वेषकी निन्दा ....	१९५	१२	त्याग .....	२०० ४५
राजाके स्थापित धर्मको			कामसे उत्पन्न दशव्यसन कहतेहैं	२०१ ४७
न चलवै .....	१९५	१३	क्रोधसे उत्पन्न दशव्यसन कहतेहैं	२०१ ४८
दंडकी उत्पत्ति ....	१९५	१४	सर्वोंकेमूल लोकका त्याग ....	२०१ ४९
दंडका करना ....	१९६	१६	अतिदुःखके देनेवाले व्यसन हैं	२०१ ५०
दंडकी प्रशंसा .....	१९६	१७	व्यसनकी निन्दा ....	२०२ ५३
अयोग्य दंडका निषेध ....	१९६	१९	अथ सचिवकहित्यमन्त्री ....	२०२ ५४

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
मंत्रियोंके साथ विचार करिकै—			जिसने जोजीता वह उसी—		
हितकरना चाहिये.... २०३	९६		का धन ..... २०९	९६	
ब्राह्मण मंत्री ..... २०३	९८		श्रेष्ठ वस्तु राजाको देनी २१०	९७	
औरोंकोभी मंत्री करै.... २०३	६०		हाथी घोड़े आदिका बढ़ाना २१०	९९	
स्वामि आदि धनके उत्पत्ति—			नपाये हुएके पानेकी—		
स्थानमें धर्मसे अंयमानने—			इच्छा करै ..... २१०	१०१	
वालोकों नियतकरै .... २०४	६२		घोड़े-प्यादे आदिकी—		
दूत का लक्षण ..... २०४	६३		दित्य शिक्षा ..... २१०	१०२	
सेनापति आदिका कार्य.... २०४	६५		नित्य उद्यत दंडहोय.... २११	१०३	
दूतकी प्रशंसा .... २०४	६६		मंत्री आदिकोंमें माया न—		
प्रत्येक राजाका वांछित—			करनी चाहिये ..... २११	१०४	
दूतसे जानै ..... २०५	६७		प्रजाका भेद आदि रक्षा—		
जंगल देशके आश्रयलेनेमें २०५	६९		करना चाहिये.... २११	१०५	
अथ दुर्गके प्रकार .... २०५	७०		अर्थ आदिकी चिन्ताकरनी २११	१०६	
दुर्गको अस्त्र अन्न आदि—			विजयके विरोधी वशकरने—		
संपूर्ण करै ..... २०६	७५		चाहिये .... २११	१०७	
सुंदर स्त्रीसे विवाह करै... २०७	७७		सामदंडकी प्रशंसा .... २१२	१०९	
पुरोहित आदि ..... २०७	७८		राजाकी रक्षा.... २१२	११०	
यज्ञ आदिका करना .... २०७	७९		प्रजाके पीडा देनेमें दोष २१२	१११	
करके लेनेमें .... २०७	८०		प्रजाकी रक्षामें सुख .... २१३	११३	
अथ अध्यक्ष .... २०७	८१		ग्रामके अधिपति आदि २१३	११५	
ब्राह्मणोंको जीविका देना २०७	८२		ग्रामके दोषका कहना .... २१३	११६	
ब्राह्मणोंको जीविका—			ग्रामके अधिकारी की—		
देनेकी प्रशंसा .... २०८	८३		वृत्ति कहते हैं ..... २१३	११८	
पात्रमें दान का फल कहते हैं २०८	८५		ग्रामके कार्य इसकरकै—		
संग्राममें बुला हुआ न लौटे २०८	८७		करने योग्य है .... २१३	१२०	
सन्मुख मरनेमें स्वर्गप्राप्ति २०९	८९		अर्थका स्तित्वन करने—		
छलके अस्त्र आदिका निषेध २०९	९०		वाला होय .... २१४	१२१	
संग्राममें अवध्य कहते हैं २०९	९१		उसके चरित्र को आपजानै २१४	१२२	
भीत आदिके मरनेमें दोष २०९	९४		धूसि आदिके लेनेवाले का—		
संग्राममें मारेहुएके—			शासन करना .... २१४	१२३	
मारनेमें दोष .... २०९	९५				

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
प्रेष्य आदि वृत्तिका कल्प—			आषको अधिक करै.....	२२३	१७७
ना करना ....	२१४	१२५	आनेवाले गुणदोषो—		
वणियोंसे करलेनेमें .....	२१५	१२७	की चिन्ता .....	२२३	१७८
थोडा थोडा करलेनेमें ....	२१५	१२९	राजाकी रक्षा .....	२२४	१८०
धान्य आदिकोपर कर लेनेमें २१५	१३०		शत्रुके राज्यमें जानेकी विधि २२४	१८१	
श्रोत्रियसे कर न ग्रहण करै २१५	१३३		शत्रुके सेवन करने वाले मित्र—		
श्रोत्रियकी जीविका करनेमें २१५	१३४		आदिमें सावधानी .....	२२४	१८६
शाक आदि वेचनेवाले—			सेनाके व्यूह बर्नानेमें....	२२५	१८७
पर थोडा कर .....	२१६	१३७	जल आदिमें युद्धका प्रकार २२६	१९२	
शिल्प आदि कर्म करवै २१६	१३८		आगेकी सेनाके योग्यको		
थोडे बहुत अधिक कर लेने—			कहतेहैं ....	२२६	१९३
का निषेध ....	२१६	१३९	सेनाकी परीक्षा करना ....	२८६	१९४
कार्यको देखकर तीक्ष्णवा—			पराये देशके पीडा देनेमें २२७	१९५	
मृदु होय .....	२१६	१४०	पराई प्रजाका भेद आदि २२७	१९७	
मन्त्रीके साथ कार्यका वि—			उपायके न होनेमें युद्ध करै २२८	२००	
चार करै.....	२१७	१४१	जीतिकरि ब्राह्मण आदिका—		
चोरोंको दंड देता रहै ....	२१७	१४३	पूजन और प्रजार्का अ—		
प्रजा पालनकी श्रेष्ठता....	२१७	१४४	भय दान .....	२२८	२०१
सभा कय काल .....	२१७	१४५	उसके वंशवालेको उसका—		
एकान्तमें गुप्त मंत्र करै....	२१७	१४७	राज्य देनेमें .....	२२८	२०२
मंत्र करनेके समय स्त्री—			करका लेना आदि.....	२२९	२०६
आदिका हटा देना....	२१८	१४९	मित्रकी प्रशंसा .....	२२९	२०७
धर्मकाम आदिकी चिन्ता—			शत्रुके गुण ....	२२९	२१०
करना ....	२१८	१५१	उद्गासीनके गुण....	२३०	२११
दूतोंका प्रेषण आदि....	२१८	१५३	अपने लिये भूमि आदि—		
अथ प्रजाके प्रकार.....	२१९	१५६	कात्याग ....	२३०	२१२
शत्रुका प्रकृतिको जानै ....	२२०	१५८	आपत्तिमें उपायोंको सो—		
अथः गुण ....	२२०	१६०	चना ....	२३०	२१४
संधि आदिका प्रकार .....	२२०	१६२	राजाके भोजनमें .....	२३०	२१६
संधिविग्रह आदिके काल २२०	१६९		अन्न आदि की परीक्षा....	२३१	२१७
बली राजाके आश्रय लेनेमें २२३	१७५		विहार आदिमें ....	२३१	२२१

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
आयुध आदिका देखना	२३१	२२२	अधिक द्विज न्यून ऐसे देशका --		
संध्योपासन करके दूतके-			निषेध ....	२३६	२१
काम देखै .....	२३२	२२३	लोकपालोंको प्रणाम करि		
तीसपीछे रात्रिका भोजन-			व्यवहारको देखै ....	२३६	२३
आदि करै .....	२३२	२२४	ब्राह्मण आदिके क्रमसे व्यवहा		
राजा स्वस्थ न होय तौ श्रेष्ठ			रको देखै .....	२३६	२४
मन्त्रिके आधीन करै	२३२	२२६	स्वर् और वर्ण आदिसे अर्थी		
अथ अष्टमोऽध्यायः ।			आदिकी परीक्षा करै ....	२३७	२५
राजा व्यवहारोंके देखनेकी इच्छासे			बालकका धन राजाकरि रक्षा		
सभामें जाय ....	२३२		करने योग्यहै ....	२३७	२७
कुल तथा शास्त्र आदिसे व्यव			प्रोषितपतिका आदिके धनकी		
हारोको देखै ....	२३३	३	रक्षा करना ....	२३७	२८
अठारह विवादोंको कहतेहैं	२३३	४	ऐपुत्रिके धन लेनेवाले-		
धर्मका आश्रय लेकर निर्णय			को शासन ....	२३८	२९
करै ....	२३३		स्वामिरहित धनकी रक्षाका		
आप असमर्थ होयतौ विद्वान्को			काल ....	२३८	३०
नियत करै ....	२३४		द्रव्यके रूप और संख्या आदि-		
वह तीन ब्राह्मणोंके साथ			का कहना ....	२३८	३१
कर्म देखै ....	२३४	१०	न कहनेमें दंड ....	२३८	३२
उस सभाकी प्रशंसा ....	२३४	११	नष्ट हुए द्रव्यसे छठा भाग		
अधर्ममें सभासदोंका दोष	२३४	१२	लेना .....	२३८	३३
सभामें सत्यही बोलना			चोरका मरवाना ....	२३८	३४
चाहिये ....	२३५	१३	निधि आदिमें छठा भाग लेना	२३९	३५
अधर्म बाढ़िको दंड ....	२३५	१४	प्रराई निधिमें झूठके बोलनमें	२३९	३६
धर्मके उलाघनमें दोष ....	२३५	१६	ब्राह्मणकी निधिके विषयमें	२३९	३७
बुरे व्यवहारमें राजा आदि-			राजा निधिपाके आधी ब्राह्म-		
को अधर्म ....	२३५	१८	णोको देवै .....	२३९	३८
अर्थी प्रत्यर्थीके पापमें ....	२३६	१९	चोरों करि लियुआ धन राजा-		
व्यवहारके देखनेमें शूद्रका			को देना चाहिये ....	२३९	४०
निषेध .....	२३६	२०	जाति तथा देशके विरोध विना		
जिसमें नास्तिक तथा शूद्र-			करना चाहिये .....	२३९	४१

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
राजाको विवादका उठाना —		ब्राह्मण आदि साक्षियोंसे	
आदि न करना चाहिये २४०	४३	प्रश्नमें .... २४७	८७
अनुमानसे सत्यकानिश्चय करै २४०	४४	असत्य कहनेमें दोष .... २४८	८९
सत्य आदिसे व्यवहारको देखै २४०	४५	सत्यकी प्रशंसा .... २४८	९२
सदाचार करना चाहिये २४०	४६	असत्य कहनेका फल .... २४८	९३
ऋणके देनेमें .... २४१	४७	फिर सत्य कहनेकी प्रशंसा २४९	९६
अथ हीन .... २४१	५३	विषयके भेदसे सत्यका फल २४९	९७
अभियोग करनेवालेका द—		निन्दित ब्राह्मणोंसे शूद्रकी	
ण्ड आदि .... २४२	५८	भाति पूछे .... २५०	१०२
धन परिमाणके झूठ कहनेमें २४३	५९	विषयके भेदसे झूठ कहनेमें	
साक्षियोंसे निश्चय करना २४३	६०	दोष .... २५०	१०३
अथ साक्षी .... २४३	६१	झूठ कहनेमें प्रायश्चित्त .... २५०	१०५
साक्षी होनेमें निषिद्ध .... २४३	६४	तीनिपक्ष तक साक्ष्य कहनेमें	
स्त्री आदिकोकी स्त्री साक्षी २४४	६८	पराजय .... २५१	१०७
वादीके साक्षी .... २४५	६९	साक्षियोंके भंगमें .... २५१	१०८
बालक आदिके साक्ष्य		विना साक्षीके विवादमें	
आदिमें .... २४५	७०	शपथ .... २५१	१०९
साहस आदिमें साक्षीकी परी—		वृथा शपथमें दोष .... २५१	१११
क्षा नही .... २४५	७२	वृथा शपथका प्रतिप्रसव	
साक्षियोंके द्वैधमें .... २४५	७३	कहतहैं .... २५२	११२
साक्षीका सत्य कहना .... २४५	७४	ब्राह्मण आदि सत्य कहना	
झूटा साक्षी होनेमें दोष .... २४६	७५	आदि शपथहैं .... २५२	११३
सुने हुए साक्षी .... २४६	७६	शूद्रके शपथमें .... २५२	११४
भर्मज्ञ एकभी साक्षी होता है २४६	७७	शपथमें शुद्ध कहतहैं .... २५२	११५
साक्षीका स्वाभाविक न्वचन		अथ पुनर्वाद .... २५२	११७
ग्रहण करै .... २४६	७८	लाभ आदिसे साक्ष्यमें दंड—	
साक्षियोंसे पूछनेमें .... २४६	७९	विशेष .... २५२	११८
साक्षियोंको सत्य कहना		दंडके हाथ आदि दशस्थान हैं २५३	१२४
चाहिये .... २४७	८१	अपराधकी अपेक्षा दंडदेना २५४	१२६
एकांतमें किये कामको आत्मा		अवर्म दंडकी निन्दा .... २५४	१२७
आदि जानता है .... २४७	८४	दंड योग्यका परित्याग .... २५४	१२८

प्रकरण	पृ.	श्लो.
वाग्दंड धिग्दंडे आदि ....	२५४	१२९
त्रसरेणु आदि परित्यागोंको		
कहतेहैं ....	२५५	१३२
प्रथम मध्यम उत्तम साहस	२५६	१३८
ऋणदानमें धंडका नियम	२५६	१३९
अथ वृद्धि कहिये व्याज	२५६	१४०
आधिके स्थलमें ....	२५७	१४३
बलसे आधिके भोगका		
निषेध ....	२५७	१४४
आधिके निक्षेप आदिमें ....	२५७	१४५
गौ आदिके भोगनेपरभी स्वत्व—		
की हानि नहीं होती	२५७	१४६
आधि सीमा आदिमें भोग—		
नेपरभी स्वत्व हानि नहीं	२५८	१४७
बलसे आधिके भोगनेमें		
आधी वृद्धि ....	२५८	१४९
दुगुनेसे अधिक वृद्धि नहीं		
होती ....	२५८	१५१
वृद्धिके प्रकार ....	२५८	१५२
फिर लेख्य करनेमें ....	२५९	१५४
देशकालकी वृद्धिमें ....	२६०	१५६
दर्शनप्रतिभूके स्थलमें ....	२६०	१५८
जमानतका ऋण पुत्र न देवै	२६०	१५९
दानप्रतिभूके स्थलमें ....	२६०	१६०
निरादिष्ट धनमें प्रतिभू होने		
पर ....	२६१	१६२
कियेकी निवृत्तिमें ....	२६१	१६३
कुटुंबके लिये किया अदेयहै	२६१	१६६
बलसे किया हुआ लौटाने—		
योग्य है ....	२६२	१६८
प्रतिभू होने आदिका निषेध	२६२	१६९

प्रकरण	पृ.	श्लो.
अग्राह्य धनको न लेवै ....	२६२	१७०
ग्रहण करणे योग्यके त्याग—		
में दोष .....	२६२	१७१
निर्वैलकी रक्षा करने—		
आदिमें . ....	२६२	१७२
अधर्मसे कार्य करनेमें ....	२६३	१७४
धर्मसे काम करना ....	२६३	१७५
धानिकसे धनके साधनमें ....	२६३	१७६
धन न होनेमें काम करके—		
ऋण शोधन करै ....	२६३	१७७
अथ निक्षेप कहिये धरोहडमें	२६४	१७९
साक्षीके न होनेमें निक्षेप—		
से निर्णय .....	२६४	१८२
निक्षेपके देनेमें ....	२६४	१८५
आपही निक्षेपके देनेमें ....	२६५	१८६
मुदी हुई धरोहडमें . ....	२६५	१८८
धरोहडके चोरीहो जाने पर	२६५	१८९
निक्षेपक मुकर जानेंमें शपथ	२६६	१९०
निक्षेपके अपहार आदिमें दंड	२६६	१९१
छलसे पराये धनके लेलेनेमें	२६६	१९३
धरोहडमें झुठ बोलनेसे दंड	२६६	१९४
धरोहडके देने लेनेमें ....	२६७	१९५
विना स्वामीके वेचनेमें ....	२६७	१९६
आगमसाहित भोगका प्रमाण	२६७	२००
खुलाखुली वेचने तथा मूल्यके—		
धरन लाभमें .....	२६८	२०१
साझेकी वस्तुके वेचनेमें ....	२६८	२०२
और कन्यादिखाकै औरसे—		
विवाहमें .....	२६८	२०४
उन्मत्त आदि कन्याके—		
विवाहमें .....	२६८	२०५

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
पुरोहितकी दक्षिणा देनेमें	२६८ २०६	अन्यथा कहनेमें दंड	२७८ २१७
अध्वर्यु आदिकी दक्षिणा	२६९ २०९	साक्षीके न होनेमें गावके—	
संभूयसमुत्थानमें	२६९ २११	सामंत आदि	२७८ २१८
दियेका मुकरजाना	२७० २१२	सामंतोंके झूठ कहनेमें दंड	२७८ २६३
मरनेके स्थलमें	२७० २१५	गृह आदिके हरि लेनेमें दंड	२७९ २६४
प्रतिज्ञाके बदल जानेमें	२७१ २१८	राजा आप सीमाका—	
वेचीहुई वस्तुमें पछतावा—		निर्णय करै	२७९ २६५
करना	२७१ २२२	अथ वाक्पारुष्यमें दंड	२७९ २६६
बिनाकहे दोष युक्त कन्या—		ब्राह्मण आदिके गाली देनेमें	२७९ २६७
के दानमें	२७२ २२४	बराबर वर्णके गाली देनेमें	२७९ २६९
झूठ कन्याके दोष कहनेमें	२७२ २२५	द्विजको शूद्रके गाली देनेमें	२८० २७०
दूषित कन्याकी निंदा	२७२ २३६	धर्मका उपदेश करने—	
अथ सप्त पदी	२७२ २२७	वाले शूद्रको दंड	२८० २७२
स्वामी और पालने वालेका—		सुने हुए देश तथा जातिके—	
विवाद	२७३ २२९	आक्षेपमें	२८० २७३
क्षीरकी भृतिके स्थलमें	२७३ २३१	काणा आदि बुराई करनेमें	२८० २७४
पालने वालेके दोषसे नष्ट—		माता आदिके बुराई कहनेमें	२८० २७५
स्थलमें	२७३ २३२	आपसमें पातित होने योग्य—	
चोस्के ले जानेपर	२७४ २३३	बुराई करनेमें	२८१ २७६
सिंग आदि चिन्हे दिखाना	२७४ २३४	अथ दंड पारुष्य	२८१ २७८
भेडिमा आदिके मारनेके—		शूद्रको ब्राह्मण आदिके—	
स्थलमें	२७४ २३५	ताडनेमें	२८१ २७९
धान्य नाश करने वालेके—		बड़ेके साथ बैठनेमें	२८१ २८१
दंडमें	२७४ २३७	थूकने आदिमें	२८१ २८२
सीमा विवादके स्थलमें	२७६ २४५	वाल पकड़ने आदिमें	२८२ २८३
सीमाके वृक्ष आदि	२७६ २४६	त्वचाके फोड़ने और हड्डीके—	
नष्ट किये गये सीमाके चिन्ह	२७७ २४९	तोड़ने आदिमें	२८२ २८४
भोगसे सीमाका निर्णय करै	२७७ २५२	वनस्पतिके काटनेमें	२८२ २८५
सीमाके साक्षी	२७७ २५३	मनुष्योंके दुःखके अनुसार	
साक्ष्य युक्त सीमाके विधि	२७७ २५५	दंड	२८२ २८६
साक्ष्य देनेकी विधि	२७७ २५६	समुत्थान का खरच देने में	२८२ २८७

प्रकरणं	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
द्रव्यकी हिंसामें.....	२८२	२८८	हरेधान्य आदिके चुरानेमें	२९०	३३०
चमड़ेके भांड आदिमें ....	२८३	२८९	निरन्वय सान्वय.धान्य आदि	२९०	३३१
यान आदिकी दशाओंका—			स्तेय साहसका लक्षण ....	२९०	३३२
वदलना .....	२८३	२९०	तीनो अग्नियोंके चुरानेमें....	२९०	३३३
रथकेस्वामी आदिके दंडदेनेमें	२८४	२९३	चोरका हाथ काटना आदि	२९०	३३४
भार्या आदिकी • ताड़नामें	२८५	२९५	पिता आदिके दंडमें.....	२९१	३३५
अन्यथा ताड़नमें • दंड ....	२८५	३००	राजक्रे दण्डमें .....	२९१	३३६
चोरके दंड देनेमें .....	२८५	३०१	विज्ञशूद्र आदिको आठगुना—		
चोर आदिसे अभय दानका			आदि दंड .....	२९१	३३७
फल .....	२८५	३०३	अस्तेय कहतेहैं .....	२९१	३३९
राजा धर्म अधर्मके छठे भागका			चोरके यजन कराने आदिमें	२९१	३४०
पानेवालाहै .....	२८५	३०४	मार्गमें स्थितदो ईखोंके लेनेमें	२९२	३४१
रक्षा बिना करलेनेकी निंदा	२८६	३०७	दासाश्च आदिके हरने—		
पापीके दंड और साधुके सं—			आदिमें ....	२९२	३४२
ग्रहणमें ....	२८६	३१०	अथ साहस कहतेहैं .....	२९२	३४४
बालक वृद्ध आदिकोमें क्षमा	२८७	३१२	साहसके योग्य निंदा ....	२९२	३४६
ब्राह्मणके सुवर्णके चोरीमें	२८७	३१४	द्विजातिका शस्त्रग्रहण कोल	२९३	३४८
शासन न करनेमें राजाका			आततायीके मारनेमें ....	२९३	३५०
दोष ....	२८७	३१६	पराई स्त्रीके छेड़नमें दंड	२९३	३५२
पराये पापके लगनेमें ....	२८८	३१७	पराई स्त्रीसे एकांतमें बात—		
राजदंडसे पापके नाश			करनेमें .....	२९४	३५४
होनेपर ....	२८८	३१८	स्त्रीसंग्रहणमें ....	२९४	३५८
कुएँपरसे घटरस्सी आदिके—			भिक्षुक आदिक पराई स्त्रीसे		
चुराने और प्याऊके—.....			• बोलनेमें .....	२९५	३६०
तोड़नेमें ....	२८८	३१९	पराई स्त्रीके साथ निषिद्ध संभ्रा—		
धान्य आदिके चुरानेमें	२८८	३२०	षण्में .....	२९५	३६१
सुवर्ण आदिके चुरानेमें....	२८८	३२१	नट आदिकी स्त्रियोंसे संभ्रा—		
स्त्री पुरुष आदिके हरनमें	२८९	३२३	षण्में दोष .....	२९५	३६२
बड़े पशु आदिके चुराने			कन्याके दूषणमें ....	२९६	३६४
आदिमें .....	२८९	३२४	अंगुली आदिके डालनेमें	२९६	३६६
सूत कपास आदिके चुरानेमें	२८९	३२६	व्यभिचार करनेवाले स्त्री और		



प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
जारको दंड .... २९७	३७१	तराई .... ३०३	४०७
संवत्सरके अभिशस्त आदिमें २९७	३७३	नावंवालेके दोषसे वस्तुके ना-	
शूद्र आदिको अरक्षित उत्कृष्ट		शमे .... ३०३	४०८
आदिके गमनमें ..... २९७	३७४	वैश्या आदिके व्यापार न के-	
ब्राह्मणगुप्ता विप्राके गमनमें २९८	३७८	क्षत्रिय और वैश्य दासकर्मके . .	
ब्राह्मणका वध दंड नहीं है २९८	३८०	योग्य नहीं हैं ..... ३०४	४११
गुप्ता वैश्या क्षत्रियाके ग-		शूद्रसे दासकर्म करावे .... ३०४	४१३
मनमें .... २९९	३८२	शूद्र दासपनसे नहीं छुटा है ३०४	४१४
अगुप्ता क्षत्रिया आदिके		अब सत्रह दासके प्रकार ३०४	४१५
गमनमें .... २९९	३८४	भार्यादास आदि अधन हैं ३०४	४१६
साहासि आदिकोंसे शून्य रा-		वैश्य तथा शूद्रोंसे अपनाका-	
ज्यकी प्रशंसा .... २९९	३८६	म करना चाहिये .... ३०५	४१८
कुल पुरोहित आदिके त्यागमें ३००	३८८	दिनदिन आयव्यय अर्थात् आमदनी	
माता आदिके त्यागमें ..... ३००	३८९	और खरच देखै .... ३०५	४१९
ब्राह्मणोंके वादमें राजाका ध-		अच्छी भांति व्यवहार देखने-	
र्म न कहना चाहिये ... ३००	३९०	का फल .... ३०५	४२०
सामाजिक आदिके न भोज		<b>अथ नवमोऽध्यायः ।</b>	
नमें ..... ३००	३९१	स्त्री पुरुषोंके धर्म .... ३०६	१
इसके उपरांत आकर रहित ३०१	३९४	स्त्रीकी रक्षा ..... ३०६	२
धोबीके वस्त्र धोनेमें ..... ३०१	३९६	जायाशब्दके अर्थका कहना ३०७	८
कोलीके सूत लेलेनेमें .... ३०१	३९६	स्त्रीकी रक्षाके उपाय .... ३०७	११
वेचने योग्य वस्तुके मोल-		स्त्रीके स्वभाव ..... ३०८	१४
करनेमें .... ३०१	३९८	स्त्रियोंकी मंत्ररहित क्रिया ३०८	१८
जाकर निषिद्धोंके लेजा-		व्यभिचारके प्रायश्चित्तमें ३०९	१९
नेमें .... ३०२	३९९	स्त्रीस्वामीके गुणयुक्त होती हैं ३०९	२२
अकारके विक्रय आदिमें ३०२	४००	स्त्रीकी प्रशंसा ..... ३१०	२६
विदेशके विक्रयमें .... ३०२	४०१	व्यभिचार न करनेका फल ३१०	२९
मूल्यके स्थापित करनेमें ..... ३०२	४०२	व्यभिचारका फल ..... ३१०	३०
तुलादिकी परीक्षा .... ३०२	४०३	बीज और क्षेत्रका बलात्कृत ३११	३२
नौकाकी उतराई ..... ३०२	४०४	पराई स्त्रियोंमें बीज बोलनेका	
गर्भिणी आदिकी नावकी उ-		निषेध ..... ३१३	४१

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
स्त्री और पुरुषका एकत्व ३१३	४६	का त्याग .... ३२२	९३
एकवार अंशभाग आदि .... ३१४	४७	रजस्वलाके विवाहमें शुल्कका	
क्षेत्रकी प्रधानता .... ३१४	४८	देना नही .... ३२२	९३
स्त्री धर्म कहतेहैं .... ३१५	५६	कन्या वरकी अवस्थाका	
भाईकी स्त्रीमें गमन करनेमें पति-		मिर्यम ..... ३२२	९४
त होताहैं .... ३१६	५७	विवाहकी आवश्यकता .... ३२२	९५
नियोग कहतेहैं .... ३१६	५९	मूल्यदी हुईके पतिके मरनेमें ३२२	९७
नियोगमें दूसरा पुत्र न उ-		मोल लेनेका निषेध .... ३२२	९८
त्पन्न करै .... ३१६	६०	वचनसे कन्या देकर अन्यके	
कामसे गमनका निषेध .... ३१७	६३	लिये दान नही .... ३२३	९९
नियोगकी निन्दा .... ३१७	६४	स्त्रा पुरुषका अव्याभिचार ३२३	१०१
वर्णसंकर काल .... ३१७	६६	अथ दायभाग कहतेहैं .... ३२३	१०३
वाग्दत्ताके विषयमें .... ३१७	६९	विभागका काल .... ३२३	१०४
कन्याके फिर देनेका निषेध ३१८	७१	सामिल रहनेमें जेष्ठकी प्रधा-	
सप्तपदी पूर्वक स्त्रीके त्यागमें ३१८	७२	नता ..... ३२४	१०५
दोषयुक्त कन्याके दानमें ३१८	७३	जेष्ठकी प्रशंसा .... ३२४	१०६
स्त्रीकी जीविका कल्पना करिकै		जेष्ठको ज्येष्ठवृत्ति न होनेपर ३२५	११०
प्रवास करै .... ३१८	७४	विभागमें हेतु कहतेहैं .... ३२५	१११
प्रोपित भर्तृकाके निग्रम .... ३१९	७५	ज्येष्ठ आदिके विशोद्धरमें ३२५	११२
एकतक स्त्रीकी प्रतीक्षा करै ३१९	७७	एकभी श्रेष्ठवस्तु ज्येष्ठको	
रोग पीडितके अतिक्रममें ३१९	७८	देवैँ .... ३२५	११४
मुंपुसक अदिको स्त्रीका त्याग		दशवस्तुओंमें समानोका उद्धार	
नही .... ३१९	७९	नहीहै ..... ३२५	११५
अधिवेदनमें .... ३१९	८०	सम तथा विषम विभाग .... ३२५	११६
स्त्रीके मद्यपानमें .... ३२०	८४	अपने २ भागों स्वर्गहिनके लिये	
धर्मकार्य सजातिकी स्त्री करै		देना चाहिये .... ३२६	११८
अन्यनही .... ३२०	८६	विषम बकरी भेड़ जेठकाहैं ३२६	११९
गृणीके लिये कन्यादान निर्गुण		क्षेत्रजके साथ विभागमें .... ३२६	१२०
को नही .... ३२१	८८	अनेक मातावालेमें ज्येष्ठता ३२७	१२२
स्वयंवरका काल .... ३२१	९०	जन्मसे ज्येष्ठता .... ३२७	१२६
स्वयंवरमें पिताके दिये अलंकार		पत्रिका करनेमें .... ३२८	१२७

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
पुत्रिकाका ग्राहित्व नहीं है ३२८	१३०	दासी पुत्रको सम भागित्व ३३६	१७९
माताका स्त्रीधन कन्याका है ३२८	१३१	क्षेत्रज आदि पुत्रके प्रति	
पुत्रिकापुत्रका धन ग्राहित्व है ३२९	१३२	निविहै ..... ३३६	१८०
पुत्रिका और और सके		औरस होनेपर दत्तक आदि	
विभागमें ..... ३२९	१३४	नहीं कर्तव्य है ..... ३३७	१८१
पुत्ररहित पुत्रिकाके धनमें ३२९	१३५	पुत्रिका पुत्रत्वका आतिदेश ३३७	१८२
पुत्रिका दो प्रकारकी है .... ३२९	१३६	वारह पुत्रोंमें पहिला २	
पौत्रप्रपौत्रका धनमें भाग ३२९	१३७	श्रेष्ठ है ... ३३७	१८४
पुत्र शब्दका अर्थ ..... ३२९	१३८	क्षेत्रज आदि रिक्थहर हैं ... ३३७	१८५
पुत्रिका पुत्रके किये श्राद्धमें ३३०	१४०	क्षेत्रज आदिकोंको पितामह—	
दत्तकके धन ग्राहित्वमें ... ३३०	१४१	के धनमें ..... ३३७	१८६
कामज आदिका धन ग्राहि		सपिंड आदि धन लेने—	
नहीं है .... ३३०	१४३	वाले होते हैं ..... ३३८	१८७
क्षेत्रजके धन ग्राहित्वमें ... ३३१	१४५	ब्राह्मणका अधिकार है .... ३३८	१८८
अनेक मातावालोंका विभाग ३३१	१४९	राजाका अधिकार ..... ३३८	१८९
विनाव्याहे हुए शूद्रा पुत्रके भाग—		मृतपतिका नियुक्त पुत्रका	
का निषेध ... ३३२	१५५	अधिकार है ... ३३८	१९०
सजातीय अनेक मातावालोंका		औरस पौनर्भवके विभागमें ३३९	१९१
विभाग .... ३३२	१५६	मातृके धनके विभागमें ३३९	१९२
शूद्रका समही भाग होता है ३३३	१५७	स्त्रीधन कहते हैं .... ३३९	१९४
दायाद अदायाद बांधव—		संतति सहित स्त्रीके धना—	
पन है .... ३३३	१५८	धिकारी ..... ३३९	१९५
कुपुत्रकी निंदा ..... ३३३	१६१	संतति रहित स्त्रीके धनाधि—	
औरस और क्षेत्रजके वि—		कारी ..... ३३९	१९६
भागमें ..... ३३३	१६२	साधारण स्त्रीधन न करे ... ३४०	१९९
क्षेत्रजके पीछे औरस		स्त्रियोंका अलंकरण नहीं वाट—	
होनेपर ... ३३४	१६३	ने योग्य है ... ३४०	२००
दत्तक आदि गोत्ररिक्थके		अब अनंश कहते हैं ... ३४०	२०१
भागी है .... ३३४	१६५	नपुंसक आदि क्षेत्रज अंश—	
औरस आदि वारह पुत्रोंके		भागी होते हैं .... ३४०	२०३
लक्षण ... ३३४	१६६	साक्षके जोड़े हुए धनमें ... ३४१	२०४

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
विद्या आदि ..... ३४१	२०६	कूटशास और बाल वध—	
समर्थको भागकी उपेक्षामें ३४१	२०७	आदि करनेमें ..... ३४५	२३२
अविभाज्य धनमें ..... ३४१	२०८	धर्मसे किये हुए व्यवहार—	
नष्टके उद्धारमें .... ३४१	२०९	को न लौटावै ..... ३४५	२३३
मिलेहुए धनके विभागमें ३४१	२१०	अधर्मसे किया लौटाने—	
विदेश आदिमें गये हुएका		योग्य है ..... ३४५	२३४
भागलोपनही होताहै ३४२	२११	प्रायश्चित्त न करनेमें महा—	
गुण शून्य ज्येष्ठ समान		पत्नीकीका दण्ड .... ३४६	२३५
भाग पावै ..... ३४२	२१३	प्रायश्चित्त करनेसे दागने—	
विकर्ममें स्थित सब भ्राता धनको		योग्य नहींहैं ..... ३४६	२४०
नही पातेहैं ज्येष्ठके असा—		महापातकेमें ब्राह्मणको दंड ३४७	२४१
रण करनेमें..... ३४२	२१४	क्षत्रिय आदिका दंड .... ३४७	२४२
जिनका पिता जीवताहै उनका		महापातर्काके धन लेनेमें .... ३४७	२४३
विभाग ..... ३४२	२१५	ब्राह्मणके पीडा देनेमें दंड ३४८	२४८
विभागके पीछे उत्पन्नके		वध योग्यके छुड़ानेमें दोष ३४८	२४९
स्थलमें ..... ३४२	२१६	राजा कंटकोके उखाड़नेमें—	
संतति रहित धनमें माताका—		यत्न करै ..... ३४८	२५२
अधिकार ..... ३४३	२१७	आर्यकी रक्षाका फल .... ३४८	२५३
ऋण और धनमें संमान		चौर आदिके दंड न देनेमें—	
विभाग .... ३४३	२१८	दोष .... ३४८	२५४
अविभाज्य कहतेहैं .... ३४३	२१९	निर्मय राज्य बढाना..... ३४९	२५५
अव द्यूत समाव्हय कहतेहै ३४३	२२०	प्रकट तथा गुप्त चोरोंका ज्ञान ३४९	२५६
द्यूत समाव्हयका निषेध ३४३	२२१	प्रकट तथा गुप्त तस्कंर—	
द्यूत समाव्हयका अर्थ .... ३४४	२२३	कहतेहैं .... ३४९	२५७
द्यूत आदि करने वालोका—		उनका जानना .... ३५०	२६२
दण्ड ..... ३४४	२२४	चोरोंका रोकनेवाला दंडहीहै ३५०	२६३
पाषंडी आदिकोकोई देशसे—		चोरका दूढन्स ..... ३५१	२६४
निकाल दे ..... ३४४	२२५	चोरिके चिन्हहैं न देखनेमें ३५१	२७०
दंड देनेकी असमर्थतामें ३४५	२२९	चोरको आश्रय देनेवाले—	
स्त्री बालक आदिके दंडमें ३४५	२३०	को दंड..... ३५२	२७१
नियुक्तके काम बिगाडनेमें ३४५	२३१	स्वधर्मसे भ्रष्टके दंड देनेमें ३५२	२७३

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
चोर आदिके उपद्रवमें न-		ही. ब्राह्मण .....	३६० ३१८
दौडनेवालेको दंड ....	३५२ २७४	ब्राह्मण संत्रियको परस्पर	
राजाका खजाना लेनेवाले-		साहित्यहै:....	३६१ ३२२
को दंड ....	३५२ २७५	पुत्रको राज्य दे-रणमे प्राण-	
संधिके फोडनेमें ....	३५२ २७६	त्याग .....	३६१ ३२३
गांठि काटनेमें ....	३५३ २७७	मैत्र्यके धर्मोको कहतेहैं ....	३६१ ३२६
चोरके चिन्हधारण आदिमें	३५३ २७८	शूद्रके धर्मोको कहतेहैं ....	३६२ ३३४
तलवा तथा घरके फोडनेमें	३५३ २७९	अथ दशमोऽध्यायः ।	
राजमार्गमे मलमूत्र करनेमें	३५३ २८२	अध्यापन ब्राह्मणहीकाहै ....	३६३ १
झूठी चिकित्सा करनेमें दंड	३५४ २८४	वर्णोंका ब्राह्मण प्रभुहै ....	३६४ ३
प्रतिमाके तोडनेमें ....	३५४ २८५	अब द्विजवर्णका कथन	३६४ ४
मणियोंके अन्यथा छेद-		अब सजातीय कहतेहैं	३६४ ५
करनेमें ....	३५४ २८६	पिताकी जातिके सदृश	३६४ ६
विष व्यवहारमे ....	३५४ २८७	अब वर्ण संकर कहतेहैं	३६५ ८
बंधन स्थान राजमार्गमें	३५४ २८८	अब व्रात्य कहतेहैं .....	३६७ २०
पर कोटेके तोडने आदिमें	३५५ २८९	व्रात्योसे उत्पन्न आदि	
अभिचारकर्ममें .....	३५५ २९०	संकीर्ण .....	३६७ २१
अवीजके वेचने आदिमें ....	३५५ २९१	उपनयन करने योग्य ....	३७१ ४१
स्वनारके दंड देनेमें .....	३५५ २९२	वे सुकर्मसे उत्कर्षको प्राप्त-	
हलके उपकरण चुरानेमें ....	३५६ २९३	होतेहैं ....	३७१ ४२
अवसात प्रकृति कहतेहैं ....	३५६ २९४	क्रियाके लोपसे वृषलत्वकी-	
अपनी और पराई शक्तिका		प्राप्त होतेहैं ....	३७१ ४३
देखना .....	३५७ २९८	दस्यु कहतेहैं ....	३७२ ४५
कामके आरंभमे .....	३५७ २९९	वर्णसंकरोंके कर्म कहतेहैं	३७२ ४७
राजाका युमत्व कहना .....	३५७ ३०१	चांडालका कर्म कहतेहैं ....	३७३ ५१
इंद्र आदिकोके तेजको राजा		कर्मसे पुरुषका ज्ञान .....	३७४ ५७
धारण करतेहैं .....	३५८ ३०३	वर्णसंकरकी निन्दा .....	३७४ ५९
इन उपायोंसे त्रोरका पकडना	३५८ ३१२	इनका ब्राह्मणकेलिये प्राण-	
ब्राह्मणको कुपित न करै ....	३५८ ३१३	त्यागना श्रेष्ठहै .....	३७४ ६२
ब्राह्मणकी प्रशंसा ....	३५९ ३१४	साधारण धर्म कहतेहैं	३७४ ६३
ईश्वरानकी अग्नि दूषित नहीं ऐसे		सातमें जन्ममें ब्राह्मणत्व और-	

प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
शूद्रत्व .... ३७६	६४. १	अथ एकादशोऽध्यायः ।		
वर्णसंक्रमे श्रेष्ठता .... ३७६	६७	स्नातकके प्रकार .... ३८८	१	
बीज और क्षेत्रका बलाबल ३७६	७०	नवीन स्नातकोंको अन्न देनेमें ३८८	२	
षट्कर्म कहते हैं .... ३७७	७९	वेदवेत्ताओंको अन्न देना ३८८	४	
ब्राह्मणकी जीविका .... ३७७	७६	भिक्षासे दूसरे व्याहका निषेध ३८८	५	
क्षत्रिय तथा वैश्यकर्म कहते हैं ३७८	७७	कुटुंबी ब्राह्मणके लिये दान ३८८	६	
द्विजोंका श्रेष्ठ कर्म कहते हैं ३७८	८०	सोम यामके अधिकारी .... ३८९	७	
आपत्तिका धर्म कहते हैं .... ३७८	८१	कुटुंबके नभरण करनेमें दोष ३८९	८	
वेचनेमें वर्जित कहते हैं .... ३७९	८६	यज्ञशेष आदिके लिये वेश्या—		
दूध आदिके वेचनेका फल ३८०	९२	आदिसे धनलेना .... ३८९	११	
ज्यायसी वृत्तिका निषेध ३८०	९५	छः उपवासोंके पीछे आहारले—		
पराये धर्मसे जीवनेकी निंदा ३८१	९७	नेमें .... ३९०	१६	
वैश्यशूद्रका आपद्धर्म .... ३८१	९८	ब्रह्मस्व आदि हरनेका निषेध ३९०	१८	
आपत्तिमें विप्रका हीन याजन—		असाधुओंका धन लेकर साधु—		
आदि .... ३८१	१०२	ओंके देनेमें .... ३९१	१९	
दान लेनेकी निंदा .... ३८२	१०९	यज्ञशील आदि धनकी प्रशं—		
याजन अध्यापन ब्राह्मण कहें ३८३	११०	सा .... ३९१	२०	
प्रतिग्रह आदिके पाप नाशमें ३८३	१११	ब्राह्मणके यज्ञके लिये चोर—		
शिलोंछसे जीवनेमें .... ३८३	११२	आदिमें दंड .... ३९१	२१	
धनके याचनेमें .... ३८३	११३	क्षुधासे पीडितकी वृत्तिक—		
सात धनके आगम .... ३८४	११५	लपना करनेमें .... ३९१	२२	
दश जीवनेके हेतु .... ३८४	११६	यज्ञके लिये शूद्रकी भिक्षाका—		
व्याजसे जीवनेका निषेध ३८५	११७	निषेध .... ३९१	२४	
राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं ३८५	११८	यज्ञके लिये धन मागकै न रखना—		
शूद्रका आपद्धर्म .... ३८५	१२१	चाहिये .... ३९२	२५	
शूद्रको ब्राह्मणका आराधन—		देवता और ब्राह्मणके धन हरनेमें ३९२	२६	
श्रेष्ठ .... ३८५	१२२	सोमयागकी अशक्तिमें वैश्वी—		
शूद्रकी वृत्ति कल्पना करना ३८६	१२४	नर यज्ञ .... ३९२	२७	
शूद्रके संस्कार आदि नही ३८६	१२६	समर्थके अनुकल्पक निषेध ३९२	२८	
शूद्रका विनामंत्रके धर्मकार्य ३८६	१२७	द्विजको शक्तिसे वैरीका जय ३९३	३१	
शूद्रके धनके संचयका निषेध ३८७	१२९	क्षत्रिय आदिका वाहुबलसे .		

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
शत्रुका जय ....	३९३	३४	ग्रीके चुरानेका प्रायश्चित्त	४०५	१००
ब्राह्मणका अनिष्ट न कहै	३९३	३५	गुरुकी स्त्रीसे गमनका प्राय-		
अल्प विद्यावाला तथा स्त्री आदिका--			श्चित्त ....	४०६	१०३
होतृत्वका निषेध है ....	३९३	३६	गर्ववध आदि उपपातकोंका-		
अश्वकी दक्षिणा देनेमें	३९४	३८	प्रायश्चित्त .....	४०७	१०८
थोड़ी दक्षिणाके यज्ञकी नि-			अवकीर्णका प्रायश्चित्त ....	४०८	११८
दा ....	३९४	३९	जातिभ्रंशकर प्रायश्चित्त	४०९	१२५
अग्निहोत्रीको उसके न कर-			संकरीकरण आदिका प्राय-		
नमे ....	३९४	४१	श्चित्त .....	४०९-१२६	
शूद्रसे प्राप्त धनसे अग्निहोत्रकी-			क्षत्रिय आदिके वधका प्रा-		
निंदा .....	३९४	४२	यश्चित्त .....	४०९	१२७
विहितके न करने आदिमें प्राय-			बिलाव आदिके वधका प्रा-		
श्चित्ती होता है ....	३९५	४५	यश्चित्त ....	४१०	१३२
जाने बिना जाने पापके-			घोड़े आदिके वधका प्राय-		
लिये ....	३९५	४६	श्चित्त ....	४११	१३७
प्रायश्चित्तीके संसर्गका निषेध	३९५	४७	व्यभिचारित स्त्रीके वधमे-		
पहले पापसे कुष्टी अंधे आदि-			प्रायश्चित्त .....	४१२	१३८
होते है ....	३९६	४८	सर्प आदिके वधमे दानकी आसक्ति-		
प्रायश्चित्त अवश्य करना--			होनेपर .....	४१२	१४०
चाहिये .....	३९७	५४	शूद्रजंतुओके समूहके वधमें	४१२	१४१
पांच महापातक कहते है	३९७	५५	वृक्ष आदिके काटनेमें	४१२	१४३
ब्रह्महत्या आदिके समान--			अन्नमे उत्पन्नजीवोंके वधमें	४१३	१४४
कहते है ....	३९७	५६	वृथा औषधी आदिके छेदनेमें	४१३	१४५
उपपातक कहते है .....	३९८	६०	अमुख्य मुराके पानमे प्रा-		
जातिभ्रंश करने वाले कहते है	३९९	६८	यश्चित्त ....	४१३	१४७
संकरी करण कहते है	३९९	६९	मुराके पात्रमें स्थित जल पीनेका		
अपात्रीकरण कहते है	३९९	७२	प्रायश्चित्त ....	४१३	१४८
महिनी करण कहते है	३९९	७१	शूद्रका उच्छिष्ट जल पीनेमें	४१४	१४९
अथ ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त	४००	७३	मुरागंधके सूंघनेमें	४१४	१५०
गर्भ आत्रेयी और क्षत्र वैश्य			विष्टा मूत्र मुरासे मिले थे-		
के वधमे प्रायश्चित्त .....	४०३	८८	जनमें .....	४१४	१५१
स्त्री तथा मित्रका वध धरोहड-			फिर संस्कार होनेमे दंड आ-		
दवा लेनेका ....	४०३	८९	दिकी सिद्धाति ....	४१४	१५२
मद्यपानका प्रायश्चित्त	४०३	९१	अभोज्य अन्न स्त्री शूद्रके उच्छिष्ट और अ-		
मुराके प्रकार .....	४०४	९५	भक्ष्य मांसके भक्षणमें	४१५	१५३

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.
शुक्त आदिके खानेमें ....	४१५	१५४	निवृत्ति .....	४२० १८५
सूकर आदिके विष्टामूत्रके भक्षणमें .....	४१५	१५५	प्रायश्चित्त करनेवाले पति—	
सूखे सूना आदिमें स्थित अज्ञात . . .	४१५	१५६	तका संसर्ग .....	४२० १८७
मांसके भक्षणमें .....	४१५	१५६	पतित स्त्रियोंको अन्न आदि .	
कुटुनरसूकर आदि भक्षणमें .....	४१५	१५७	देना .....	४२१ १८९
मासिक अन्नके खानेका प्रायश्चित्त .....	४१५	१५८	पतित संसर्ग का निषेध आदि ४२१	१९०
ब्रह्मचारीके मधुमांस खानेमें ४१६	१५९		बालक मारने वाले आदिका—	
विलाव आदिका उच्छिष्ट खानेमें .....	४१६	१६०	त्याग .....	४२१ १९१
अभोज्य अन्न उतारना चाहिये .....	४१६	१६१	ब्राह्मण और वेद त्यागने वाले—	
सजातीयके धान्य आदि चुनानेमें .....	४१६	१६३	का प्रायश्चित्त .....	४२१ १९२
मनुष्यादिकोंके हरनेका प्रायश्चित्त .....	४१६	१६४	निंदित जोड़े हुए धनका त्याग ४२१	१९४
रांगासीसा आदिके चुरानेमें ४१७	१६५		असत् प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त ४२२	१९५
भक्षयानशय्या आदिकरहनेमें ४१७	१६६		प्रायश्चित्त किये हुएसे—	
सूखे अन्नगुड आदिके लेनेमें ४१७	१६७		साम्य पूछे .....	४२२ १९६
मणि मोति चांदि आदिके लेनेमें .....	४१७	१६८	गौओंके लिये घास देना—	
रुईकेवने वस्त्र चुरानेमें ....	४१७	१६९	और वहां संसर्ग .....	४२२ १९७
अग्न्यागमनका प्रायश्चित्त ४१७	१७०		ब्राह्मणका याजन और पतित—	
घोड़ी तथा रजस्वला आदिके गमनमें .....	४१८	१७४	की क्रिया कृत्य आदिमें ४२२	१९८
दिनमें भैयुन आदि करनमें ४१८	१७५		वेदके शरणागतके त्यागमें ४२२	१९९
चांडाली आदिके गमनमें ४१८	१७६		कुंता आदिके काटनेका प्रायश्चित्त .....	४२२ २००
व्यभिचारसे स्त्रियोंका प्रायश्चित्त .....	४१९	१७७	अपंक्तिका प्रायश्चित्त .....	४२२ २०१
चांडालीके गमनमें .....	४१९	१७९	ऊट आदि यानका प्रायश्चित्त ४२३	२०२
पतितोके संसर्गका प्रायश्चित्त ४१९	१८२		जलमें वा विनाजलके मूत्र—	
पतितकी जीवबेही प्रेतक्रिया ४२०	१८३		त्यागमें प्रायश्चित्त .....	४२३ २०३
पतितके स्पर्श आदिकी निर्णय .....	४२४	२१२	वेदमें कहे हुए कर्मके त्यागमें ४२३	२०४
			ब्राह्मणसे तुल्यके बोलेनेमें ४२३	२०५
			ब्राह्मणके धमकानेमें .....	४२३ २०६
			नहीं कहे हुई प्रायश्चित्तके स्थलमें .....	४२४ २१०
			प्राजापत्य आदि व्रतका निर्णय .....	४२४ २१२
			व्रतके अंग कहते हैं .....	४२७ २२३
			पाप न छपाना चाहिये ....	४२८ २२८
			पापके पके पड़तावे .....	४२८ २३१



प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ. श्लो.
पापावृत्तिकी निन्दा .... ४२९	२३३	पाप विशेषसे योनि विशेषकी—	
मनके संतोषपर्यंत तपकरै ४२९	२३४	उत्पत्ति ..... ४४४	९३
तपकी प्रशंसा .... ४२९	२३५	पापकी प्रकीर्णतासे नरक आदि ४४४	९४
त्रेदके अभ्यासकी प्रशंसा .... ४३१	२४६	मोक्षके उपायषट्कर्म कहते हैं ४४८	८३
रहस्यका प्रायश्चित्त .... ४३१	२४८	आत्मज्ञानकी प्रधानता .... ४४९	८५
<b>अथ द्वादशोऽध्यायः ।</b>		वेदोक्त कर्मकी श्रेष्ठता .... ४४९	८६
शुभअशुभ कर्मका फल .... ४३४	१	वैदिककर्म दो प्रकारका है ४४९	८८
कर्मका मन प्रवर्त्तक है .... ४३५	४	प्रवृत्ति निमित्त कर्मका फल ४४९	२०
तीनि प्रकारके मानस कर्म ४३५	५	सम दर्शन .... ४५०	९१
चारी प्रकारके वाचिककर्म ४३५	६	वेदके अभ्यास आदिमें .... ४५०	९२
तीनिप्रकारके शारीरक कर्म ४३५	७	वेदबाह्य ऋतुतिकी निन्दा ४५०	९५
मन वाङ्माय और कर्मके—		वेदकी प्रशंसा ..... ४५१	९७
भोगमे .... ४३६	८	वेदका ज्ञाताको सेनापत्य—	
त्रिदंडीका परिचय .... ४३६	१०	आदि .... ४५१	१००
क्षेत्रज्ञका परिचय .... ४३६	१२	वेदके जाननेवालेकी—	
जीवात्माका परिचय .... ४३७	१३	प्रशंसा .... ४५१	१०१
जीवोकी अनंतता .... ४३७	१५	वेदके व्यवसायीकी श्रेष्ठता ४५२	१०३
परलोकमे पंचभूतोंका शरीर ४३७	१६	तप और विद्यासे मोक्ष .... ४५२	१०४
भोगके अनंतर आत्मामे—		प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे—	
लीनहो जाताहै .... ४३७	१७	प्रमाण .... ४५२	१०५
धर्मअधर्मकी अधिकतासे भोग ४३८	२०	धर्मका लक्षण ..... ४५२	१०८
तीनिप्रकारके गुणोंका कहना ४३९	२४	विना कहे हुए धर्मके स्थलमें ४५२	१०९
आधिक गुण प्रधान देहहै .... ४३९	२५	शिष्ट कहते हैं ..... ४५३	१००
सत्त्व आदिके लक्षण कहतेहै ४३९	२६	परिषत् कहिये सभा ..... ४५३	११६
सात्त्विक गुणके लक्षण .... ४४०	३१	मूर्खोंकी परिषत् नहीं होती ४५३	११४
राजस गुणके लक्षण .... ४४०	३२	आत्मज्ञान पृथक् कहते हैं ४५४	११८
तामस गुणके लक्षण .... ४४०	३३	वायु आकाश आदिका लय—	
संक्षेपसे तामस आदिके—		कहते हैं ..... ४५५	१२०
लक्षण .... ४४१	३५	आत्माका स्वरूप कहते हैं ४५५	१२२
तीनीगुणोंकी तीनि प्रकारकी—		आत्माका दर्शन अवश्य—	
गति है ..... ४४१	४०	करना चाहिये ..... ४५६	१२५
तीन प्रकारकी गतिके प्रकार ४४२	४१	इस संहिताके पाठका फल ४५६	१२६
पाँपसे कुत्सित गति होतीहै ४४३	५२	इतिमनुस्मृत्यनुक्रमिकासमाप्ता.	

श्रीः

# मानवधर्मशास्त्रं

## भाषाविंवृतिसमेतम्

अध्यायः १ मः ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीनारायणपादपद्मयुगलं व्यात्वापितुः पत्कंजं स्मृत्वा श्रीमनुनाप्रणी-  
तमधुनाव्याख्यायते भाषया ॥ लोकानाञ्चहिताय केशव इति ख्यातेन  
सम्यङ्मयातर्काव्यङ्ग्यनिशाकरैः परिमिते श्रीवैक्रमेवत्सरे ॥ १ ॥ य-  
त्किञ्चित्स्खलितं भवेदिह धियस्तत्क्षम्यतां संजना एषा वै मम चार्थनाऽ-  
त्र विदुषामग्रे चिरन्तिष्ठतु ॥ ग्रन्थो यस्मिन्नुभाषितोऽतिकठिनस्सर्वैरपि  
ज्ञायते तस्मात्साहसं मद्यमेऽतिविपुलञ्जानन्तु सर्वेषु धाः ॥ २ ॥ अ-  
थातः परं भाषां व्याख्यासहितामानवीया स्मृतिर्लिख्यते—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

मनुमेकाग्रमासीनमभिर्गम्य महर्षयः ॥

प्रतिपूज्य यथार्थाय मिदं वर्चनमर्चुवन् ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते धर्म्ममूर्तये । गौडे नन्दनवासिनामि सुजनैर्वन्द्ये वरे-  
न्द्रेणां कुले श्रीमद्भट्टदिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत् । काश्यामुत्तरवाहिज्जन्तुनयातीरे  
समं पण्डितैस्तेनेयं क्लियते हिताय विदुषां मन्त्रथमुक्तावली ॥ १ ॥ सर्वज्ञस्य भूभोरसर्वविद-  
पि व्याख्यामि यद्वाङ्मयं युक्त्या तद्वहुभिर्यतो मुनिवैरेतद्वहु व्याहृतम् । तां व्याख्यामधु-  
ना तनैरपि कृतां न्याय्यां ब्रुवाणस्य मे भक्त्या मानववाङ्मये अवोभेदे भूयादशेषेश्वरः ॥ २ ॥  
मीमांसे बहु सेवितासि सुहृदस्तर्काः समस्ताः स्थ मे वेदान्ताः परमात्मबोधगुरवो यूयं प्रयो-  
पासिताः । जाताः व्याकरणानि बालसखिता युष्माभिरभ्यर्थये प्राप्नोऽयं समयो मनुक्ताविवृतौ  
साहाय्यमालभ्यताम् ॥ ३ ॥ द्वेषादिदोषरहितस्य सतां हिताय मन्वर्थतत्त्वं कथनाय मे

मोक्षतस्य । दैवाद्यादि क्वचिदिह स्वलनं तथापि न्निस्तारको भवतु मे जगदन्तरात्मा ॥ ४ ॥  
मानववृत्तावस्थां ज्ञेया व्याख्या नवा मयोद्भिन्ना ॥ प्रत्नीना अपि रुचिरा व्याख्यातृणामशेषा-  
णाम् ॥ ५ ॥ मनुमेकाग्रमासीनमित्यादि । अत्र महर्षिणा धर्मविषयप्रश्ने मनीः श्रूयतामि-  
त्युत्तरदानपर्यन्तश्लोकचतुष्टयेनैतस्य शास्त्रस्य प्रेक्षावित्प्रवृत्त्युपयुक्तानि विषयसंबन्धप्रयोजना-  
न्युक्तानि । तत्र धर्म एव विषयस्तेन सह वचनसंदर्भरूपस्य मानवशास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रति-  
पादकभावलक्षणः संबन्धः । प्रमाणान्तरासंनिक्छस्य स्वर्गापवर्गादिसाधनस्य धर्मस्य शास्त्रैक-  
ग्राम्यत्वात् । प्रयोजनं तु स्वर्गापवर्गादि तस्य धर्माधीनत्वात् । यद्यपि पत्न्युपगमनादिरूपः  
कालोऽप्यत्राभिहितस्तथापि ऋतुकृत्वाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदेति ऋतुकाख्यदिन्यमे-  
न सोऽपि धर्म एव । एवं चार्थाज्जनमपि ऋतानुताभ्यां जीवेतेत्यादिनियमेन धर्म एवेत्यवगन्त-  
व्यम् । मोक्षोपायत्वेनाभिहितस्यात्मज्ञानस्यापि धर्मत्वाद्धर्मविषयत्वं मोक्षोपदेशकत्वं चा-  
स्य शास्त्रस्योपपन्नम् । पौरुषेयत्वेऽपि मनुवाक्यानामदिगीतमहाजनपरिग्रहच्छ्रुत्युपग्रहञ्च  
वेदमूलकतया प्रामाण्यम् । तथा च छांदोग्यब्राह्मणे श्रूयते । मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्वेषजं भेष-  
जताया इति । बृहस्पतिरप्याह । वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थ-  
विपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते । तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च । धर्मा-  
र्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्वाव्रज दृश्यते । महाभारतेऽप्युक्तम् पुराणं मानवोर्धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सि-  
तम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः । विरोधिन्नैव्वादितर्केन हन्तव्यानि ।  
अनुकूलस्तु मीमांसादितर्कः प्रवर्त्तनीय एव । अत एव वक्ष्यति । आर्षे धर्मोपदेशं च वेदशास्त्रा-  
विरोधिना । न्यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मो वेद नेतर इति । सकलवेदार्थादिमनुनाम्ननुं महर्ष-  
य इदं द्वितीयश्लोकवाक्यरूपं उच्यते अनेनेति दचनमब्रुवन् । श्लोकस्यादौ मनुनिर्देशो  
मङ्गलार्थः । परमात्मन एव संसारस्थितये सार्वज्ञैश्वर्यादिसंपन्नमनुरूपेण प्रादुर्भूतत्वात्तदाभि-  
धानस्य मङ्गलातिशयत्वात् । दक्ष्यति हि । एनमेके वदन्त्याग्निं मनुमन्ये प्रजापतिमिति । ए-  
काग्रं विषयान्तराव्याक्षिप्तचित्तम् । आसीनं सुखोपाविष्टम् । ईदृशस्यैव महर्षिप्रश्नोत्तरदान-  
योग्यत्वात् । अभियम्य अभिमुखं गत्वा । महर्षयो महान्तश्च ते ऋषयश्चेति । तथा प्र-  
तिपूज्य पूजयित्वा । यद्वा मनुना पूर्वं स्वागतासनदानादिना पूजितास्तस्य पूजां कृत्वेति प्र-  
तिशब्दादुद्गीयते । यथान्यायं येन न्यायेन विधानेन प्रश्नः कर्तुं युज्यते प्रणतिभक्तिश्च आति-  
शयादिना । वक्ष्यति च । नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छत, इति । अभिगम्य प्र-  
तिपूज्य अब्रुवन्निति क्रियात्रयेऽपि मनुमित्येवं कर्म । अब्रुवन्नित्यन्नाकार्थितकर्मता । ब्रूधा-  
तोद्विकर्मकत्वात् ॥ १ ॥

टीका—एकाग्रचित्तमुखसे बैठे हुए मनुजीके सम्मुख जाके यथायोग्य उनका  
. स्तुतकार करि महर्षि न्याय पूर्वक अर्थात् प्रणतिभक्ति और श्रद्धाकी अधिकता  
आदिसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

• भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥

• अन्तरप्रभवानां च धर्मान्निवर्तुमर्हसि ॥ २ ॥

टीका—हे भगवन् अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्य करि सम्पन्न सब वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंका और अन्तर प्रभव जो संकीर्ण जाति अर्थात् अनुलोमज प्रतिलोमज अंबष्ठ क्षत्रकेस्य आदि जो अन्यजातिके स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पन्न हैं उन सबोंके धर्म यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्य है सो क्रमसे अर्थात् पहले जातकर्म फिर नामकरण इत्यादिक रीतिसे हमसे कहनेको योग्य हों ॥ २ ॥

• त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥

• अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

टीका—जिसे हे प्रभु तुम्ही एक अचिन्त्य कहिये जो चिन्तनमें न आसकै और जिसका प्रमाण न होसकै ऐसे इस स्वयम्भू अर्थात् आपसे उत्पन्न हुए वेदमें लिखे हुए ज्योतिषोपनिषद् आदियज्ञ और ब्रह्मज्ञानके जाननेवाले हौ ॥ ३ ॥

• स तैः पृष्टस्तथा सम्यग्मितौ जामहोत्मभिः ॥

• प्रत्युवाचार्च्यतान्सर्वान्महर्षीन् धूयतामिति ॥ ४ ॥

टीका—उन महात्माओं करिके उक्तप्रकारसे अर्थात् प्रणय भक्ति और श्रद्धा की अधिकता आदिसे पूछे गये वे सामर्थ्यवाले मनुजी उन सब महर्षियोंका सत्कार करिके यह बोले कि मुनिये ॥ ४ ॥

• आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥

• अप्रतर्क्यमविज्ञेयम्प्रसूतमिव सँवृतः ॥ ५ ॥

टीका—यह जगत् अंधकार अर्थात् प्रकृतिमें लीन और अप्रज्ञात अर्थात् जो जाना न जाय और अलक्षण अर्थात् चिह्नरहित जिसका कुछभी चिन्ह न जाना जाय और जिसमें कुछ तर्क न होसकै इसीसे अविज्ञेय कहिये जो कुछभी जाना न जाय और सर्वत्र सोये हुएके समान होता भया ॥ ५ ॥

• ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥

• महाभूतादि वृत्तौ जाः प्रादुरासीत्तमोर्नुदः ॥ ६ ॥

टीका—अव्यक्त अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष नहीं ऐस्य स्वयम्भू परमात्मा इस महाभूत आदि आकाशादिकोंको प्रकाशित करता हुआ जिसका पराक्रम

काहिये सृष्टिसामर्थ्य नहीं रुकी और प्रकृतिका प्रेरणा करनेवाला प्रकट हुआ॥

योऽसौ वतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः॥

सर्वभूतमयोऽर्चिन्त्यः स एव स्वयमुद्भूतः ॥ ७ ॥

टीका—सबलोक वेदपुराण इतिहासादिकोंमें प्रसिद्ध परमात्मा इन्द्रियोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् केवल प्रसन्न मन करिके ग्रहण करनेयोग्य और अव्यक्त करिके रहित सूक्ष्मरूप तथा नित्य रहनेवाला और सब भूतोंका आत्मा और प्रमाण करनेके योग्य नहीं है वही आप प्रकाशित हुआ अर्थात् महत्त्व आदि कार्यरूपसे प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

सोमिध्याय शरीरात्स्वात्सिद्धिर्विविधाः प्रजाः ॥

अपेक्ष्य सर्वसर्जदौ तामु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

टीका—नानाप्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छा करते हुए उस परमात्माने जल उत्पन्न होय ऐसे ध्यान करिके अपने शरीरसे आदिमें जलहीको उत्पन्न किया और इन जलोंमें अपना शक्तिरूप बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्धैमसहस्रांशुसमप्रभम् ॥

तस्मिन् जज्ञे स्वयम्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

टीका—वह बीज परमेश्वरकी इच्छासे सुवर्णकासा अंडा होगया जिसकी कांति सूर्यकीसी थी उस अंडेमें सब लोकोंका उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मारूप वह परमात्मा आपही उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

आपो नार इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनुवः ॥

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

टीका—जल नरसे उत्पन्नहै इस कारण उनका नाम नार है वही नार इस परमात्माके प्रथम आश्रय अर्थात् निवास स्थानहै तिससे इस परमात्माका नाम नारायण हुआ ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥

तदिसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

टीका—जो वह लोक वेद आदि सबमें प्रसिद्ध परमात्मा सब उत्पन्न होनेवालोंका कारण और अव्यक्त अर्थात् बाहरी इन्द्रियों करि नहीं ग्रहण करनेयो-

श्य और उत्पत्ति विनाश रहित और सत् असत् का आत्मा भूत है उस कारक उत्पन्न किया हुआ वह पुरुष ब्रह्म इस नामसे कहा जाता है ॥ ११ ॥

तस्मिन्नपेदे स भगवानुषित्वा परिवर्त्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्धि धा ॥ १२ ॥

टीका—उस पहले कहे हुए अंडेमें उस भगवान् ने एक वर्ष तक वसिकै आपही अपने ध्यानसे उसके दो खंड किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्याश्च दिवम्भूमिर्धनिर्ममे ॥

मध्ये व्योमं दिशश्चाष्टावर्षा स्थानञ्च शश्वर्तम् ॥ १३ ॥

टीका—उसने उस अंडेके दोनों खंडोंसे आकाश और पृथिवीको अर्थात् ऊपरके खंडसे स्वर्गलोक और नीचेके खंडसे भूलोक बनाया और दोनोंके बीचमें आकाश तथा आठों दिशा और स्थिरजलोंका स्थान समुद्र बनाया ॥ १३ ॥

उद्धवर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥

मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

टीका—अब महदादिकोंके क्रमहीसे जगत् की रचना है यह दिखानेके लिये उनकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माने परमात्मासे उसीरूपकरिकै सत् असत् रूप मनको उत्पन्न किया और मनसे मैं इस अभिमानकार्य करिकै युक्त कार्य करनेमें समर्थ अहंकार तत्त्वको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥

विषयाणाग्रहीतृणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

टीका—अविकाररूप प्रकृतिसहित परमात्माहीसे अहंकारसे प्रथम महत्त्वको उत्पन्न किया फिर आत्माको उसके पश्चात् संपूर्ण सत्त्व रज तम युक्त सृष्टिको जिसका वर्णन पिछले श्लोकोंमें हो चुका है और अगि होगा उत्पन्न किया फिर शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी ग्रहण करनेवाली श्रोत्र आदि पांच बुद्धीन्द्रियोंको और पायु आदि पांच कर्मेन्द्रियोंको और पांच शब्द तन्मात्रादिकोंको क्रमसे उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

तेषान्तर्वयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥

संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्म्ममे ॥ १६ ॥

टी०—उन पहले कहे हुए अहङ्कार और तन्मात्राओंके जो सूक्ष्म अवयव हैं

तिनको अपनी मात्राओंमें छ होके स्वविकारोंमें मिलाकर परमात्माने मनुष्य, तिर्यक्, स्थावर आदि सब भूत बनाये उनमें तन्मात्राओंका विकार पंचमहाभूत और अहङ्कारका विकार इन्द्रियहैं, पृथ्वी आदि पंच महाभूतोंको शरीर रूपसे परिणामको प्राप्तहोनेपर तन्मात्रा और अहङ्कारको मिलिकै सबकार्यके समूहकी रचना होती है, इसीसे ये अमितीजस अर्थात् अद्वत कार्य्योंके बनानेसे अतिवीर्यसे शोभित हैं ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मोस्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥

तस्माच्छरीरमिदं तस्य मूर्तिं मनीषिणं ॥ १७ ॥

टीका—मूर्तिशरीरको कहते हैं उसके बनानेवाले अवयव सूक्ष्म तन्मात्रा अहङ्कार रूप ये छः प्रकृति सहित उस ब्रह्मके वक्ष्यमाण पृथिवी आदिभूत और पहले कही हुई श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ कार्य्यभावसे आश्रितहैं क्योंकि तन्मात्राओंसे भूतोंकी और अहङ्कारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होनेसे उस ब्रह्मकी इन्द्रियादिक करिके शोभित मूर्तिको लोग शरीर कहते हैं. क्योंकि पञ्चतन्मात्रा और अहङ्कार इन छःका जो आश्रय करै वह शरीरहै. इस व्युत्पत्तिसेभी वही भाव आया १७

तदांविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥

मनश्चारवयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

टीका—फिर उस नाश रहित और सब भूतोंके करनेवाले ब्रह्मसे अपने अपने कार्य्योंके साथ आकाश आदि महाभूत और सूक्ष्म अवयवोंके साथ मन उत्पन्न हुवा आकाशका काम अवकाश देना, वायुका गति, तेजका पाक, जलका पिंढीकरण, पृथ्वीका धारण और मनका शुभ अशुभकी इच्छाहै ॥ १८ ॥

तेषामिदं तु सत्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥

सूक्ष्मोभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्वचयम् ॥ १९ ॥

टीका—अपना कार्य्य करनेसे पराक्रमी उन महत् अहङ्कार और पंचतन्मात्रा रूप सातकी सूक्ष्ममात्रा अर्थात् शरीर बनानेवाले आविनाशी भागोंसे विनाश होनेवाला जगत् उत्पन्न हुवा ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवोप्नोति परः परः ॥

यो यो यावत्प्रतिथश्चैषां सप्त तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

टीका—इनमें जो आदि आकाश आदिहैं तिनके शब्द आदि गुणोंको वायु आदि अग्रेके तत्त्व प्राप्त होते हैं इनके मध्यमें जो जौनसाहै वह उसके दूसरे

आदि गुणों करि युक्त कहाहै जैसे अकारांशका गुण शब्दहै. वायुके शब्द स्पर्शहै. तेजके शब्द, स्पर्श, रूपहैं; आपके शब्द, स्पर्श, रूप, रसहैं. और भूमिके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धहैं ॥ २० ॥

**सर्वेषां तु संनामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥**

**वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥**

टीका—हिरण्यगर्भ रूपसे स्थित उस परमात्माने सबोंके नाम जैसे गौकी जातिका गौ और घोडेकी जातिका घोडा और कर्म जैसे ब्राह्मणके पढ़ना आदि क्षत्रियके प्रजा रक्षा आदि और लौकिकी व्यवस्था जैसा कुम्हारका घडा बनाना और कोलीका कपडा बुनना आदि वेदके शब्दोंहीसे सृष्टिकी आदिमें भिन्न भिन्न बनाये ॥ २१ ॥

**कर्मात्मनाश्च देवानां सोऽमृजत्प्राणिनाम्प्रभुः ॥**

**सार्ध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैवं सनातनम् ॥ २२ ॥**

टीका—उस ब्रह्माने देवताओंके गणको और इन्द्रादिक प्राणियोंको तथा कर्मस्वभावोंको अप्राणी पाषाणादिकोंको और साध्य जो देवता विशेषहैं तिनके समूहको ज्योतिष्टोम आदियज्ञोंको और सूक्ष्म साध्यनाम देवताविशेषके समूहको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

**अग्निवार्युरविभ्यस्तु त्रयम्ब्रह्म सनातनम् ॥**

**दुंदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥**

टीका—सनातन ब्रह्मरूप अपनी बुद्धिमें स्थित ब्रह्माने ऋक्-यजु-सामनाम वेदोंको अग्नि; वायु और सूर्यसे यज्ञकी सिद्धिकेलिये गौके अयनमें स्थित दूधके समान निकाला ॥ २३ ॥

**कालंकालविभक्तीश्चैव नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥**

**सरितः सागरान् शैलान् समानि विषर्माणि च ॥ २४ ॥**

टीका—फिर काल और कालविभागों अर्थात् मास ऋतु अयन ( जैसे उत्तरायण दक्षिणायन) वर्षादिकोंको कृत्तिका आदिनक्षत्रोंको सूर्यादिक ग्रहोंको और नदी समुद्र पर्वत तथा समान और ऊंचे नीचे स्थानोंको बनाया ॥ २४ ॥

**तपो वाचं रतिश्चैव कामञ्च क्रोधमेव च ॥**

**सृष्टिं संसृज्यैवैमां सृष्टुमिच्छन्निर्माः प्रजाः ॥ २५ ॥**

टीका—फिर इन प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छायुक्त उस ब्रह्माने तप अर्थात् प्रा-



जापत्य आदिको, वाणीको, रति अर्थात् चित्तके संतोषको, काम अर्थात् इच्छाको, और क्रोध अर्थात् चित्तके विकारको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥

**कर्मणाञ्चविवेकार्थं धर्म्मोऽधर्म्मौ व्यवेचयत् ॥**

**द्वन्द्वैरयोर्जयञ्चेमांसुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥**

टीका—धर्म यज्ञ आदि जो करने योग्य और अधर्म ब्रह्महत्या आदि जो न करने योग्य इस प्रकार कर्मोंके विभाग करनेके लिये धर्म अधर्मको जुदा जुदा किया अर्थात् धर्मका फल सुख और अधर्मका फल दुःख यह विवेचनाकी और आपसमें विरोध रखनेवाले सुख दुःखके जोड़ोंसे इन प्रजाओंको युक्त किया अर्थात् उनके पीछे सुखदुःख लगा दिये, और आदिशब्दसे यह भाव है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा पिपासा, इनकेभी जोड़ोंको पीछे लगा दिया ॥ २६ ॥

**अण्व्योमात्राविनाशिन्यो दशांश्चानां तु याः स्मृतः ॥**

**ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवेत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥**

टीका—उन पंच महाभूतोंकी जो सूक्ष्म पंच तन्मात्रारूप विनाश होनेवाली पंचमहाभूत रूप हैं तिनके साथ सब जगत् क्रमसे अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे अतिस्थूल उत्पन्न होता है इससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी मानसी सृष्टि जानी गई ॥ २७ ॥

**यन्तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ॥**

**स तदेवैश्वर्यम्भे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥**

टीका—उस प्रजापतिने जिस जातिविशेष अर्थात् व्याघ्र आदिको सृष्टिके आरम्भमें हरिणोंके मारने आदि जिसकाममें लगाया वार वार उत्पन्न होकर उस जातिविशेषका जीव वही कर्म आपही करने लुगा ॥ २८ ॥

**हिंसा हिंसे मृदुकूरे धर्म्मोऽधर्म्मोऽवृत्तानृते ॥**

**यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्यै स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥**

टीका—ब्रह्माने जिस जीवका जो कर्म जैसे हिंसाका कर्म सिंह आदिका हाथियोंका मारना. अहिंसा जैसे ब्राह्मणादिकोंका हरिणादिकोंपर दया करना क्रूर जैसे क्षत्रियादिकोंका कर्म, धर्म जैसे ब्रह्मचारी आदिका गुरुकी सेवा करना, अधर्म जैसे ब्रह्मचारीको मांस मद्य सेवा आदि और कृत अर्थात् सत्य

सो बहुधा देवताओंको और अनृत अर्थात् झूठ सोभी बहुत करके मनुष्योंको ऐसे जो कर्म जिसको नियत किये वह आपही उनको करने लगा ॥ २९ ॥

यथर्तुलिङ्गाभ्युत्पत्तयः स्वयमेवर्तुपर्यये ॥

स्वानिस्वान्यभिर्पद्यन्ते तथा कर्माणि देहिर्नः ॥ ३० ॥

टीका—जैसे वसंत आदि ऋतु अपने २ समयमें अपने २ चिन्ह आमके वीर आदिको प्राप्त होते हैं ऐसेही देहधारीभी हिंसा आदि अपने २ कर्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहुंरुपादतः ॥

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् ॥ ३१ ॥

टीका—फिरि उस परमेश्वरसे भूलोक आदिकी वृद्धिके लिये मुख बाहु ऊरु तथा पावोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंको क्रमसे बनाया ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धने पुरुषोऽभवत् ॥

अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजर्ममृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥

टीका—उस ब्रह्माने अपने देहके दोखंड करके आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे स्त्री उसमें मैथुन धर्मसे विराट्नाम पुरुषको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वाऽमृजद्वन्तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥

तं मां वितांस्यं सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

टीका—मनु कहतेहैं कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो उस विराट्पुरुषने तप करिकै जिसको आप उत्पन्न किया उसको इस सब जगतकी सृष्टि करनेवाले मुझ मनुको जानो ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाः सिमृक्षुस्तु तपस्तप्त्वां सुदुश्चरम् ॥

पतीन्प्रजानाममृजं महर्षीनादितो दर्श ॥ ३४ ॥

टीका—मैंने प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे अति कठिन तप करके पहले दश प्रजापति महर्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम् ॥

प्राचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेवञ्च ॥ ३५ ॥

टीका—उनके नाम ये हैं मरीचि १ अत्रि २ अङ्गिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ अचेला ७ वसिष्ठ ८ भृगु ९ नारद १० ॥ ३५ ॥

एते मनुस्तु सप्तान्याममृजन् भूरितेजसः ॥

देवान् देवनिकां ग्यांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

टीका—इन मरीचि आदि बड़े तेजवालीयों और बड़े तेजवाले सात मनुओं को तथा देवताओंको और देवताओंके निवासके स्थान स्वर्ग आदिकोंको तथा महर्षियोंको उत्पन्न किया यह मनुशब्द अधिकारका वाची है चौदह मन्वन्तरोंमें जब जिसका सृष्टिकरनेका अधिकार होता है तब वही उस मन्वन्तरमें स्वायम्भुव स्वारोचिष आदिनामोंसे मनु कहा जाता है ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षः पिशाचैश्चैर्गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् ॥

नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणांश्च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

टीका—इन्होंने यक्ष अर्थात् कुवेर और उनके अनुचरोंको तथा राक्षसों अर्थात् रावण आदिकोंको और उनसे नीचे अशुद्ध मरु देशके रहनेवाले पिशाचोंको चित्ररथ आदि गन्धर्वोंको, उर्वशी आदि अप्सराओंको विरोचन आदि असुरोंको, वासुकी आदि नागोंको, अलगर्द आदि सर्पोंको, गरुड आदि सुपर्णोंको, और आज्यपा आदि पितरोंके समूहको उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥

विद्युत्सोऽज्ञानिमेघाँश्च रोहितेन्द्रधनूँषि च ॥

उल्कानिर्घातकेतूँश्च ज्योतीँष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥

टीका—फिर इन्होंने बिजली अर्थात् मेघमें चमकनेवाली ज्योतिको, वज्र अर्थात् वृक्षादिकोंकी नाश करनेवाली ज्योतिको, मेघोंको, रोहित नाम सीधे इन्द्र धनुषको, उसीप्रकारके टेढ़े धनुषाकार इन्द्र धनुषको—उल्का अर्थात् रेखाके आकार आकाशसे गिरती हुई ज्योतिको—निर्घात कहिये पृथ्वी आकाशमें स्थित उत्पात शब्दको—केतु कहिये उत्पातरूप पूंछवाले तारोंको तथा औरभी ध्रुव अगस्त्य आदि नाना प्रकारकी छोटी बड़ी ज्योतियोंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विधान्श्च विहंगमान् ॥

पशून्सर्गान्मनुष्याँश्च व्यालान्श्चोभयतोदृतः ॥ ३९ ॥

टीका—घुड़मुँहे किन्नरोंको वानरोंको मछलीयोंको और नानाप्रकारके पक्षियोंको गौ आदि पशुओंको हरिण आदि मृगोंको व्याल अर्थात् सिंहादिकोंको और ऊपर नीचे दोनों ओरके दांतवाले घोड़ा आदिको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतंगाँश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

सर्व्वे च दृशर्मशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

टीका—कृमि छोटेकीड़ोंको और कीट अर्थात् कृमिसे कुछ मोटेकीड़ोंको

पतंगोंको और जूँ मक्खी तथा खट्मलोंको और सब डांस मच्छडोंको और नानाप्रकारके स्थावर अर्थात् वृक्षलताआदिकोंको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्त्रियोगोन्महान्तमभिः॥

यथार्थकर्मतपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

टीका—ऐसे इन मरीचि आदि दशमहर्षियोंने मेरी आज्ञा लेकर बड़ा तप करिकै कर्मयोगसे अर्थात् जिसका जैसा कर्म है उसके अनुरूप देव मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥

येषान्तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥

तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगश्च जन्मनि ॥ ४२ ॥

टीका—इन जीवोंमें जिसका जो कर्म इस संसारमें पहले आचार्योंने कहा है जैसे औषधी फलपाकांत है और बहुत फल फूलोंकी देनेवाली हैं और ब्राह्मणादिकोंका पढ़ना आदि सो सब वैसाही और जन्मआदिके क्रमयोगको तुमसे कहूंगा ॥ ४२ ॥

पशवश्च मृगौश्चैव व्यालौश्चोभयतोदतः॥

रक्षांसिचपिशांचाश्चमनुष्याश्चजरायुजाः ॥ ४३ ॥

टीका—पशु, मृग, व्याल, दोनों ओर के दांतवाले, राक्षस, पिशांच, और मनुष्य, ये सब जरायुज हैं अर्थात् झिल्लीमें उत्पन्न होते हैं फिर उससे छूटते हैं ॥ ४३ ॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्त्रा मत्स्याश्च कच्छपाः॥

यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

टीका—पक्षी, साँप, मगर मछली और इस प्रकारके जीव जो स्थलमें उत्पन्न होते हैं जैसे गिरगट आदि और जो जलमें उत्पन्न शंख आदि हैं वे सब अण्डज हैं अर्थात् पहले अंडा उत्पन्न होता है फिर उस अंडेमेंसे वे जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामशिकमत्कुणम् ॥

ऊष्मणश्चोषजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥

टीका—डांस मच्छड जूँ मक्खी खट्मल ये सब स्वेदज हैं और जो ऐसेही भुनगें चेंटी आदि हैं वे सब ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

उद्भिजास्स्थोवरास्सर्व्वेबीजकाण्डैर्गरोहिणः॥

ओषध्यःफलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

टीका—बीजके बोने और डालियोंके लगानेसे उगनेवाले सब उद्भिज्ज हैं अर्थात् बीज और भूमिको फोड़कर ऊपरको निकलते हैं और फलोंके पकनेपर जिनका नाश होजाता है अर्थात् सूखजाती है वे धान आदि सब ओषधी हैं वे बहूतसे फूलफलों करि युक्त होती है ॥ ४६ ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्मृताः ॥

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तू भयतस्मृताः ॥ ४७ ॥

टीका—जिनमें फूलके बिना फल आता है वे वड, पीपल, पाकरि आदि वनस्पति कहाते हैं और जिनमें फूल फल दोनो होते हैं वे दोऊ वृक्ष कहे गये हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुल्मन्तु विविधन्तथैव तृणजातयः ॥

बीजकाण्डरूहाण्येव प्रताना वक्ष्य एवं च ॥ ४८ ॥

टीका—गुच्छ अर्थात् जिनमें जड़हीसे लताओंका समूह निकलता है शाखा नहीं होती हैं जैसे चमेली वेला आदि और गुल्म जैसे एक जड़से ऊगे हुए बहुतसे ईश्वरपता आदिकों और तृण अर्थात् घास आदि और प्रतान जैसे तूबी आदि तथा वल्ली जैसे गिलोय आदि येभी सब बीजके बोने और डाली योंके लगानेसे उगनेवाले हैं ॥ ४८ ॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥

अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

टीका—ये वृक्ष आदि विचित्र दुःखहै फल जिसका और धर्मकर्म हैं कारण जिसके ऐसे तमोगुणसे घिरेहुए हैं और सुख दुःखकरि युक्त ये सब अन्तस्संज्ञा अर्थात् भीतर ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गर्तयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ॥

घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे मित्यं सततयायिनि ॥ ५० ॥

टीका—प्राणियोंके जन्महोने और मरनेसे घोर अर्थात् दुःखदेनेवाले तथा सदा नाश होनेवाले इस जगतमें ब्रह्मसे लेकर स्थावरतक उत्पत्तियाँ कहीं ॥ ५० ॥

एवं सर्वसंमृष्टेदं माँश्चिन्त्यपराक्रमः ॥

आत्मन्यन्तर्द्वेषभूयः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

टीका—इस प्रकार सृष्टि कहिकै अब प्रलयकी दशा कहते हैं यह अचित्य शक्ति प्रजापति ऐसे उक्त प्रकारसे इस स्थावर जंगमरूप जगतको तथा मुझको

उत्पन्न करके सृष्टिके कालको प्रलयके कालसे नाश करता हुआ आत्मामें अंतर्धान होगया ॥ ५१ ॥

यदा स देवो जागर्ति तदैदं चेष्टते जगत् ॥

यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निर्मलति ॥ ५२ ॥

टीका— इसमें कारण कहते हैं जब वह प्रजापति जागता है अर्थात् सृष्टि और स्थितिकी इच्छा करता है तब यह जगत् श्वास और प्रश्वास और आहार आदिकी चेष्टाको प्राप्त होता है और जब सोता है अर्थात् इच्छा रहित होता है तब यह जगत् लीन हो जाता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपति तु स्वस्थे कर्मात्मानश्शरीरिणः ॥

स्वकर्मभ्यां निर्वर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

टीका— पहले कहेहुएहीको स्पष्ट करते हैं उस प्रजापतिके सोने अर्थात् इच्छारहित होनेपर तथा स्वस्थ कहिये मनका व्यापार सेमेट लेनेपर कर्मसे देह पानेवाले क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्राणी देहधारण करने आदि अपने कर्मों से निवृत्त होजाते हैं और सब इंद्रियों समेत मनभी आपंती वृत्तिसे रहित होजाता है ॥ ५३ ॥

युगपत्तुः प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ॥

तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निवृत्तः ॥ ५४ ॥

टीका— अब महाप्रलय कहते हैं एकही समयमें जब सब भूत उस परमात्मामें प्रलयको प्राप्त होते हैं तब यह सब भूतोंका आत्मा जाग्रत और स्वप्नके व्यापारसे रहित हो सुखसे सोता है अर्थात् सोयासा होता है यद्यपि नित्य ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मामें सोना नहीं हो सकता तिसपरभी जीवके धर्मका उपचार करते हैं ॥ ५४ ॥

तमोयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः ॥

न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥ ५५ ॥

टीका— अब प्रलयके प्रसंगसे जीवके निकलनेकोभी दो श्लोकोंमें कहते हैं यह जीव तम अर्थात् ज्ञानकी निवृत्तिको प्राप्त होके बहुतकालतक इंद्रिय आदि कों करि सहित स्थित रहता है और जब श्वास प्रश्वास आदि अपने कर्मोंको है तब मूर्ति जो प्रथमदेह है तिस्से निकलै जात

यदाऽणुमोत्रिको भूत्वा बीजं स्थानु चरिष्यु च ॥

समाविशति संमृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

टीका—दूसरी देहको जब धारण करता है सो कहते हैं जब जीव अणु मात्रिक अर्थात् भूत १ इन्द्रिय २ मन ३ बुद्धि ४ वासना ५ कर्म ६ वायु ७ अविद्या ८ रूप इस पुर्यष्टक करि युक्त हो स्थास्तु कहिये स्थिररूप वृक्ष आदिके कारणमें प्रवेश करता है तब वृक्ष आदिरूप स्थावर शरीरको धारण करता है और जब चरिण्यु कहिये मनुष्य आदिके जंगमरूप बीजमें प्रवेश करता है तब मनुष्य आदिके शरीरको कर्मके अनुसार धारण करता है ॥ ५६ ॥

एवं स जाग्रत्सर्वप्राभ्यामिदं सर्वश्रराचरम् ॥

सञ्जीवयति चाजस्रम्प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

टीका—प्रसंगसे आये हुए जीवके उत्क्रमणकी कहिके मुख्यका कथन करते हैं इसप्रकार सदा अविनाशी वह ब्रह्मा जाग्रत् तथा स्वप्नसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को जीवाता है और मारता है ॥ ५७ ॥

इदं शास्त्रन्तु कृत्वाऽसौ मामेवं स्वयमादितः ॥

विधिवद्ब्राह्मयामास मरीच्यादींस्त्विह मुनीन् ॥ ५८ ॥

टीका—पहले ब्रह्माने इस शास्त्रको बनाकै सृष्टिकी अंशमें विधिपूर्वक मुझकोही पढाया और मैंने मरीचिआदिमुनियोंको पढाया (शंका) जो कहौ कि ब्रह्माके कहेहुये इस शास्त्रको मनुका कैसे कहते हौ (उत्तर) यहाँ मेधातिथि कहते हैं कि शास्त्र शब्दसे शास्त्रका अर्थ विधिनिषेधसमूह कहा जाता है उसको ब्रह्माने मनुको पढाया मनुने उसका प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ बनाया इससे मनुका शास्त्र कहाया ॥ ५८ ॥

एतद्वायं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥

एतद्धि मन्ते ऽधिजगे सर्वमेषो ऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

टीका—मनु कहते हैं कि इन्होंने मुझसे यह सब पढा है इस कारण ये भृगुमुनि इस शास्त्रको तुझसे संपूर्ण सुनावेंगे ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः ॥

तान्ब्रवीद्वीद्वीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामि ति ॥ ६० ॥

टीका—तिस पीछे मनु करिके ऐसे कहेगये भृगु महर्षि प्रसन्न होके सब ऋषियोंसे यह बोले कि सुनिये ॥ ६० ॥

• स्वायम्भुवस्यास्यमनोः पद्विंश्यामनवोऽपरे ॥

• मृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मनो महौजसः ॥ ६१ ॥

टीका—ब्रह्माके पौत्र इन्द्र. स्वायम्भुव मनुके वंशमें छः और महात्मा बड़े परा-  
क्रमी मनु हुए उन्होंनेभी अपने २ सृष्टिपालन आदिके समयमें अपनी २ प्रजा  
उत्पन्न कीं ॥ ६१ ॥

• स्वारोचिषश्चौत्तामिसौरैवतस्तथा ॥

• चाक्षुषश्चमहातेजाविवस्वत्सुतएवच ॥ ६२ ॥

टीका—स्वारोचिष १ औत्तामि २ तामस ३ रैवत ४ चाक्षुष ५ और बड़े तेज-  
स्वी वैवस्वत ६ ये छः मनुनामसे कहे गये ॥ ६२ ॥

• स्वायम्भुवाद्यास्सप्तैतेमनवोभूस्तिजसः ॥

• स्वेस्वेन्तरेसर्व्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

टीका—स्वायम्भुव आदि इन सातमनुओंने अपने २ अधिकारमें इस स्थावर  
जंगम जगत्को उत्पन्न करके पालन किया ॥ ६३ ॥

• निमेषो दशचोष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः ॥

• त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः ॥ ६४ ॥

टीका—अब कहेहुये मन्वन्तरके सृष्टिप्रलय आदिके कालका प्रमाण जानने-  
के लिये कालका क्रम कहते हैं आपसे आंखोंके खुलने मुंदनेको निमेष अर्थात्  
पलक कहतेहैं. उन अठारह पलकोंका एक काष्ठा नाम कालको प्रमाण हुआ.  
उन तीस काष्ठाओंकी एक कला होतीहै. तीस कलाका एक मुहूर्त होताहै. और  
तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र अर्थात् दिनरातिका समय होताहै ॥ ६४ ॥

• अहोरात्रे विभजते सूर्य्यो मानुषदैविके ॥

• रात्रिः स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ६५ ॥

टीका—मनुष्यों और देवताओंके दिन रात्रिका विभाग सूर्य्य करतेहैं उनमें  
रात्रि प्राणियोंके सोनेके लिये और दिन काम करनेके लियेहै ॥ ६५ ॥

• पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥

• कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥

टीका—मनुष्योंके एक महिनेका पितरोंका रात्रिदिन होताहै उसके दोनों प  
क्षोंमें काम करनेके लिये कृष्णपक्ष दिनहै और सोनेके लिये शुक्लपक्ष रात्रिहै ॥ ६६ ॥



दैवे राज्यहनी वर्षे प्रविर्भागस्तयोः पुनः॥

अहस्तत्रोदगर्जनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

टीका- मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका रातदिन होता है उसकाभी यह वि-  
भाग है कि मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन है उसमें बहुधा देवकर्म क-  
रना चाहिये और दक्षिणायन देवताओंकी रात है ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥

एकैकंशो युगान्तु क्रमशस्तत्रिबोधत ॥ ६८ ॥

टीका—ब्रह्माके रातदिनका जो प्रमाण है वह प्रत्येक सत्ययुगादिकोंके क्र-  
मसे है उसको संक्षेपसे सुनो ॥ ६८ ॥

चत्वार्यार्षुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥

टीका—मनु आदि चार हजार वर्षका सत्ययुगका प्रमाण कहते हैं उसके उ-  
तनेही वर्षोंके सैकड़ें, संध्या और संध्यांश होता है, युगका पहला भाग सन्ध्या  
और दूसरा संध्यांश होता है ॥ ६९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥

एकार्पायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

टीका—त्रेता द्वापर कलियुग इन तीनों युगोंका संध्या और संध्यांश सह-  
स्रोंका प्रमाण क्रमसे एक सहस्र और एक शतके घटानेसे होता है अर्थात् तीन  
हजार ( ३००० ) वर्षका त्रेतायुग और तीन सौ ( ३०० ) वर्ष संध्या और तीन  
सौ ( ३०० ) वर्ष संध्यांश और दो हजार ( २००० ) वर्ष द्वापरयुग दो सौ ( २०० ) वर्ष  
संध्या और दो सौ ( २०० ) वर्ष संध्यांश और एक हजार ( १००० ) वर्षका  
कलियुग सौ ( १०० ) वर्ष संध्या और सौ ( १०० ) वर्ष संध्यांश ॥ ७० ॥

तदेतत्परिसंख्यातमादिवर्षे चतुर्युगम् ॥

एतद्वादर्शसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

टीका—यह जो मनुष्योंका चारोंयुगका प्रमाण कहा इसीका बारह गुण  
देवताओंका एक युग होता है ॥ ७१ ॥

दैविकानां युगान्तु सहस्रपरिसंख्या ॥

ब्राह्ममेकमहर्ज्ञयन्तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥

टीका—देवताओंके एकहजार युगोंका ब्रह्माका एकदिन होताहै और उतनीही राति होतीहै ॥ ७२ ॥

तद्वै युगसहस्रान्तम्ब्राह्मणुण्यमर्हविदुः ॥ रात्रिं च तावतीमेव ते १

३ होरात्रविदो जर्माः ॥ ७३ ॥ तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रमुक्तः प्र

तिबुद्धयते ॥ प्रतिबुद्धश्च सृजति मनस्सर्दसदात्मकम् ॥ ७४ ॥

टीका—जिसकी समाप्ति हजारयुगोंमें होती है ऐसा ब्रह्माका एक पवित्र दिन कहतेहैं और वे रातिदिनके जाननेवाले जन्म उतनीही रात्रि कहतेहैं ॥ ७३ ॥ सोया हुआ वह ब्रह्मा उस अपनी रातिके अंतमें जागताहै और जागकर सत् असत् रूप मनको उत्पन्न करताहै अर्थात् भूलोक आदि तीनो लोकोंकी सृष्टिमें मनको लगाताहै उत्पन्न नहीं करताहै ॥ ७४ ॥

मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिमृक्षया ॥ आकाशं जायते तं  
स्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥ आकाशात्तु विकुर्व्वाणात्सर्वं  
गन्धवहः शुचिः ॥ बलवान् जायते वायुस्सर्वैः स्पर्शगुणो मर्तः ॥ ७६ ॥

टीका—परमात्माकी सृष्टिकी इच्छा करि प्रेरणगया मन सृष्टिको करताहै तौं उससे पहले आकाश उत्पन्न होता है जिसका गुण मनुआदिकोंने शब्द कहाहै ॥ ७५ ॥ विकारको प्राप्त हुये आकाशसे सब भौतिके गंधका वहनेवाला बलवान् पवित्र पवन उत्पन्न होताहै उसका गुण स्पर्श कहा गयाहै ॥ ७६ ॥

वायोरपि विकुर्व्वाणाद्गिरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योतिरुत्पद्यते भा  
स्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥ ज्योतिषश्च विकुर्व्वाणादौपो रसगु  
णाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषां सृष्टिरादितः ॥ ७८ ॥

टीका—विकारको प्राप्तहुये पवनसेभी दूसरेको प्रकाशित करनेवाला तथा अंधकारका विनाशक प्रकाशमान तेज उत्पन्न होताहै उसका गुण रूपहै ॥ ७७ ॥ विकारको प्राप्त हुये तेजसे रस जिनका गुण ऐसे जल उत्पन्न होतेहैं और जलसे गन्ध जिसका गुण ऐसी भूमि उत्पन्न होतीहै यह आदिसे सृष्टि कह्यी ॥ ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्व  
न्तरमिहोच्यते ॥ ७९ ॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव  
च ॥ क्रीडन्नि वैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ ८० ॥

टीका—पहले कही हुई जो बारह हजार वर्षोंकी मनुष्योंकी संख्या तथा स-

ध्यांश सहित मनुष्योंकी चतुर्युगी है वह देवताओंका एक युग होताहै उसका इकहत्तरि गुणा करनेसे एक मन्वंतर होताहै इसमें एक मनुका सृष्टि आदि करनेका अधिकार होताहै ॥ ७९ ॥ असंख्य कहिये जिनकी संख्या नहीं ऐसे मन्वंतरोंको और सृष्टि तथा संहारको वह परमेष्ठी खेलते हुये मानो बारंवार करताहै ॥ ८० ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥ नार्धर्मेणाधर्मः कं  
श्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्तते ॥ ८१ ॥ इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्वैव  
रोपितः ॥ चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापि ति पादशः ॥ ८२ ॥

टीका—सत्ययुगमें सब धर्म चतुष्पात् कहिये सब अंगोंसे परिपूर्ण था और सत्यभीथा सब धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेसे सत्यका पृथक् ग्रहण किया और अधर्मसे अर्थात् शास्त्रको उल्लांघिकै मनुष्योंमें किसीप्रकारका धनविद्या आदिका आना नहीं होताथा ॥ ८१ ॥ त्रेता आदि और युगोंमें अधर्मसे धनके जोड़ने तथा विद्याके पढ़ने से धर्म अर्थात् यज्ञ आदि क्रमसे प्रत्येक युगमें चौथाई २ घटता जाताहै और धन तथा विद्यासे जो कुछ धर्म इकट्ठा किया जाताहै सौभी चोरी झूठ और छलसे हर एकयुगमें चौथाई २ कम होनेसे चला जाताहै अर्थात् नष्ट होजाताहै क्रम २ से कमहोनेका यह कारणहै कि चोरी झूठ छल ये तीनों त्रेता आदि तीनों युगोंमें क्रमसे एक २ बढ़ता जाताहै ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥ कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्  
ह्रसति पादशः ॥ ८३ ॥ वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामांशिषश्चैव कर्म  
णाम् ॥ फलं त्वनुर्युगं लोके प्रभावंश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

टीका—सत्ययुगमें रोगका कारण अधर्म न होनेसे रोगरहित और विघ्नरूप अधर्मके नहोनेसे सिद्धहैं कामनाओंके फल जिनके ऐसे और चारसौवर्षकी है आयु जिनकी ऐसे और अधिक आयुके करनेवाले धर्मके काष्ण अधिक अवस्थाकेभी होतेहैं इससे रामचन्द्रने दसहजार वर्ष राज्य किया इस वाल्मीकिके लेखसेभी विरोध न हुआ और शतायुर्वैपुरुष इत्यादि श्रुतिमें शतशब्द बहुतसे सैकड़ोंका कहनेवालाहै अथवा कलियुगके मध्यं कहाहै और त्रेता आदियुगोंमें फिरचौथाई २ आयु कम होती जातीहै ॥ ८३ ॥ शतायुर्वै पुरुष इत्यादि वेदमें कहीहुई आयु और काम्यकर्मोंकी फल विषयक चाहना और ब्राह्मण आदिकोंका प्रभाव अर्थात् शाप देने तथा अनुग्रह करनेकी शक्ति ये सब युगके अनुसार फलके देनेवाले होतेहै ॥ ८४ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां, द्वापररेऽपरे ॥ अन्ये कलियुगे नृणां  
युगहासानुरूपतः ॥ ८५ ॥ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमु-  
च्यते ॥ द्वापरं यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

टीका—सत्ययुगमें और धर्मथे फिरियुगोंके घटनेके अनुरूप त्रेता तथा द्वापर-  
में और ही हुए और कलियुगमें और ही हैं ॥ ८५ ॥ यद्यपि तप आदि सब  
शुभकर्म सबयुगोंमें करनेयोग्य हैं तिसपरभी सत्ययुगमें तप मुख्यथा अर्थात् बड़े  
फलका देनेवाला था ऐसेही त्रेतामें आत्माका झब और द्वापरमें यज्ञ और क-  
लियुगमें दान ही एक बड़ा फल देनेवाला है ॥ ८६ ॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥ मुखर्बाहूरुपज्जा-  
नां पृथक्कर्मण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥ अर्घ्यापनमर्घ्ययनं यजनं  
यार्जनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

टीका—उस बड़े तेजस्वी ब्रह्माने इस सब सृष्टिकी रक्षाके लिये मुख आदि-  
से उत्पन्न चारो वर्णोंके लिये जुदे २ कर्म बनाये ॥ ८७ ॥ पढ़ाना पढ़ना यज्ञ  
करना यज्ञ कराना दानदेना दानलेना ये छः कर्म ब्राह्मणोंके बनाये ॥ ८८ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ विषयेष्वप्रसंक्तिश्च क्ष-  
त्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव  
च ॥ वणिक्पथं कुंसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ९० ॥

टीका—प्रजाओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ करना ३. वेद पढ़ना  
४. विषय जो गाना नाचना आदिहैं तिनमें चित्तका न लगाना ५. ये संक्षेपसे—  
क्षत्रियोंके कर्म बनाये ॥ ८९ ॥ पशुओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ  
करना ३. वेद पढ़ना ४. जलमें नाव वा जहाजोंसे और स्थलमें भारवरदात्री  
आदिसे व्यापार करना ५. व्याज लेना और खेती करना ६. ये वैश्यके कर्म  
नियत किये ॥ ९० ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥ एतेषामेवं वर्णानां  
शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥ ऊर्ध्वं नाभिमर्ध्यतरः पुरुषः परिकी-  
र्तितः ॥ तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ९२ ॥

टीका—प्रभुने शूद्रको एकही काम बताया कि वह द्वेषरहित होकर इन ती-  
नोंही वर्णोंकी सेवा करे ॥ ९१ ॥ अब मुख्यतासे तथा सृष्टिकी रक्षाके निमित्त

होनेसे और उससे धर्मका आरंभ होनेसे तथा अस्त्रके पढ़नेसे ब्राह्मणकी प्रशंसा लिखते है ॥ पुरुषसे भी पवित्रहै परंतु नाभिसै ऊपर तौ बहुतही पवित्रहै उससेभी पवित्र ब्राह्मणका मुख कहा गयाहै ॥ ९२ ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैवं धारणात् ॥ सर्वस्यैवांस्यसंग  
स्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥ तं हि स्वयंभूः स्वादास्यान्तर्पस्त  
स्वादितोऽमृजत् ॥ हव्यकव्यमभिवाह्याय सर्वस्यांस्यं च गुप्तये ॥ ९४ ॥

टीका—उससे क्या हुवा सो कहतेहैं ॥ उत्तम अंग जो मुखहै तिसमेंसे उत्पन्न होनेसे तथा क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न होनेसे और पढ़ने तथा व्याख्यान आदिसे वेदका धारण करनेसे ब्राह्मण इस सब जगत्का वेदकी आज्ञासे स्वामी-है और संस्कार विशेषसेभी सब वर्णोंका प्रभुहै ॥ ९३ ॥ किसके उत्तम अंगसे यह उत्पन्न हुवा सो कहतेहैं ॥ उस ब्राह्मणको ब्रह्मानें अपने मुखसे दैव पित्र्य हव्य कव्यके पहुँचानेके लिये तप करिकै जगतकी रक्षाके लिये क्षत्रिय आदि-कोंसे पहले उत्पन्न किया ॥ ९४ ॥

यस्यास्येन सदाश्रन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥ कव्यानि चैवं  
पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणि  
नां बुद्धिर्जीविनः ॥ बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६ ॥

टीका—पहले कहे हुये हव्य कव्यके पहुँचानेको बोलतेहैं ॥ जिस ब्राह्मणके मुखसे श्राद्ध आदिमें सदा देवता हव्योंको और पितर कव्योंको भोजन करतेहैं उससे अधिक कौन प्राणी होगा ॥ ९५ ॥ स्थावर जंगम भूतोंमें प्राणी कहिये प्राणवाले कीड़े आदि श्रेष्ठ हैं उनमें भी बुद्धिसे जीनेवाले पशुआदि श्रेष्ठ हैं उनसेभी उत्तम ज्ञानके होनेसे मनुष्य श्रेष्ठहैं उनसेभी ब्राह्मण सबोंके पूज्य तथा मोक्षके अधिकार योग्य होनेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९६ ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्तारः  
कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥ उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिधर्मस्य शा  
श्वती ॥ स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥

टीका—ब्राह्मणोंमें तौ बड़े फलवाले ज्योतिष्ठोम आदिकर्मोंका अधिकारी हो-नेसे विद्वान् और उनसेभी कृतबुद्धी अर्थात् शास्त्रोक्त बातोंके करनेको जिनकी बुद्धि उपस्थितहै उनसेभी करनेवाले और उनसेभी ब्रह्मज्ञानी मोक्षका लाभ हो-नेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणदेहका जन्मही धर्मका अविनाशी शरीरहै

जिस्से धर्मकोलिये उत्पन्न वह धर्मसे प्राप्त हुए आत्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होताहै ९८  
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां  
धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ९९ ॥ सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जग  
तीगतम् ॥ श्रेष्ठ्येनाभिज्ञनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १०० ॥

टीका—जिस्से उत्पन्न हुआ ब्राह्मण. पृथिवीमें सबसे उपर होताहै अर्थात्  
सबसे श्रेष्ठहै और सब जीवोके धर्म समूह की रक्षाके लिये समर्थहै ॥ ९९ ॥  
जो कुछ जगतमें धनहै वह ब्राह्मणकाहै तिस्से ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होनेके  
कारण और श्रेष्ठ होनेसे निश्चय ब्राह्मण सब लेनेके योग्यहै ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ आनृशंस्याद्ब्राह्म  
णस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥ १०१ ॥ तस्य कर्मविषेकोऽर्थं शेषाणां  
मनुपूर्वशः ॥ स्वायंभुवो मनुर्धर्मानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

टीका—जो दूसरेका अब ब्राह्मण खाताहै तथा पहिरताहै और दूसरेका ले-  
कर औरको देताहै वहभी ब्राह्मणका धनहै ऐसा होनेपर ब्राह्मणकी करुणासे  
और लोग भोजन आदि करतेहैं ॥ १०१ ॥ ब्राह्मणके तथा क्षत्रिय आदिकोंके  
कर्म जाननेके लिये ब्रह्माके प्रपौत्र बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने इस शास्त्रको  
बनाया ॥ १०२ ॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्य  
क् नान्येन केनचित् ॥ १०३ ॥ इदं शास्त्रमधीरानो ब्राह्मणः शंसि  
तवतः ॥ मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १०४ ॥

टीका—विदुषा कहिये इस शास्त्रके पढनेका फलजाननेवाले ब्राह्मणको व्या-  
ख्यान तथा पढाने आदि उचित यत्नोंसे अध्ययन करना और शिष्योंके लि-  
ये भी इसका व्याख्यान करना योग्यहै, और अन्य क्षत्रिय आदिकोंको केवल  
पढना चाहिये व्याख्यान करना तथा पढाना न चाहिये ॥ १०३ ॥ इस शास्त्र-  
को पढता हुआ ब्राह्मण इसके अर्थको जानि व्रतको करिके मन्त्रवाणी तथा  
शरीरसे उत्पन्न हुए पापोंकरि लिप्त नहीं होताहै ॥ १०४ ॥

पुनर्नाति पत्किं वंश्याश्च सप्त सप्त परावैरान् ॥ पृथिवीमपि चैवै मां  
कृत्स्नाभिकोऽपि सोऽर्हति ॥ १०५ ॥ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बु  
द्धिर्विवर्द्धनम् ॥ इदं यशस्यमार्युज्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥ १०६ ॥

टीका—इस शास्त्रको पढ़ता हुआ ब्राह्मण जो पंक्तिके योग्य नहीं ऐसे मनुष्य करि दूषित हुई पंक्ति अर्थात् क्रमसे बैठें हुए जनोंके समूहको और सात पहले अर्थात् पितामहादिकोंको और सात आगेके पौत्र आदिकोंको पर्वित्र करता है और सब धर्मका ज्ञाता होनेके कारण पात्र होनेसे वह एकभी सब पृथ्वीको लेनेके योग्य होता है ॥ १०६ ॥ इस शास्त्रका पढ़ना स्वस्त्ययन अर्थात् चाहे हुए अर्थका देनेवाला है और जप होम आदिका बोधक होनेसे श्रेष्ठ है अर्थात् स्वस्त्ययनसे भी अधिक है और बुद्धिका बढ़ानेवाला है क्योंकि इसके अभ्याससे संपूर्ण विधिनिषेधका ज्ञान होता है और यशका देनेवाला तथा आयुका बढ़ानेवाला है और मोक्षके उपायका उपदेश करनेवाला है ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्षणम् ॥ चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैवं शाश्वतः ७ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ ८ ॥

टीका—इसमें संपूर्णतासे धर्म कहा है और कर्मोंके गुण दोष अर्थात् भलाई बुराई कही है और चारों वर्णोंका परंपरासे आया हुआ आचार कहा है ॥ १०७ ॥ श्रुति तथा स्मृतिमें कहा हुआ आचार परमधर्म है तिसे आत्मवान् कहिये अपने धर्मका चाहनेवाला ब्राह्मण सदा आचारयुक्त रहै ॥ १०८ ॥

आचारोऽद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥ आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभागभवेत् ॥ १०९ ॥ एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ॥ सर्वस्य तर्पसो मूलमाचारं जगद्गुरुः परम् ॥ ११० ॥

टीका—आचारसे रहित ब्राह्मण वेदके फलको नहीं प्राप्त होता है और आचारयुक्त संपूर्ण फलका पानेवाला होता है ॥ १०९ ॥ एकहे हुए प्रकारसे आचारके द्वारा ऋषियोंने धर्मकी प्राप्ति को जानकै संपूर्ण जे चांद्रायण आदि तर्पहैं उनके मूलरूप, आचारका ग्रहण किया ॥ ११० ॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च ॥ व्रतचर्योपचारं च स्नानं चैवं विधिम् ॥ १११ ॥ दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ॥ महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्च शाश्वतः ॥ ११२ ॥

टीका—जगतकी उत्पत्ति और संस्कार जो जातक कर्म आदि हैं तिनकी विधि और ब्रह्मचर्यका उपचार अर्थात् गुरु आदिकोंका नमस्कार और उपासना आदि और स्नान कहिये गुरुकुलसे निवृत्त हुएका एक प्रकार

का संस्कार -उस्की बहुत अच्छी विधि कहेंगे ॥ ११३ ॥ दाराधिगमन जो विवाह तिसकी विधि और ब्राह्म आदि विवाहोंके लक्षण तथा वैश्वदेव आदि पंचमहायज्ञोंका विधान और नित्यश्राद्धकी विधि कहेंगे ॥ ११२ ॥

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ॥ भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां सिद्धिमेव च ॥ ११३ ॥ स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ॥ रीतिश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ ११४ ॥

टीका—वृत्तिकहिये ऋत आदि जीविकाके संपादनोंको और स्नातक जो गृहस्थहै तिसके व्रत कहिये नियमोंको और भक्ष्य दही आदि तथा अभक्ष्य लहसन आदि और जो मरण आदिमें ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दश दिन आदिकी शुद्धिकी और जलआदिसे द्रव्योंकी सिद्धिकी कहेंगे ॥ ११३ ॥ स्त्रियोंके धर्मयोग अर्थात् धर्मके उपायकों और तापस्य कहिये वानप्रस्थके लिये हित धर्मको संन्यासको और संपूर्ण राजाके धर्मोंको और और कार्योंके निर्णय अर्थात् द्रव्यके लेन देनहैं तिनके निर्णय कहिये विचारको कहेंगे ॥ ११४ ॥

साक्षिप्रश्रविधानं च धर्म स्त्रीपुंसयोरपि ॥ विभागधर्म द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम् ॥ ११५ ॥ वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ॥ आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ ११६ ॥

टीका—समक्षियोंके प्रश्नका विधान और स्त्रीपुरुषोंके समीप होने तथा न होनेमें धर्म करना तथा विभाग धर्म अर्थात् हिस्सा बांट और जुआआदिकी विधि और कंटक जे चोर आदि हैं तिनका शोधना अर्थात् दूर करना इन सबोंको कहेंगे ॥ ११५ ॥ वैश्य शूद्रोंका उपचार अर्थात् अपने २ धर्मका करना और संकीर्ण अर्थात् और और जातिसे मिलिके जे उत्पन्नहै जे अनुलोमज प्रति-लोमज आदिहै तिनकी उत्पत्ति और सब वर्णोंके आपद्धर्म अर्थात् विपत्तिके समयमें जीविका करनेका उपदेश और प्रायश्चित्त इन सब बातोंको कहेंगे ॥ ११६ ॥

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ॥ निःश्रेयसं कर्मणां च शुण्ढोपपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥ देशधर्मातिधर्मान्कुलधर्माश्च शाश्वतान् ॥ पाषण्डगणधर्माश्च शौचोऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ ११८ ॥

टीका—संसार गमन अर्थात् शुभ अशुभ कर्मोंके कारण उत्तम मध्यम अधमके भेदसे तीनिप्रकारके दूसरे देहमें जानेको और निःश्रेयस कहिये आत्मज्ञानको और कहे हुए तथा निषेध कियेहुए कर्मोंके गुण दोषोंकी परीक्षा



कहेंगे ॥११७॥ देशोंके धर्मोंको और नियत किये हुए जाति तथा कुलके धर्मोंको और वेदसे बाहर आगममें कहे हुए निषिद्ध धर्मोंके करनको पाषंड कहते हैं उसके करनेवाले. पाषंडी मनुष्योंके धर्मको और गण अर्थात् समूह जे व-  
नियाव्यापारी आदिहैं तिनके धर्मोंको इस ग्रंथमें मनुने कहाहै ॥ ११८ ॥

यथैर्दमुक्तवाञ्छांस्तं पुनः पृष्टो मनुमर्या ॥ तथैर्दं यूयमप्यद्य मत्स  
काशान्नि बोधत ॥ ११९ ॥

इति नानवेधर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तान्यासंहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

टीका—पहले मुझकर पूछे गये मनुने जैसे इस शास्त्रको कहाहै वैसेही आप-  
भी अब हमसे सुनिये ॥ ११९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुङ्कुमभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## अध्यायः २ यः ।

विद्वद्भिः सेवितः सैद्धिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ॥ हृदयेनाभ्यनुज्ञातो  
यो धर्मस्तं निबोधत ॥ १ ॥ कामात्मता न प्रशस्ता न चैवो  
स्त्यकामता ॥ काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

टीका—प्रकृष्ट परमात्माके ज्ञानरूप धर्मके ज्ञानके लिये जगत्के कारण ब्रह्मका  
प्रतिपादन करिकै अब ब्रह्मज्ञानका अंगभूत जो संस्कार आदि धर्म है तिसके प्र-  
तिपादनकी इच्छासे पहले धर्मका सामान्य लक्षण कहते है वेदके जाननेवाले  
रागद्वेष रहित धर्मात्माओंकरिकै सदा सेवन किया गया और हृदयसे जाना  
जो धर्म है तिसको सुनिये ॥ १ ॥ कामात्मता कहिये फलकी इच्छासे बंदनको  
कारणरूप कर्मका करना अछा नहीं है जैसे स्वर्ग आदि फलकी चाहनासे किये  
हुए कामनायुक्त कर्म फिरि जन्मके लिये कारण होतेहै और नित्यनैमित्तिक  
कर्म-तौ आत्मज्ञानके सहकारी होनेसे मोक्षके देनेवाले होतेहैं इस्से इच्छामात्र  
का निषेध नहीं किया क्यों कि वेदका पढना कामनायुक्त है और वैदिक  
कर्मयोगभी कामनायुक्तही है ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ॥ व्रतानि यर्मधर्माश्च  
सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥ अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नैह  
काचिच्चित् ॥ यद्यद्वि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

टीका— संकल्प है मूल .जिसका ऐसा काम है अर्थात् इस कर्मसे यह इष्टफल सिद्ध किया जाता है ऐसी बुद्धिको संकल्प कहते हैं तिस पीछे इस साधनता करिके निश्चय किये हुए उसमें इच्छा उत्पन्न होतीहै तब उसके लिये जतनभी करता है इस भाँति यज्ञभी संकल्पसे उत्पन्न है और व्रत नियम धर्म ये सब संकल्पसे उत्पन्न कहे गये हैं॥ ३ ॥ यहाँई लौकिक नियम दिखाते हैं लोकमें भोजन गमन आदि कोई क्रिया विना इच्छाके कर्मनही दिखाई देतीहै तिससे सब लौकिककर्मोंको जो करताहै वह सब इच्छाका चेष्टित कहिये कामहै ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छेत्पमरलोकताम् ॥ यथा संकल्पितांश्च  
हं सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ५ ॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले  
च तद्विदाम् ॥ आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

टीका—अब पहले कहे हुए फलकी इच्छाका निषेध करते हुए नियम करते हैं उनकर्मोंमें अच्छी भाँति वर्तमान पुरुष अमरलोकता कहिये अमरधर्मी ब्रह्म भावको प्राप्त होताहै अर्थात् मुक्त होजाताहै ऐसा पुरुष सर्वेश्वर होनेसे इस लोकमें भी सब वांछित पदार्थोंको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ वेद कहिये ऋक् यजु सां म अथर्व ये सब धर्मका मूल कहिये प्रमाणहै स्मृति तथा हारीतका कहाहुआ ब्रह्मण्यता आदि तेरंह. प्रकारका शील ये सब वेदके जाननेवालोंको धर्ममें प्रमाणहै और आचार तथा साधुओंके मनका संतोषभी धर्ममें प्रमाणहै ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुर्ना परिकीर्तितः ॥ सर्वोऽभिहि तो  
वेद सर्वज्ञानमयो हि सं ॥ ७ ॥ सर्व तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानं च  
क्षुषा ॥ श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत्त वै ॥ ८ ॥

टीका—वेदसे भिन्न औरोंके वेद मूल होनेसे प्रामाण्य कहनेपरभी मनुस्मृति की सबसे अधिकता दिखानेके लिये वेदमूलता कहतेहैं जो कोई धर्म किसी ब्राह्मण आदिका मनुने कहाहै वह सब वेदमें प्रतिपादन किया गयाहै जिससे वे मनु सबके जाननेवाले हैं ॥ ७ ॥ वेदके अर्थ जाननेमें सहाय करनेवाले शास्त्र समूह अर्थात् मीमांसा व्याकरणआदि इस सबको ज्ञानरूपी आँखिसे देखि अर्थात् विचारिके विद्वान् अपने धर्ममें स्थित होय ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ॥ इह कीर्त्तमवाप्नोति  
प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ९ ॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु  
वै स्मृतिः ॥ ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ ॥ १० ॥

टीका—श्रुतिस्मृतिमें कहे हुए कर्मको करता हुआ मनुष्य इस लोकमें की-  
तै और पर लोकमें सबसे उत्तम सुखको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ श्रुति वेदको कहते  
हैं और मनु आदिधर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ये दोनों प्रतिकूल तर्कोंसे नहीं  
विचार करनेयोग्य हैं जिससे सब धर्म उन्हींसे प्रकाशित हुआ है ॥ १० ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विज्ञेः ॥ सांभुभिर्बहिष्कृत्यो  
नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य  
च प्रियमार्तमनः ॥ एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

टीका—जो ब्राह्मण धर्म मूल जो वे श्रुति स्मृति दोनों तिनका अपमान क-  
रता है अर्थात् नहीं मानता है वह वेदका निंदाका हेतु कहिये कारणभूत जो  
शास्त्र है तिसके आश्रयसे नास्तिकके समान है वह शिष्टों करिके ब्राह्मणोंके कर  
नेयोग्य अध्ययन आदि कर्मोंसे निकालने योग्य है ॥ ११ ॥ वेद स्मृति सदाचार  
कहिये शिष्टोंका आचार और अपने आत्माका प्रिय कहिये अपना जिसमें  
सन्तोष होय यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥ धर्मज्ञानासमानानां  
प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥ श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ  
स्मृतौ ॥ उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥ १४ ॥

टीका—अर्थ और कामके पानेकी इच्छा रहित मनुष्योंको यह धर्मका उपदे-  
श है और जो धर्मको जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति सबसे अधिक प्रमाण  
है और जहाँ कहीं श्रुति और स्मृतिके अर्थमें विरोध पड़े वहाँ स्मृतिका अर्थ  
नहीं आदर करनेयोग्य है ॥ १३ ॥ जहाँ फिर श्रुतियोंहीमें परस्पर विरुद्ध अर्थ  
का प्रतिपादन है वहाँ मनुने दोनोहि धर्म कहे हैं जिससे मनु आदिकोंसे पहले पं-  
डितोंने दोनो धर्म समीचीन कहे हैं इसी भाँति स्मृतियोंके भी विरोधमें विकल्प  
जानना चाहिये ॥ १४ ॥

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥ सर्वथा वर्तते यज्ञ इती-  
यं वेदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो  
विधिः ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

टीका—इसमें दृष्टान्त कहते हैं ॥ सूर्य नक्षत्र वर्जित कालको समयाध्युषित  
कहते हैं और उदयसे पहले अरुणकी किरणयुक्त थोड़ी जिसमें तार हैं ऐसे का-  
लको अनुदित कहते हैं तो आपसमें कालका विरोध पड़नेपरभी विकल्पसे आग्नि

होत्रका होम होता है ॥ १५ ॥ मर्माभिनसे लेकर श्मशानांत कहिये अंत्येष्टिपर्यंत जिस द्विजातिकी विधि वैदिक मंत्रोंसे कही है उसका इस मानवशास्त्रके पढ़ने में अधिकार है और किसीका नहीं है ॥ १६ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्यो देवर्षिर्दन्तरम् ॥ तं देवर्षिर्निमित्तं देशं ब्रह्मावर्त्तं  
प्रचक्षते ॥ १७ ॥ तस्मिन्देशे य आचारः परंपर्यक्रमागतः ॥ वर्णा  
नां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥

टीका—धर्मका स्वरूप प्रमाण और परिभाषाको कहिकै अब धर्मकरनेके यो  
ग्य देशको कहते हैं ॥ सरस्वती और दृषद्वती नाम देवर्षियोंके बीचके प्रदेश-  
का जो देश है उस देवताओंके बनाये हुए देशको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं ॥ १७ ॥ बहुधा  
शिष्टोंके उत्पन्न होनेसे उस देशमें ब्राह्मणसे लेकर कर्णसंकरोंतक परंपराके क्रम  
से चला आया हुआ आचार है वह सदाचार कहा जाता है ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ॥ एषं ब्रह्मर्षिदेशो वै  
ब्रह्मावर्त्तादिनन्तरः ॥ १९ ॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः  
॥ स्वस्वं चरित्रं शिक्षेन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥

टीका—कुरुक्षेत्र और मत्स्य आदिदेश और पांचाल कहिये कान्यकुब्जदेश  
और शूरसेन-कहिये मथुराके देश ये ब्रह्मर्षिदेश ब्रह्मावर्त्तसे कुछ न्यून हैं ॥ १९ ॥  
इन कुरुक्षेत्र आदि देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे- पृथिवीमें सब मनुष्योंने अप-  
ने २ चरित्र कहिये आचार सीखे ॥ २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥ प्रत्यगेवं प्रयागाच्च मं  
ध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥ आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पं  
श्चिमात् ॥ तयोरेवानन्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

टीका—उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें स्थित हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतोंका  
मध्य और विनशनाम सरस्वती नदीके गुप्त होनेका स्थान है उससे जो पूर्व और  
प्रयागसे जो पश्चिम है उस देशका नाम मध्यदेश है ॥ २१ ॥ पूर्वको समुद्रसे और  
पश्चिमके समुद्रसे उन्हीं दोनो अर्थात् हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतोंके बीचके भू-  
मिभागको पंडित आर्यावर्त्त कहते हैं इससे समुद्रके मध्यके द्वीपआर्यावर्त्तमें नहीं है  
यह निश्चय हुआ ॥ २२ ॥

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥ स ज्ञेयो यज्ञियो दे-  
शो म्लेच्छदेशस्त्वंतः परः ॥ २३ ॥ एतान्द्विजातयो देशान्संश्रये

रन्प्रयत्नतः ॥ शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निर्वसेदृत्तिकर्शितः ॥ २४ ॥

टीका—जहाँ कुण्णसार कहिये करसायल हरिण स्वभावसे वसताहै वह देश यज्ञके योग्य जानना चाहिये इससे अन्यम्लेच्छ देश अर्थात् यज्ञके योग्यनहींहै ॥ २३ ॥ और देशोंमें उत्पन्नभी ब्राह्मण यज्ञ के अर्थ बडे उपायसे इन देशोंमें आके रहे और जीविकासे दुःखी शूद्र चाहै जिस देशमें जाके रहे ॥ २४ ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ॥ संभवंश्चास्य सर्वस्य  
वर्णधर्मास्त्रिवो धन्ता ॥ २५ ॥ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्वि  
जन्मनाम् ॥ कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहं च ॥ २६ ॥

टीका—यह धर्म जाननेका कारण मैने तुमसे संक्षेप्ते कहा अब इस सबजगतकी उत्पत्ति और वर्ण आश्रम आदिकोंके धर्म सुनो ॥ २५ ॥ वैदिक कहिये वेदमे कहे हुए मंत्रयोग आदि शुभकर्मोंकरिके द्विजोंका गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पापके क्षयकारणहै प्रेत्यकहिये परलोकमें यज्ञादि फलोंके संबंधसे और इह कहिये इस लोकमेंभी वेदाध्ययन आदिमें अधिकारसे ॥ २६ ॥

गार्भहोमैर्जातकर्मचौलमौज्जीनिबन्धनैः ॥ वैजिकं गार्भिकंचेनौ  
द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥ स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैश्च विद्येनेज्यया  
सुतैः ॥ महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥

टीका—गार्भकहिये जे गर्भकी शुद्धिके लिये किये जाते है और होम जात-कर्म चूडाकरण यज्ञोपवीत इन कर्मोंकरिके वैजिक कहिये प्रतिषिद्धमैथुनके सं-कल्प आदिसे पिताके वीर्यके दोषसे जो पाप होता है ओ गार्भिक कहिये जो अशुचिमाताके गर्भमें बसनेसे उत्पन्न हुआ ये सब पाप दूरि होजातेहैं ॥ २७ ॥ स्वाध्याय कहिये वेदके पढ़नेसे और व्रत कहिये मधुमांस वर्जन आदि नियमोंसे और होम कहिये सावित्रचरुके होम आदिसे अथवा सायंकाल और प्रातःकाल-के होमसे और त्रैविधिनाम व्रतकरिके और इज्या कहिये ब्रह्मचर्यकी अवस्थामें देवऋषि पितृतर्पण रूप और सुत कहिये गृहस्थकी अवस्थामें पुत्रका उत्पन्न करना और महायज्ञ कहिये पांच ब्रह्मयज्ञआदि और यज्ञ कहिये ज्योतिष्टोम आदि इन सर्वोंकरिके ब्राह्मीय कहिये ब्रह्मकी प्राप्तियोग्य शरीर कियाजाताहै ॥ २८ ॥

प्राङ्गाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ॥ मन्त्रवत्प्राशनं चास्य  
हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २९ ॥ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽ  
स्यकारयेत् ॥ पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥

टीका—नाभिवर्द्धन जो नाल कटनहै तिससे पहले पुरुषका जातकर्म किया जाताहै तब तो इसका स्वगृहमें कहे हुये मन्त्रोंसेसुवर्ण मधु औ धीका प्राशन कहिये चटाना होताहै ॥ २९ ॥ जन्मसे दशमें अथवा बारहें दिन इस बालक का नाम करण करावै अर्थात् नाम धरावै “अथवा आशौचे तु व्यतिक्रांते नाम-कर्म विधीयते” अर्थात् आशौच जो सूतक है तिसके निकलजानेपर नामकर्म किया जाताहै इस श्रवकके धचनसे दशमदिनके निकल जाने परग्यारहें दिन करना चाहिये उस दिनभी न कियाजाय तौ ज्योतिषसे निश्चय हुए अच्छे मुहूर्त्तमें वा गुणवान् नक्षत्रमें करनाचाहिये ॥ ३० ॥

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्यै बलान्वितम् ॥ वैश्यस्य धनसं-  
युक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥ शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो  
रक्षासमन्वितम् ॥ वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंके नाम मंगल बल धन निंदा वाचक अर्थात् शुभ बल व सुदिन आदि करने चाहिये ॥ ३१ ॥ अब उपपदके नियमके लिये कहते हैं इनके नाम कर्मसे शर्म रक्षा पुष्टि प्रैष्यवाचक करने चाहिये अर्थात् शर्म वर्म गुप्त दास आदिकरने चाहिये जैसे शुभशर्मा दलवर्मा वसुमति दीनदास यह ईश्वर यमस्मृति और विष्णुपुराणभी हैं परतु ग्रंथ बढ़नेके भयसे नहीं लिखे हैं ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां मुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ॥ मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमा-  
शीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥ चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रम-  
णं गृहात् ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वैष्टं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥

टीका—मुखसे बोलने योग्य जिसका अर्थ कूर न होय अर्थ प्रकट होय मनोहर होय मंगल वाची होय नामके अंतका स्वर दीर्घ होय कल्याणके कहनेवाले शब्द करिके युक्त होयपेसा स्त्रियोंका नाम रखना चाहिये जैसे यशोदा देवी यह ॥ ३३ ॥ बालकको चौथे महीनेमें सूर्यके दर्शनकेलिये जन्मके अर्थात् सूतिका को जन्मके घरसे निकालना चाहिये और छठे महीनेमें अन्न प्राशन करना चाहिये अथवा जैसी जैसी जिसके कुलकी रीति होवै सो करनी चाहिये इससे पहिले कहा हुवा चौथे महीनेमें निकालने आदिका नियम न रहा ॥ ३४ ॥

चूडाकर्षं द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ॥ प्रथमेऽब्दे तृतीये वा  
कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ ३५ ॥ गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपना-

यनम् ॥ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भान्तुद्वादशे विंशः ॥ ३६ ॥

टीका—सब द्विजातियोंका चूड़ा कर्म कहिये मुंडन धर्मके लिये पहले वर्षमें अथवा तीसरे वर्षमें वेदकी आज्ञासे करना चाहिये अथवा कुलधर्मके अनुसार करै ॥ ३५ ॥ गर्भसे आठमें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना चाहिये और गर्भ से ग्यारहवर्ष क्षत्रियका और गर्भसे बारह वर्ष वैश्यका करना चाहिये ॥ ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥ राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्य  
स्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥ आ षोडशाद्राह्मणस्य सावित्री नातिर्व  
र्तते ॥ आद्वाविंशत्क्षत्रवन्धोरौ चतुर्विंशतोर्विशः ॥ ३८ ॥

टीका—वेदके पढ़ने और अर्थज्ञान आदिसे बढे हुए तेजको ब्रह्मवर्चस कह-  
ते है उसके चाहनेवाले ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे पाँचमे वर्षमें करना चाहि-  
ये और बलके चाहनेवाले क्षत्रियका छठेमें और बहुत खेति आदिकीचेष्टा चाह-  
नेवाले वैश्यका आठमें वर्षमें करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सोलह वर्षके पीछे ब्राह्मणो  
को और बाईससे क्षत्रियको और चौबीससे उपरांत वैश्यको सावित्रीका उप-  
देश नहीं होसकता अर्थात् तीनो वर्णोंको कमसे कम सोलह बाईस चौबीस वर्ष  
सावित्रीके उपदेशकी परम अवाधि है ॥ ३८ ॥

अत ऊर्ध्व त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिता व्रा  
त्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥ नैतै रपूतौर्विधिर्वदार्पण्यपि हि  
कैर्हिचित् ॥ ब्राह्मण्योन्यांश्च सर्वन्धात्राचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

टीका—अत ऊर्ध्व इसके उपरांत यथाकाल कहिये सोलह अदिवर्षोंमें नहीं सं-  
स्कार किये गये तीनो सावित्रीपतित कहिये उपनयन हीन और शिष्टों कीर  
निंदित ब्रात्य संज्ञक होते हैं अर्थात् उनका ब्रात्य नाम होता है ॥ ३९ ॥ विधिपूर्व  
क प्रत्यश्चित न करनेवाले इन अपवित्र ब्राह्मणोंसे आपत्कालमेभी अध्यापन कन्या-  
दान आदि संबंधोंको ब्राह्मण नकरे ॥ ४० ॥

कर्णरैरववास्तानि चर्मणि ब्रह्मचारिणः ॥ वसीस्त्रानुपूर्वेण शा  
णक्षौमादिकानि च ॥ ४१ ॥ मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्यो विप्र  
स्य मेखला ॥ क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शण्तीन्तवी ॥ ४२ ॥

टीका—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यब्रह्मचारी क्रमसे कृष्णमृगरुमृम और वस्त  
जो छागहैं तिनके चर्मोंको ऊपरके बस्त्रोंको धारण करै और सन अलसी औ-

र इनके नीचेके वस्त्रोंको धारण करें॥४१॥ मुँजकी बराबरकी तीनलरोंसे बनीहुई चिकनी ब्राह्मणकी मेखला करनी चाहिये और क्षत्रियको मूर्वा नाम रुखडीकी धनुष की प्रत्यंचाके समान और वैश्यकी सनके सूतकी मेखला करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥ त्रिवृता ग्रन्थिनै  
केन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥ कौर्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्यो  
ध्ववृतं त्रिवृतं ॥ शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥

टीका—मुँज न मिलै तौ तीनो वर्णोंकी मेखला क्रमसे कुश अश्मांत बल्वज इनतीनि प्रकारके तृणोंसे मेखला बनानी चाहिये वह मेखला तीनलरोंकी होय और एक तीनि अथवा पांच गाठोंकरकै युक्त होय यहाँ वा शब्दके कहनेसे गाठोंका ब्राह्मणादिकोंके साथ क्रमसे संबंध नहीं है किंतु कुलोंके आचारके अनुसार है॥४१॥ प्रकार विशेषसे बने जिसकी यज्ञोपवीत संज्ञा कहेंगे वही जिसका धर्म है ऐसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासके सूतका होता है और क्षत्रियका सनके सूतका और वैश्यका मेढेके रोमों से बना हुआ होता है उसके बनानेका प्रकार यह है कि दक्षिणावर्त्त तिगुना करै फिर तिगुना करै इस प्रकार नवतारोंका होता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ॥ पैल्वौदुम्बरौ वैश्यो  
दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः  
प्रमाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥ ४६ ॥

टीका—ब्राह्मण बैल और पलाशके क्षत्रिय वट और खैरके और वैश्य पीलू तथा गूलरके दंडोंके धर्मसे योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणका दंड केशतक और क्षत्रियका मस्तकतक तथा वैश्यका नासिका पर्यंत दंड बनाना चाहिये ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरवर्णाः सौम्यदर्शनाः ॥ अनुद्वेगकरा नृणां स  
त्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाप्य च भ्रा  
स्करम् ॥ प्रदक्षिणं परित्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ ४८ ॥

टीका—वे सब दंड सौधे और चिकने देखनेमें सुंदर अनुष्योंके मनको न बिगड़नेवाले छिलके समेत और आगमें न जले हों ऐसे होने चाहिये ॥ ४७ ॥ वांछित दंडको ग्रहण करि और सूर्यके सन्मुख स्थित हो अग्निकी प्रदक्षिणा करि विधिपूर्वक भिक्षा मागै ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वै



इयस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥ मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं  
निजाम् ॥ भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नान्वमानयेत् ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञोपवीत जिसका हो गया है ऐसा ब्राह्मण भवति भिक्षां देहि ऐसे पहले भवत् शब्दका उच्चारण करि भिक्षामांगै और क्षत्रियं भिक्षां भवति देहि ऐसे भवत् शब्द बीचमें कहै और वैश्य भिक्षां देहि भवति ऐसे भवत् शब्दको अंतमें कहिकै भिक्षा मांगै ॥ ४९ ॥ उपनयन कर्मकी अंगभूत भिक्षाको पहले मातासे बहि-  
नसे और माताकी निज बहिनि अर्थात् मौसिसे मांगै और जो इस ब्रह्मचारीको नाही करके अपमान न करै पहलीके न होनेमें औरोंसे मांगना चाहिये ॥ ५० ॥

समाहृत्य तु तद्भक्ष्यं यावदर्थममायया ॥ निवेद्य गुरुं वेऽश्रीयादार्चय्य  
प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ५१ ॥ आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ष्ये शस्यं दक्षिणामु-  
खः ॥ श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ष्ये तं भुङ्क्ष्ये दक्षिणामुखः ॥ ५२ ॥

टीका—तृप्तिको योग्य उस भिक्षाको बहूतोंसे लायकै गुरुको निवेदन करि कपट रहित हो पूर्वको मुख करि आचमन करिकै भोजन करै ॥ ५१ ॥ अब काम्य भोजन कहते है आयुष्यकी इच्छा होय तौ पूर्वको मुख करिकै भोजन करै यशकी इच्छा होय तौ दक्षिणको मुख करिकै भोजन करै लक्ष्मीकी इच्छा होय तौ पश्चिमको मुख करिकै और सत्यकी इच्छा होय तौ उत्तरको मुख करिकै भोजन करै ॥ ५२ ॥

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥ भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सं-  
म्यगं द्विः खानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥ पूजयेद्गुरुं न नित्यमद्या चैतद्-  
कुत्सयन् ॥ दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

टीका—नित्य कहिये ब्रह्मचर्यके पीछे भी ब्राह्मण आचमन करिकै सावधान चित्त हो भोजन करै फिर भोजन करिकै शास्त्रके अनुसार आचमन करै और जलसे इंद्रिय जे शिरमें स्थित छः छिद्र नाक नेत्र कान आदिका स्पर्श करै ॥ ५३ ॥ सदा अन्नका पूजन करै अर्थात् हमारे प्राणोंके रक्षक हौ ऐसे ध्यान करै और इस अन्नकी निंदा न करता हुआ भोजन करै और देखकर हर्ष करै और प्रसन्न होय और सब अन्नको हमको सदा यहा मिलै ऐसे कहिकै भक्तिसे स्तुति करता हुआ नमस्कार करै ॥ ५४ ॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जचर्यच्छति ॥ अपूजितं तु तद्भुक्तं मुभयं  
नार्शयेदिदम् ॥ ५५ ॥ नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥  
न चैवाध्यशनं कुप्योन्न चोच्छिष्टं कचिद्भजेत् ॥ ५६ ॥

टीका—कारण यह है कि पूजन किया हुआ अन्न बल तथा वीर्यको देता है और विना पूजन किये हुए खाया हुआ यह अन्न इन दोनोंका नाश करता है ॥ ५५ ॥ उच्छिष्ट जो जूठा है उसै किसीको न देवै और अंतरा कहिये दिन-और संध्याके भोजनके बीचमें न खाय और दो बारमेंभी बहुत भोजन न करै और उच्छिष्ट कहिये जूठाहोकर कही न जाय ॥ ५६ ॥

अनारोग्यमर्नायुष्यमस्वर्ग्यचार्तिभोजनम् ॥ अपुण्यलोकविद्विष्टं  
तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणविप्रस्तीर्णनित्यकालमु-  
पस्पृशेत् ॥ कायत्रैदशिकाभ्यार्वानपिप्येणकंदाचन ॥ ५८ ॥

टीका—अति भोजनमें दोष कहते हैं अतिभोजन आरोग्यता और आयुष्यकों नाश करनेवाला है और स्वर्गके कारणभूत यज्ञादिकोंका विरोधी होनेसे स्वर्गका भी नाश करनेवाला है अपवित्र है और लोकमें निन्दित है तिससे उस अतिभोजनका त्याग करै अर्थात् बहुत कभी न खाय ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण सदा ब्राह्मतीर्थसे आचमन करै अथवा क जो ब्रह्मा हैं तिनको काय और त्रिदश जे देवता है तिनके तीर्थको त्रैदशिक कहते हैं इन दोनोंसे आचमन करै और पितरोंका जो तीर्थ है उसको पित्र्य कहते हैं इस पित्र्य तीर्थसे कभी आचमन न करै ॥ ५८ ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मन्तीर्थाप्रचक्षते ॥ कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवपि-  
त्र्यं तयोरर्थः ॥ ५९ ॥ त्रिरात्रामेदपः पूर्वद्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥  
खानिचैव स्पृशेद्द्विरात्मानं शिरैव च ॥ ६० ॥

टीका—अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मन्तीर्थ और कनिष्ठाअंगुलीके मूलमें काय तीर्थ और अंगुलियोंके अग्रमें दैवतीर्थ और अंगुष्ठप्रदेशिनीके मध्यमें पित्र्य तीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥ सामान्यतासे कहे हुए आचमनके करनेका क्रम कहते हैं पहले ब्रह्मादि तीर्थोंसे जलके तीन-कुछे पीवै तिसे पीछे ओठोंको बंद करके दाहिनी अंगूठेके मूलसे दोवार मुखको धोवै और जलसे नाक कान आदि इंद्रियोंको छुवै फिरी आपने हृदय और शिरको जलसे छुवै ॥ ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्विस्तीर्थेन धर्मवित् ॥ शौचेऽप्युःसर्वदा चामै-  
देकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥ हृद्भाभिः पूर्यते विप्रः कण्ठगाभिस्तु  
भूमिपः ॥ वैश्योऽद्विः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ ६२ ॥

टीका—धर्मज्ञपुरुष गरम न किये गये और फेन रहित जलसे ब्राह्मणादि तीर्थों करिके शौचकी इच्छासे शुद्ध देशमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो सदा आचमनकरै ॥ ६१ ॥ आचमनका प्रमाण कहते हैं ब्राह्मण हृदयमें गये हुए और क्षत्रिय कंठमें गये हुये और वैश्य मुखमें गये हुए और शूद्र जीभ तथा ओठोंके किनारोंसे छुए हुए जलसे पवित्र होता है ॥ ६२ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणांबुपवीत्युच्यते द्विजैः ॥ सव्ये प्राचीनं आवीती निवीती कण्ठसंज्ञने ॥ ६३ ॥ मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कर्मण्डलम् ॥ अंशु प्रांस्य विनष्टानि गल्लीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ ६४ ॥

टीका—उपवीतकी आचमनकी अंगता दिखानेको उपवीतही है लक्षण जिसका ऐसे प्राचीनावीती इत्यादि लक्षणोंको कहते हैं दाहिने हातको निकाल बाएं कंधेपर रखे हुए और दाहिनी कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत अथवा वस्त्रसे द्विज उपवीती कहा जाता है और बाए कंधोको निकाल दाहिने कंधेपर स्थित और बाई कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे प्राचीनावीती कहाता है और दोनो भुजाओंमें से एककोभी न निकाल गलेमें पहिरेहुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे निवीती कहा जाता है ॥ ६३ ॥ दूटे फूटे हुए मेखला मृगचर्म दंड और कर्मण्डलके जलमें डालकर अपने गृहमें कहे हुए मंत्रोंसे और नवीन धारण करै ॥ ६४ ॥

केशान्तश्चोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ राजन्यवन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके तर्तः ॥ ६५ ॥ अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृद्धे शेषतः ॥ संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥

टीका—गृहमें कहाहुआ केशांत कर्म ब्राह्मणका गर्भसे सोलहें वर्ष और क्षत्रियका गर्भसे बाईसमें वर्ष और वैश्यका गर्भसे चोवीसमें वर्ष करना चाहिये ॥ ६५ ॥ यह सब स्त्रियोंका जातकर्मादि किर्बी कलाप कहे हुए कालके क्रमसे शरीर संस्कारके लिये बिना मंत्रोंके करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥ मतिसेवां गुरौ वांसो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥ एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः ॥ उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥ ६८ ॥

टीका—इससे स्त्रियोंका भी उपनयन प्राप्त होने पर विशेष कहते हैं विवाहकी विधि ही मनुआदिने स्त्रियोंका वैदिक संस्कार अर्थात् उपनयन कहा है और पतिकी सेवा

ही गुरुकुलमें वास और वेदका पठना कहा है और घरका कामही संध्यासवेरे समियोंका होम लेप अश्विकी सेवा कही है तिससे विवाह आदिकोंकोही यज्ञोपवीत आदिके स्थानमें जानना चाहिये ॥६७॥ द्विजातियोंकी दूसरे जन्मका सूचक और पवित्र यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीतकी विधि आदिका क्रिया कलाप कहा ॥६८॥

उपनीयं गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥ आचारमग्निकार्यं च  
संध्योपासनमेव च ॥६९॥ अध्येष्यमाणस्त्वाचारान्तो यथाशास्त्रमु  
दईमुखः ॥ ब्रह्माञ्जलिं कृतोऽध्याप्यो लघुवांसा जितेन्द्रियः ॥७०॥

टीका—अब यज्ञोपवीत किये हुए को जो कर्म करने चाहिये सो कहते हैं गुरु शिष्यका यज्ञोपवीत करिकै उसको पहले एका लिङ्गे गुदे पंच इत्यादि अंगे कहा शौच और स्नान आचमन आदि आचार और अग्निमें संध्या सवेरे होम करना और मंत्रों समेत संध्योपासन आदिविधिको सिखावै ॥६९॥ वेद पढ़नेकी इच्छावाला शिष्य शास्त्रके अनुसार आचमन करि उत्तराभिमुख हो हाथोंको जोरि पवित्र वस्त्रों को धारण करि जितेंद्रिय हो गुरु करि पढ़ाने योग्य है ॥७०॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥ संहृत्य हस्तावधेयं  
सं हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥७१॥ व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रह  
णं गुरोः ॥ सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥७२॥

टीका—वेदाध्ययनके आरंभमें और अंतमें सदा गुरुके चरण ग्रहण करने योग्य है और हाथोंको जोरि कै पढ़ना चाहिये उसको ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ॥७१॥ फेरहुएचित्त हाथोंसे गुरुके चरणोंका ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दाहिनेसे दाहिना और बाएसे बाएको ग्रहण करै ॥७२॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यं कालमर्तुन्द्रितः ॥ अधीर्ष्व भो ईति ब्रूया  
द्विरामोऽस्तिर्विति चारमेतत् ॥७३॥ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते  
च सर्वदा ॥ स्रवत्यंऽनोकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥७४॥

टीका—गुरु आलस्य रहित हो पढ़नेके लिये उपस्थित शिष्यसे भी अधीर्ष्व अर्थात् पढ़ी ऐसे पहले कहै और विराम हो ऐसे कहिकै पढ़ानेसे बंद होया ॥७३॥ ब्राह्मण वेदपाठके आरंभमें और अंतमें ओंकारका उच्चारण करै क्योंकि जिसमें पहले ओंकारका उच्चारण न हुआ वह हौले २ नष्ट हो जाता है और जिसमें पीछे ओंकारका उच्चारण न हुआ वह बिसर जाता है ठरता नहीं ॥७४॥

प्राङ्मूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवं पावितः॥ प्राणायामैस्त्रिभिः पूतं  
स्तत ओंकारमर्हति॥७५॥ अंकारं चोप्युक्तारं च मकारं च प्रजा  
पतिः ॥ वेदत्रयाग्निरदुहंभुवःस्वरितीति॥ च॥ ७६ ॥

टीका—पूर्वको हैं अंग्र-जिनके ऐसे कुशोपर बैठा हुआ और हाथोंमें स्थितपावित्र  
कुशोसे पवित्र किया हुआ और पंद्रह मात्रारूप तीनों प्राणायामोंकरिके पवित्र  
किया हुआ द्विज ओंकारके उच्चारण योग्य होता है ॥ ७५ ॥ ब्रह्माने अकार  
उकार और मकारको ऋक् यजु साम इनी वेदोसे तथा भूः भुवः स्वः इने व्या-  
हृतियों क्रमसे निकाला ॥ ७६ ॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादपादमदुहत्तदित्युचोऽस्याः सावि  
त्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥७७॥ एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहतिपू  
र्विकाम् । संध्यायोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥

टीका—तैसेही परम उत्कृष्ट स्थानमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने ऋक् यजु साम  
इन तीनवेदोंहीसे तद्वच इस प्रतीकसे कहे हुए सावित्रीके चौथाई २ तीनी पाद नि-  
काले ॥ ७७ ॥ इस ओंकाररूप अक्षरको और भूभुवस्स्व इन व्याहृतियों समे-  
त त्रिपदा सावित्रीको संध्याकालमें जपता हुआ वेदका जानने वाला ब्राह्मण  
आदि तीनो वेदोंके पठनेके फलको प्राप्त होता है इसीसे संध्याके कालमें प्रणव  
और तीनो व्याहृतियों समेत सावित्रीका जप करै यह विधि है ॥ ७८ ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मांसा  
त्वेचे वाहिर्विसुच्यते॥७९॥ एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रिय  
यास्वैया । ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ ८० ॥

टीका—संध्यामें अथवा और कालमें प्रणव तीनो व्याहृती और सावित्री  
रूप तिगुडेको ग्रामसे बाहर नदीके तीर वन आदिमें हजारवार जपिके बडेभी  
पापसे ऐसे छूटि जाता है जैसे काँचलीसे साँप तिसरे पाप दूर होनेके लिये इस  
का जप अवश्य करना चाहिये ॥ ७९॥ संध्याके समय अथवा और कालमें इस  
सावित्री ऋचा करिके विसंयुक्त कहिये त्याग किया हुआ और सावित्री जप-  
की निजक्रियाकहिके सायंकाल प्रातःकाल होम आदिरूपक्रिया करि अपनेका-  
लमें त्यागकिया हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सज्जनोंमें निंदाको प्राप्त होता है  
तिसरे अपने कालमें सावित्रीके जपको और अपनी क्रियाको न छोडै ॥ ८० ॥

ओंकारपूर्विकास्तिष्ठो महाव्याहृतयोऽव्ययः। त्रिपदा चैव सावित्री  
 त्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ ८१ ॥ योऽधी तेऽहन्यहन्येतां स्त्रीणि व  
 र्णाण्यतन्द्रितः । स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ ८२ ॥

टीका—ओंकार जिनके पहले है ऐसी भूर्भुवस्स्वः ये तीन व्याहृती और अक्षर ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अव्यय कहिये अविनाशिनी त्रिपदा सावित्री ब्रह्म जो वेद है तिसका मुख कहिये आदि जानना चाहिये क्योंकि इनको पहले पढ़कर वेदाध्ययनका आरंभ होता है ॥ ८१ ॥ स्त्री प्रतिदिन आलस्यरहित हो प्रणव व्याहृतियुक्त सावित्रीको तीनवर्षपर्यंत पढ़ता है वह वायुभूत अर्थात् वायुके समान कामचारी और ख जो ब्रह्म है सोई मूर्ति जिसकी ऐसा होजाता है शरीरके नाश होनेपर ब्रह्महीमें मिलजाता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति  
 मौनसत्यं विशिष्यते ॥ ८३ ॥ क्षरति सर्वा वैदिक्यो जुहोति य  
 जतिक्रियाः । अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

टीका—ओं यह एक अक्षर परब्रह्मकी प्राप्ति कारण होनेसे अक्षय ब्रह्म है और प्राणायाम परम तप है और सावित्रीसे अधिक और भ्रम नहीं है और मौनसेभी सत्य अधिक है ॥ ८३ ॥ वेदमें कहीहुई सब होमयज्ञ आदि क्रिया स्वरूपसे और फलसे नष्ट हो जाती हैं और प्रणवरूप अक्षर तो अक्षय जानना चाहिये जिसे प्रजाओंका अधिपति जो ब्रह्म है सोई यह ओंकार है ॥ ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ॥ उपांशु स्याच्छतगुणः  
 साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ८५ ॥ ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसं  
 मन्विताः ॥ सर्वे ते जपयज्ञस्य कृत्वा नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८६ ॥

टीका—विधियज्ञ जे दर्श पौर्णमास आदि है तिनसे प्रणव आदिकोंका जो जपयज्ञ है सो दशगुणा अधिकहै वहभी जो उपांशु होय अर्थात् जिसको समीपकाभी मनुष्यन सुतसकै उससे सौगुणा अधिक है और जो मात्रस है अर्थात् जिसमें जीभ और ओठ कुछभी नचलै वह उससे भी हजार गुणा अधिक है ॥ ८५ ॥ ब्रह्मयज्ञसे अन्य जे पांच महायज्ञोंके अंतर्गत होम बलिर्कर्म नित्यश्राद्ध अतिथि भोजन ये चारि पाकयज्ञ और दर्शपौर्णमास आदि विधियज्ञ ये सब जपयज्ञकी सोलहों कलाको भी नहीं प्राप्त होतेहैं अर्थात् ये सब जपयज्ञके सोलहें हिस्सेकी भी बराबर नहीं हैं ॥ ८६ ॥

जप्येनैव तु संसिद्ध्ये ब्राह्मणो नात्र संशयः॥ कुर्यादन्यत्र वा कुर्यात्  
नैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ ८७ ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वप  
हारिषु ॥ संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

टीका— ब्राह्मण जपसेही निस्संदेह सिद्धिको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के योग्य होता है और जो वैदिक यागादिक हैं तिनको कुरै अथवा न कुरै क्यों कि ब्राह्मण भैत्र कहा जाता है ॥ ८७ ॥ अब सब वर्णों के करने योग्य और सब पुरुषार्थों का उपश्रोगी ऐसे इंद्रियों के संयमको कहते हैं चित्त के हरणेवाले विषयों में वर्तमान इंद्रियों के रोकने में ऐसे यत्न करै जैसे सारथी घोड़ों के रोकने में करता है ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्यर्थाहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ॥ तानि सम्यक्प्रवक्ष्या  
मि यथावदनुपूर्वशः॥ ८९ ॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चै  
व पञ्चमी ॥ पार्श्वपस्थं हस्तपादं वाक्चै व दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

टीका— पहले पंडित जिन ग्यारह इंद्रियों को कहते हैं उन सबों को अब के लोगो की शिक्षा के लिये कर्म से और नाम से क्रम से कहोंगा ॥ ८९ ॥ उन ग्यारहों में कान त्वचा आँखें जीभ और पाचमी नाक गुदा लिंग हाथ पैर और दशमी वाक् ये दशो इंद्रियां हैं ॥ ९० ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां  
पायादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥ एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्म  
कम्यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

टीका— इनमें क्रम से पाँच श्रोत्र आदि बुद्धि इंद्रिय हैं और पायु कहिये गुदा आदि पाँच इंद्रियों को कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ ९१ ॥ ग्यारहों में भीतर की इंद्रिय मन जानिये जो संकल्प रूप दोनों इंद्रियों के गण का प्रवर्तक रूप है इसी से जिस मन के जीतने पर दोनों पंचक अर्थात् बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के गण जीते जाते हैं ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥ संनियम्य तु तान्येव त  
तः सिद्धिं नियच्छति ॥ ९३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन  
शम्यति ॥ हविषां कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिर्वर्द्धते ॥ ९४ ॥

टीका— इंद्रियों के विषयों में लगने से निस्संदेह दृष्ट अदृष्ट दोष को प्राप्त होता है फिरि उन्हीं इंद्रियों को भली भाँति रोकके सिद्धि जो मोक्ष आदि पुरुषार्थ की योग्यता—

को प्राप्त होता है तिससे इन्द्रियोंको रोकै ॥ ९३ ॥ काम जो अभिलाष है सो काम जे विषयहैं तिनके भोगनेसे कभी नहीं शान्त होता है धीके डालनेसे अग्नि-  
के समान पुनः अधिक बढ़ता है ॥ ९४ ॥

यश्चेत्तान्प्राप्नुयात्सर्वानर्थैश्चेत्तान्केवलान्स्त्यजेत् ॥ प्रापणात्सर्वकामा-  
नां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥ न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तु  
मसेवया ॥ विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ९६ ॥

टीका—जो इन सब विषयोंको प्राप्त होय और जो इनकी उपेक्षा करै उन  
दोनोंमें विषयोकी उपेक्षा करनेवाला श्रेष्ठ है तिससे सब कामोंकी प्राप्तिसे उनकी  
उपेक्षा प्रशंसा योग्य है ॥ ९५ ॥ अब इन्द्रियोंके संयमका उपाय कहतेहैं । विष-  
योंमें लगीहुई इन्द्रिय उनविषयोंको छोड़नेसे रोकनेको नहीं समर्थ हैं जैसे सदा  
ज्ञानसे रुकि जाती हैं ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥ न विप्रदुष्टभावंस्य सि-  
द्धिं गच्छन्ति कश्चित् ॥ ९७ ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा  
च यो नरः ॥ न हृष्यति म्लायति वा स विज्ञेयः जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

टीका—वेद अथवा दान यज्ञ नियम और तप माला आदि विषयो कीं सेवा  
वाले पुरुषको कभी सिद्धिके लिये नहीं होते ॥ ९७ ॥ स्तुतिका वचन तथा निंदा-  
का वचन सुनिकै और छूनेमें सुख देनेवाले वस्त्र आदि तथा छूनेमें दुःख देनेवाले  
मेढोंके वालोंके कंबल आदिको छूकै और कुरूप स्वरूपको देखि और स्वाद  
युक्त तथा विना स्वादकी वस्तुको खायकै और सुगंधि तथा विना सुगंधकी वस्तु-  
को सुंघकै जिसको हर्षविषाद नहीं होता वह जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥ तेनास्य क्षरति प्रज्ञा-  
द्वैते पात्रादि बोधकम् ॥ ९९ ॥ वैशे कृत्वेन्द्रियग्रामे संयम्य च  
मनस्तथा ॥ सर्वान्संधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

टीका—सब इन्द्रियोंमेंसे जो एक इन्द्रिय विषयोमें लय होजाय तो विषयोंमें  
लगे हुये इस मनुष्यके दूसरी इन्द्रियोंसेभी तत्त्वज्ञान ऐसे जाता रहताहै जैसे  
चर्मके जलपात्रके जल ॥ ९९ ॥ बाहरके इन्द्रिय समूहको वशमें करिकै और  
मनको रोकिकै उपायोंसे अपनी देहको पीडा न देता हुआ सब पुरुषार्थोंका  
भली भाँति साधन करै ॥ १०० ॥



पूर्वा संध्यां जपस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कण्डेयनात् ॥ पश्चिमां तु समा-  
सीनः सम्यग्दृक्षुर्विभावनात् ॥ १०१ ॥ पूर्वा संध्यां जपस्तिष्ठेन्नैश्मेनो  
व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मूलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ १०२ ॥

टीका—प्रातःकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ सूर्यके उदयपर्यंत  
स्थित रहै और सायंकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ नक्षत्रोंके भली  
भांती लक्षित होनेतक स्थित रहै ॥ १०१ ॥ प्रातःकालकी संध्यामें स्थित जप क-  
स्ता हुआ रात्रिके पापको दूरि करता है और सायंकालकी संध्यामें स्थित जप  
करता हुआ दिनमें किये हुए पापको दूरि करता है ॥ १०२ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वा नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्रहिष्का-  
र्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ १०३ ॥ अपां समीपे निर्यतो नैत्यकं वि-  
धिमास्थितः ॥ सावित्रीमप्यधीतीति गत्वारण्यं समाहितः ॥ १०४ ॥

टीका—जो प्रातःकालकी संध्या नहीं करता और पिछिली अर्थात् सायंकालको  
संध्याकी उपासना नहीं करता अर्थात् उस कालमें कहे हुए जप आदि-  
को नहीं करता है वह शूद्रके समान सब ब्राह्मणके कर्म और अति सत्कारसे बा-  
हर करने योग्य है ॥ १०३ ॥ बहुत वेदके पढ़नेकी असमर्थतामें ब्रह्मयज्ञरूप यह सावि-  
त्रीमात्रके पढ़नेका विधान कहते हैं वने आदि अन्यदेशमें जाके नदीआदिके जल-  
के समीप इंद्रियोंको रोकके सावधान मन हो ब्रह्मयज्ञरूप नित्य विधिको किया चाह-  
ता पुरुष प्रणव तथा तीन व्याहृतियों करी युक्त सावित्रीकाभी जपकरै ॥ १०४ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥ नानुरोधोऽस्त्यनध्या-  
ये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १०५ ॥ नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मस-  
त्रं हि तत्स्मृतम् ॥ ब्रह्माहुतिहुत्रं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

टीका—वेदोपकरण कहिये वेदके अंगशिक्षा आदिमें और नित्य करनेयोग्य  
स्वाध्यायमें और ब्रह्मयज्ञरूप होमके मंत्रोंमें अनध्यायका आदर नहीं है ॥ १०५ ॥  
नित्य करनेयोग्य जपयज्ञमें अनध्याय नहीं है मनु आदिमें उसको ब्रह्मयज्ञ क-  
हा है ब्रह्माहुति जो हविहै उसका होम वह अनध्यायमें भी वषट्कार किया गया  
पुण्य कहिये पवित्रही है ॥ १०६ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽद्वंद्वं विधिना निर्यतः शुचिः ॥ तस्य नित्यं क्ष-  
रत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥ १०७ ॥ अग्नीन्धनं भैक्षत्रयामधः

श्रय्यां गुरीर्हितम् ॥ अंसमावर्तनात्कुंर्यात्कृतोपनयनो द्विजः १०८

टीका—जो जितेंद्विय शुद्धपुरुष एक वर्षतक विधिपूर्वक कहे हुए अंगो समेत स्वाध्याय कहिये जपयज्ञको करता है उसका यह जपयज्ञ क्षीर आदिकोंसे पितरोंको प्रसन्न करता है वे प्रसन्न हो जपयज्ञ करनेवालेको सब कामोंसे तृप्त करते हैं ॥ १०७ ॥ यज्ञोपवीत किया हुआ ब्रह्मचारी सायंकाल प्रातःकाल स्मिधोंका होम भिक्षासमूहका लाना खाटपर न सोना अर्थात् नीचे सोना और जलका लाना आदि गुरुका हित गृहस्थीमें जानेपर्यंत करै ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानंदो धार्मिकः शुचिः ॥ आर्तः शक्तोऽर्थदः

साधुः स्वोऽध्याप्या दक्ष धर्मतः ॥ ९ ॥ नापृष्टः कस्यचिद्भूया ब्रचा

न्यायेन पृच्छतः ॥ जानन्नपि हि मेधावी जडबल्लोके आचरेत् १०

टीका—कैसा शिष्य पढ़ाना चाहिये सो कहते हैं । आचार्यका पुत्र १ सेवाकरनेवाला २ दूसरेप्रकारके ज्ञान देनेवाला ३ धर्मका जाननेवाला ४ मृत्तिका तथा जल आदिसे शुद्ध ५ बांधव ६ लेने देनेमें समर्थ ७ धनदेनेवाला ८ द्रोह न करनेवाला ९ ज्ञातिका १० ये दशप्रकारके शिष्य पढ़ाने योग्य है ॥ १०९ ॥ जो किसीने थोड़े अक्षरोंमें अथवा विना स्वरके पढ़ा होय उसको अर्थविना पूछे उसके तत्त्व न प्रकाशित करै और शिष्यसे तौ विना पूछे भी कहै और भक्ति श्रद्धा आदि जे पूछनेके धर्म हैं तिनको छोड़कर पूछे ऐसेके पूछनेपर भी न कहै बुद्धिमान पुरुष जानता हुआ भी लोकमें गुंगेके समान रहै ॥ ११० ॥

अधर्मेण चै यः प्राह यश्चा धर्मेण पृच्छति ॥ तयोरन्यंतरः प्रैति

विद्वेषं वोऽधिगच्छति ॥ १११ ॥ धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा

वापि तद्विधा ॥ तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमि वोषरे ॥ ११२ ॥

टीका—अधर्मसे पूछा हुआ भी जो जिससे कहता है और जो जिससे अन्यायकरि पूछता है उनमेसे एक मरजाता है अथवा उसके साथ द्वेषी होजाता है ॥ १११ ॥ जिस शिष्यके पढ़ानेमें धर्म अर्थ न होय अथवा पढ़नेके अनुरूप सेवान होय वहाँ विद्या न देनी चाहिये वह देना ऐसे निष्फल है जैसे ऊपरमें बोया हुआ धान आदि बीज नहीं ऊगता ॥ ११२ ॥

विद्यैवैवै समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥ आपद्यपि हि चोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शर्वधिस्ते ३

स्मिं रक्षं मास् ॥ असूर्यकाय मां मादास्तथास्यौ वीर्यवर्तमां ११४

टीका—वेद पढ़ानेवालेको विद्याके साथही मरना अच्छा सब भ्रांति पढ़ानेके योग्य शिष्यके नहोनेरूप आपत्तिमेंभी इस विद्याको ऊसरमें न बोवै ॥ ११३ ॥ विद्याकी अधिष्ठाता देवता किसी अध्यापकके समीप आके ऐसे बोली कि मैं तुम्हारी निधि हौं मेरी रक्षा करौ और असूया आदिदोषवाले मनुष्यको मुझे मृत दे सब्यकी अधिकतासे मैं वीर्यवती होऊं ॥ ११४ ॥

यं मेवं तु शुचिं विद्यान्निश्चतर्ब्रह्मचारिणम् ॥ तस्मै मां ब्रूहि विप्राय  
निधिर्पायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥ ब्रह्म यस्त्वेननुज्ञातमधीयानाद  
वाभ्युयात् ॥ स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रातिपद्यते ॥ ११६ ॥

टीका—जिस शिष्यको शुद्ध जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी जानतेहो उस विद्यारूपी निधिके रक्षा करनेवाले प्रमाद रहितको मुझे दे ॥ ११५ ॥ जो अभ्यासके लिये पढ़ते हुए अथवा औरको पढ़ाते हुएसे उसकी आज्ञा बिना वेदको गृहण करता है तौ वेदका चोर वह मनुष्य नरकको जाताहै तिस्से ऐसा न करै ॥ ११६ ॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव च ॥ आददीत यतो  
ज्ञानं तं पूर्वमाभिवादयेत् ॥ ११७ ॥ सावित्रीमात्रं सारोऽपि वरं वि  
प्रैः सुयन्त्रितः ॥ नान्यन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वांशी सर्वविज्ञः ॥ ११८ ॥

टीका—लौकिक कहिये अर्थशास्त्र आदिका ज्ञान और वैदिक कहिये वेदके अर्थका ज्ञान तथा आध्यात्मिक कहिये ब्रह्मज्ञान इनको जिस्से ग्रहण करै बहुमान्योंके मध्यमें स्थित उसको पहले नमस्कार करै लौकिक आदि ज्ञान देनेवाले तीनोके समूहमें क्रमसे एकसे एक मान्यहै ॥ ११७ ॥ केवल सावित्रीहीका जाननेवाला जितेंद्रिय ब्राह्मण मान्य है और निषिद्ध भोजनआदिका करनेवाला और निषिद्ध वस्तुओंका वेचनेवाला तीनिवेदोंका ज्ञाताभी मानने योग्य नहींहै ॥ ११८ ॥

शय्यासनंऽध्याचरिते श्रेयसां न समाविशेत् ॥ शय्यासनस्थश्चैव न  
प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥ ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थ  
विरं आयति ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तां प्रतिपद्यते १२० ॥

टीका—विद्या आदि मे अधिक अथवा गुरुकरके मुख्यतासे अंगीकार कियी हुई शय्या अथवा आसनपर न बैठै और आप जो शय्यां अथवा आसनपर बैठा होय तौ गुरुके आनेपर उठिके नमस्कार करै ॥ ११९ ॥ अवस्था

और विद्या आदिसे वृद्धके आनेपर थोड़ी अवस्थावालेके प्राण उपरको चढते हैं अर्थात् देहसे बाहर निकलना चाहते हैं उन प्राणोंको वृद्धके अभ्युत्थान देने और नमस्कार करनेसे फिर स्वस्थ करता है तिससे बूढ़को उठिकर प्रणामकरना चाहिये ॥ १२० ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥ चत्वारि तस्य वर्धन्ते  
आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥ अभिवादात्परं विप्रो ज्योयांसम  
भिवादयन् ॥ असौ नामार्हमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् १२२

टीका—उठकर सदा वृद्धको नमस्कार करनेवाले और वृद्धकी सेवा करने-वाले मनुष्यकी आयु विद्या यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥ अब नमस्कारकी विधि कहते हैं वृद्धको नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण आदि नमस्कारके पीछे मैं नमस्कार करता हूँ यह कहनेके पीछे मेरा यह नाम है ऐसे अपने नामको कहें ॥ १२२ ॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ॥ तान्प्राज्ञोहं ऽमिति ब्रूया  
त्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥ १२३ ॥ भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नो  
ऽभिवादाने ॥ नाम्नां स्वरूपभावो हि भोर्भाव ऋषिभिः स्मृतः १२४ ॥

टीका—नमस्कार करनेके योग्य जो कोई पुरुष संस्कृतविद्या न जाननेके कारण नामधेयके उच्चारण पूर्वक नमस्कारको नहीं जानते है उनसे नमस्कार करनेवाला बुद्धिमानऐसे कहै कि मैं नमस्कार करता हूँ और सब स्त्रियोंसेभी ऐसे ही कहै ॥ १२३ ॥ नमस्कारमें कहे हुए अपने नामके पीछे नमस्कार करनेयोग्यके संबोधनके लिये भो शब्दका उच्चारण करै इसीसे ऋषियो नमस्कार करने योग्यके नामके स्वरूपकी सच्चा भो शब्दहीमें कही है जैसे अभिवादेय शुभशर्मा ऽह मस्मिभोः अर्थ यह है कि नमस्कारकरनेवाला मैं शुभशर्मा हूँ ॥ १२४ ॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादाने ॥ अकारश्चास्य  
नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः पुनः ॥ १२५ ॥

टीका—नमस्कार करनेपर बदलेका नमस्कार करनेवाला ब्राह्मण भो सौम्य आयुष्मान्भव ऐसा कहै और नमस्कार करनेवालेके नामके अंतके पहले अक्षरके पुन उच्चारण करै ॥ १२५ ॥

यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ॥ नाम्नाभिवाद्यः स विदुः  
वा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६ ॥ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रं

न्धुमनामयम् ॥ वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ १२७ ॥

टीका—जो ब्राह्मण किये हुए नमस्कारके योग्य बदलेका नमस्कार नहीं जानता है वह विद्वान् करिके नमस्कार करनेयोग्य नहीं है यह शूद्रके समान है ॥ २६ ॥ मिलनेपर छोटी अवस्थावाले अथवा बराबर अवस्थाके नमस्कार न करनेवाले भी ब्राह्मणसे कुशल पूछे और क्षत्रियसे अनामय तथा वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्य पूछे ॥ २७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ॥ भोभवत्पूर्वकं  
त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८ ॥ परपत्नी तु या स्त्रीस्यादसंब-  
न्धा च योनिर्ः ॥ तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनी ति च ॥ १२९ ॥

टीका—बदलेके नमस्कारके समय अथवा और समयमें दीक्षित अवस्थामें छोटा-  
भी हो तौभी धर्मज्ञपुरुष उसका नाम न उच्चारण करे किंतु भोदीक्षित ऐसे कहकै  
बोलै ॥ २८ ॥ जो पराई स्त्री होय और जिस्से कुछ योनिसंबध न होय अर्थात् बहिन  
आदि न होय उससे बोलनेके समय भवति, सुभगे, भगिनी.. ऐसे कहिकै बोलै ॥ २९ ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरुन् ॥ असावहमिति ब्रू-  
यात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥ मातृष्वसां मातुलानी श्वशू-  
रथ पितृष्वसा ॥ संपूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्या ॥ १३१ ॥

टीका—मामा चाचा ससुर ऋत्विज गुरु जो ये छोटेभी होयतौ इनके आ  
नेपर उठकै असौ अहं अर्थात् यह मैं ऐसा कहैं निजनाम प्रकट करै नमस्कार न  
करैं ॥ ३० ॥ मावसी, मामी, सास, बुआ ये सब गुरुकी स्त्रीके समान उत्थान अभि-  
वादन आसन देने आदिसे पूजनेयोग्य हैं क्योंकि वे गुरुभार्याके समान हैं ॥ ३१ ॥

भ्रातृभार्यापसंग्राह्या सर्वेर्णाहन्त्यहन्त्यपि ॥ विप्रोप्य तूपसंग्राह्या ज्ञा-  
तिसंबन्धियोषितः ॥ १३२ ॥ पितृभगिन्यां मातुश्च ज्यार्यस्यां च  
स्वसर्यपि ॥ मातृवदृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गुरुर्यसी ॥ १३३ ॥

टीका—जेठेभाईकी सजातीया स्त्रीके प्रतिदिन चरण छुवै और जातिकी  
अर्थात् पितृपक्षकी चाचा आदि और संबंधी मातापक्षके तथा ससुरआदि इ-  
नकी स्त्रियोंके परदेशसे आकै चरण छुवै प्रतिदिन नहीं ॥ ३२ ॥ पिताकी ब-  
हिन तथा माताकी और अपनी बड़ी बहिन इन सबका आदरभान माताके  
समानकरै परन्तु माता इन सबसे बहुतही अधिक है ॥ ३३ ॥

दशाब्दोऽख्यं पौरुषं पञ्चाब्दोऽख्यं कलाभूताम् ॥ त्र्यब्दपूर्वं श्रो-  
त्रियाणां स्वरूपेणापि स्वयोनिर्यु ॥ १३४ ॥ ब्राह्मणं दशवर्षं तु श-  
तवर्षं तु भूमिपम् ॥ पिता पुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ३५

टीका—आगे कहे हुए विद्यादि गुणहीन एक पुरवाग्रामके वसनेवालोंमें एक दशवर्ष बड़ा होय और एक उतनाही छोटा होय तौमी सख्य कहिये मित्रता होती है और गीत आदि कलाओंके जानने वालोंमें पांचवर्षकी ब-  
ड़ाई छुटाईमें मित्रता होती है और श्रोत्रियों तीनिवर्षकी छुटाई बड़ाईमें और सपिंडोंकी बहुतही थोड़े कालकीमें मित्रता होती है और सर्वत्र कहे हुए कालसे उपरांत ज्येष्ठका व्यवहार होता है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण दशवर्षका होय और क्षत्रिय सौ वर्षका तौ उन दोनोंको पितापुत्रके समान जानै उनमें ब्राह्मण पिता है ॥ ३५ ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ॥ एतानि मान्यस्थाना-  
नि गरीयो यद्युत्तरम् ॥ ३६ ॥ पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुण-  
वन्ति च ॥ यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दर्शनी गतः ॥ १३७ ॥

टीका—वित्तकहिये न्यायसे जोड़ा हुआ धन बंधु कहिये चाचा आदि तथा वय अधिक अवस्था कर्म श्रौत स्मार्त आदि विद्या वेदके अर्थका तत्व जान-  
ना ये पांच मान्यताके कारण है इनमें आगे आगे एकसे एक अधिक है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंमें पहलै कहे हुए पांच गुणोंमेंसे जिसमें जितने अधिक हैं वह उतनाही माननेयोग्य है और नव्वे वर्षसे अधिक अवस्थाको पैं-  
हुचा हुआ शूद्र द्विजोक्तोभी माननेयोग्य हैं सौवर्षके दशभाग करनेपर नव्वेसे ऊपर दशमी अवस्था होती है ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥ स्नातकस्य च  
रार्जश्च पन्था देवो वरस्य च ॥ ३८ ॥ तेषां तु समनेतानां मान्यो र्स्ना-  
तकपार्थिवौ ॥ राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥ ३९ ॥

टीका—चक्रयुक्त रथ आदि सवारीमें बैठे हुएको, और नव्वेसे अधिक अव-  
स्थावालेको, रोगीको, बोझवालेको, स्त्रीको, स्नातकको, राजाको वर जो विवाहको जाताहो उसको मार्ग देना चाहिये अर्थात् इनमेंसे कोई आगे आता होय तौ मार्गसे हटि जाय ॥ १३८ ॥ इकट्ठे हुए उन सबोंमें राजा और स्नातक मान्य हैं और राजा तथा स्नातकमें राजाकी अपेक्षा स्नातक मान्य है ॥ १३९ ॥

उपनीयं तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विज्ञः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तं-  
माचार्यं प्रचक्षते ॥१४०॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुं-  
नः ॥ योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

टीका—जो ब्राह्मण शिष्यका यज्ञोपवीत करके कल्प कहिये यज्ञविधि और रहस्य कहिये उपनिषद सहित सब वेदकी शाखाको पढ़ाताहै उसको आचार्य्य कहते हैं ॥ १४० ॥ वेदके एकदेश अर्थात् मंत्र वा ब्राह्मणको और वेदके अंग व्याकरण आदिकोंको जीविकाकेलिये जो पढ़ाताहै वह उपाध्याय कहा जाता है ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभविष्यति चात्रे-  
नं स विप्रो गुरुरुच्यते ॥४२॥ अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादि-  
कान्मखान् ॥ यः करोति वृत्तो यस्य संतर्स्यात्विमि होच्यते ॥४३॥

टीका—जो गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करता है और अन्नसे बढाता है वह ब्राह्मण गुरु कहा जाता है गर्भाधान करनेसे यहाँ पिताहीको गुरु कहा है ॥ ४२ ॥ वरण किया हुआ जो ब्राह्मण अग्न्याधेय कहिये आहवनीय आदि अग्नि योंके उत्पन्न करनेवाले कर्मको और पाकयज्ञ कहिये अष्टकादिकोंको और अग्निष्टोम आदियज्ञोंको जिसकी औरसे करताहै वह उसका ऋत्विक् कहाताहै ॥ ४३ ॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणाबुभौ ॥ स मातां स पिता ज्ञेय-  
स्तं न दुहोत्कदाचन ॥ ४४ ॥ उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां  
शतं पिता ॥ सहस्रं तु पितृन्मातां गौरवर्णातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

टीका—जो ब्राह्मण वर्ण और स्वरकी विगुणतासे रहित सत्यरूप वेदसे दोनों कानोंको भरताहै वह बड़े उपकार करनेवाले गुणके योगसे मातापिताके समान जानना चाहिये उससे कभी द्रोह न करे ॥ १४४ ॥ दशउपाध्यायोंकी अपेक्षा एक आचार्य्य और एकसौ आचार्य्योंकी अपेक्षा एक पिता और हजार पिताओंकी अपेक्षा एक माता गौरवमें अधिक होती है ॥ १४५ ॥

उत्पादकं ब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रे-  
त्य चेहं च शाश्वतम् ॥४६॥ कामान्माता पिता चैनं यदुत्पाद-  
यतो मिथः ॥ संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥ ४७ ॥

टीका—उत्पन्नकरनेवाला और वेद पढ़ानेवाला ये दोनों पितरहैं उनमें आचार्य्य पितरसे श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही इस लोक तथा परलो-

कमें शाश्वते कहिये सदा मोक्षरूप फलका देनेवाला है ॥ ४६ ॥ मातापिता जो कामके वशमें होके इस बालकको उत्पन्न करतेहैं जिस जिस योनीकी माताकी कोखमें उत्पन्न होताहै उसके वैसेही हाथ पैर होतेहैं ॥ ४७ ॥

आचार्यस्त्वस्य यो जातिं विधिर्वद्रेदपारंगः ॥ उत्पादयति सावि-  
त्र्यासां सत्या साऽजराऽमरा ॥ ४८ ॥ अल्पं वा बहु वा यस्य शु-  
तस्योपकर्णोति यः ॥ तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तथा ॥ ४९ ॥

टीका—वेदका जाननेवाला आचार्य जिस जाति कहिये जन्मको विधिपूर्वक गायत्रीके उपदेशसे करताहै वह जन्म सत्यहै और ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अजर अमर है ॥ ४८ ॥ जो उपाध्याय जिस शिष्यका थोडा वा बहुत वेदके पढानेसे उपकार करताहै उसको भी शास्त्रपाठनरूप उपकारसे इस शास्त्रसे गुरु जानै ४९ ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥ बालोऽपि विप्रो  
वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥ ५० ॥ अध्यापयामास पितृन् शि-  
शुराङ्गिरसः कविः ॥ पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ५१

टीका—वेद सुननेके लिये जन्मका देनेवाला अर्थात् मज्ञोपवीत करनेवाला और अपने धर्मका सिखानेवाला अर्थात् वेदके अर्थका व्याख्यान करनेवाला बालक वृद्ध कहिये जेठेका धर्मसे पिता होताहै अर्थात् पिताके समान मानने योग्य है ॥ ५० ॥ आंगिरस ऋषिका पुत्र विद्वान् बालक अधिक अवस्थानके पितृव्य कहिये चचा ताऊ और उनके पुत्रोंको पढाताथा उनको ज्ञानसे शिष्य जानि भोपुत्रकाः अर्थात् हे पुत्रो ऐसा बोले ॥ ५१ ॥

ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः ॥ देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्या-  
य्य वै शिशुरुक्तवान् ॥ ५२ ॥ अज्ञो भवति वै बालः पिता भव-  
ति मन्त्रदः ॥ अज्ञं हि बालमित्याहुः पि ते त्येवं तु मन्त्रदम् ५३

टीका—पिताकेतुल्य और पुत्रकाः ऐसे कहे गये वे क्रोधयुक्त हो पुत्रक श-  
ब्दका अर्थ देवतासे पूछते भये तब देवताओंने मिलकर इनसे कहा कि बालकने तुमको योग्य कहा ॥ ५२ ॥ जो कुछ नहीं जानताहै वही बालक होता है और मन्त्रका देनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला पिता होताहै इस कारण अज्ञ को बालक और मन्त्रदेनेवालेको पिता कहते हैं ॥ ५३ ॥

न हायनैनं पलितैनं विन्तेन न बन्धुभिः ॥ ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनू



चानः स नो महान् ॥ १५४ ॥ विप्रानां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां  
तु वीर्यतः ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १५५ ॥

टीका—न बहुत वर्षोंसे और न सपेद ढाढीमूछीसे न बहुत धनसे न चचाता-  
ऊ आदि बहुतसे भाइयोंसे अथवा इकट्ठे-हुएभी इन सबोंसे बड़ापन नहीं होता  
है किंतु ऋषियोंने यह धर्म कियाहै कि जो हम लोगोंमें अंगोंसमेत वेदका पढ-  
नेवालाहै वही बड़ाहै ॥ १५४ ॥ ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे ज्येष्ठता होतीहै और क्षत्रि-  
योंकी बलसे और वैश्योंकी धनधान्यसे और शूद्रोंकी जन्मसे श्रेष्ठता होतीहै १५५

न तेने वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥ यो वै युवाप्यधीर्यान  
स्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ १५६ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म  
मयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीर्यानस्यस्तं नाम विभ्रति ॥ १५७ ॥

टीका—शिरकेवाल सपेद होनेसे वृद्ध नहीं होताहै जो जवानभी पढा लिखा  
होय तौ उसको वृद्ध कहतेहैं ॥ १५६ ॥ जैसे काठका बना हुआ हाथी और जैसे  
चमड़ेका बना हुआ मृग और विना पढा हुआ ब्राह्मण ये तीनों केवल नामको  
धारण करते हैं शत्रुवध आदि हाथी आदिकोंके कामको नहीं करसकते हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ॥ यथा चाज्ञेऽफलं  
दानं तथा विप्रोऽनुचोऽफलः १५८ अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयो  
ऽनुशासनमेवाकं चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धैर्यमिच्छता ५९

टीका—जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें निष्फल होताहै और गौबोधे गौ और जैसे  
भूर्खमें दान निष्फल होताहै तैसे श्रौत स्मार्त्तकर्मोंमें अयोग्य होनेसे विना पढा  
ब्राह्मण निष्फल होताहै ॥ १५८ ॥ शिष्योंको अतिहिंसाके विनाही कल्याण  
देनेवाले अर्थकी शिक्षा करनी चाहिये और धर्म बुद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरु-  
षको मधुर कहिये प्रीति उत्पन्न करनेवाली वाणी मंदस्वरसे कहनी चाहिये ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुणे च सर्वदा ॥ स वै सर्वस्वाप्रोति वेदा  
न्तोपगतं फलम् ॥ १६० ॥ नारुतुदः स्यादात्तोऽपि न परद्रोहकं  
मधीः ॥ ययास्योद्विजते वाचा नालोक्या तांमुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

टीका—जिसके वाणी और मन दोनो शुद्ध होते हैं और वाणी मिथ्या आ-  
दिसे दूषित नहीं होती और मन रागद्वेष आदिसे दूषित नहीं होताहै अर्थात्

जिसके वाणी और मन निषिद्ध विषयोंसे भली भांति बचे रहतेहैं वह वेदांतके संपूर्ण मोक्षरूप यथार्थ फलको प्राप्त होताहै ॥ १६० ॥ पीडित होनेपरभी किसीसे मर्मको दुःख देनेवाले वचन न कहै और दूसरेको द्रोहकी बुद्धि न करै इसकी जिसवाणीसे दूसरेका मन दुःखी होय ऐसी अनालोक्या कहिये स्वर्गआदि लोकोंकी प्राप्तिसे विरुद्ध वाणीको न कहै ॥ ६१ ॥

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिर्व ॥ अमृतस्येव चाँकाई-  
क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ ६२ ॥ सुखं ह्यवपतः शेते सुखं च प्रीतिबु-  
ध्यते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ ६३ ॥

टीका—ब्राह्मण सन्मानसे सदा विषके समान ढरै और सदा अमृतके समान अपमानकी चाहना करै ॥ ६२ ॥ दूसरेको अपमान किया हुआ पुरुष सुखसे सोता-है और सुखसे जागताहै और सुखसे इस लोकमें विचरताहै और अपमान करनेवाला उस पापसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ॥ भुरौ वसन् संचिनुया-  
द्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ ६४ ॥ तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचो-  
दितैः ॥ वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ ६५ ॥

टीका—जातकर्मको आदिले यज्ञोपवीततक क्रमसे कहे हुए उपायसे संस्कार कियागया ब्राह्मण गुरुकुलमें वास करता हुआ हौले हौले वेदकी प्राप्ति-रूप तपको करै ॥ ६४ ॥ विधिकारिके बतलाये और अपने गृहमें कहे हुए वक्ष्य-माण नियमोंको करकै और गुरुकी सेवा आदि व्रतों करिकै उपनिषदों समेत मंत्र ब्राह्मणरूप संपूर्ण वेद ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य करि पढनेयोग्य हैं ॥ ६५ ॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तपस्यन्द्भिजोत्तमः ॥ वेदाभ्यासो हि विप्र-  
स्य तपः परमिहोच्यते ॥ ६६ ॥ औ हे वस मखाग्रेभ्यः परमं तप्यते  
तपः ॥ यः स्रग्व्यापि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥ ६७ ॥

टीका—तपको करता हुआ ब्राह्मण सदा वेदहीका अभ्यास करै क्योंकि वेदका पढनाही इस लोकमें ब्राह्मणका परम तप मुनीश्वरोंने कहाहै ॥ ६६ ॥ जो द्विज फूलोंकी मालाको धारण करकैभी अर्थात् ब्रह्मचारीके नियमोंको छोडकरभी प्रतिदिन शक्तिके अनुसार वेदको पढता है वह नखशिशुतक सर्व देहव्यापी बडेभारी तपको करता है ॥ ६७ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्रं कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव शूद्रं  
त्वमांशु गच्छति सान्वयः ॥ ६८ ॥ मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयमौ  
ञ्जिवन्धने ॥ तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ ६९ ॥

टीका—जो द्विज वेदको न पढ़कर अन्यत्र कहिये शास्त्र आदिकोमें श्रम करता है वह जीते हुए पुत्र पौत्रादिको समेत शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ वेदसे द्विजत्वको कहते हैं पहला पुरुषका जन्म मातासे होता है फिर दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञोंकी दीक्षासे होता है यह प्रथम द्वितीय तृतीय जन्मका कहना द्वितीय जन्मकी बढाईके लिये है ॥ ६९ ॥

तत्र यद्वह्मजन्मास्य मौञ्जिवन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सा  
वित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥ ७० ॥ वेदप्रदानादाचार्य पितरं  
परिचक्षते ॥ न ह्यस्मिन्नुच्यते कर्म किंचिदामौञ्जिवन्धनात् ॥ ७१ ॥

टीका—उन पहले कहे हुए तीनो जन्मोंमें वेदके ग्रहणके लिये जो यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्म है उसमें इस बालककी माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है ॥ ७० ॥ वेदके पढ़ानेसे मनु आदि आचार्यको पिता कहते हैं उस बालकमें यज्ञोपवीतसे पहले कोई श्रौत स्मार्त्तरूप कर्म नहीं हो सकत है ॥ ७१ ॥

नोभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानियमनादृतो ॥ शूद्रेण हि समस्ताविद्याव  
द्वेदे न जायते ॥ ७२ ॥ कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥  
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ ७३ ॥

टीका—मौञ्जिवन्धनसे पहले वेदके मंत्रोंका उच्चारण न करै और जिनमंत्रोंसे श्राद्ध किया जाता है उनको छोडकै अर्थात् जिसका पिता मरगया है वह नवश्राद्ध आदिमें मंत्रोंका उच्चारण करै परन्तु उनके सिवाय वेदका उच्चारण न करै क्योंकि जबतक वेदमें अधिकारी नहीं होता तबतक वह शूद्रके तुल्य है ॥ ७२ ॥ जिसे इस बालकको समिध होमो और दिनमें न सोवो इत्यादि व्रतोंका बताना और मंत्रब्राह्मणके क्रमसे वेदका पढ़ना यज्ञोपवीत किये हु-एको कहा है तिससे यज्ञोपवीत न होनेके पहले वेद न पढ़े ॥ ७३ ॥

यद्यस्य विदितं चर्म यत्सूत्रं यां च मेखला ॥ यो दण्डोऽयं वसनं  
तत्तदस्य व्रतेऽपि ॥ ७४ ॥ सेवेतेर्मास्तु नियमान्ब्रह्मचारी गु-

रौ वसन् ॥. सनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्धयर्थमात्मनः ॥ ७५ ॥

टीका—उपनयनकालमें जिस ब्रह्मचारीको जौनसे चर्मसूत्र मेखला दंड वस्त्र गृह्णने कहे हैं गोदानादिक ब्रतोंमें भी बेई नवीन करै ॥ ७४ ॥ ब्रह्मचारी गुरुके समीप वसता हुआ इंद्रियोंके समूहको वशमें करिके इन आगे कहे हुए नियमोंको अपने तपकी वृद्धिके लिये करै ॥ ७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुंयद्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चैव  
समिदाधानमेव च ॥ ७६ ॥ वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसां  
स्त्रियं ॥ शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ ७७ ॥

टीका—ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करि शुद्ध हो देवऋषि तथा पितरोंका तर्पण करै और प्रतिमाआदिकोंमें हरिहरादिकोंका पूजन करै और प्रातःकाल तथा सायंकाल समिधोंका होम करे ॥ ७६ ॥ शहत और मांसको ब्रह्मचारी त्याग करै और गंध कहिये कपूर चंदन कस्तूरी आदिको न खाय न देहमें लगावै फूलोंकी माला न पहिरै रस जे गुड आदि है तिनको न खाय स्त्रीगमन न करै और शुक्त कहिये सिरका आदि न खाय और जीव हिंसा न करै ब्रह्मचारीको ये सब वर्जित है ॥ ७७ ॥

अभ्यङ्गमर्जनं चाक्ष्णेरूपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लोभं  
च नर्तनं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परिव्राटं च  
थानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणं लम्भमुपधातं परस्म्य च ॥ ७९ ॥

टीका—तिल आदिका लगाना आंखोंका आंजना जूता और छातेका धारण करना और काम क्रोध लोभ नाचना गाना बजाना इन सबोंको ब्रह्मचारी वर्जित करै ॥ ७८ ॥ द्यूत कहिये फासोसे खेलना और वाद कहिये विना प्रयोजन खगोसे झगडा करना पराये दोषका कहना झूठ बोलना और मैथुनकी इच्छासे स्त्रियोंका देखना अथवा आलिंगन करना और पराया अपकार इन सबोंका त्याग करै ॥ ७९ ॥

एकैः शयीत सर्वत्र न रतैः स्कन्दयेत्कचित् ॥ कामाद्धि स्कन्द्य  
ने तो हिंस्ति ब्रतमात्मनः ॥ १८० ॥ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः  
शुक्रैर्मकर्मतः ॥ स्नात्वा कर्मचरित्वा त्रिः पुनर्मांस्त्रियं च जपेत् ८१

टीका—सदा अकेला सोवै इच्छासे वीर्यको न गिरावै इच्छासे वीर्यको

गिराता हुआ ब्रह्मचारी आपने व्रतका नाश करता है ॥ १८० ॥ ब्रह्मचारी द्विज इच्छाके विना स्वप्नमें वीर्यको गिराकै चंदन पुष्प धूप आदिसें सूर्यका पूजन करि पुनर्माँमै त्विद्वियं इस ऋचाको तीनिवार जपे, यही यहां प्रायश्चित्त है ॥ ८१ ॥

उदकुम्भं समनसो गोशकृन्मृत्तिकांकुशान् ॥ आहरेद्यावदर्थानि  
भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ ८२ ॥ वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म  
सु ॥ ब्रह्मचर्याहरेद्वैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ ८३ ॥

टीका—पानीका घट फूल गोबर मृत्तिका कुश इनको जितनेसे गुरू का प्रयोजन होय उतनेही गुरूके लिये लावै और प्रतिदिन भिक्षाको लावै ॥ ८२ ॥ वेद यज्ञसे जे हीन नहीं है और अपने नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें कुशलहैं उनके घरोंसे सावधान ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा लावै ॥ ८३ ॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥ अर्लाभे त्वन्यगेहानां  
पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ सर्वं वापि चरेद्भामं पूर्वोक्तानामसंभवे ॥  
नियम्य प्रयतो वाचमभिः शस्तांस्तु व्रजयेत् ॥ ८५ ॥

टीका—आचार्यके सपिंडोमें और अपनी ज्ञातिमें कुलमें और बंधु तो मामा आदि हैं, तिनमें भीख न मागै और जो अन्यघरोंमें न मिलै तो पहला पहिला छोड़िदे अर्थात् पहले बंधुओंमें मागै वहां न मिलै तो ज्ञातिमें और जो ज्ञातिमेंभी न मिलै तो आचार्यकीभी जातिमें मागै ॥ ८४ ॥ पहले कहे हुए वेद यज्ञयुक्त न होय तो कहे हुए गुणो करि हीनभी सब ग्राममें शुद्ध और मौन व्रतधारण करकै मागै और पातकी आदिकोंको छोड़ दे ॥ ८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ॥ सायंप्रातश्च जुहुयात्ता  
भिरग्निमतन्द्रितः ॥ ८६ ॥ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पाव  
कम् ॥ अनातुरैः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ ८७ ॥

टीका—दूरसे समिधोंको लायकै उनहै ऊंचे स्थानमें धरै उन समिधोंसे आ-  
लस्य रहित हो संध्या सवेरे अग्निमें होम करै ॥ ८६ ॥ रोगी होनेके विना जो ब्रह्मचारी सातदिनतक भिक्षा न मागै और सायंकाल प्रातःकाल अग्निमें समि-  
धोंका होम न करै तो उसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजाय तिस पीछे अवकीर्णी  
जो क्षतव्रत है तिसका प्रायश्चित्त करै ॥ ८७ ॥

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्भ्रती ॥ भैक्षेण वर्तिनो वृत्तिरूप

वासंसमां स्मृता ॥ ८८ ॥ व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्विवर्त्त ॥  
कर्ममभ्यर्थितोऽश्रियाद्ब्रतमस्य न लुप्यते ॥ ८९ ॥

टीका—ब्रह्मचारी एकका अन्न न खाय किंतु बहुत घरोंसे लाये हुए भिक्षाके समूहसे जीवै जिस्से भिक्षाके समूहसे ब्रह्मचारीकी जीविका मुनियोने उपवासके तुल्य कही है ॥ ८८ ॥ देव दैवसकर्ममें देवताके उद्देश करिके प्रार्थना किया गया ब्रह्मचारी व्रतके समान अर्थात् व्रतसे विरुद्ध मधुमांस-आदिको छोड़के एककाभी अन्न इच्छापूर्वक भोजन करै तौभी भिक्षावृत्ति नियमरूप इसका व्रत लुप्त नहीं होता है ॥ ८९ ॥

ब्राह्मणस्यैवं कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ॥ राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नै-  
तत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव  
वा ॥ कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥ १९१ ॥

टीका—वेदार्थक जाननेवाले पंडितोंने यह एकान्न भोजनरूप कर्म ब्राह्मण-  
हीके लिये कहा है क्षत्रिय वैश्यके लिये तौ यह ऐसा नहीं कहा है ॥ १९० ॥  
आचार्यके कहनेसे अथवा न कहनेसे आपही प्रतिदिन पढ़नेमें और गुरुके  
हितकारी कामोंमें उद्योग करै ॥ १९१ ॥

शरीरं चैवं वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ॥ निर्यम्य प्राञ्जलिस्ति-  
ष्ठेद्रीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ १९२ ॥ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वा  
चारः सुसंयतः ॥ आस्यतामिति चोक्तः संन्नासीताभिर्मुखं गुरोः १९३

टीका—देह बुद्धि इंद्रिय मन इनको रोकि हाथ जोरिके गुरुके मुखको देख-  
ता हुआ खड़ा रहै बैठे नहीं ॥ १९२ ॥ सदा ओढ़नेके वस्त्रसे दाहिनी बाँहको  
बाहर किये हुए सुंदर आचारयुक्त वस्त्रसे देह ढके हुए बैठिये ऐसे गुरुकरि  
कहा गया ब्रह्मचारी गुरुके सन्मुख बैठे ॥ १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेष्टः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ ॥ उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य  
चरमं चैवं संविशेत् ॥ १९४ ॥ प्रतिश्रवणसंभाषे श्यानो न सर्मा  
चरेत् ॥ नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥ १९५ ॥

टीका—गुरुके समीप सदा गुरुसेहीन अन्न वस्त्र खाय पहिरै और सबेरे दोघड़ी  
रातिरहे गुरुसे पहले उठै और संध्याको गुरुके सोनेके पीछे आप सोवै ॥ १९४ ॥

शय्यामें पड़ा हुआ आसनपर बैठे हुए आ भोजन करता हुआ और मुह फेरे खड़ा हुआ ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञाका स्वीकार और उनसे वार्त्तालाप न करे ९५॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु निष्ठितः ॥ प्रत्युद्धम्य त्वां  
व्रजतः पश्चाद्भ्रूवंस्तु धावतः ॥ ९६ ॥ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरं  
स्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥ प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ९७॥

टीका—आसनपर बैठे हुए गुरु आज्ञादे तौ आप आसनसे उठि खड़ा होकै और जो खड़े होकै गुरु आज्ञादे तौ उनके सन्मुख दो चार कदम चलकै और जब गुरु सन्मुख आवै तौभी उनके सन्मुख जायकै और जब गुरु दौड़ते आज्ञा दें तब उनके पीछे दौरेकै आज्ञाका अंगीकार और वार्त्तालाप करे ॥ ९६ ॥ गुरुमुख फेरे हुए आज्ञा देते होय तौ उनके सन्मुख होकै और दूरस्थित होय तौ उनके समीप आयकै और सोते हुए आज्ञा करै तौ नम्र होकै और जो समीप होय तौभी नम्र होकै आज्ञाका अंगीकार और वार्त्तालाप करे ॥ ९७ ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न  
यथेष्टासनो भवेत् ॥ ९८ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केव  
लम् ॥ न चैवास्यानुकुर्वति गतिभाषितचेष्टितम् ॥ ९९ ॥

टीका—गुरुके समीप शिष्यके शय्या और आसन नीचे ही होने चाहिये और गुरुके देखते हाथ पाँव फैलाकै इच्छा पूर्वक नबैठे ॥ ९८ ॥ पीठ पीछे भी गुरुका केवल नाम अर्थात् उपाध्याय आचार्य इत्यादि सत्कारके उपनामोंके बिना उच्चारण न करै और हँसीसे इनके चलने बोलने आदिकी नकल नकरे ९९

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ॥ कर्णौ तत्र पिधांतव्यौ ग  
न्तव्यौ वा ततोऽन्यतः ॥ १०० ॥ परीवादात्स्वरो भवति श्वा वै भ  
वति निन्दकः ॥ परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ १०१ ॥

टीका—जहां गुरुका परिवाद अर्थात् उनमें वर्त्तमान दोषोंका कहना और निन्दा अर्थात् झूठे दोष लगाना ये दोनोवातै जहां होती होय वहां स्थित शिष्यको कान मूंदलेने चाहिये अथवा वहांसे अन्यत्र चला जाना चाहिये ॥ १०० ॥ गुरुके परीवादसे शिष्य गधा होता है और निन्दा करनेवाला कुत्ता होता है और परिभोक्ता कहिये अनुचित गुरुके धनसे जीनेवाला कृमि होता है और मत्सरी कहिये गुरुका उत्कर्ष न सहनेवाला कीट कहिये कृमिसे कुछ मोटा होता है ॥ १०१ ॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न कुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ॥ यांनासनस्थश्चै<sup>१२</sup>  
वै<sup>१३</sup> नमर्वरुद्धाभिर्वादयेत् ॥ २ ॥ प्रतिवातेऽनुवाते च नासीतं गुरुणा  
सह ॥ असंश्रवे चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥ ३ ॥

टीका—दूरस्थित शिष्य दूसरेको नियुक्त करके मालावस्त्र आदिसे गुरुकी पूजाको न करै तथा क्रोधमें होके न करै और स्त्रीके पास स्थित गुरुकी आपभी पूजा न करै और सवारी तथा आसनपर बैठा हुआ शिष्य, यान तथा आसनको छोड़के गुरुको नमस्कार करै ॥ २ ॥ जो पवनं गुरुकी ओरसे शिष्यकी और आवै वह प्रतिवातहै और जो शिष्यकी ओरसे गुरुकी और आवै वह अनुवातहै इन दोनोंमें गुरुके साथ न बैठे और जहां गुरु न सुनै वहां गुरुके मध्ये अथवा और किसीके मध्ये कुंछ न कहै ॥ ३ ॥

गोऽश्वोऽयानप्रासादप्रस्तरेषु कैटेषु च ॥ आसीत गुरुणा सार्धं  
शिलाफलकनौषु च ॥ ४ ॥ गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिर्माचरे  
त् ॥ न चानिमृष्टो गुरुणा स्वान्गुरुनभिर्वादयेत् ॥ ५ ॥

टीका—बैल घोड़ा ऊंट जिनमें जुते हों ऐसी सवारियोंमें अर्थात् रथ छकड़ा आदिमें महलके ऊपर गचपर चटाईपर शिलापर तख्तपर और नावमें गुरुके साथ बैठे ॥ ४ ॥ जो गुरुके गुरु आवैं तौ गुरुके समान उनकाभी नमस्कार आदि सत्कार करै और गुरुके घरमें बसता हुआ शिष्य गुरुकी आज्ञा बिना अपने गुरु माता चाचा आदिको प्रणाम न करै ॥ ५ ॥

विद्यागुरुष्वेतदेवं नित्यां वृत्तिः स्वयोनिषु ॥ प्रतिषेधत्सु चार्धमा  
न्हितं चोपदिशस्त्वपि ॥ ६ ॥ श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समा  
चरेत् ॥ गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ ७ ॥

टीका—आचार्यसे भिन्न उपाध्याय आदि विद्यागुरु होते हैं उनमें तथा स्वयोनि जे चाचा ताऊहैं उनमें और अग्रजसे जो बचावैं तथा जो हितका उपदेश करैं उनमें गुरुके समान वर्तना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रेयस्सु कहिये विद्या और तपसे भरे पुरोंमें और श्रेष्ठ गुरुपुत्रोंमें तथा समान जातिके गुरुपुत्रोंमें और गुरुके भाई बंधुओंमें और चचाताऊ आदिकोंमें गुरुके समान वर्तै ॥ ७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥ अर्ध्यापयन्गुरुमु



तो गुरुवन्मानमर्हति' ॥ ८ ॥ उत्सादनं च गात्राणां स्नोपनोच्छि  
ष्टभोजने ॥ न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पार्दयोश्चावनेजनम् ॥ ९ ॥

टीका—छोटा होय अथवा समान अवस्था का होय वा ज्येष्ठ होय अथवा शिष्य होय वेदपठानेको समर्थ अर्थात् वेद पढाहुआ गुरुपुत्र जो यज्ञकर्ममें ऋत्विक् होय अथवा नहोय यज्ञ देखनेके लिये आया हुआ गुरुके समान पूजाके योग्य है ॥ ८ ॥ देहमें उबटना करना स्नान कराना जूटा भोजन करना और पैरोंका धोना इतनीवाते गुरुपुत्रकी न करै अर्थात् गुरुहीकी करै ॥ ९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सर्वर्णा गुरुर्योषितः ॥ असवर्णास्तु संपूज्याः  
प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २१० ॥ अभ्यंजनं स्नोपनं च गात्रोत्सा  
दनमेव च ॥ गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ ११ ॥

टीका—गुरुकी सवर्णास्त्रियाँ गुरुके समान पूजने योग्य हैं और जो असवर्णा होंय तो अभ्युत्थान और नमस्कारसे सत्कार करने योग्य हैं ॥ २१० ॥ देहमें तेल आदिका लगाना न्हवाना देहमें उबटना करना और फूलोंकी माला आदिसे बाल गूथना इतनी बातें गुरुकी स्त्रीकी न करै ॥ ११ ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिर्वाद्येह पार्दयोः ॥ पूर्णविंशतिवर्षेण गुण  
दोषौ विज्ञानता ॥ १२ ॥ स्वभाव एष नारीणां नारीणामिह दूषण  
म् ॥ अतोऽर्थात्र प्रमाद्यन्ति प्रमंदासु विपश्चितः ॥ १३ ॥

टीका—गुणदोषके जाननेवाले तरुण पूरेवीसवर्षके शिष्य करि तरुणी गुरुकी स्त्री पावपकडकर नहीं नमस्कार करने योग्य हैं किन्तु दूरसे भूमिमें दंडवत प्रणाम करै ॥ १२ ॥ यह स्त्रियोंका स्वभाव है कि अपने शृंगार आदि चेष्टाओंसे मोहित कर पुरुषोंको दूषण देना इसी कारणसे पंडितस्त्रियोंमें प्रमत्त नहीं होते हैं ॥ १३ ॥

अविद्वांसर्मलं लोके विद्वांसर्मपि वार्ष्णेनः ॥ प्रमंदा ह्युत्पथं नेतुं का  
मक्रोधवशानुगम् ॥ १४ ॥ मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासना  
भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसर्मपि कर्षति ॥ १५ ॥

टीका—मैं विद्वान् हूँ जितेन्द्रिय हूँ ऐसा समझकै स्त्रियोंके समीप न बैठना चाहिये देहके धर्मसे कामक्रोधके वशीभूत पुरुष विद्वान् हो अथवा मूर्ख होय उसको स्त्रियाँ कुमार्गमें लेजानेको समर्थ हैं ॥ १४ ॥ माता बहिनि अथवा पुत्री इन-

के साथ एकान्तस्थानमें न बैठे क्योंकि इंद्रियोंका समूह बलवान् है शास्त्रकी री-  
तिसे चलनेवालेभी पुरुषको वशमें करलेताहै ॥ १५ ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युक्तीनां युवां भुवि ॥ विधिवद्वन्दनं कुर्याद  
सौवर्हमिति भुवन् ॥ १६ ॥ विप्रोप्य पादग्रहणमन्वहं चाभिर्वादन  
म् ॥ गुरुद्वारेषु कूर्वात सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥

टीका—तरुणशिष्य तरुणी गुरुकी स्त्रियोंको अमुकशम्भा यह मैं तुमको न-  
मस्कार करता हूँ ऐसे कहिके पहले कहीं हुई विधिसे भूमिमें दूरसे नमस्कार  
करै ॥ १६ ॥ शिष्टपुरुषोंका यह आचार है इस बातको जानताहुआ तरुण  
शिष्य परदेशसे आयके तरुणी-गुरुकी स्त्रियोंके कहीं हुई विधिसे चरण छुवै  
और प्रतिदिन दूरसे भूमिमें नमस्कार करै ॥ १७ ॥

यथा खनन्वनित्रेण नरो वार्यधिर्गच्छति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां  
शुश्रुषुरधिर्गच्छति १८ मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छि  
खाजटः ॥ नै न ग्रामेऽभिनिर्मलोचेन् सूर्यो नाभ्युदित्यत्कचित् १९

टीका—जैसे कुदालीसे खोदता हुआ पानीको प्राप्त होता है ऐसेही गुरुमें  
स्थित विद्याको शिष्य सेवा करनेसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारीके तीन  
प्रकार कहते हैं सब शिर और डाढी मूछ मुडें होय अथवा जटाधारी होय अ-  
थवा जिसकी शिखाही जटा होगई होय ऐसे ब्रह्मचारीको ग्राममें सोते हुए क-  
भी सूर्य अस्त न होय और न उदय होय ॥ १९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ॥ निर्मलोचेद्राप्यविज्ञा-  
नार्जपक्षुपवसेदिनम् ॥ २० ॥ सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽ-  
भ्युदितश्च यः ॥ प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महत्तेनसा ॥ २१ ॥

टीका—इच्छासे सोते हुए ब्रह्मचारीको निद्राके वशमें होनेसे अज्ञानभासे जो  
सूर्य उदय हो आवें अथवा अस्त होजाय तौ सावित्रीको जपताहुआ एकदिन उ-  
पवासकरे रात्रिकी भोजनकरै ॥ २० ॥ जो ब्रह्मचारी सूर्यके अस्तसमय अथवा  
उदयके समय सोता रहै और प्रायश्चित्त न करै तौ पापकारि युक्त होकै नरकको  
जाय तिस्से यथोक्त प्रायश्चित्त करै ॥ २१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुंभे संध्ये समाहितः ॥ शुचौ देशे जपञ्च  
प्यमुपासीत यथाविधि ॥ २२ ॥ यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचि

त्समाचरेत् ॥ तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्यं रमेभ्यः ॥ २३ ॥

टीका—आचमन करिकै पवित्र हो मनको एकाग्र करि शुद्धदेशमें सावित्री-को जपता हुआ विधिपूर्वक दोनो कालकी संध्याओंकी उपासना करै ॥ २२ ॥ जो स्त्री अथवा शूद्र कुछ श्रेय अर्थात् अच्छा काम करै तौ उसकोभी मन लगाकै करै अथवा शास्त्रकारिं नही मने किये हुए जिस काममें दूसका मन लगै उसकोभी करै ॥ २३ ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थां धर्म एव च ॥ अर्थ एवैह वा श्रेय-  
स्त्रिवर्गइति तु स्थितिः ॥ २४ ॥ आचार्या ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्ति  
प्रजापतेः ॥ माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः ॥ २५ ॥

टीका—श्रेय क्या है सो कहते हैं ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि सुखके कारण होनेसे धर्म और अर्थ श्रेय है और कोई कहते हैं कि सुखका हेतु और अर्थकामका उपाय होनेसे धर्मही श्रेय है और कोई कहते हैं कि धर्म और कामकाभी सहायक होनेसे लोकमें अर्थही श्रेय है अब कुछकभट्ट अपना मत कहते हैं आपसमें विरोध न रखनेवाला धर्म अर्थ कामरूप त्रिवर्गही पुरुषार्थतासे श्रेय है यह निश्चय है ॥ यह बुभुक्षु जो भोगकी इच्छावाले है उनको उपदेश है मुमुक्षु जो मोक्षचाहनेवाले है उनको नही उनको तौ मोक्षही श्रेय है सो छठे अध्यायमें कहेंगे २४ आचार्य वेदांतमें कहे हुए ब्रह्म परमात्मकी मूर्ति कहिये शरीर है और पिता हिरण्यगर्भकी मूर्ति है और माता धारण करनेसे पृथिवीकी मूर्ति है और अपना सहोदर भाई क्षेत्रज्ञकी मूर्ति है तिससे देवतारूपये अपमान करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥ नार्तेनाप्यवमन्त-  
व्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २६ ॥ यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सं-  
भवे नृणाम् ॥ न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ २७ ॥

टीका—आचार्य, पिता, माता, ज्येष्ठसगा भाई ये पीडितपुरुष करकैभी नही अपमान करनेयोग्य हैं और विशेषतासे ब्राह्मण करकै ॥ २४ ॥ संततिके संभव कहिये गर्भाधानके पीछे उत्पत्ति पालन आदिमें मातापिता जिस क्लेशके सहते हैं उसका ऋण सैकरो वर्षोंमेंभी नही दूर होसकता है इसकारण देवतारूप माता पिता अपमान करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २७ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥ तेष्वेव त्रिषु तृष्टेभुं

तपैः सर्वं समाप्न्यते ॥ २८ ॥ तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उ-  
च्यते ॥ न त्रैभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २९ ॥

टीका—मातापिताका और आचार्यका सदा प्रिय करै अर्थात् जिसमें वे-  
प्रसन्न रहैं सो करै क्योंकि उनके प्रसन्न रहनेसे सब तप पूरे होते हैं ॥ २८ ॥  
उन तीनोंकी सेवा परम कहिये उत्कृष्ट तप कहाता है उनकी आज्ञाविना  
और किसी धर्मको न करै ॥ २९ ॥

त एव हि त्रयो लोकैस्तु एव त्रय आश्रमाः । त एव हि त्रयो  
वेदास्तु एवोक्तान्त्रयोऽग्नयः ॥ २३० ॥

टीका—वेद तीनों अर्थात् माता पिता और गुरु तीनों लोकोंकी प्राप्तिका  
कारण होनेसे तीनोंलोकहैं और वेही गृहस्थ आदि तीनों आश्रमोंके देनेवाले  
होनेसे ब्रह्मचर्य आदि तीनों आश्रमहैं और वेही तीनों वेदोंके जपफलका उपाय  
होनेसे तीनों वेदहैं और वेही तीनों अग्नियोंमें करनेयोग्य यज्ञ आदिके फल देने  
वाले होनेसे तीनों अग्नि हैं ॥ २३० ॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयस्तु ।  
साग्नित्रेता गरीयसी ॥ ३१ ॥ त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीँल्लोकां न्वि-  
जयेद्ब्रह्मा दीप्यमानः स्वर्गपुषा देववर्दि वि मोदते ॥ ३२ ॥

टीका—पिताही गार्हपत्य अग्नि है और माता दक्षिणाग्नि है और आचार्य  
आहवनीय है सो ये तीनों अग्नि अतिश्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें प्रमादको न  
करता हुआ ब्रह्मचारी तौ सर्वोत्कर्षसे वर्त्तमान होताही है परंतु गृहस्थभी तीनों  
लोकोंको जीति लेता है और अपने शरीरसे प्रकाशमान हो सूर्यआदिदेवता-  
ओंके समान स्वर्गमें आनंद करताहै ॥ ३२ ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया  
त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥ सर्वे तस्यैदृता धर्मा यस्यैते  
त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्यैव फलाः क्रियाः ३४

टीका—माताकी भक्तिसे इस भूलीकको और पिताकी भक्तिसे मध्यम  
लोकको और आचार्यकी भक्तिसे हिरण्यगर्भके लोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥  
जिसने इन तीनों अर्थात् माता पिता और आचार्यका आदर किया उसको स-  
ब धर्मफल देनेवाले होतेहैं और जिसने अनादर किया उसको सब श्रौत स्मार्त  
कर्म निष्फल होते हैं ॥ ३४ ॥

यावन्नयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥ तेष्वेवं नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥ ३५ ॥ तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् । तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ ३६ ॥

टीका—जबतक ये तीनों जीवें तबतक स्वतंत्र होकै और धर्मको न करै प्रिय और हितमें मन लगाकै उन्हीकी सेवा करै ॥ ३५ ॥ उनकी सेवामें अंतर न पडनेसे उन्हीकी आज्ञासे मन वचन कर्मोंसे जो परलोकसंबंधी कर्म करै सो मैने यह कियाहै ऐसे उनसे प्रीछे कहदे ॥ ३६ ॥

त्रिष्वेते त्रिवितकृत्यं हि पुरुषस्य समार्ष्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ ३७ ॥ श्रद्धाधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्वीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ ३८ ॥

टीका—इन तीनोंकी सेवा करनेपर पुरुषका संपूर्ण श्रौत स्मार्त्त कर्मफल मिलनेसे किया हीसा होताहै तिससे यह धर्म श्रेष्ठ है और साक्षात् पुरुषार्थका साधनहै और अन्य अग्निहोत्र आदि स्वर्गादिकोंका साधन होनेसे छोटाही धर्म है ॥ ३७ ॥ श्रद्धायुक्त हो शुभकहिये जिसकी शक्ति देखीहै ऐसी गारुड आदि विद्याको शूद्रसेभी ग्रहण करले और चांडालसेभी मोक्षके उपाय तत्त्वज्ञानको ग्रहण करै और अपने कुलसे नीचे कुलकेभी स्वीरत्नको न्याह करनेके लिये ग्रहण करै ॥ ३८ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सदृत्तं ममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ ३९ ॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः २४० ॥

टीका—विषमें जो अमृत मिलाहोय तौ विषको दूरि करकै अमृत लेना चाहिये और बालकसेभी हितवचन लेना चाहिये और सज्जनका चरित्र शत्रुसेभी लेना चाहिये और अपवित्र स्थानसेभी सुवर्ण आदि लेने चाहिये ॥ ३९ ॥ स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुंदरवचन और नानाप्रकारके शिल्प कहिये कारीगरी चित्रलिखना आदि सर्वोंसे लेने चाहिये ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥ अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ ४१ ॥ नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यं न्तिकं वसेत् ॥ ब्राह्मणे चाननूचने काङ्क्षन्नातिमनुत्तमाम् ॥ ४२ ॥

टीका—आपत्तिसमयमें अब्राह्मणसे अर्थात् ब्राह्मण भिन्न क्षत्रिय अथवा वैश्यसे पढ़ना कहा है और अनुगम आदि रूप सेवा जबतक पढ़े तभीतक करै गुरु होनेसे पैर धोना जूठा खाना आदिभी प्राप्तहुए सो न करै जबतक पढ़े तभीतक क्षत्रियका गुरुत्वहै पीछे नहीं सो व्यासने कहा है (मंत्रदः क्षत्रियो विप्रैः शुश्रूष्योऽनुगमादिना॥ प्राप्तविद्यो ब्राह्मणस्तु पुनस्तस्य गुरुः स्मृतः) अर्थ—मंत्रका देनेवाला क्षत्रिय ब्राह्मणों करिके अनुगमन आदिसे सेवा करनेयोग्य है और विद्या पानेके पीछे फिर उसका गुरु कहा गया है इति ॥ ४१ ॥ अनूत्तमा कहिये मोक्षरूप गतिको चाहता हुआ शिष्य ब्राह्मण भिन्न अर्थात् क्षत्रिय आदि गुरुके स्थानमें जन्मभर ब्रह्मचर्ययुक्त वास न करै और जो अंगोसमेत वेद न पढ़ा होय ऐसे ब्राह्मणकेभी स्थानमें वास न करै ॥ ४२ ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोःकुले ॥ युक्तः परिचरेदेनमां  
शरीरविमोक्षणात् ॥ ४३ ॥ आं सभांतेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते  
गुरुम् ॥ स गच्छत्यर्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्ब्र शाश्वतम् ॥ ४४ ॥

टीका—जो गुरुके कुलमें नैष्ठिक ब्रह्मचर्यरूप जन्मभर वास करना चाहै तौ जबतक जीवै तबतक अर्थात् देह छूटनेपर्यंत तत्पर होकै गुरुकी सेवा करै ॥ ४३ ॥ इसका फल कहतेहैं ॥ जो शिष्य शरीरकी समाप्ति कहिये मरनेतक गुरुकी सेवा करताहै वह ब्रह्मके शाश्वत कहिये अविनाशी स्थानमें प्राप्त होताहै, अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ ४४ ॥

न पूर्वे गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ॥ स्नास्यस्तु गुरुणाज्ञप्तः  
शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥ ४५ ॥ क्षेत्रं हिरण्यं गौमश्वं छत्रोपानह  
मार्सनम् ॥ धान्यं शार्कं च वासांसि गुरवे प्रीतिर्मावर्हेत् ॥ ४६ ॥

टीका—गुरुदक्षिणा देनेके धर्मका जाननेवाला ब्रह्मचारी स्नानसे गौ वस्त्र आदि कुछ धन गुरुको अवश्य न देवै और स्नान करता हुआ गुरुकी आज्ञा पाकै शक्तिके अनुसार किसी धनीसे मागकरभी अथवा दान आदिसे धनको लायकै गुरुको अवश्य दे ॥ ४५ ॥ खेत, सोना, गौ, घोडा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शार्क, और वस्त्र ये सब अथवा इनमेंसे पहले कहे हुएओंको छोड़कै जो मिलसकै सो गुरुको दे और जो कुछ न मिलै तौ शाकही दे ॥ ४६ ॥

आचार्यं तु खलु प्रेतं गुरुपुत्रे गुणान्विते ॥ गुरुदारे सपिण्डे वा

गुरुवद्वृत्तिर्माचरेत् ॥ ४७ ॥ एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारान् ॥ प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ ४८ ॥

टीका—नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुके मरनेपर जो गुरुपुत्र गुणयुक्त होय तौ उसको गुरुके समान मानै और गुरुपुत्र नहोयतौ गुरुकी स्त्रीको स्त्री न होय तौ सपिंड भाई आदिकोंको गुरुके समान मानै ॥ ४७ ॥ जो इनमेंसे गुरुपुत्र आदि कोई न होय तौ आचार्यकी अग्निके समीप रहने बैठने और मध्याह्नसवेरे सर्मिधोंके होम आदिसे अग्निकी सेवा करता हुआ अपनी देह अर्थात् अपनी देहमें स्थित जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य करै ॥ ४८ ॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविर्भुतः ॥ स गच्छत्युत्तमस्थानं चेहाजयते पुनः ॥ २४९ ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

टीका—जो ब्राह्मण ऐसे अखंड ब्रह्मचर्यको निवाहताहै वह उत्तम ब्रह्मके स्थानमें प्राप्त होताहै और कर्मोंके वशसे इस संसारमें जन्मको नहीं लेताहै ॥ ४९ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥ तदर्थिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥ वेदानधीत्य वेदो वा वेदं वापि यथा क्रमम् ॥ अविर्भुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

टीका—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनोंको गुरुकुलमें छत्तीस वर्ष पढ़ै अर्थात् प्रत्येक वेदकी शाखाको बारहवर्ष पढ़ै अथवा उसके आधे अठारहवर्षतक पढ़ै तब प्रत्येक वेदकी शाखाका छ वर्ष पढ़ना हुआ अथवा उसकी चौथाई नववर्ष पर्यंत पढ़ै तौ प्रत्येक वेदकी शाखाके तीनिवर्ष हुए अथवा कही हुई अवधिके भीतर बाहर जितने कालमें वेदोंको पढ़ै उतने कालपर्यंत गुरुकुलमें बसिकै ब्रह्मचर्य व्रत करै ॥ १ ॥ क्रमसे तीनोवेदोंकी शाखाओंको अथवा दो वेदोंकी शाखाओंको अथवा एक वेदकी शाखाको मंत्र ब्राह्मणके क्रमसे पढ़कै अविर्भुत ब्रह्मचर्य कहिये पहले कहे हुए स्त्रीसंग मधुमांसका त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे युक्त वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश करै अर्थात् गृहस्थके लिये कहे हुए कर्मोंको करै ॥ २ ॥

तं प्रतीतिं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥ स्रग्विणं तल्पं आसीन  
मह्येत्प्रथमं गवां ॥ ३ ॥ गुरुणोनुमतः स्नात्वा समावृतो यथा  
विधि ॥ उद्वहेत द्विजो भार्या-सर्वणी लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

टीका—ब्रह्मचारीके धर्म करनेसे प्रसिद्ध और पिता वेदरूप भागके लेनेवा-  
ले अर्थात् पितासे अथवा पिताके अभावमें आचार्य आदिसे वेद पढ़े हुए ब्रह्म-  
चारीको मालासे अलंकृत करि उत्तम शय्यापर बैठाया पिता अथवा आचार्य  
विवाहसे पहलेगौ है साधन जिसका ऐसे मधुपर्कसे पूजन करै ॥ ३ ॥ गुरुकी  
आज्ञासे निजगृहकी विधिपूर्वक स्नान समावर्त्तन करि समान वाणीऔर शुभ ल-  
क्षणो करि युक्त कन्यासे विवाह करै ॥ ४ ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ सां प्रशस्तां द्वि  
जांतीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ महान्त्यं पिं समृद्धानि गो  
जाविधनधान्यतः ॥ स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो माताकी सपिण्डा कहिये सातपीढीमें न होय सगोत्राभी न होय और  
पिताके गोत्रमें न होय ऐसी स्त्री ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको अग्निहोत्र और संतति  
उत्पन्न करना आदि कर्म्मोंमें उत्तमहै ॥ ५ ॥ ऊंचेभी होय और गौ, बकरी, भेड़, धन-  
धान्य इनसे भरे पूरे भी होनेपर आगे कहे हुए सात कुलों कन्यासे विवाह न करै ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामर्याव्यप  
स्मारिष्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥ नोद्वहेत्कपिलां कन्यां  
नाधिकार्द्धां न रोगिणीम् ॥ नालोमिकां नातिलोमां न वाचां  
टां न पिङ्गलां ॥ ८ ॥

टीका—वे कुल कहते हैं ॥ हीनक्रिय अर्थात् जातकर्मआदि क्रियाओंसे र-  
हित १ स्त्रीजनक जिसमें स्त्रियाँही उत्पन्नहोतीहोय २ वेद पढ़ेबेसे रहित ३ बहुत-  
से रोमाओंसे युक्त ४ ववासीररोगयुक्त ५ क्षयरोगयुक्त ६ मंदाग्रियुक्त ७ अ-  
पस्मारकहिये मिरगीयुक्त ८ श्वेतकुष्ठयुक्त ९ गलत कुष्ठयुक्त १० इन दशकुलोंको  
छोड़दे अर्थात् इन कुलोंकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ७ ॥ भूरे बालोंकी अधिक  
अंगकी जैसे छ अंगुलीकी सदारोगिनरहै जिसके रोम न होय जिसके बहुत रोम  
होय बहुत बोलनेवाली आसोंमें कंजी होय ऐसी कन्यासे विवाह नकरै ॥ ८ ॥

नेक्षवृक्षनदीनाम्नी नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनां



म्रीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनर्मिणीं हंस  
वैरणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीं मुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

टीका—नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ  
पर्वत पक्षी सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ९ ॥  
जिसके अंगमें कुछ व्यंग नहों मधुरनामवाली हंस अथवा हाथी इनोके समान  
गमनकरनेवाली सूक्ष्म लोमवाली बारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर  
है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाह करना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत्तां  
प्राज्ञः पुत्रिकार्धमशङ्कया ॥ ११ ॥ सर्वर्णस्य द्विजातीनां प्रशस्ता  
दारकर्मणि ॥ कर्मतस्तु प्रवृत्तानामिमांः स्युः क्रमशो वरैः ॥ १२ ॥

टीका—जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहै पुत्रिका  
उसको कहते हैं कि जिसका पिता पहले यह कहै कि इसका पुत्र होगा वह मे-  
रा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न हो-  
य उसकीभी बुद्धिमान न व्याहै अथवा जिसका पिता न जाना जाय उसको  
अर्धम शंका कहिये जारकी शंकासे न व्याहै ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वै-  
श्यको प्रथम विवाह करनेमें सर्वर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्या श्रेष्ठ है और  
फिर क्रमसे जो विवाह करना चाहै तौ उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो क-  
ही जायगी वे श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

शूद्रैर्वर्णभार्या शूद्रस्य सा च स्वां च विशः स्मृते ॥ ते च स्वां  
चैव राज्ञश्च तां च स्वां चार्जन्मनः ॥ १३ ॥ न ब्राह्मणक्षत्रिय  
योरापि द्यपि हि तिष्ठतोः ॥ कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्या  
पदिश्यते ॥ १४ ॥

टीका—शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊँची जातिकी वैश्या आदि तीन नही  
होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोने कही है और क्षत्रि-  
यके वैश्या शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया वैश्या शूद्रा और ब्राह्मणी  
ये चार स्त्रिया कही है ॥ १३ ॥ गृहस्थकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको  
आप्तिके भी अर्थात् सर्वर्णकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी क-  
न्यासे विवाह करना नहीं कहा है यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उल्टे विवाहके  
मध्ये है और अनुलोम कहिये सीधेमें तौ कही चुके हैं ॥ १४ ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्ग्रहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येवं नयन्त्या  
 शुं ससंतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतन  
 यस्य च । शौनकस्य सुतोर्पत्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

टीका—सवर्णाको विनाश्याहे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शास्त्रके विचार  
 विना हीन जाति कहिये शूद्रासे विवाह करताहै वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र  
 पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र कर देता है ॥ १५ ॥ शूद्राकन्याके साथ वि-  
 वाह करनेसे पतितहीसा होताहै यह अत्रि और गौतमका मतहै और शूद्रामें पुत्र  
 उत्पन्न होनेसे पतित होताहै यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान  
 होनेसे पतित होता है यह भृगुका मतहै अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रसे  
 उत्पन्नहैं पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होताहै ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥ जनयित्वा सुतं  
 तस्यां ब्राह्मण्यादेवं हीयते ॥ १७ ॥ देवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधा  
 नानि यस्य तु ॥ नांश्नन्ति पितृदेवास्तत्र च स्वर्गं स गच्छति ॥ १८ ॥

टीका—शूद्राके साथ भोगकरकै ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र  
 उत्पन्न करकै ब्राह्मणपनसे ही रहित होजाताहै ॥ १७ ॥ देवहोमआदि और पित्र्य-  
 श्राद्धआदि तथा आतिथ्यअतिथिभोजनआदि इनको जिसके शूद्रा करतीहै उस हव्य  
 और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैवं प्रमूर्तस्य  
 निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेहं हि  
 ताहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्नि बोधत ॥ २० ॥

टीका—शूद्राका ओठचुंबन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और  
 उसीमें संतति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणआदि चारो  
 वर्णोंके कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आंगे कहते है-  
 ऐसे आठविवाहोंकी संक्षेपसे सुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो देवस्तथैवोषः प्रजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैवं  
 पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च  
 यस्य यौ ॥ तद्गः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

म्रीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गार्गी सौम्यनार्मीं हंस  
वौरणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां मूढङ्गी मुद्गहेत्त्रियम् ॥ १० ॥

टीका—नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ  
पर्वत पक्षी सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ९ ॥  
जिसके अंगमें कुछ व्यंग्र नहीं मधुरनामवाली हंस अथवा हाथी इनोके समान  
गमनकरनेवाली सूक्ष्मलोमवाली बारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर  
है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाहकरना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत तां  
प्राज्ञः पुत्रिकोधर्मशङ्कया ॥ ११ ॥ सर्वर्णामे द्विजातीनां प्रशस्ता  
दारकर्मणि ॥ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमां स्युः क्रमशो वरौ ॥ १२ ॥

टीका—जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहै पुत्रिका  
उसको कहते हैं कि जिसका पिता पहले यह कहै कि इसका पुत्र होगा वह मे-  
रा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न हो-  
य उसकीभी बुद्धिमान न व्याहै अथवा जिसका पिता न जाना जाय उसको  
अधर्म शंका कहिये जारकी शंकासे न व्याहै ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वै-  
श्यको प्रथम विवाह करनेमें सवर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्या श्रेष्ठ है और  
फिर क्रमसे जो विवाह करना चाहै तौ उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो क-  
ही जायगी वे श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वां च विशः स्मृते ॥ ते च स्वां  
च वं राज्ञश्च तां च स्वां चाग्रजन्मनः ॥ १३ ॥ न ब्राह्मणक्षत्रिय  
योरार्षं द्यपि हि तिष्ठतोः ॥ कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्या  
पदिश्यते ॥ १४ ॥

टीका—शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊँची जातिकी वैश्या आदि तीन नहीं  
होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोने कहीहै और क्षत्रि-  
यके वैश्या शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया वैश्या शूद्रा और ब्राह्मणी  
ये चार स्त्रिया कहीहै ॥ १३ ॥ गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको  
आपत्तिमें भी अर्थात् सवर्णकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी क-  
न्यासे विवाह करना नहीं कहाहै यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उल्टे विवाहके  
मध्ये है और अनुलोम कहिये सीधेमें तौ कही चुके हैं ॥ १४ ॥

हीनजोतिस्त्रियं मोहादुद्रहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येवं नयन्त्या  
शु ससंतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रैरुतथ्यतन  
यस्य च । शौनकरस्य सुतोर्पत्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

टीका—सवर्णाको विनाश्याहे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शास्त्रके विचार  
विना हीन जाति कहिये शूद्रासे विवाह करताहै वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र  
पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र कर देता है ॥ १५ ॥ शूद्राकन्याके साथ वि-  
वाह करनेसे पतितहीसा होताहै यह अत्रि और गौतमका मतहै और शूद्रामें पुत्र  
उत्पन्न होनेसे पतित होताहै यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान  
होनेसे पतित होता है यह भृगुका मतहै अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रसे  
उत्पन्नहै पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होताहै ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो धान्यधोगतिम् ॥ जनयित्वा सुतं  
तस्यां ब्राह्मण्यादेवं हीयते ॥ १७ ॥ दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधा-  
नानि यस्य तु ॥ नाश्रन्ति पितृदेवास्तत्र च स्वर्गं संगच्छति ॥ १८ ॥

टीका—शूद्राके साथ भोगकरके ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र  
उत्पन्न करके ब्राह्मणपनसे ही रहित होजाताहै ॥ १७ ॥ दैवहोमआदि और पित्र्य-  
श्राद्धआदि तथा आतिथ्यअतिथिभोजनआदि इनको जिसके शूद्रा करतीहै उस हव्य  
और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैवं प्रसूतस्य  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेहं हि  
ताहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्नि बोधत ॥ २० ॥

टीका—शूद्राका ओठचुवन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और  
उसीमें संतति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणआदि चारो  
वर्णोंके कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आंगे कहते है-  
ऐसे आठविवाहोंकी संक्षेपसे सुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गार्ध्वो राक्षसश्चैवं  
पैशीचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च  
यस्य यौ ॥ तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

टीका—उन आठोंके नाम कहते हैं जैसे ब्राह्म १ दैव २. आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ राक्षस ७ और आठवाँ सबसे अधम पैशाच ८ ॥ २१ ॥ जो विवाह जिसवर्णका धर्मसंबंधी है और जिसके गुण तथा दोष अर्थात् भलाई बुराईको और उन २ विवाहोंसे उत्पन्न संततिमें जे. गुणदोष हैं तिनको सुनिये २२

षडौनुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवर्णान् ॥ विद्यूद्रयोस्तु तौ  
नेवं विद्याद्धर्म्यानां क्षिप्तान् ॥ २३ ॥ चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रश  
स्तान्कवयो विदुः ॥ राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥

टीका—ब्राह्मणको क्रमसे ब्राह्मच १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ येदविवाह धर्म्य हैं और क्षत्रियको आर्ष १ प्राजापत्य २ आसुर ३ गांधर्व ४ ये ४ विवाह धर्म्य हैं और वैश्य तथा शूद्रके भी वेही आसुर गांधर्व पैशाच जानिये और राक्षस उनके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ ब्राह्मणके ब्राह्म आदि चारि और क्षत्रियके एक राक्षस और वैश्य तथा शूद्रके आसुर इन विवाहोंको जाननेवाले श्रेष्ठजानते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्या स्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैवं  
नै कर्त्तव्यौ कदाचन ॥ २५ ॥ पृथक्पृथक्वा मिश्रौ वा विवाहौ  
पूर्वचोदितौ ॥ गान्धर्वा राक्षसश्चैवं धर्म्या क्षत्रस्य तौ स्मृतौ २६

टीका—प्राजापत्य आदि पाँच विवाहोंमें प्राजापत्य गांधर्व और राक्षस ये तीनि विवाह धर्मसंबंधी हैं दो धर्मसंबंधी नहीं हैं पैशाच और आसुर ये दो कभीकरनेयोग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥ जुदे २ अथवा मिलेहुए पहले कहेहुए गांधर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियको धर्मके अनुसार मनुआदिकोंने कहे हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ॥ आहूय दानं  
कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २७ ॥ ग्रन्थे तु धिते सम्यग्  
त्विजे कर्म कुर्वते ॥ अलंकृत्य सुतादानं देवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

टीका—विद्या और आचार युक्त वरको बुलायके उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंसे कन्या तथा वरको भूषित करि वरके लिये जो दान किया जाता है उसको मनुआदि ब्राह्मविवाह कहते हैं ॥ २७ ॥ ज्योतिष्टोम आदियज्ञके आरंभ होनेमें अच्छे प्रकारसे कर्म करतेहुए ऋत्विजके लिये वस्त्र आभूषणोंसे शोभित करि जो कन्याका लेना है उसको मुनीश्वर देवविवाह कहते हैं ॥ २८ ॥

एकं गौं मिथुनं द्वे वा वराद्रादाय धर्मतः ॥ कन्याप्रदानं विधिं  
वदार्थो धर्मः स उच्यते ॥ २९ ॥ सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचा  
नुभाष्य च ॥ कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्रजापत्यो विधिः स्मृतः ३० ॥

टीका—एक गौ और एक बैल ऐसे गौओंका एक जोड़ा अथवा दो जोड़े  
बरसं यज्ञ आदिकी सिद्धिकेलिये अथवा कन्याके देनेकेलिये लेकर शास्त्रके अ-  
नुसार जो कन्यादान किया जाता है उसको आर्षविवाह कहते हैं ॥ २९ ॥ तुम  
दोनों मिलके धर्म करे करौ ऐसे कन्यादानके समय पहले नियम करके पूजन  
करि जो कन्यादान किया जाता है उसको प्रजापत्य विवाह कहते हैं ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैवं शक्तिः ॥ कन्याप्रदानं स्वां  
च्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ३१ ॥ इच्छयान्योन्यसंयोगः क  
न्यायाश्च वरस्य चागन्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ३२

टीका—कन्याके पिता आदिको अथवा कन्याको यथाशक्ति धन देकर जो  
अपनी इच्छासे कन्याका लेना है उसको आसुरविवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥ कन्या और  
वरकी आपसकी प्रीतिसे जो परस्पर आलिंगन आदिरूप मिलन है उसको  
गांधर्व विवाह कहते हैं ॥ ३२ ॥

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशतीं रुदतीं गृह्णात् ॥ प्रसह्य कन्या  
हरणं राक्षसो विधिर्ह्युच्यते ॥ ३३ ॥ सुतां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रो  
पगच्छति ॥ स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधर्मः ॥ ३४ ॥

टीका—बलात्कारसे कन्याका हरलेना राक्षसविवाहका यही लक्षण है कन्या-  
के पक्षवालोंको मारिके और उनके अंगोंको काटिके और परकोटा आदिको फो-  
डकर हाथ पिता हाथ भाई अनाथ मैं हरी जाती हौं ऐसे कहती हुई और आसु-  
ओंको छोड़ती हुई कन्याको जो उसके घरसे हरलेना है उसको राक्षसविवाह कह-  
ते हैं इससे कन्याकी अनिच्छा प्रकट होती है ॥ ३३ ॥ सोती हुईको मद्यसे व्याकुलको  
और शीलकी रक्षासे रहितको एकांतस्थानमें जो विषयकी इच्छासे प्रवृत्त होता है  
उस पापमूल विवाहको सब विवाहोंमें अधम पैशाचविवाह कहते हैं ॥ ३४ ॥

अद्विरेव द्विजाग्न्याणां कन्यादानं विशिष्यते ॥ ईतरेषां तु वर्णा-  
नामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥ यो यस्यैषां विवाहानां मनुना

कथितो गुणः॥सर्वं शृणुत तं विप्राः सम्यक् कीर्तयतो मम॥३६॥

टीका—ब्राह्मणोंको जलदानपूर्वकही कन्यादान करना उत्तम है और क्षत्रिय आदि अन्यवर्णोंको जलके बिनाभी आपसकी इच्छासे वाणीमात्रसेभी कन्यादान होता है ॥ ३५ ॥ इन विवाहोंमें जिसका जो गुण मनुने कहा है वह सब हे ब्राह्मणों कहते हुए मुझसे सुनो यह भृगुने ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ३६ ॥

दश पूर्वान्पितृन्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ॥ ब्राह्मीपुत्रः सुकृतं  
कृन्मोचयेदेनसः पितृन् ॥३७॥ दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परा  
वरान्। आर्षोढाजः सुतस्त्रीं स्त्रीं नृषोढाजः कायोढाजः सुतः ॥३८॥

टीका—ब्राह्मविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र जो शुभकर्म करनेवाला होय तौ पिता आदिकों नरकसे निकार लेता है और उसके कुलमें पुत्र आदि निष्पाप उत्पन्न होते हैं ३७ दैवविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पिता आदि सात पीढ़ी पहली औ पुत्र आदि सातपीढ़ी पिछली और आर्षविवाहमें व्याही हुईका पुत्र तीन पीढ़ी पहली और तीन पिछली और राजापात्यमें व्याही हुईका पुत्र छः पीढ़ी पहली और छः पिछलीको और आपको पापसे छुड़ाता है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जा  
यन्ते शिष्टसंमताः ॥३९॥ रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः  
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतसर्माः ॥४०॥

टीका—ब्राह्म आदि चारि विवाहोंमें श्रुताध्ययन सम्पत्तिरूप तेजकीर युक्त और शिष्टोंके प्यारे पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ रूपवान् पराक्रमी धनवान् गुणवान् वंशस्वी और अपनी इच्छासे वस्त्र माला गंधलेप आदिसे शोभित धर्मात्मा और सौवर्षकी आयुष्यतक जीनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥ जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्म  
धर्मद्विषः सुताः ॥४१॥ अनिन्दितैः स्त्री विवाहैरनिन्द्या भवति  
प्रजा ॥ निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यानिर्वर्जयेत् ॥४२॥

टीका—और ब्राह्म आदि चारि विवाहोंसे अन्य आसुर आदि चारोंमें क्रूरकर्म करनेवाले मिथ्यावादी वेदसे द्वेष करनेवाले यज्ञ आदि धर्मसे द्वेष करनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥ स्त्रीकी प्राप्तिके कारण जे अच्छे विवाह हैं उनसे पुरुषके सं-

दानभी अच्छी होती है और निन्दित विवाहोंसे प्रजाभी निन्दित होती है तिससे निन्दित विवाहोंका त्याग करै ॥ ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सर्वेषांमूपदिश्यते॥ असर्वणार्स्वयं ज्ञेयो विं  
धिरुद्राहकर्मणि ॥ ४३ ॥ शूरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकं  
न्यया ॥ वर्सनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

टीका—पाणिग्रहणसंस्कार कहिये हाथ पकड़नेकी विधि सभानजाति क-  
न्याके विवाहमें किया जाता है और अन्यवर्णकी कन्याके विवाहमें आगेके श्लो-  
कमें कही हुई विधि जानिये ॥ ४३ ॥ उंची जातिके पुरुषके साथ व्याहमें क्षत्रियाक-  
न्याको पाणिग्रहणके स्थानमें ब्राह्मणके विवाहमें ब्राह्मणके हाथमें पकड़े हुए ती-  
रका एका भागं ग्रहण करने योग्यहै और वैश्या स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रियके विवा-  
हमें ब्राह्मण क्षत्रिय करि पकड़े हुए चाबुकका एक सिरा पकड़ना चाहिये और  
शूद्रा स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके लिपटे हुए कपड़ेकी बत्ती ग्रहण करनीचा-  
हिये ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥ पर्ववर्जं व्रजं ज्ञेयं  
तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः  
षोडश स्मृताः ॥ चतुर्भारतरैः सार्धमहोभिः सद्भिर्गर्हितैः ॥ ४६ ॥

टीका—रुधिरके दर्शनसे जाने गूये गर्भ रहनेके समयको ऋतुकाल कहते है  
उसमें स्त्रीसे पुत्रकीप्राप्तिके लिये भोग करै और अपनी स्त्रीमें सदा संतुष्ट रहै औ-  
र पर्व जो अमावास्या आदि है तिनको छोड़के भार्यासे अतिप्रीति करनेवाला  
पुरुष ऋतुकालसे भिन्न कालमेंभी रतिकी कामनासे गमन करै पुत्र उत्पन्न करने  
की वृद्धिसे नहीं ॥ ४५ ॥ सज्जनों करि निन्दित रुधिर दीखनेके चार दिनों स-  
मेत स्त्रियोंके सोलह रातिदिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है रोग आदिसे न्यू-  
नाधिकभी होजाती है ॥ ४६ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषा  
स्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ४७ ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽ-  
युग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ४८ ॥

टीका—फिर उन सोलह रातिदिनोंमें रुधिर दर्शनसे लगाके पहले चार रात्रिदिन  
और एकादशी तथा तेरसि गमनमें निन्दितहै और शेष दशरात्रियां उत्तमहै ॥ ४७ ॥



पहले कही हुई दश तिथियोंमें युग्मकहिये षष्ठी और अष्टमी रात्रिमें पुत्र उत्पन्न होते हैं तिससे पुत्रका चाहनेवाला पुरुष युग्मरातोंमें ऋतुके समय स्त्रीसे गमन करे ॥४८॥

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ समे पुमान्पुंसि यौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९॥ निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्यैर्वा भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥५०॥

टीका—पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषमरात्रिमें भी पुत्रही होता है और स्त्रीका वीर्य अधिक होनेसे युग्ममें भी कन्याही होती है और दोनोका वीर्य बराबर होनेसे नपुंसक होय अथवा जोड़िया स्त्रीपुरुष उत्पन्न होय अथवा दोनोका वीर्य क्षीण अथवा थोड़ा होयतौ गर्भका संभव होय अर्थात् गर्भ न रहे ॥४९॥ पहले कही ऋतुकालकी निंदा रात्रियोंमें और अन्य अनिन्द्य जिन किन्ही आठ रात्रियोंमें भी स्त्रीको त्यागता हुआ वाकी पूर्वकी दो रात्रियोंको छोड़ गमन करनेवाला जिस किसी आश्रममें बसता हुआ पुरुष अखंड ब्रह्मचर्य व्रतको प्राप्त होता है ॥५०॥

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहीत्याच्छुल्कमर्वापि ॥ गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ५१ स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापार्थान्त्य धोगतिम् ५२

टीका—धन लेनेको दोषका जाननेवाला कन्याका पिता कन्यादानके निमित्त थोड़ाभी धन न ले, जो लोभसे लेतौ संतानका वेंचनेवाला होय ॥ ५१ ॥ पति पिता भ्राता आदि जे बांधव स्त्री पुत्री आदिका धन और नारीके वाहन अश्व आदिको और वस्त्रोंको ले लेते हैं वे पाप करनेवाले नरकको जाते हैं तिससे स्त्रीधन किसीको न लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मूषैर्वत् ॥ अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥५३॥ यासां नोददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ॥ अर्हेण तत्कुमारीणां मानृशस्य च केवलम् ॥५४॥

टीका—कोई आचार्य कहते हैं कि आर्षविवाहमें घरसे गौका जोड़ा लेना चाहिये वह झूठही है जिससे थोड़ा होय अथवा बहुत होय वह वेंचनाही है ॥ ५३ ॥ जिन कन्याओंका वरकरि प्रीतिसे दियाहुआ धन पिता आदि नहीं लेते किंतु कन्याको दे देते हैं वद्वभी वेंचना नहीं हैं जिससे कुमारियोंका पूजन केवल दयारूप है ॥५४॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिं भिद्वैरैस्तथा ॥ पूज्यां भूषयितव्या  
 श्वं बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥५५॥ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते  
 तत्र देवताः ॥ यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५६॥

टीका—केवल विवाहकालहीमें वरंका दिया हुआ धन कन्याको देना चाहिये किंतु इसक्रे पीछेभी पिता आदि करिये कन्या भोजन आदिसे पूजन योग्य हैं और बहुत धन आदि संपत्तिके चाहनेवाले पिता भ्राता आदिको वस्त्र अलंकार आदिसे भूषित करनेयोग्यभी हैं ॥५५॥ जिस कुलमें पिता आदि करिकै स्त्री पूजी जाती है वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जाती हैं वहाँ देवताओंकी प्रसन्नता न होनेसे सब यज्ञादिक क्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥ न शोचन्ति  
 तु यत्रैतां वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥ जामयो यानि गेहानि श  
 पन्त्यप्रतिपूजिताः ॥ तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ५८

टीका—जिस कुलमें वहिन स्त्री पुत्री और पुत्रकी बहूआदि दुखी होती हैं वह कुल शीघ्रही निर्धन होजाता है और देवता तथा राजा आदि करि पीडित होता है और जहाँ ये नहीं शोचती हैं वह धन आदिसे सदा वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ भगिनी पत्नी बेटी बहू ये दुखी हो जिन घरोंको कोसती हैं वे घर कृत्या जो अभि चाहै तिस करकै नाश किये की समान धन पशु आदि समेत नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूतिकामैर्न रीर्य  
 त्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥५९॥ संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या  
 तथैव च ॥ यस्मिन्नेवं कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥

टीका—तिस्से ये भगिनी आदि कौमुदी आदि सत्कारोंमें और यज्ञोपवीत आदि उत्सवोंमें समृद्धि चाहनेवाले पुरुषों करिकै सदा पूजनेयोग्य हैं ॥५९॥ जिस कुलमें स्त्रीसे पुरुष प्रसन्न रहता है अर्थात् दूसरी स्त्री आदिकी इच्छा वही करता है और पुरुषसे स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुलमें चिरकाल पर्यंत श्रेय रहता है ॥६०॥

यदि हि स्त्री न रोचेत् पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥ अप्रमोदात्पुनः पुं  
 सः प्रजनं न प्रवर्तते ६१ ॥ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्गोचरे

कुलम् ॥ तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेवं न रोचते ॥ ६२ ॥

टीका—जो स्त्री वस्त्राभरण आदिकोसे शोभित न होय-तौ यह अपने स्वामीको प्रसन्न न करै-तौ फिरि पुरुषके प्रसन्न न होनेसे गर्भाधान नहीं होता है ॥ ६१ ॥ मंडन आदिसे स्त्रीके कांतिमंती होनेपर पतिके स्नेहसे प-रपुरुषका संसर्ग न होनेके कारण वह कुलप्रकाशमान होता है और उसके न शो-भित होनेपर भर्ताके द्वेषसे दूसरे पुरुषका मेल होनेसे सब कुल मलिन होजाता है ६२

कुंविवाहैः क्रियालोपैर्देदीनध्यापनेन च ॥ कुलान्यकुलतां यान्ति  
ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥ शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केव-  
लैः ॥ गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ ६४ ॥

टीका—आसुर आदि बुरे विवाहोंसे और जातकर्म आदि क्रियाओंके लो-पसे और वेदके न पढनेसे और ब्राह्मणका पूजन न करनेसे प्रसिद्ध कुलहीन हो जाते हैं ॥ ६३ ॥ चित्र खींचना आदि शिल्पसे और व्याजके लिये धनके व्यव-हारसे और केवल शूद्रोमे उत्पन्न पुत्रसे और गौ घोडा रथके वेचनेसे खेती कर-नेसे राजाकी नौकरी करनेसे कुलोंका नाश होजाता है ॥ ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्ति क्येन च कर्मणाम् ॥ कुलान्याशु वि-  
नश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ ६५ ॥ मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुला-  
न्यल्पधनान्यपि ॥ कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ ६६ ॥

टीका—अयाज्य जो हैं ब्राह्म्य आदि तिनको यजनकरानेसे और श्रौत स्मार्त्त कर्मोंके न माननेसे और वेदके मंत्रों करि हीन होनेसे सब कुल शीघ्र नाश होजा-ते हैं ॥ ६५ ॥ यद्यपि धनसे कुल होते हैं यह बात लोकमें प्रसिद्ध है तिसपर भी थोड़े धनवाले भी कुल वेदके पढने और उसके अर्थके ज्ञाननेसे ऊंचे कुलोंकी गण-नामें गने जाते हैं और बड़ी भारी प्रसिद्धि पाते हैं ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वते गृह्यं कर्म यथाविधि ॥ पञ्चयज्ञविधानं च  
पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥ ६७ ॥ पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पे-  
षण्युपस्कर्तुः ॥ कण्डनी चोदकुम्भश्च बर्ध्यते यास्तु वाहयन् ॥ ६८ ॥

टीका—वैवाहिक अग्निमें सायंकाल और प्रातःकालका गृह्यमें कहा हुआ

होम और अष्टका आदि विधिपूर्वक और पंचयज्ञोंमेंसे प्रतिदिन करनेयोग्य बलि वैश्वदेव आदिको और नितके पाककोभी गृहस्थ उसी अग्निमें करै ॥ ६७ ॥ गृहस्थके ये पाँच हिंसाके स्थान हैं चूल्हा १ चक्री २ लुहारी ३ ओखली मूसल ४ जलकाघट ५ इनको अपने काममें लाता हुआ पुरुष पापों करि युक्त होता है ६८

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ॥ पञ्च कृतां महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो देवो बलिर्भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

टीका—उन चूल्हा आदि पाँच वधके स्थानोंसे उत्पन्न पापके नाशके लिये क्रमसे पाँच यज्ञ मनु आदि आचार्योंने प्रतिदिन गृहस्थोंके करनेको कहे हैं ॥ ६९ ॥ उन पंचयज्ञोंके नाम लिखते हैं ॥ वेदका पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है १ तर्पण कहिये अन्न आदिसे अथवा जलसे पितरोंका तृप्त करना पितृयज्ञ है २ आगिमें होम करना देवयज्ञ है ३ भूतोंको बलि देना यह भूतयज्ञ है ४ अभ्यागतका सत्कार करना यह मनुष्ययज्ञ है ये पाँचो महायज्ञ कहे गये ॥ ७० ॥

पञ्चेतान्यो महायज्ञान्ना हापयति शक्तिरतः ॥ स गृहेऽपि वसन्नि  
त्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥ देवतातिथिभृत्यानां पितृणामा  
त्मनश्च यः ॥ न निर्वर्पति पञ्चानामुच्छ्वसन्नं स जीवति ॥ ७२ ॥

टीका—जो पुरुष इन पाँच महायज्ञोंको शक्तिसे कभी नहीं छोड़ता है वह सदा घरमें बसता हुआभी सूनाके दोषों करि लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥ देवता कहनेसे देवता और भूत दोनो जाने चाहिये क्यों कि भूतोंकोभी देवता-रूपसे बलि दीजाती है और भृत्य कहिये सेवक और पितृ कहिये बूढ़े मातापिता आदिका और सब भावसे अपना पालन तौ अवश्यही करतव्य है और जो देवता आदि पांचका अन्न नहीं देता है वह श्वास लेताभी जीता नहीं है किंतु मरे हुएके समान है ॥ ७२ ॥

अहुतं च हुतं चैर्वतर्था प्रहुतमेव च ॥ ब्राह्मं हुतं प्राशितं च पञ्चै  
ज्ञान्प्रर्चक्षते ॥ ७३ ॥ जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बली  
ब्राह्मं हुतं द्विजाग्रार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

टीका—अन्य मुनीश्वरोंने इन्ही पंचयज्ञोंके नाम दूसरे प्रकारसे कहे हैं जैसे अहुत १ हुत २ प्रहुत ३ ब्राह्मं हुत ४ और प्राशित ५ ॥ ७३ ॥ अहुत कहिये ब्र-

ह्ययज्ञ नाम जप और हुत कहिये देवयज्ञ नाम होम प्रहुत कहिये भूतयज्ञ नाम भूतबलि और ब्राह्मयहुत कहिये मनुष्ययज्ञ नाम श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा और प्राशित कहिये पितृयज्ञनाम नित्य श्राद्ध ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादैवै चैवे हं कर्मणि ॥ दैवकर्मणि युं  
क्तो हि विभर्ती दं चराचरम् ॥ ७५ ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगा  
दित्यमुपतिष्ठते ॥ आदित्यार्जायते वृष्टिर्वृष्टेर्न्न ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

टीका—जो दरिद्रता आदि दोषसे अतिथिको भोजन देना आदि करनेको न समर्थ होय तौ ब्रह्मयज्ञमें सदा लगा रहै क्यों कि दैव कर्ममें लगा हुआ पुरुष इस चराचरसंसारको धारण करताहै ७५ यजमान करि अग्निमें अच्छी तरहसे डाली हुई आहुति रसोंके सींचनेवाले होनेसे सूर्यको पहुचती है और सूर्यसे वर्षा होताहै वर्षासे अब्र उत्पन्न होताहै और अब्रके भोजन आदिसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ॥ तथा गृहस्थमश्रि-  
वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥ यस्मात्र्योऽप्याश्रमिणो ज्ञाने-  
नान्नैव चान्वहम् ॥ गृहस्थेनैव धीर्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ७८

टीका—जैसे हृदयमें स्थित प्राणनाम पवनके आश्रयसे सब जीव जीतेहैं वै-  
सेही गृहस्थके सहारेसे सब आश्रम निर्वाह करते हैं ॥ ७७ ॥ गृहस्थ सब आश्र-  
मवालोंके प्राणके समान है यह कहा है इसीको सिद्ध करते हैं जिसे गृहस्थके  
सिवाय तीन आश्रमी वेदका अर्थ व्याख्यान करनेसे और अब्रके देनेसे सद्-  
गृहस्थोंहि करि सदा उपकार किये जाते हैं तिससे गृहस्थ जेठा आश्रम है ७८ ॥

संघोर्ध्वः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥ सुखं चेहं च्छता नि-  
त्यं योऽर्धायो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥ ऋषयः पितरो देवा भूता-  
न्यतिथर्यस्तंथा ॥ आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ८०

टीका—अक्षय स्वर्गकी इच्छा करनेवाले और इस लोकमें स्त्रीका भोग तथा  
स्वादिष्ट अब्र आदिके भोजनके सुखको सदा चाहनेवाले पुरुषको यह ग्रहस्था  
श्रम यत्नसे धारण करनेयोग्य है दुर्बलेन्द्रिय कहिये इंद्रिय जिनके वशमें नहीं है  
उनको जिसका धारण करना कठिन है ॥ ७९ ॥ ऋषि पितर देवता भूत और  
अभ्यागत थे गृहस्थोंसे प्रार्थना करते हैं इसीसे शास्त्रके जाननेवालेको उनके  
लिये करना चाहिये ॥ ८० ॥

स्वाध्यायेनार्चयेत्तर्षांन्हो मर्देषान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्च नृ-  
नन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनो-  
दकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्षीर्षिं पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥

टीका—स्वाध्याय जो वेदपाठ है तिस्से ऋषियोंको और होमसे देवताओंको और श्राद्धोंसे पितरोंको और अन्नसे मनुष्योंको और बलिकर्मसे भूतोंको यथाविधि कहिये शास्त्रके अनुसार पूजै ॥ ८१ ॥ अन्न-आदिसे वा जलसे अथवा दूध मूल फलोंसे पितरोंके अर्थ प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाश्वयज्ञिके ॥ न चैवात्राशयेत्किं-  
चिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥ ८३ ॥ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ  
विधिपूर्वकम् ॥ अर्च्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ८४

टीका—पितरोंके निमित्त पंचयज्ञोंमेंसे एकभी ब्राह्मणको भोजन करावै और वैश्वदेवके लिये किसी ब्राह्मण को यहा भोजन न करावै ॥ ८३ ॥ आवसथ्यअग्निमें सिद्ध किये हुए वैश्वदेव अन्नका इन देवताओंके लिये ब्राह्मण प्रतिदिन विधिपूर्वक होम करै ॥ ८४ ॥

अग्नये सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥ विश्वेभ्यश्चैव दे-  
वेभ्यो धन्वन्तरय एवं च ॥ ८५ ॥ कुर्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय-  
एवं च ॥ सहद्यावापृथिव्योश्चै तथो स्विष्टकृतेऽन्तर्तः ॥ ८६ ॥

टीका—वे देवता येंहैं ॥ पहले अग्नये स्वाहा सोमायस्वाहा फिर अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ए दोनोका एकसाथ करकै फिरि समस्त देवताओंका होम करै तिस पीछे विश्वेदेवोंके निमित्त और धन्वन्तरिके लिये होम करै ॥ ८५ ॥ कुर्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यां अग्नये स्विष्टकृते इन सर्वोंके अंतमें स्वाहा लगाकै होम करै ॥ ८६ ॥

एवं सम्यग्घर्षित्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥ इन्द्रान्तकाप्पतीन्दु-  
भ्यः सानुगेभ्यो बलिहरत् ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेद-  
प्स्वद्भ्य इत्यपि ॥ वर्नस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलुखले हरेत् ॥ ८८

टीका—ऐसे उक्त प्रकारसे अच्छीं भांति चित्तलगाकै देवताके ध्यानमें तत्पर हो होम करकै सब पूर्व आदि दिशाओंमें प्रदक्षिण पुरुषसहित इंद्र आदि देवताओंके लिये बलिदे सो जैसे प्राच्यां इन्द्रायनमः । इंद्रपुरुषेभ्योनमः । दक्षिण-

स्यां यमायनमः यमपुरुषेभ्योनमः । पश्चिमस्यां वरुणायनमः वरुणपुरुषेभ्योनमः  
उत्तरस्यां सोमायनमः । सोम पुरुषेभ्योनमः ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्योनमः ऐसे कहकर  
द्वारमें बलिदे और अद्रच्योनमः ऐसे कहकर जलमें बलि दे और वनस्पति  
भ्योनमः ऐसे कहकर ओखलीमूसलमें बलि दे ॥ ८८ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतैः ॥ ब्रह्मवास्तोष्पति  
भ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमा  
काश उक्षिपेत् ॥ दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ ९० ॥

टीका—वास्तुपुरुषके शिरपर उत्तर पूर्व दिशामें श्रीके लियेदे और उसीके  
पांयोंपर दक्षिण पश्चिम दिशामें भद्रकालीके लिये बलि दे और कोई आचार्य  
उच्छीर्षका रहस्यके सोनके सिरहोनेको और पादतः यह उसीकी पैरोंकी भूमि  
को कहते हैं और ब्रह्म तथा वास्तुका पति इन दोनोंके लिये घरके बीचमें बलि  
दे ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्योनमः ऐसे कहिके घरके आकाशमें बलिदे दिवाचरे-  
भ्यो भूतेभ्यो नमः ऐसे कहिके दिनमें बलिदे और नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः  
ऐसे कहिके रात्रिमें बलिदे ॥ ९० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ॥ पितृभ्यो बलिशेषं तु  
सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापं  
रोगिणाम् ॥ वायसानां कृमीणां च शूनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥

टीका—घरके ऊपर जो घर होता है उसको पृष्ठ वास्तु कहते हैं वहाँ अथवा  
बलि देनेवालेके पीछेकी भूमिमें सर्वात्मभूतयेनमः ऐसे कहिके बलि दे कहे हु-  
ए बलिदानसे बचाहुआ सब अन्न दक्षिणको मुख करि दक्षिणदिशामें स्वधा पि-  
तृभ्य ऐसे कहिके बलि दे प्राचीनावीती हो इस बलिकोदे ॥ ९१ ॥ और अन्नपात्रमें  
निकालकर कुत्ता पतित चण्डाल और पापरोगी कहिये कुष्टी और क्षयी रोगवाला  
कौआ और कीड़े इनके लिये हौलेसे जिसमें रज न लगे ऐसे भूमिमें बलिदे ॥ ९२ ॥

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥ स गच्छति परं स्थां  
न तेजोमूर्तिः पृथगुना ॥ ९३ ॥ कृत्वैतद्बलिकर्मैवमर्तिथिं पूर्वमाशं  
येत् ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्भिषिब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंको अन्नदान आदिसे नित्य पू-  
जता है वह परम स्थान कहिये ब्रह्मरूप तेजोमूर्ति स्वप्रकाशको अर्चिरादि मा-

गर्भसे प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीज होजाताहै क्यों कि ज्ञानसे और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९३ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इस बलिकर्मको करिकै घरके मनुष्योंसे पहले अतिथिको भोजन करावे और संन्यसी तथा ब्रह्मचारीको गौतम आदि करि कही हुई विधिसे भिक्षाका दान करै ॥ ९४ ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः ॥ तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥ भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विधिवत् कहिये सोनेके सींग आदि मढाकै गुरुको गौ देनेसे जो फल होताहै वह फल गृहस्थको विधिपूर्वक भिक्षा देनेसे प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ अधिक अन्न न होनेपर एक ग्रासके प्रमाण व्यंजन आदि करि युक्त भिक्षाको भी उसके भी होनेमें जलसे भरे हुए पात्रकोभी फल पुष्प आदिसे सत्कार करिकै तत्त्वसे वेदका अर्थ जाननेवाले ब्राह्मणके अर्थ स्वस्तिवाच्य इत्यादि विधिसे दान करै ॥ ९६ ॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविज्ञानताम् ॥ भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाददत्तानि दातृभिः ९७ ॥ विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥ निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किंत्विषात् ॥ ९८ ॥

टीका—अज्ञानसे पात्रको न पहिचानकर देवता और पितरोंके निमित्त वेदके पढ़ने और उसके अर्थके जाननेरूप तेजके न होनेसे भस्मके समान पात्रोंमें दाताओं करि दिये हुए दान निष्फल होते हैं ॥ ९७ ॥ विद्या तथा तप रूप तेजसे युक्त ब्राह्मणोंके मुख अग्निके समान होते हैं उनमें डाला गया हव्य कव्य आदि इस लोकमें कठिन रोग और शत्रु तथा राजपीडा आदि भयसे और बड़े प्रापसे बचाता है ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ॥ अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ शिलानप्युद्धतो नित्यं पञ्चाग्नीर्नपि जुह्वतः ॥ सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽर्चतोऽवसन् ॥ १०० ॥

टीका—आमसे आये हुए अतिथिके लिये आसन और पेरधोने के लिये जल और शक्तिके अनुसार व्यंजन आदियुक्त अन्न आगे कही हुई विधिसे दे ॥ ९९ ॥ कटे हुए खेतमें जो पड़ा हुआ वाकी रहजाताहै उसको शिलकहते हैं उसशिलसे



जीविका करनेवाले और दक्षिणाग्नि १ गार्हपत्य २ आहवनीय ३ तीनि ये और आवसथ्य ४ तथा सभ्य ५ इन पांचो अग्नियोंमें होम करते हुए पुरुषके संपूर्ण पंचाग्निमें होम आदि करनेसे जोडे हुए पुण्योंके विना पूजा हुआ अतिथि बसते हुए ले लेताहै ॥ १०० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्तुर्थी च सूनृता ॥ एतान्यपि संतां गेहे<sup>१</sup>  
नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १ ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः  
स्मृतः ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मार्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २ ॥

टीका—अन्न न होय तौ तृण १ विछानेके लिये विश्रामके लिये भूमि २ पैर धोने आदिके लिये जल ३ प्यारे वचन ४ ये सब अतिथिके लिये धर्मात्मा गृहस्थके घरमें कभी नहीं दूर होते हैं अर्थात् अवश्य देने पडते हैं ॥ १ ॥ अतिथिका लक्षण कहते हैं ॥ केवल एक राति पराये घरमें बसता हुआ ब्राह्मण सदा न रहनेसे अतिथि होताहै नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥ २ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सार्द्धैतिकंतथा ॥ उपस्थितं गृहे विद्या  
द्रार्या यत्राग्रयोऽर्पि वा ॥ ३ ॥ उपसते ये गृहस्थाः परंपाकमबु  
द्धयः ॥ तेन ते प्रेत्य पशुतां ब्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ ४ ॥

टीका—एक गांवका रहनेवाला होय और लोकमें विचित्र हंसीकी कथा आदिसे संगति करि जीविका चाहनेवाला जो भार्या और अग्नियुक्त घरमें वैश्वदेवके समयमेंभी आवै तौ उसको अतिथि न जानिये ॥ ३ ॥ निषिद्ध पराये अन्नके दोषको न जाननेवाले जे गृहस्थ आतिथ्यके लोभसे दूसरे ग्रामोंमें जाके पराये अन्नका सेवन करते हैं वे उस पराये अन्नके भोजनसे दूसरे जन्ममें अन्न आदि देनेवालोंके पशु होते हैं तिस्से इसको न करै ॥ ४ ॥

अप्राणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योदो गृहमेधिना ॥ काले प्रातस्त्वर्का  
ले वा नैस्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥ ५ ॥ न वै स्वयं तदश्रीयार्दतिथि  
यन्न भोजयेत् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वैर्यं वातिथिपूजनम् ॥ ६ ॥

टीका—सूर्यके अस्तहोनेपर आये हुए अतिथिको निषेध न करै क्योंकि सूर्य करि पहुंचाया गया वह रात्रिमें अपने घरको नहीं जा सकताहै द्वितीय वै-

श्वदेवके समय आया होय अथवा कुम्भमयमें सायंकालका भोजन हो चुकनेपर आया होय तौभी अतिथि इस गृहस्थके घरमें विना भोजनके न बसै अर्थात् उसके कुछ भोजन अवश्य देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो मी दही आदि उत्तम भोजन अतिथिको न दे वह उसको विना दिये आपभी न खाय क्योंकि अतिथिका भोजन धन्य कहिये धनके लिये हित है और यशका देनेवाला तथा आयुष्यका बढ़ानेवाला है और स्वर्गको देता है ॥ ६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥ उत्तमेष्टमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ ७ ॥ वैश्वदेवे तु निवृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ॥ तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ ८ ॥

टीका—आसन अथवा मृगचर्म और सोनेको शय्या तथा खटिया आदि और जानेके समय पहुँचानेको साथ जाना और सेवा ये सब जो बहुतसे अतिथि एकही समय आवैं तौ उनमें आपसकी अपेक्षासे उत्तम मध्यम और निकृष्ट सातिरी अर्थात् जो जैसा होय उसकी वैसीहि करै सबकी एकसी न करै ॥ ७ ॥ अतिथि भोजनतक वैश्वदेव करनेपर जो और अतिथि आवैं तौ उसके लिये फिर रसोई करकै अन्न दे और उसमेंसे बलि न निकालै ॥ ८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ॥ भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥ ९ ॥ न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ॥ वैश्यशूद्रौ संखा चैवं ज्ञातयो गुरुरेवं च ॥ १० ॥

टीका—ब्राह्मणअपने कुल तथा गोत्रको भोजनकेलिये न कहै जिस्से भोजनके लिये उनको कहता हुआ वह पंडितों करिकै वांताशी कहा गयाहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके घरमें क्षत्रिय आदि अतिथि नहीं होते है क्योंकि क्षत्रिय आदि ब्राह्मणसे हीन जातिहै और मित्र तथा ज्ञातिको अपने संबंधसे तथा गुरु प्रभु होनेसे अतिथि नहीं होता इस न्यायसे क्षत्रियके ऊँची ज्ञाति ब्राह्मण और अपनी जातिका क्षत्रिय अतिथि होताहै और हीन वैश्य शूद्र नहीं ऐसेही वैश्यके द्विजाति अतिथि होतेहैं शूद्र नहीं ॥ १० ॥

यदि त्वतिथिर्धर्मेण क्षत्रियो गृहमार्रजेत् ॥ भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कां मं तमपि भोजयेत् ॥ ११ ॥ वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथि धर्मिणौ ॥ भोजयेत्सहभृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥ १२ ॥

टीका—जो दूसरे ग्रामसे आने और अतिथिके कालमें प्राप्त होनेसे क्षत्रिय अतिथि धर्मसे ब्राह्मणके घर आवै तौ ब्राह्मणके घर आये हुए ब्राह्मणोंके भोजन करके बैठनेपर इच्छासे उसकोभी भोजन करावै ॥ ११ ॥ जो वैश्य शूद्रभी ब्राह्मणके घरमें आवैं और दूसरे ग्रामसे आनेके कारण अतिथि धर्म करि युक्त हो-य तौ उनकोभी क्षत्रियके भोजनके पीछे स्त्री पुरुषके भोजनसे पहले सेवकोंके भोजन समय दया करके भोजन करावै ॥ १२ ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ॥ सस्कृत्यान्नं यथांशं  
क्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ १३ ॥ सुवासिनीः कुमाराश्च रोगि-  
णो गर्भिणीस्तथा ॥ अतिथिभ्योऽग्रं एवेतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—कहे हुए भोजनके समय क्षत्रिय आदिकोंके बिना प्रीतिसे घरमें आ-ये हुए अतिथि धर्मसे नहीं ऐसे मित्र सहपाठी आदिकोंको शक्तिके अनुसार अ-च्छा अन्नकरके भार्य्याके भोजन समयमें भोजन करावै ॥ १३ ॥ सुवासिनी कहि-ये नवीन व्याही हुई स्त्री वहु बेटीको बालकोंको रोगियोंको और गर्भवाली स्त्रि-योंको अतिथिभोजनसे पहलेही विनाविचारके भोजनकरावै ॥ १४ ॥

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः । स भुञ्जानो न जा-  
नाति श्वगृध्रैर्जग्धिर्मात्मनः ॥ १५ ॥ भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु  
भृत्येषु चैवं हि भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ १६ ॥

टीका—व्यतिक्रम भोजनके दोषको न जानता हुआ जो इन अतिथिको आ-दिले भृत्योंतकको भोजन न देकर पहले आप भोजन करताहै वह मरनेके पीछे कुत्ता गीध करिके अपना भक्षण नहीं जानताहै ॥ १५ ॥ ब्राह्मण अतिथि ज्ञाति सेवक इन सबोंके भोजन करनेपर बचे हुए अन्नको पीछे स्त्रीपुरुष भोजन करै १६

देवानंृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्यांश्च देवर्ताः । पूजयित्वा ततः पश्चां  
गृहस्थः शेषं भुङ्गन् भवेत् ॥ १७ ॥ अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्म-  
कारणात् । यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सर्तमन्नं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका—देवता ऋषि मनुष्य पितृ और गृह्यदेवता इन सबोंका पूजन करके तिस पीछे गृहस्थ वाकीरहे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ जो अपनेही लिये अ-न्नका पाक करके भोजन करताहै वह केवल पापहीको खाताहै अन्नको नहीं पा-कयज्ञसे शेष रहे अन्नको अन्न कहते है और इसीको सज्जनोंका अन्न कहते है ॥ १८

राजर्त्विक्स्नातकगुरुन्प्रियंश्चशुरमातुलान् । अर्हयेन्मधुपर्केण  
परिसंवत्सरत्पुनः ॥ १९ ॥ राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युप  
स्थितौ । मधुपर्केण संयुज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥ १२० ॥

टीका—अतिथिकी पूजाके असंगसे घरमें आये हुए राजा आदिकों कीभी पूजा कहते हैं । राजा ऋत्विक् स्नातक गुरु जामाता ससुर और मामा घरमें आये हुए इन सातोंका एक वर्ष पीछे आनेपर गृहमें कहे हुए मधुपर्कसे पूजन करे ॥ १९ ॥ जो राजा और स्नातक एकवर्षके उपरांतभी यज्ञकर्ममें आवें तौ मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं यज्ञके विना नहीं वह मर्यादा है और जामाता आदि तौ वर्षके उपरांत यज्ञके विनाभी मधुपर्कके योग्य है और संवत्सरके मध्यमें तौ सबको यज्ञ और विवाहहीमें मधुपर्कदिया जाता है अन्यत्र नहीं ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्नं बलिं हरेत् । वैश्वदेवं हि नामै  
तत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ २१ ॥ पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चैन्दुक्षये  
ऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ २२ ॥

टीका—संध्यासमय सिद्ध किये हुए अन्नसे पत्नी विनामंत्रके बलि निकाले जिसे अन्नसे करने योग्य होम बलिदान अतिथिभोजनरूप वैश्वदेवनामकर्म सायंकाल प्रातःकाल गृहस्थके लिये कहा गया है ॥ २१ ॥ अग्निहोत्री द्विज अमावास्याके दिन पिंडपितृयज्ञनाम कर्म करिके श्राद्ध करे पितृयज्ञ और पिंडोंके पीछे जो किया जाय उसको पिंडान्वाहार्यक श्राद्ध कहते हैं वह प्रतिमास कहिये महीने २ में करना चाहिये ॥ २२ ॥

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः । तर्क्षामिषेण कर्त्तव्यं  
प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वज्र्या  
द्विजोत्तमाः । यावन्तश्चैवैश्चान्ने स्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २४ ॥

टीका—पितरोंके मासिक श्राद्धको पिंडित अन्वाहार्य कहते हैं वह श्राद्ध आगे कहे हुए अच्छे मनोहर दुर्गंध आदि करि रहित मांससे यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २३ ॥ उस श्राद्धमें जे भोजन करानेयोग्य हैं और जे छोड़ने योग्य हैं और जितने तथा जिन अन्नों करिके सो सब कहता हौं ॥ २४ ॥

द्वौ द्वौ वे पितृकार्ये त्रीनैकैर्कर्मभयत्र वा । भोजयेत्समृद्धोऽपि न

प्रसंज्ञेत विस्तरे ॥२५॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसं  
पदः । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्ने हेतुं विस्तरम् ॥ २६ ॥

टीका—दैव श्राद्धमें दो ब्राह्मण और पिता पितामह तथा प्रपितामहके श्राद्धमें तीनि ब्राह्मण अथवा दैवमें एक और पित्र्यमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै धनधान्य युक्त होनेपर भी कहे हुए ब्राह्मणोंसे अधिकको भोजन न करावै अर्थात् विस्तार न करै ॥ २५ ॥ सत्क्रिया कहिये ब्राह्मणकी पूजा और देश कहिये दक्षिणप्रवणत्व आदि जो आगे कहेंगे काल अपराह्न और शौच कहिये शुद्धता और ब्राह्मण संपत्ति कहिये गुणवान् ब्राह्मणका लाभ इन पाचोका विस्तार नाश करना है इस कारण ब्राह्मणोंका विस्तार न करै ॥ २६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये । तस्मिन्पुन्युत्तरस्येति नि-  
त्यं प्रेतकृत्यैर्वै लौकिकी ॥ २७ ॥ श्रोत्रियायैर्वै देवानि हव्यक-  
व्यानि दातृभिः । अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ २८ ॥

टीका—जो यह श्राद्धरूप पितरोंका कर्म है सो प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारके लिये किया प्रसिद्ध है सो विधुक्षये कहिये अमावास्याको करनी चाहिये उस पितरोंके कर्ममें लगे हुए पुरुषकी लौकिकी तथा स्मार्त्तिकी प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारार्थ किया गुणवान् पुत्र पौत्र और धन आदिफलके प्रबंध रूपसे कर्त्ताको प्राप्त होती है तिससे यह कर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ दातृओंको दैव पित्र्य अर्थात् हव्य कव्यके अन्न श्रोत्रिय जो वेदपाठी है तिसको यत्नसे देने चाहिये क्योंकि वेद आचार और कुटुंबसे अतियोग्य ब्राह्मणको दिया हुआ बड़े फलका देनेवाला होता है ॥ २८ ॥

एकैकमपि विद्वांसदैवे पित्र्ये च भोजयेत् । पुष्कलं फलमाप्नो-  
ति नामन्वज्ञान्वद्नृनपि ॥ २९ ॥ दूरादेर्वै परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारग-  
म् ॥ तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ ३० ॥

टीका—दैव और पित्र्यकर्ममें एक एक वेदके तत्त्व जाननेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै तो भी अधिक श्राद्धके फलको प्राप्त होय बहुतसे मूर्ख ब्राह्मणोंको न भोजन करावै ॥ २९ ॥ पहले वेदकी संपूर्ण शाखा पढ़नेवाले ब्राह्मणकी परीक्षा करै जिससे वह उसप्रकारका ब्राह्मण हव्य कव्योंका तीर्थ कहिये पात्र है देनेमें वह अतिथिके समान बड़े फलकी प्राप्ति का कारण है ॥ ३० ॥

सहस्रं हि' सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ॥ एकस्तौन्मन्त्रविप्रीतः  
सर्वानहति धर्मतः ॥ ३१ ॥ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवीं  
षि च ॥ न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरैरेव शुद्ध्यतः ॥ ३२ ॥

टीका—जिस श्राद्धमें वेदके न जाननेवाले ब्राह्मण दसलाख भोजन करें व-  
हां वेदका जाननेवाला भोजनसे संतुष्ट हुआ एक ब्राह्मण धर्मसे उन सबोंकी व-  
रावर है अर्थात् जो फल दसहजार मूर्खोंके भोजनकरानेसे होता है वह एक वे-  
दपाठीके भोजन करानेसे मिलता है ॥ ३१ ॥ विद्यासे बड़े ब्राह्मणोंको हव्यक-  
व्य देने चाहिये मूर्खोंको नहीं क्योंकि रुधिरके भरे हुए हाथ रुधिरहीसे शुद्ध न-  
ही होते हैं किंतु निर्मल जलसे ऐसे मूर्खके भोजनसे उत्पन्न हुआ दोष मूर्खके  
भोजनसे नहीं दूरि होता है किंतु विद्वानके ॥ ३२ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥ तावतो ग्रसते  
प्रेत्य दीर्तशूलष्टर्चयोगुडान् ॥ ३३ ॥ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः कर्त्तव्यो  
निष्ठास्तथापरे ॥ तपः स्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ ३४ ॥

टीका—वेदका न जाननेवाला ब्राह्मण हव्यकव्योंमें जितने ग्रासोंको खाता-  
है उतनेही जलते हुए शूलों और ऋष्टिनाम शंखोंको और लोहके पिंडोंको श्राद्ध  
करनेवाला मरके यमलोकमें खाता है ॥ ३३ ॥ कोई आत्मज्ञानमें तत्पर होते हैं  
और कोई प्राजापत्य आदि तपमें और कोई तप तथा वेदाध्ययनमें लगे रह-  
ते हैं और कोई यज्ञ आदि कर्मोंमें तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठयाप्यानि यत्नतः हव्यानितुं यथान्या  
यं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ ३५ ॥ अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्देदं  
पारगः ॥ अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्देदं पारगः ॥ ३६ ॥

टीका—पितरोंका अन्न यत्नसे ज्ञान प्रधान ब्राह्मणको देना चाहिये और दे-  
वताओंका अन्न तौ न्यायसे अर्थशास्त्रके अनुसार चारोंको देना योग्य है ॥ ३५ ॥  
जिसका पिता वेद नहीं पढ़ा है और आप पुत्र वेदका पारगामी है अथवा  
पुत्र वेद नहीं पढ़ा है पिता वेदका पारगामी है ॥ ३६ ॥

जायामनयोर्विद्यायस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ॥ मन्त्रसंपूजनार्थं तु  
संस्कारमितरोऽर्हति ॥ ३७ ॥ श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य

संग्रहः॥नारिं० न० मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्विजम् ॥३८॥

टीका—इन दोनोंमेंसे जिसका पिता वेदपाठी है उसको चाहै आप वेद न पढा हो परन्तु श्रेष्ठ जानिये और जिसका पिता वेदपाठी नहीं है और आप वेदपाठी है वह वेदमंत्रोंकी पूजाके लिये सत्कारके योग्य है ॥ ३७ ॥ श्राद्धमें मित्रको न भोजनकरावै अन्यधनोंसे उसकी मित्रता पूरी करनी चाहिये जिसको शत्रु और मित्र न जानै अर्थात् उदासीन वृत्ति होय उस ब्राह्मणको भोजनकरावै ॥ ३८ ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविः पुत्रं ॥ ३९ ॥ यं संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ॥ सर्वगार्ह्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विर्जाधमः ॥ १४० ॥

टीका—जिसके श्राद्ध और हवामें अर्थात् दैवपितृय कर्ममें मित्रोंकी प्रधानता होती है उस श्राद्ध और हविका फल परलोकमें नहीं मिलता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य शास्त्रके न जानेसे श्राद्धके द्वारा संगत जो मित्रभाव है ताहि कर्त्ता है वह श्राद्धमित्र-द्विजोंमें अधम स्वर्गलोकसे पतित होता है अर्थात् स्वर्गको नहीं पाता है ॥ १४० ॥

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ईहवांस्ते तु सां लोके गौरं न्धैवैकवेर्मनि ॥ ४१ ॥ यथेरिणे बीजमुत्वा न वृत्ता लभते फलम् ॥ तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ ४२ ॥

टीका—जिसमें बहुतसे मनुष्यमिलिके साथ भोजन करै वह सहभोजिनी दक्षिणापिशाचका धर्म होनेसे द्विजों करि पैशाचीकही गई है उसका फल मैत्री है इसकारणसे वह इसीलोकमें है परलोकमें ऐसे फल देनेवाली नहीं होती है जैसे एकघरमें स्थित अंधी गौ दूसरे घरमें नहीं जासकती ॥ ४१ ॥ जैसे उस-रमें बीजवोयकै बोनेवाला फलको नहीं पाता है ऐसे मूर्खको भोजन कराकै दाता श्राद्धके फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

दातृन्प्रति ग्रहितंश्च कुरुते फलभागिनः ॥ विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥ ४३ ॥ कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ॥ द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥ ४४ ॥

टीका—वेदतत्त्वके जाननेवाले ब्राह्मणको शास्त्रके अनुसार दिया हुआ दान देनेवाले और लेनेवाले दोनोंको इस लोक तथा परलोकमें फल देता है ॥ ४३ ॥ विद्वान् ब्राह्मणके न मिलनेपर गुणवान् मित्रको भोजन करावै और शत्रु वि-

द्वानभी होय तौ उसको भोजन न करावै क्योंकि शत्रु करि स्वाया श्राद्ध-  
पर लोकमें निष्फल होताहै ॥ ४४ ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वचं वेदपारगम् ॥ शाखान्तगमर्थार्थैर्वयुं  
छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ ४५ ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्ध  
मर्चितः । पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती सातपौरुषी ॥ ४६ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप शाखा पढ़नेवाले ऋग्वेदीको श्राद्धमें यज्ञसे भोजन  
करावै और वैसेही अर्थात् समस्तवेदके पढ़नेवाले यजुर्वेदीको भोजन करावै और  
समाप्तिपर्यन्त वेद पढ़नेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै ॥ ४५ ॥ इन संपूर्ण शाखा  
पढ़नेवाले बह्वच आदिमेंसे जिसके यहां सत्कारपूर्वक भोजन करताहै उसकी पुत्र  
आदि सात पुरुषोंकी सदा बरोबर सातपुरुषोंतक पितरोंकी तृप्ति होतीहै ॥ ४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं ज्ञे  
यः सदा सद्भिर्नुष्ठितः ॥ ४७ ॥ मातामहं मातुलं च स्वस्नीयं श्वशु  
रं गुरुम् । दौहित्रं विपतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ ४८ ॥

टीका—हव्यकव्य दोनोंके देनेमें जो संबन्ध रहित श्रोत्रिय आदिकोंको दि-  
या जाता है यह मुख्य कल्प है और मुख्यके न होनेमें आगे कहा हुआ अनुक-  
ल्प जानिये जो सदा सज्जनो करिके किया गयाहै ॥ ४७ ॥ नाना मामा भान-  
जा ससुर गुरु दौहिता जमाई और बंधु कहिये मौसी तथा बुआका पुत्र आदि  
ऋत्विक् तथा याज्य इन दशको मुख्य श्रोत्रिय आदिके न होनेमें भोजन करावै ४८

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्तिं प  
रीक्षेत प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥ ये स्तेनपतितकृिवा ये च नास्तिकवृत्त  
यः । तान्हव्यकव्ययोर्विप्रानर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ ५० ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला दैव श्राद्धमें ब्राह्मणकी भोजनकेलिये यज्ञसे  
परीक्षा न करै लोककी प्रसिद्धिहीसे यह साधुतासे भोजन कराने योग्यहै और  
फिर पितृसंबन्धी कार्यके अन्तेपर पिता पितामह आदिकी परीक्षा करनी योग्य  
है ॥ ४९ ॥ चोर पतित कहिये महापातकी नपुंसक नास्तिक कहिये जो पर-  
लोकको नमाने इन सबोंको दैव और पित्र्यकर्ममें मनुने अयोग्य कहाहै ॥ ५० ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कर्तव्यं तथा । याजयन्ति च ये पूर्णास्तां



अथैश्वर्यं न भोजयेत् ॥ ५१ ॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्र-  
यिणस्तथा । विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥ ५२ ॥

टीका—जदाधारी होय अथवा मूडमुढाये होय ऐसा ब्रह्मचारी और वेदपढने रहित  
अर्थात् जिसका यज्ञोपवीतही हुआ है वेद नहीं पढ़ाया गया और बुरीचमडीवा-  
ला और जुआरी और जो बहुतसे मनुष्योंको रंजनकराता है जैसे ग्राम याजक  
इन सर्वोंको श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ५१ ॥ वैद्योंको मंदिर धारियोंको मा-  
सवेचनेवालोंको वणिज करनेवालोंको दैवपित्र्यकर्ममें भोजन न करावै ॥ ५२ ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुन्खी श्यावदन्तकः । प्रतिरोद्धा गुरोश्चै-  
व त्यक्ताग्निर्वाङ्मुषिस्तथा ॥ ५३ ॥ यक्ष्मी च पशुपालश्च परि-  
वेत्ता निराकृतिः । ब्रह्मद्विद् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ ५४ ॥

टीका—गाँवकी और राजाकी आज्ञा करनेवाला जैसे हलकारा कुन्खी क-  
हिये जिसके नखरोगसे विगड़े होय और काले दातवाला गुरुकी आज्ञा न मा-  
ननेवाला और जिसने श्रौत स्मार्त अग्नि छोड़दी है और व्याजस्नानेवाला ये  
सब दैवपित्र्यकर्ममें वर्जित है ॥ ५३ ॥ क्षयरोगवाला और पशुपाल जो जी-  
विकाके लिये बकरी भेड़ आदिका चरानेवाला और परिवेत्ता परिवित्ति जिन-  
के लक्षण आगे कहेंगे और निराकृति कहिये पंचयज्ञोंका न करनेवाला और  
ब्राह्मणोसे द्वेष करनेवाला और गणाभ्यन्तर कहिये गणके लिये त्याग किये  
हुए धनआदिसे जीविकाकरनेवाला ये दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

कुशीलवोऽवकीर्णा च वृषलीपतिरेव च । पौर्नर्भवश्च काणश्च य-  
स्य चोपपतिर्गृहे ॥ ५५ ॥ भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापित-  
स्तथा । शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाङ्मुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ ५६ ॥

टीका—कुशीलव कहिये नाचनेवाला स्वांग आदिसे जीविका करनेवाला और  
अवकीर्ण जिसका व्रत स्त्रीकेयोगसे बिगड़गया होय चाहे ब्रह्मचारी हो वा सं-  
न्यासी और वृषलीपतिकहिये जिसने सवर्णा न व्याहि शूद्रासे व्याह किया हो-  
य और पुनर्भू पुत्र जो आगे कहेंगे और काना जिसके घरमें उपपति कहिये जारहै  
ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५५ ॥ नौकरीलेकर पढ़ानेवाला तथा  
नौकरी लेकर पढ़नेवाला और व्याकरण आदिमें शूद्रका शिष्य और तैसेही  
शूद्रका गुरु और कठोर वाणी बोलनेवाला और कुण्ड जो पतिके जीते हुए जा-

रसे उत्पन्न होय और गोलक जो पृथिवी के मरने पीछे जारसे उत्पन्न होय ये स-  
दैव पित्र्यकर्ममें वर्जितहैं ॥ ५६ ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा । ब्राह्मण्यौ नैश्च सर्वन्धैः  
संयोगं पतितैर्गतः ॥ ५७ ॥ अंगारदाही गरुदः कुण्डाशी सोमैवि  
क्रयी । समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ ५८ ॥

टीका—विनाकारणके मातापिता और गुरुका त्याग करनेवाला अर्थात् उ-  
नकी सेवा आदि न करनेवाला और पढ़ना तथा कन्यादान आदिसे जिसका पति-  
तोसे मेल है ये सब दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करनेयोग्य हैं ॥ ५७ ॥ घरजलानेवा-  
ला और विषदेनेवाला और कुंडका अब खानेवाला और सोमलताका वेचने-  
वाला और समुद्रमें जो जहाजपर चढिके द्वीपांतरको जाय और राजा आ-  
दिकोंकी स्तुति पढ़नेवाला और तेलके लिये तिल आदि बीजोंका, पीसनेवाला  
और झूठीगवाही देनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ५८ ॥

पित्रो विवर्द्धमानश्च कर्तवो मर्द्यपस्तथा । पाँपरोग्यभिर्गुणैश्च  
दाम्भिको रसविक्रयी ॥ ५९ ॥ धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्नेदि-  
धिषूपतिः ॥ मित्रधुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

टीका—प्रिताके साथ शास्त्रार्थमें अथवा लोकमें जो, व्यर्थ विवाद करताहै  
और कितव जो आप जुआ खेलना नहीं जानताहै परंतु अपनेलिये औरोंका  
खेलानेवाला तथा मद्यपीनेवाला और कोढ़ी और निर्णय न होने परभी जिस-  
को महापातक आदि लगि रहे हैं और छलसे धर्म करनेवाला और ईस आ-  
दिके रसका वेचनेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ५९ ॥ धनुष और बाणका बनाने-  
वाला और जेठी बहिनका व्याह न होनेपर जो व्याही जाय उसको अग्नेदिधि-  
षू कहते हैं, उसका पति और जे मित्रकी बुराई करे और जो जुआ खेलनेवाला  
और पुत्र करि पढ़ाया हुआ पिता ये भी सब वर्जितहैं ॥ १६० ॥

भ्रामरी गण्डमाली च श्विर्वैद्यथो पिशुनस्तथा । उन्मत्तोऽन्धश्च  
वैज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ ६१ ॥ हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रै-  
र्यश्च जीवति । पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ ६२ ॥

टीका—भ्रामरीरोगवाला और कंठमारोगवाला और श्वेतकुष्ठयुक्त और  
दुर्जन और उन्मादरोगवाला और अंधा और वेदकी निंदा करनेवाला ये सब

वर्जितहै॥६१॥ हाथी बैल घोडा और ऊंट इन सबोंका सिखानेवाला और ज्योतिषसे जीविका करनेवाला और खेलके लिये पिंजरेमें रखकर पक्षियोंका पालने वाला और शस्त्रविद्याका सिखानेवाला ये सब वर्जित हैं ॥६२॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चोवरणं रतः। गृहसंवेशको दूतो वृक्षा  
रोपक एव च ॥ ६३ ॥ श्वक्रीडी ज्येनजीवी च कन्यादूषक एव  
च। हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ ६४ ॥

टीका—वहते हुए प्रवाहोंके पुल आदिको तोड़के दूसरे देशमें लेजानेवाला और उन्हीं जलोकी निजगतिका रोकनेवाला और वास्तुविद्या जो घर आदि बनानेकी विद्या है उससे जीविका करनेवाला और हलकारा और नौकरी लेकर वृक्षोंका लगानेवाला धर्मके लिये नहीं क्योंकि लिखा है कि पञ्चाभरोपी नर कनयाति अर्थात् धर्मके निमित्त पांच आमके पेड़ोका लगानेवाला नरकको नहीं जाता है इति ये सब ऊपर कहे हुए वर्जित हैं ॥ ६३ ॥ खेलकेलिये कुत्तोंका पालनेवाला और बाजोंके बेचने खरीदनेसे जीविका करनेवाला और कन्यासे गमन करनेवाला और हिंसा करनेवाला और शूद्रोंकी वृत्ति करनेवाला और विनायकादि गणोंका यज्ञ करनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६४ ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा। कृषिजीवी श्लीपदी  
च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ ६५ ॥ औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वा  
पतिस्तथा। प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥

टीका—गुरु और अतिथिके अभ्युत्थान आदि आचारसे रहित और क्लीब कहिये जो धर्मकार्यमें उत्साह रहित होय वह नपुंसक पहले कह चुके हैं और नित्य मागनेसे दूसरेको दिक्क करनेवाला और जो आप खेती करिके खाता है वह श्लीप्रद रोगसे मोटे पैरवाला और किसीकारण साधुओंने जिसकी निंदा की है वह ये सब वर्जित हैं ॥ ६५ ॥ मेढा भैंसी आदिसे जीविका करनेवाला पर और पूर्वा पुनर्भूका पति और धर्मार्थ नहीं किंतु धन लेकर प्रेतका लेजानेवाला और ये सब यज्ञसे वर्जनीय हैं ॥ ६६ ॥

एतान्विर्गहिताचारानपौङ्ग्यान्दिर्जाधमान्। द्विजातिप्रवरो विद्वा  
नुभयत्र विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शा  
म्यति। तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि द्युते ॥ ६८ ॥

टीका—इस जन्ममें निंदितहैं आचार जिनके ऐसे स्तेन अर्थात् चोर आदि-काको और पूर्वजन्ममें इकठे कियेहुए निंदित कर्मोंसे हुआ है काणापन जिनको ऐसे मनुष्योंको औ अपांक्त्य कहिये जो सज्जनोंके साथ एक स्थानमें बैठ-कर भोजनके योग्य न होय ऐसे नीच ब्राह्मणोंको शास्त्रका जाननेवाला ब्राह्मण दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करै ॥ १६७ ॥ जैसे तृणकी अग्नि हविज्जलानेको नही सम-र्थ होती हकिडालनेसे आप बुझिजाती है तौउसमै होम निष्फलहै ऐसेही वेदाध्ययन शून्यब्राह्मण तृणकी अग्निके समानहै उसको देवताके नरमसे छोडाहवि न देना चाहिये क्योंकि भस्ममें होम नही किया जाताहै ॥ १६८ ॥

अपाङ्कदाने यो दातुर्भवंत्यूर्ध्वं फलोदयः । दैवे हविषि पित्र्ये वा  
तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६९ ॥ अत्रतैर्यद्वैजैर्भुक्तं परिवेत्तादिभि  
स्तथा । अपाङ्क्यैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १७० ॥

टीका—पंक्तिमें भोजनके योग्य नही ऐसे ब्राह्मणको दैव तथा पित्र्यहवि दे-नेसे दाताको देनेके पीछे जो फल होताहै उसको संपूर्णतासे कहोंगा ॥ ६९ ॥ वेदके ग्रहणके अर्थ जो व्रतहै उससे रहित तैसेही परिवेत्ता आदिकों करकै तथा अन्य-अपांक्त्य स्तेनआदिकों करकै जो हव्यकव्य स्वायागया उसको राक्षस खाते हैं अर्थात् वह श्राद्ध निष्फल होताहै ॥ १७० ॥

दारोग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्तां स विज्ञेयः प  
रि वित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ७१ ॥ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिवि  
द्यते ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ७२ ॥

टीका—परिवेत्ता आदिका लक्षण कहतेहैं ॥ जो सहोदर बड़े भाईका नव्यां-ह होनेपर और अग्निहोत्र रहित होनेपर विवाह और स्मार्त अग्निका ग्रहण कर-ताहै वह परिवेत्ता और उसका जेठा भाई परिवित्ति होबा है ॥ १७१ ॥ प्रसंससे परिवेदन संबंधी पांचोका अनिष्टफल कहतें हैं ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता जिस कन्यासे विवाह करता है उसकन्याका देनेवाला और विवाह करानेवाला याजक अर्थात् उसविवाहका होम करनेवाले पांचमें समेत सब वे नरकको जातें हैं ॥ ७२ ॥

आतुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥ धर्मणापि नियुक्ता  
यां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥ ७३ ॥ परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कु  
ण्डगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तारि गोलकः ७४ ॥

टीका—मरे हुए भाईकी आगे कहे हुए नियोग धर्मसे भी नियोगकी गई स्त्रीमें एक एक वार ऋतुमें गमन करै इत्यादि विधिको छोड़कर कामसे आलिङ्गन चुंबन आदिजो करता है अथवा वारंवार प्रवृत्त होता है उसको दिधिषूपति कहते हैं ॥ ७३ ॥ पराई स्त्रियोंमें कुंड और गोलक नाम दोनो पुत्र उत्पन्न होते हैं पतिके जीवते हुए जारसे उत्पन्न कुंड होता है और पतिके मरने पीछे उसीभांति गोलक होता है ॥ ७४ ॥

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेहं च ॥ दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेत् प्रदायिनाम् ७५ अपाङ्क्तयो यावतः पाङ्क्त्यान् भुञ्जानानुपश्यति ॥ तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः ७६ ॥

टीका—पराई स्त्रीमें उत्पन्न हुए वे कुंड और गोलक दोनो प्राणी इस लोक में कीर्ति आदिको और परलोकमें देनेवालेके हव्यका नाश करते हैं अर्थात् देनेवालों करिदिये हुए हव्यकव्योंको निष्फल करते हैं ॥ ७५ ॥ सज्जनोंके साथ एक पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे स्तेन आदि जितने पंक्तिमें भोजन योग्यों को देखता है उतनोंके भोजनका फल उस श्राद्धमें मूर्ख दाता नहीं पाता है इससे जैसे स्तेन आदि न देखे ऐसे करना चाहिये ॥ ७६ ॥

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणं पष्टेः श्वित्री शतस्य तु ॥ पापरोगी स हसस्य दातुं नाशयते फलम् ॥ ७७ ॥ यावतः संपृशेदं ब्राह्मणा शूद्रयाजकः ॥ तावतां न भवेदातुं फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ ७८ ॥

टीका—अंधा देख नहीं सकता परंतु देखनेयोग्य स्थानमें जानेसे पंक्तियों नव्वे ब्राह्मणोंके भोजन फलको नाश करता है ऐसेही काणा साठिका और श्वेतकुष्टी सौका और पापरोगी हजारका फल नाश करता है ॥ ७७ ॥ शूद्रके यज्ञ अदिमें ऋत्विक् जितने ब्राह्मणोंको अंगोंसे छूता है अर्थात् जितने श्राद्धमें भोजन करनेवालोंकी पंक्तिमें बैठता है उन सबोंकी पूतिका फल देनेवालेको नहीं मिलता है ॥ ७८ ॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ ७९ ॥ सोमविक्रयिणे विष्टौ भिषजे पूयशोणितम् ॥ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धषे ॥ ८० ॥

टीका—वेदका जाननेवालाभी जो ब्राह्मण लोभसे शूद्रयाजकका दान ले-

ता है वह पानीमें कच्चे मट्टीपात्रके समान शीघ्रही शरीर आदिसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ सोमलता बेचनेवालेके लिये जो दिया जाता है वह देनेवालेके भोजनके लिये विष्टा हो जाती है अर्थात् देनेवाला दूसरे जन्ममें विष्टा खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है ऐसेही वैद्यके देनेसे पीव और रक्त होता है अर्थात् दाता दूसरे जन्ममें पीवरक्त खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है और देवलकको दिया हुआ नष्ट होजाता है अर्थात् निष्फल होता है और व्याज खानेवालेको दिया हुआ अप्रतिष्ठ कहिये आश्रय रहित होनेसे निष्फलही है ॥ १८० ॥

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नार्मुत्र तद्भेदवत् ॥ भस्मनीव हुतं हव्यं  
तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ ८१ ॥ इतरेषु त्वपाइत्येषु यथोदिष्टेष्वसौ  
धुषु ॥ मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ ८२ ॥

टीका—श्राद्धमें जो वाणिज करने वालेके लिये दियाजाता है वह इस लोक तथा परलोकमें फलका देनेवाला नहीं होता है और जो पुनर्भू पुत्रके लिये दिया हुआ है वह भस्ममें होमी हुई हविके समान निष्फल होता है ॥ ८१ ॥ विशेष करि जिनका फल नहीं कहा है ऐसे पंक्तिमें भोजनके योग्य पहले कहे हुए स्तेन आदिकोंके लिये दिया हुआ जो अन्न वह देनेवालेके भोजनके मेदा रुधिर मांस मज्जा और हाड होजाता है यह पण्डित कहते हैं यहाँभी दूसरे जन्ममें मेदा रुधिर आदि खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८२ ॥

अपांक्त्योपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तान्निर्बोधत  
कात्स्न्येन द्विजार्थान्पङ्क्तिं पावनान् ॥ ८३ ॥ अग्न्याः सर्वेषु वेदेषु स  
र्वप्रवचनेषु च ॥ श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिं पावनाः ॥ ८४ ॥

टीका—एक पंक्तिमें बैठे हुए स्तेन आदिकों करि दूषित किई हुई पंक्तिजिन ब्राह्मणों करि पवित्र की जाती है उन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणोंको संपूर्णतासे आप सुनियो ॥ ८३ ॥ चारों वेदोंमें अन्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् जिन्होंने अच्छी तरहसे चारों वेद पढ़े हैं वे ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और प्रकर्ष करिके जो वेदके अर्थको कहैं वे प्रवचन कहाते हैं अर्थात् अंग उनमें अग्न्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् छोटी अंगोंके जाननेवाले चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और श्रोत्रियान्वयजा कहिये दशपीढीसे वेद पढ़नेवालोंके प्रथमे उत्पन्न ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं ॥ ८४ ॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिमुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ब्रह्मदेयात्मसंतानो  
ज्येष्ठसामग एव च ॥ ८५ ॥ वेदार्थवित्प्रवृत्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ॥  
शतायुश्चैवं विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिर्पावनाः ॥ ८६ ॥

टीका—त्रिणाचिकेत यजुर्वेदका एक भाग है उसका व्रत करनेवाला ब्राह्म-  
ण त्रिणाचिकेत होत है १ वह और पंचाग्निहोत्री २ और त्रिमुपर्ण ऋग्वेदका एक भा-  
ग है उसका पढ़नेवाला ब्राह्मण त्रिमुपर्ण कहा जाता है वह ३ और जो शिक्षा  
आदि छः अंगोंको पढ़ा होये वह षडङ्गवित् ४ ब्राह्मविवाहमें विवाही हुईसे  
उत्पन्न पुत्र ५ ज्येष्ठ साम आरण्यमे गाये जाते हैं उनका गानेवाला ६ ये छः  
पंक्तिपावन जानने योग्य हैं ॥ ८५ ॥ वेदके अर्थका जाननेवाला १ और वेद-  
के अर्थका कहनेवाला २ ब्रह्मचारी ३ हजार गौओंका वा अधिकका देनेवाला ४  
और सौवर्षकी अवस्थाका श्रोत्रिय ५ ब्राह्मण पंक्तिके पवित्र करनेवाले जानिये ८६

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥ निमन्त्रयेत् त्र्यव्रारान्सम्य  
ग्विप्रान्यथोदितान् ॥ ८७ ॥ निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा  
भवेत्सदा ॥ न च छन्दास्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥ ८८ ॥

टीका—श्राद्धकर्मके प्राप्तहोनेपर श्राद्धके दिनसे एक दिन पहले जो न हो  
सकै तौ उसी दिन जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसे तीनि अथवा, एक ब्राह्मण-  
को सत्कारपूर्वक निमन्त्रण करै ॥ ८७ ॥ श्राद्धमें न्योता दिया गया ब्राह्मण न्यो-  
तेके दिनसे श्राद्धके दिनरातितक संयम नियमसे रहै अर्थात् स्त्रीसंग आदि न  
करै और अवश्य करनेयोग्य जप आदिको छोड़कर वेदके अध्ययनको भी न  
करै और श्राद्ध करनेवालाभी इसी नियमसे रहै ॥ ८८ ॥

। नुगच्छ

यथोन्मायं व्यकव्ये

द्विजोत्तमः ॥ कथंचिदप्यर्तिकामन्पार्षः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

टीका—न्योतेगये ब्राह्मणोंमे पितर अदृश्यरूपसे स्थित होते हैं और प्राणप-  
बनके समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठनेपर समीप बैठते हैं तिस्से  
उनको नियमसे रहना चाहिये ॥ ८९ ॥ हव्यकव्यमें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रण  
किया गया ब्राह्मण न्योतेको अंगीकार करके किसीप्रकारसे भोजन न करता हुआ  
उस पापसे दूसरे जन्ममें शूकर होता है ॥ १९० ॥

आमन्त्रितस्तु यैः श्राद्धे वृषल्यां सह मोदते ॥ दातुर्यदुष्कृतं किं  
चित्तत्सर्वप्रतिपद्यते ॥ ९१ ॥ अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचा-  
रिणः ॥ न्यस्तशस्त्रा मर्हाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ९२ ॥

टीका—श्राद्धमें निमंत्रण किया हुआ जो ब्राह्मण वृषलीके साथ भोग करता है वह देनेवालोंके पापको प्राप्त होता है वृषलीका अर्थ यह है कि वृषस्यन्ती कहिये कामकी इच्छासे जो पतिको चंचल करती है वह वृषली कहाती है इस व्युत्पत्तिसे श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी व्याही हुई ब्राह्मणभी वृषली हो सकती है ॥ ९१ ॥ क्रोधरहित और शौचपराः कहिये बाहरी शौचमट्टी पानी आदि से भीतरी रागद्वेष आदिका त्याग तिसकरके युक्त और सदा ब्रह्मचारी अर्थात् सर्वदा स्त्रीसंयोग आदिसे रहित और युद्धके छोड़नेवाले और महाभाग कहिये दया आदि आठ गुणों करिके युक्त अनादि देवतारूप पितर हैं तिससे भोजन करनेवालेको तथा श्राद्धकरनेवालेको क्रोधआदिसे रहित होना चाहिये ॥ ९२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥ ये च यैरुपचर्याः स्यु-  
निर्यमैस्तां निबोधत ॥ ९३ ॥ मनोहरण्यगर्भस्य ये मसीच्यादयः  
सुताः ॥ तेषामृषीर्णमसर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ ९४ ॥

टीका—इस सब पितरोंकी जिस्से उत्पत्ति हुई है और जे पितर जिन ब्राह्मण आदिकों करि जिन नियमोंसे शास्त्रोक्त कर्मों करि उपचार करनेयोग्य होते हैं उन सबोंको सुनिये ॥ ९३ ॥ हिरण्यगर्भके पुत्र मनुके जे मरीचि आदि पुत्र पहले कहे गये हैं उन सब ऋषियोंके पुत्र सोमपा आदि पितृगण मनु आदिकौन कहै हैं ॥ ९४ ॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥ अग्निष्वात्ताश्च  
देवानां मरीचा लोकां विश्रुताः ॥ ९५ ॥ दैत्यदानवयक्षा गन्धर्वा  
रगरक्षसाम् ॥ सुपर्णकिंनराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ ९६ ॥

टीका—विराटके पुत्र सोमसदनाम साध्योंके पितर हैं और मरीचिके पुत्र अग्निष्वात्ता लोकमें विख्यात देवताओंको पितर कहे गये हैं ॥ ९५ ॥ दैत्य दानव यक्ष गन्धर्व उरग राक्षस सुपर्ण और किन्नरोंके बर्हिषद नाम पितर कहे गये हैं ॥ ९६ ॥

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानां माज्झपा ना



म शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ ९७ ॥ सोमपास्तु कवेः पुत्रो हविष्मन्तो  
ऽङ्गिरः सुताः ॥ पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रावसिंष्टस्य सुकालिनः ॥ ९८ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंके सोमपा आदि चारों पितर कहे गये हैं ॥ अर्थात् ब्राह्मणोंके सोमपा क्षत्रियोंके हविर्भुज वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंको सुकालिन ॥ ९७ ॥ कविजे भृगु हैं तिनके सोमपा नाम पुत्र हैं और अंगिराके हविर्भुज पुत्र हैं पुलस्त्यके आजपा नाम हैं और वसिष्ठके सुकालिन है ॥ ९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ॥ अग्निष्वात्तांश्च सौ  
म्याश्च विप्राणामेवं निर्दिशेत् ॥ ९९ ॥ य एते तु गणा मुख्याः पि  
तृणां परिकीर्तिताः ॥ तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् २००

टीका—अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य बर्हिषद अग्निष्वात्त और सौम्य इनको ब्राह्मणोंहीको पितर जानिये ॥ ९९ ॥ जो ये प्रधानभूत पितरोंके गण कहे गये हैं तिनकेभी इस जगतमें पुत्र पौत्र आदि अनन्त पितर जानने योग्य हैं इस श्लोकमें सूक्ष्मही वरवरेण्य इत्यादि और भी मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें सुने जाते हैं ॥ २०० ॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ॥ देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं  
चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ १ ॥ रजतैर्भार्जनैरेषामथो वा रजतन्वितैः  
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २ ॥

टीका—मरीचि आदि ऋषियोंसे कहे हुए क्रमके अनुसार पितर हुए और पितरोंसे देवता तथा दानव उत्पन्न हुए और देवताओंसे जंगमस्थावर जगत् क्रमसे उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ चांदीके पात्रोंसे अथवा चांदीयुक्त पात्रोंसे अथवा तामे आदिके पात्रोंसे श्रद्धापूर्वक पितरोंको दिया हुआ जलभी अक्षय सुखका कारण होता है फिर अच्छी खीर आदिका तौ क्या कहना है ॥ २ ॥

देवकार्याद्विजातिनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥ देवं हि पितृकार्यं  
स्य पूर्वमाप्ययनं श्रुतम् ॥ ३ ॥ तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं देवं नियो  
जयेत् ॥ रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्रद्धमारक्षवर्जितम् ॥ ४ ॥

टीका—देवताओंके लिये जो कार्य किया जाता है वह देवकार्य कहाता है उससे पितरोंका कार्य दिजातियोंको अवश्य कर्त्तव्य कहा है इससे पितृश्राद्धकी मु-

ख्यता और दैव अंग है जिसे दैवकर्म पितृकृत्यका परिपूर्ण करनेवाला कहोगया है ॥ ३ ॥ उन पितरोंका रक्षारूप अर्थात् रक्षा करनेवाले विरवेदेव ब्राह्मणोंका निमंत्रण करै क्योंकि रक्षारहित श्राद्धको राक्षस छीन लेते हैं ॥ ४ ॥

दैवाद्यन्तं तदीहेतं पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ॥ पित्राद्यन्तं त्वीहर्मानः  
क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥ ५ ॥ शुचि देशं विंक्तिं च गोमयेनोप  
लेपयेत् ॥ दक्षिणांप्रवणं चैवं प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—इसीसे वह पित्र्यश्राद्ध दैवकर्म है आदि और अंतमें जिसके दैव है ऐसा करै पित्र्य जिसके आदि अंतमें होय ऐसा न करै और पित्र्य जिसकी आदि अंतमें होता है ऐसे श्राद्धको करता हुआ पुरुष कुटुंब सहित शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥ शुद्ध तथा एकान्त देशको गोबरसे लिपावै और यत्नसे दक्षिणकी ओर झुका हुआ रखवै ॥ ६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैवं हि ॥ विविक्तेषु च तुष्यन्ति  
दत्तेन पितरः सदा ॥ ७ ॥ आसनेषूपर्कुप्तेषु ब्रह्मिष्मत्सु पृथक्पृथक्  
उपस्पृष्टोदकान् सम्यग्विप्रास्तानुपवेशयेत् ॥ ८ ॥

टीका—अवकाशोंमें और चोक्ष कहिये स्वभावसे शुवन आदि स्थानोंमें और नदी आदिके किनारोंमें और शून्यस्थानोंमें किये हुए श्राद्धआदिसे पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ उस स्थानमें कुशोंसमेत जुदे २ विछाये हुए आसनोंपर पहले निमंत्रित स्नान आचमन किये हुए ब्राह्मणोंको अच्छीतरह बैठवै इहां देव ब्राह्मणके आसनपर दो कुश रखवै और पितृब्राह्मणके आसनोंमें प्रत्येक पर दक्षिणको जिसका अग्र है ऐसा एक एक कुश रखना चाहिये ॥ ८ ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ॥ गन्धमाल्यैः सुरभि  
भिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ ९ ॥ तेषामुदकर्मानीय समवित्रांस्तिलान  
पि ॥ अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ १० ॥

टीका—उन अनिदित ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठायाकै केसरि आदि सुगंध और माला धूप आदिसे पहले देवपूजन करिकै पूजै ॥ ९ ॥ उन ब्राह्मणोंके अर्धजलसे पवित्र तिलोंको मिलाकर उन ब्राह्मणोंके साथ आज्ञा लेकर अग्निमें आगे कहा हुआ होम करै ॥ १० ॥

अग्नेः सम्यगभ्यां च कृत्वाप्ययनमादितः ॥ हविर्दानेन विधिवं

त्पश्चात्संतर्पयेत्पितृन् ॥ ११ ॥ अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोप  
पार्दयेत् ॥ यो अग्निः सं द्विजो वि प्रैर्मन्त्रं दाशभिर्हृच्यते ॥ १२ ॥

टीका—पहले विधिपूर्वक पर्युक्षण आदिको करके हविके देनेसे अग्नि सोम-  
और यमको प्रसन्न करिके पीछे अन्न आदीसे पितरोंको वृत्त करे ॥ ११ ॥ अ-  
ग्निके न होनेमें फिर ब्राह्मण हाथहीमें पहले कही हुई तीनि आहुति दें जि-  
स्से जो अग्नि है वही ब्राह्मण है यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा है ॥ १२ ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ॥ लोके स्याप्ययने युक्ता  
बुद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ॥ १३ ॥ अप्सव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य  
विक्रमम् ॥ अप्सव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ १४ ॥

टीका—क्रोधरहित प्रसन्न मुख और प्रवाहकी अनादितासे पुराने और लोक-  
की वृद्धके लिये उपाय करनेवाले ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंको मनु आदि आचार्य श्रा-  
द्धका पात्र कहते हैं ॥ १३ ॥ अग्नौकरण और होम करनेके क्रमको अप-  
सव्य कहिये दाहिनी और धरिके तिस पीछे अपसव्य हो दाहिने हाथसे पिंड  
धरकेकी भूमिमें जल छिड़के ॥ १४ ॥

त्रिस्तु तस्माद्विशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ॥ औदकेनैव  
विधिना निर्वपेदक्षिणामुखः ॥ १५ ॥ न्युप्य पिण्डान्स्ततस्तु प्रय  
तो विधिपूर्वकम् ॥ तेषु दग्धेषु तं हस्तं निर्मृज्याल्लेपभागिनाम् १६

टीका—उस अग्नि आदिके होमसे बचे हुए अर्थात् निकालनेसे शेष रहे अन्न  
से तीनि पिंड बनाके जलदानहीकी विधिसे दाहिने हाथसे सावधान एकाग्रचित्त  
हो दाक्षिणको मुख करि कुशोंके ऊपर रखे ॥ १५ ॥ अपने गृहमें कही हुई वि-  
धिसे उन पिंडोंको कुशोंके ऊपर स्थापित करि उन कुशोंके मूलमें लेपभुजस्तु-  
प्यन्तु ऐसे कहिके लेपके भोज करनेवाले प्रपितामहके पिता आदि तीनि पुरुषों  
की दक्षिके लिये एक कुशसे हाथको पेंछिदे ॥ १६ ॥

आचम्योदकपरावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ॥ षड्भक्तुं नर्मस्कु  
र्यात्पितृनेव च मन्त्रवित् ॥ १७ ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पि  
ण्डान्तिके पुनः ॥ अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युत्तान्समाहितः १८

टीका—इस पीछे आचमन करि उत्तराभिमुख हो शक्तिके अनुसार तीनि प्रा-  
णायाम करिके वसंताय नमस्तुभ्यम् ऐसे कहि छह ऋतुओंको नमस्कार करे फिर

नमो वः पितर इत्यादि मंत्रको पढ़ि दक्षिणाभिमुख हो नमस्कार करै ॥ १७ ॥  
पिंड देनेसे पहले पिंड धरनेके स्थानमें धरे हुए जलके पात्रमें शेष रहे जलको  
प्रत्येक पिंडकी समीप भूमिमें क्रमसे फिर छोड़दे फिर उन पिंडोको जिस क्र-  
मसे रक्खाथा उसी क्रमसे उठाकैं सावधान हो सूँघै ॥ १८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मांत्रां समादायानुपूर्वशः ॥ तानेव विप्रानां  
सीनान्द्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥१९॥ प्रियमाणे तु पितरि पूर्वषामे  
व निर्वपेत् ॥ विप्रवद्वापितं श्रद्धे स्वंकं पितरमाशयेत् ॥२०॥

टीका—पिंडोमेसे लिये हुए छोटे-भागोंको पिताके पिंडके क्रमहीसे लेकर उन्हीं  
पिता आदि ब्राह्मणोंको भोजनकालमें भोजनसे पहले जिमावै और विधिपूर्वक पिंड  
करनेके अनुसार पिताका नाम लेकर जो पिंड दिया गया है उसके अवयव-  
पितृब्राह्मणको भोजनकरावै ऐसेही पितृमह प्रपितामहके पिंडोकाभी करै ॥  
॥ १९ ॥ पिताके जीवते हुए मरे हुए पितामह आदि तीनोंका श्राद्ध करै अथ-  
वा पिताके स्थानमें उसी निजपिताको भोजन करावै और पितामह प्रपितामह-  
के ब्राह्मणभोजन करावै और दो पिंड दे ॥ २० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ॥ पितुः संनाम  
संकर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥२१॥ पितामहो वा तच्छ्रद्धं भुं-  
जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥ कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् २२

टीका—जिसका पिता तौ मरगया होय और पितामह जीवता होय वह पि-  
ता और पितामहका श्राद्ध करै और गोविंदराजका यह मतहै कि जिसके पिता  
औ प्रपितामह मरिगये होंय वह पिताके लिये पिंडदेकर पितामह से परे दोके  
लिये पिंड दे इस विष्णुके वचनसे प्रपितामह और उसके पिताको पिंड दे ऐसा  
व्याख्यान कियाहै ॥ २१ ॥ जैसे जीवता हुआ पिता भोजन कराने योग्य है  
ऐसेही पितामहभी पितामह ब्राह्मणके स्थानमें भोजन कराने योग्य है पिता और  
पितामहके ब्राह्मण भोजन करावै और पिंडदान करै अथवा जीवते हुए पितामह  
हसे तुझी अपनी रुचिके अनुसार करौ ऐसी आज्ञा पाकैं अपने पितामहको भो-  
जन करावै अथवा पिता और प्रपितामहके दो श्राद्ध करै और विष्णुके वचनसे  
पिता प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामहके तीनि श्राद्ध करै ॥ २२ ॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सप्तवित्रं तिलोदकम् ॥ तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत्

धैषामस्त्वि<sup>११</sup>ति ॥ २३ ॥ पाणिभ्यां तूर्पसंगृह्य स्वयमन्न  
स्य वर्धितम् ॥ विप्रान्तिके पितृन्ध्यायञ्छनैरुपनिक्षिपत् ॥ २४ ॥

टीका—उन ब्राह्मणोंके हाथोंमें कुशोंसमेत तिलोदक देकै वह पहले कहा  
हुआ पिंडका अल्पभाग पित्रे स्वधाअस्तु इत्यादि मंत्रको पढ़ता हुआ पिता  
आदि तीनि ब्राह्मणोंके लिये क्रमसे दे ॥ २३ ॥ अन्नका वर्धित कहिये भराहुआ  
वह लोही आदि पात्र अपने हाथोंमें लेकर पितरोंका चितवन करता हुआ पाप-  
के स्थानसे लाकर ब्राह्मणोंके समीप परोसनेके लिये हौलेसे धर दे ॥ २४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥ तद्विप्रं लुम्पन्त्यसुराः सहसा  
दुष्टचेतसः ॥ २५ ॥ गुणांश्च सूपं शाकाद्यान्पयो दधि घृतं मधुं ॥  
विन्येत्प्रयतः पूर्वं भूमावेवं समाहितः ॥ २६ ॥

टीका—दोनों हाथोंमें नही स्थित अर्थात् एक हाथसे लाया गया अन्न जो  
ब्राह्मणोंके समीप पहुंचाया जाताहै वह दुष्ट बुद्धिअसुर छीन लेते हैं तिससे एक  
हाथसे लाकै न परोसना चाहिये ॥ २५ ॥ व्यंजन कहिये चटनी आदिको अथ-  
वा दालि शाक आदि और दूध दही मीठा आदि शुद्ध शुद्धसावधान और एका-  
ग्रचित्त हो अच्छी भांति जैसे फैलै नही ऐसे अपने पात्रमें स्थित सब पदार्थों  
को भूमिहीमें रक्खै पट्टे आदिपर न रक्खै ॥ २६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥ हृद्यानि चैवं मां  
सानि पानानि सुरभीणि च ॥ २७ ॥ उपनीय तु तत्सर्वं शनैः  
सुसमाहितः ॥ परिवर्षयेत् प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २८ ॥

टीका—भक्ष्य सुंदर अच्छे लड्डू आदिको और भोज्य खीर आदिको तथा  
नाना प्रकारके फल-मूलोंको और हृदयके प्यारे मांसों तथा सुगंधित जलको  
भूमिहीमें रक्खै ॥ २७ ॥ इस सब अन्न आदिको ब्राह्मणके समीप लाय सावधान  
शुद्ध और एकाग्रचित्त हो कमसे परोसै यह मीठा है यह खट्टा है ऐसे मधुर आ-  
दि गुणोंको कहता जाय ॥ २८ ॥

नास्त्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥ न पादेन स्पृशेदन्नं  
न चैतदवधूनयेत् ॥ २९ ॥ अस्त्रं गमयति प्रेतान्क्रोपोऽरीनं  
नृतं शुभ्रः ॥ पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ ३० ॥

टीका—परोसनेके समय कभी आंसू न डालै न क्रोध करै न झूठ बोलै और अन्नको पैरसे न छुवै और न इसको पात्रमें उछालै ॥ २९ ॥ निकाला हुआ आसूँ श्राद्धके अन्नको भूतोंको पहुँचाता है पितरोंको नहीं पहुँचाता है और क्रोध शत्रुओंको और झूठ, धोखेना कुत्तोंको और पैरसे छूना राक्षसोंको और उछाला हुआ पाप करनेवालोंको तिस्से रोना आदि न करै ॥ २३० ॥

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तदद्यादमत्सरः ॥ ब्रह्मोद्यांश्च कथाः कुंर्या  
त्पितॄणामेतदीप्सितम् ३१ स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि  
चैवं हि ॥ आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥ ३२ ॥

टीका—जो जो अन्न व्यंजन आदि ब्राह्मणोंको रुचै उसको मत्सररहित हो-  
कै दे और परमात्माके निरूपणकी वार्त्ता करै इसलियेकि पितरोंको यह अपे-  
क्षित है ॥ ३१ ॥ वेद मानव आदि धर्मशास्त्र सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्या-  
न महाभारत आदि इतिहास ब्रह्मपुराण आदिपुराण और श्रीसूक्त शिवसूक्त आ-  
दि खिल श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनावै ॥ ३२ ॥

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः ॥ अन्नाद्येनासंकृच्चैतान्गु-  
णैश्च परिचादयेत् ॥ ३३ ॥ व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोज-  
येत् ॥ कुंतपं चासनं दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ ३४ ॥

टीका—आप प्रसन्न होकै प्कारि वचनोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करै और  
अन्नकों मीठे तथा खीर आदिसे हौले २ भोजन करावै यह खीर बड़ी स्वादिष्ट है  
यह लड़कू बहुत अच्छा है लीजिये ऐसे गुणोंको कहकर वारंवार लेनेके लिये ब्राह्म-  
णोंकी प्रेरणा करै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थितभी दौहित्रको श्राद्धमें यत्नेसे भोजन  
करावै और आसनमें नेपालका कंवलदे और श्राद्धकी भूमिमें तिलोंको बिखेर दे ॥ ३४ ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुंतपस्तिलाः ॥ त्रीणि चात्र प्र-  
शंसन्ति शौचमक्रोधमत्सराम् ॥ ३५ ॥ अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्दुर्जी-  
रस्ते च वाग्यसाः ॥ न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रां पृष्टां हविर्गुणान् ३६

टीका—श्राद्धमें दौहित्र कुंतप और तिल ये तीन पवित्र हैं और यहां श्राद्ध-  
में शौच क्रोध न करना और जलदी न करना इन तीनोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३५ ॥  
जिस अन्नका भोजन उष्ण उचित है वह उष्णपरोसे फल आदि उष्णदे और  
ब्राह्मण मौन होकै भोजन करै वह अन्न स्वादु है अथवा नहीं स्वादु है ऐसे अन्न

आदिके गुण दाता करिकै पूछे गये ब्राह्मण मुख आदिकी चेष्टासेभी न कहै ॥ ३६ ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्रन्ति वाग्यताः ॥ पितरस्त्यावदश्रन्ति  
यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ ३७ ॥ यद्रेष्टितशिरां भुङ्क्ते यदुङ्क्ते दक्षिणामु-  
खः ॥ सोऽपानत्कश्च यदुङ्क्ते तद्रे रक्षांसि भुञ्जते ॥ ३८ ॥

टीका—जबतक अन्नमें उष्णता रहती है और जबतक ब्राह्मण मौन भोजन-  
करते हैं और जबतक हविके गुण नहीं कहे जाते हैं तबतक पितर भोजन करते  
हैं ॥ ३७ ॥ वस्त्र आदि शिरमें लपेटके तथा दक्षिणको मुख करिकै और जूता  
पहिरे हुए जो भोजन करता है उसको राक्षस खाते हैं पितर नहीं खाते हैं तिससे  
देसा न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

चाण्डालः

।रजस्वला

क्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥ ३९ ॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिर्वी-  
क्ष्यते ॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्रच्छेत्त्ययथातथम् ॥ ४० ॥

टीका—चाण्डाल गांवका सुअर मुरगा कुत्ता रजस्वला स्त्री और नपुंसक ये-  
जैसे ब्राह्मण भोजनके समय न देखें ऐसा करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्र आ-  
दिमें गौ सुवर्ण आदिके दानमें अपने अभ्युदयके लिये ब्राह्मण भोजनमें द-  
र्शपौर्णमास आदि दैव कर्ममें और श्राद्ध आदि पितृ कर्ममें जो इन करिकै  
देखा जायं तौ जिसके लिये वह किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है अ-  
र्थात् निष्फल होजाता है ॥ ४० ॥

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्ष्वातेन कुक्कुटः ॥ श्वा तु दृष्टिनिपातेन रूपं  
शोनावरवर्णजः ॥ ४१ ॥ खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि  
वा भवेत् ॥ हीनोतिरिक्तगात्रो वा तमर्प्यपनयेत्पुनः ॥ ४२ ॥

टीका—शूकर उस अन्न आदिकी गंधको सूंघ करि कर्मको निष्फल कर दे-  
ताहै तिससे सूंघनेके योग्य स्थानमें उस कोन आने दे ओर मुरगा परोंकी पवन-  
से इस लिये वह भी परोंकी पवन लगनेके स्थानसे दूरि करनेयोग्य है और कुत्ता  
देखनेसे और शूद्र छूनेसे द्विजातिके श्राद्धको निष्फल कर देताहै ॥ ४१ ॥  
संज्ञा कहिये पंगुला होय अथवा काणा होय दाताका दास होय अथवा  
अन्य शूद्र होय और हीन वा अधिक अंगका मनुष्य होय उसकोभी उस  
श्राद्धके स्थानसे निकाल दे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः  
शक्तिंतः प्रतिपूजयेत् ॥ ४३ ॥ सर्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाप्लाव्य वा  
रिणा ॥ संमुत्सृजेद्भुक्तं वताम्रगतो वि किरन्भुवि ॥ ४४ ॥

टीका—अतिथिरूप ब्राह्मण होय अथवा और कोई भोजनके लिये भिक्षुक उस  
काल आया होय तौ, उसका भी श्राद्धके पात्रभूत ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर यथा  
शक्ति अन्नके भोजनसे वा भिक्षा देनेसे संस्कार करै ॥ ४३ ॥ सब प्रकारके अन्न  
आदिको व्यंजन आदिकोंमें मिला एक करि जलमें भिगो कै भोजन किये हुए  
ब्राह्मणोंके आगे भूमिमे कुशोंके ऊपर फैलाकै डाल दे ॥ ४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ॥ उच्छिष्टं भागधे  
यं स्याद्भेषु वि किरिष्यैः ॥ ४५ ॥ उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्या  
शैठस्य च ॥ दासवर्गस्य तर्पिष्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

टीका—संस्कारके अयोग्य बालकोंका तथा विना दोषके कुलकी स्त्रियोंके  
त्याग करनेवालोंका पात्रमें स्थित उच्छिष्ट अन्न जो कुशोंपर बिखेरा जात है वह  
ह भाग होता है अर्थात् उनको वही मिलता है ॥ ४५ ॥ जो उच्छिष्ट भूमिमें गिर-  
ता है वह आलस्य और कुटिलता रहित दासोंके समूहका भाग पित्र्यकर्ममें मनु  
आदि कहते हैं ॥ ४६ ॥

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥ अद्वै व भोजयेच्छ्रा  
द्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ ४७ ॥ सहस्रपिण्डक्रियायां तु कृतायाम्  
स्य धर्मतः ॥ अनयैवावृता कार्ये पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ ४८ ॥

टीका—सर्पिणी करणश्राद्ध पर्यंत शीघ्र मरे हुए द्विजातिका वैश्वदेव ब्राह्मण  
भोजन रहित श्राद्ध निमित्तका अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै और एक पिंड दे  
॥ ४७ ॥ जिसका यह एकोद्दिष्ट श्राद्ध किन्ना है उसका धर्मसे, निजगृहस्थे कही  
हुई विधिसे सर्पिणीकरण श्राद्ध करनेपर इसी परिपाटीसे कहे हुए अमावास्या  
श्राद्धकी पद्धतिसे पिंडोंका निर्वपण कहिये श्राद्ध पुत्रों करि सर्वत्र मृताह कहिये  
मरनेके दिन आदिमें करना चाहिये ॥ ४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वर्षलाय प्रयच्छति ॥ संमूढो नरैकं यो  
ति कालसूत्रमवाक्यशिराः ॥ ४९ ॥ श्राद्धभुग्वर्षलीतल्पं तदहयोऽ  
धिगच्छति ॥ तस्याः पुरीषे तन्मांसं पितरस्तस्य शरिते ॥ ५० ॥



टीका—श्राद्ध भोजनका उच्छिष्ट अन्न जो शूद्रको देता है व मूर्ख अधोमुख-  
होकै कालसूत्रनाम नरकमें जाता ॥ ४९ ॥ श्राद्धका भोजन करनेवाला जो ब्राह्म-  
ण उसीदिन रातिमें स्त्रीसंग करता है उसके पितर उस स्त्रीकी विष्टामें एक-  
महीनैतक पड़े रहते है ॥ २५० ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥ आचान्तांश्चाबुजानी  
यादभितोरम्यतामिति ॥ ५१ ॥ स्वधास्त्वित्येवं तं ब्रूयुर्ब्राह्मणा  
स्तदनुन्तरम् ॥ स्वधाकारः परां ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको तृप्त जानि भोजन करलिया ऐसे पूछकर आचमन करा-  
वै आचमन किये उनको भो ऐसा संबोधन दें जाइये ऐसे कहै ॥ ५१ ॥ आज्ञा  
देनेके पीछे ब्राह्मण श्राद्ध करनेवालेसे स्वधाऽस्तु ऐसे कहै जिस्से सब श्राद्ध  
तर्पण आदि पितृकर्ममें स्वधा शब्दका बोलना सबसे बड़ा आशीर्वाद है ॥ ५२ ॥

ततो भुक्तेवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥ यथा ब्रूयुस्तथा कुंर्या  
दनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ ५३ ॥ पितृभ्ये स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठे तु  
सुश्रुतम् ॥ संपन्नमित्यभ्युदये दैवै रुचितमित्यपि ॥ ५४ ॥

टीका—स्वधाशब्द कहनेके पीछे ब्राह्मणोंके भोजकरनेसे बचे हुए अन्नको  
अन्नशेषभी है ऐसे कहिके उन ब्राह्मणोंके आगे धरदे इस अन्नसे यह करो  
ऐसी आज्ञा लेकर जैसा वे कहें वैसे शेष अन्नका स्वरच करै ॥ ५३ ॥ पितृ  
श्राद्धमें स्वदित अर्थात् अच्छा भोजन हुआ ऐसे बोले । श्राद्धमें सुश्रुत अर्थात्  
अच्छाश्रवणकिया ऐसेकहे। और अभ्युदयश्राद्धमें संपन्न अच्छाहुवा ऐसे कहे और  
दैवकर्ममें रुचित ऐसे कहना ॥ ५४ ॥

अपराह्णस्तथा दूर्भावास्तुसंपादनं तिलाः सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजैश्चाग्न्याः  
श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ ५५ ॥ दूर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च  
सर्वशः ॥ पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥ ५६ ॥

टीका—अमावास्या श्राद्धका कहना यहां मुख्य है तिस्से अमावास्याके मध्ये  
यह अपराह्णकाल अर्थात् मध्याह्न कहाहै प्रातर्द्विनिमित्तकम् इस वचनसे वृ-  
द्धिश्राद्ध आदिमें प्रातःकाल आदि काल दूसरी स्मृतियोंमें कहनेसे ॥ आसन  
आदिके लिये कुशा और गोबर आदिसे श्राद्धके स्थानका शुद्ध करना और वि

किरण आदिके लिये तिल और मृष्टि कहिये उदारतासे अन्न आदिका देना और मृष्टि कहिये अन्न आदिकोंका शुद्ध करना और पंक्ति पावन ब्राह्मण ये श्राद्धमें संपत्ति है इससे और अंगोसे इनकी उत्कृष्टता सूचित हुई कि इनका श्राद्धमे होना आवश्यकहै यह सूचितकिया ॥५५॥ कुश और पवित्र कहिये मंत्र और पूर्वाह्नकाल कहिये पहला पहर और सब हविष्य कहिये मुनि अन्न आदि सब और पहले कहा हुआ पवित्र कहिये वास्तुसंपादन आदि ये सब हव्य कहिये दैव कर्मकी समृद्धि हैं ॥ ५६ ॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥ अक्षारलवणं चैवं प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ ५७ ॥ विमृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वा ग्यतः शुचिः ॥ दक्षिणां दिशमाकां दक्षन्यां चेतैर्मान्तरान्पितृन् ॥ ५८ ॥

टीका—मुनि कहिये वानप्रस्थके अन्न नौवार आदि और दूध और सोमलताका रस अनुपस्कृत कहिये बिगडा न होय ऐसा दुर्गंध आदिसे रहित मांस और अक्षार लवण कहिये विना बनाय हुआ सधैव आदि ये स्वाभाविक हवि मनुआदिकोंके कहे हैं ॥ ५७ ॥ उन ब्राह्मणोंका विसर्जन करिके एकाग्रचित्त मौनी और शुद्ध हो दक्षिण दिशाकी देसता हुआ आगे कहे हुए इन चाहै हुए वरोंको पितरोंसे मागै ॥ ५८ ॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संति तिरेवं च ॥ श्रद्धा च नोभ्यो गमर्द्धहु दे यं च नोऽस्त्विर्ति ॥ ५९ ॥ एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ॥ गां विप्रमज्जमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥ ६० ॥

टीका—हमारे कुलमें दाता पुरुष बढै और पढवने पढाने तथा अर्थके ज्ञानसे वेद वृद्धको प्राप्त होय और पुत्रपौत्र आदि बढै और हमारे कुलमें वेदके अर्थोंसे श्रद्धा न जाय और देनेयोग्य धन आदि बहुतसा होय ॥ ५९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे पिंडदान करिके वांछित वर मागने पीछे गौ ब्राह्मण अथवा बकरेको वे पिंड खुला दे अथवा अग्निमे वा जलमें डालदे ॥ ६० ॥

पिण्डनिर्वपणं कैचित्परस्तादेवं कुर्वते ॥ वयोभिः स्वाद्यन्त्यन्ये प्राक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ ६१ ॥ पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ॥ मर्ध्यमं तु तैतः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥ ६२ ॥

टीका—कोई आचार्य ब्राह्मणभोजन के पीछे पिंडदान करतेहैं और कोई प्रक्षियों

को पिंड खुलाते हैं अथवा आगिमें जलमें टाल देते हैं ॥६१॥ धर्म अर्थ काममें मन वाणी काय कर्मसे पतिही मुझे सेवा करने योग्य हैं यह व्रत जिसके होय वह पतिव्रताधर्मसे व्याही सवर्णा और प्रथम विवाही स्त्री श्राद्धकी क्रियामें श्रद्धायुक्त पुत्रकी चाहनेवाली उन पिंडोंमेंसे बीचके पितागृहके पिंडका भोजन करै ॥ ६२ ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥ धनवन्तं प्रजावन्तं  
सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ ६३ ॥ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रा  
यं प्रकल्पयेत् ॥ ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥ ६४ ॥

टीका—उस पिंडके खानेसे वह स्त्री बड़ी उमरवाले कीर्त्ति और धारणा करनेवाले बुद्धियुक्त और धनपुत्र आदि युक्त गुणी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥६३॥ तिस पीछे हाथोंको धोके अपनी ज्ञाति जिमावै उनके लिये पूजापूर्वक अन्न दे माताके पक्षवालोंकोभी सत्कार पूर्वक जिमावै ॥ ६४ ॥

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ॥ ततो गृहबलिं कुर्या  
दिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ६५ ॥ हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्या  
य कल्प्यते ॥ पितृभ्यो विधिवदत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६६ ॥

टीका—वह ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट उस समयतक रहै जबतक ब्राह्मणोंका विस्सर्जन होय और ब्राह्मणोंके निकलजानेपर स्थान शुद्ध करना चाहिये तिस पीछे श्राद्धकर्म संपन्न होनेपर वैश्वदेव बलि होमकर्म नित्यश्राद्ध और अतिथिभोजन करने चाहिये ॥ ६५ ॥ जो हवि पितरोंके लिये विधिसे दिया जाता है वह बहुत कालकी वृत्तिके लिये होता है सो मैं संपूर्णतासे कहोंगा ॥ ६६ ॥

तिलैव्री हियवैर्मा पेरद्विर्मूलफलैर्वा ॥ दत्तेन मांसं तृप्यन्ति विधि  
वर्त्तिपंतरो नृणाम् ॥ ६७ ॥ द्वौ मांसौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारि  
णेन तु ॥ और्य्रेणार्थं चतुरः शार्कुनेनार्थं पञ्चवै ॥ ६८ ॥

टीका—तिल धान जव काले उडद जल मूल और फल इनमेंसे कोई एक शास्त्रके अनुसार श्राद्धसे दिया जाय उससे मनुष्योंको पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥ पठीन आदि मछलियोंके मांससे दो महीने तक पितर तृप्त रहते हैं और हरिणके मांससे तीनी महीनेतक और मेढके मांससे चार महीने तक द्विजातिके भक्ष्य पक्षियोंके मांससे पांच महीने तृप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

षण्मासांश्छोगमांसेन पार्षतेन चै सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मांसेन रौ  
रं वेण न वै वै तु ॥ ६९ ॥ दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमाहिषामिषैः ॥  
शशकूर्मयोस्तु मासेन मांसानेकादशैव तु ॥ २७० ॥

टीका—बकरेके मांससे छः महिने तप्त रहते हैं और पृषतनाम चित्रमृगके मां-  
ससे सात महिनेतक और हरिणके मांससे आठ महिनेतक और रुरुनाम मृग-  
के मांससे नौ महिनेतक तप्त रहते हैं ॥ ६९ ॥ जंगली खुर और और भैंसेके मां-  
ससे १० महिनेतक तप्त रहते हैं और खरगोश तथा कछुएके मांससे ग्यारह  
महिनेतक तप्ति रहती है ॥ २७० ॥

सर्वत्सरं तु गव्येन पर्यसा पार्यसेन च ॥ वाङ्मणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वा  
दशवार्षिकी ॥ ७ ॥ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ॥  
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ ७२ ॥

टीका—एक वर्षतक गौके दूधसे अथवा उसमेंकी हुई खीरसे संतुष्ट रहते हैं  
और नदी आदिमें पानी पीनेसे जिसके दोनोकान और जीभ जलको छूवै ए-  
से सपेद बूढ़े बकरेको त्रिपिव और वाङ्मणस कहते हैं उस बकरेके मांससे बार-  
ह वर्षकी तप्ति होती है ॥ ७१ ॥ कालशाकनाम एक प्रकार शाक और महाश-  
ल्क कहिये एक प्रकारकी मछली खड्ग कहिये गेंडा और लोहामिष कहिये ला-  
ल बकरा इनके मांस और शहत और सब मुनियोंके अन्न अर्थात् नौवार आदि  
बनके अन्न ये सब अनन्त तप्तिके लिये होते हैं ॥ ७२ ॥

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥ तदप्यक्षयमेव स्यात्  
र्द्धासु च मघासु च ॥ ७३ ॥ अपि नः संकुले जायाद्यो नो दद्यात्त्र  
योदशीम् ॥ पार्यसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ ७४ ॥

टीका—वर्षाऋतुकी मघा नक्षत्रयुक्त भाद्रपदकृष्ण त्रयोदशीके दिन जो कुछ  
मधुके साथ दिया जाता है वहभी अक्षय तप्तिके लिये होता है ॥ ७३ ॥ पितर  
निश्चय करिके ऐसा चाहते हैं कि हमारे कुलमे कोई ऐसा उत्पन्न होय जो हमारे  
लिये वर्षाऋतुकी मघायुक्त भाद्रकृष्ण त्रयोदशीमें अथवा और किसी तिथिमें  
भी हस्तीकी छायाके पूर्वदिशामें जानेपर मधु घृतयुक्त खीर दे ॥ ७४ ॥

यद्यद्दाति विधिर्वत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥ तर्त्तर्पितृणां भवति

परंत्रान्तमक्षयम् ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो रथैता न तथैतराः ॥ ७६ ॥

टीका—अच्छे प्रकारसे श्रद्धायुक्त जो जो पितरोंके लिये देता है वह सब अन्न परलोकमें पितरोंकी कृष्णके लिये अनन्त और अक्षय होता है ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षमे दशमी १ एकादशी २ द्वादशी ३ त्रयोदशी ४ अमावास्या ५ ये पांचतिथि श्राद्धकरनेके लिये प्रशस्त है ऐसी अन्य तिथि नहीं ॥ ७६ ॥

युक्षु कुर्वन् दिनेक्षेपु सर्वाङ्कामान्समश्नुते ॥ अयुक्षु तु पितृन्सर्वा न्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षा द्विशिष्यते ॥ तथा श्राद्धस्य पूर्वाण्हादपराणो विशिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका—द्वितीया चतुर्थी आदि युग्म तिथियोंमें और भरणी रोहिणी आदि युग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब कांछित कामोंको प्राप्त होता है और प्रतिपदा तृतीया आदि अयुग्म तिथियोंमें और अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म नक्षत्रोंमें श्राद्धसे पितरोंको पूजता हुआ पुष्कल धनविद्यासे पुष्ट पुत्र आदि संततिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ ज्योतिषकी रीतिसे महीनोंका आरंभ शुक्लपक्षसे होता है जैसे अपरपक्ष कहिये कृष्णपक्ष अपरपक्ष कहिये शुक्लपक्षसे श्राद्धका अधिक फल देनेवाला होता है ऐसे पहले आधे दिनसे दूसरा आधादिन श्राद्धमें अधिक फल देनेवाला है ॥ ७८ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसंव्यमतन्द्रिणा ॥ पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिर्वद्वर्भपाणिना ॥ ७९ ॥ रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी किर्तिता हि सा ॥ संध्यायोरुभयोश्चैवं सूर्ये चैवाचिरो दिते ॥ ८० ॥

टीका—दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रख आलस्य रहित कुश हाथमे ले अपसंव्यही शास्त्रके अनुसार सब पितृकर्म अंततक करै ॥ ७९ ॥ रात्रिमें श्राद्ध न करै कारण यह है कि श्राद्धनाश करनेका गुण होनेसे मनु आदिकोंने इसको राक्षसी कहा है और दोनो संध्याओंमे न करै और सूर्यके शीघ्र उदय होनेपर न करै ८०

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपत् ॥ हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पांश्वयज्ञिकमन्वहम् ॥ ८१ ॥ नैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥ न दशैर् विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विर्जन्मनः ॥ ८२ ॥

टीका—इस कही हुई विधिसे संवत्सरके मध्यमें तीनवार अर्थात् हेमंत ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें श्राद्ध करना चाहिये सो तौ समयाचारसे कुंभ वृष और कन्याके सूर्य होनेपर करै और पंचयज्ञोंमें जो एकमप्याशयेद्विप्रं अर्थात् एक ब्राह्मणकोभी भोजन करावै इसवचन से कहे हुए श्राद्धकी तौ प्रतिदिन करै ॥८१॥ अग्नेःसोमयमाभ्यां च इस मंत्रसे विधान किया हुआ पितृयज्ञका अंगभूत होम श्रौत स्मार्त्त अग्निसे भिन्न लौकिक अग्निमें शास्त्रने नही कहा है तिससे लौकिक अग्निमें अग्नौकरण होम न करना चाहिये किंतु ब्राह्मणके हाथमें करना चाहिये और अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावास्याके विना कृष्णपक्षकी दशमी आदिमें श्राद्ध कहाहै और मृताहश्राद्ध-तौ नियत होनेसे कृष्णपक्षमेंभी और तिथिमें नही निषेध किया जाता है ॥ ८२ ॥

यदेवं तर्पयत्यग्निः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ॥ ते नैव कृत्स्नमाप्नोति  
पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ वर्मन्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहा  
न् ॥ प्रपितामहांस्तथादित्याश्च्युतिरेषा सनातनी ॥ ८४ ॥

टीका—पांच याज्ञिक श्राद्ध न होनेमें यह विधि है ॥ जो उत्तम द्विज स्नान करके जलसे पितरोंका तर्पण करता है उसीसे संपूर्ण पितृयज्ञकी क्रियाके फलको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ जिस्से पिता आदि वसु आदि हैं यह अनादि श्रुति है इसीसे पिताओंको वसु नामदेव और पितामहोंको रुद्र और प्रपितामहोंको आदित्य मनु आदि कहते हैं तिससे श्राद्धमें पिता आदिरूपसे ध्यान करनेयोग्य हैं ८४

विघसांशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः ॥ विघसो भुक्तशेषं तु य  
ज्ञशेषं तथामृतम् ॥ ८५ ॥ एतद्रोऽभिहितं सर्वं विधानं पार्श्वयज्ञिक  
म् ॥ द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ ८६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

टीका—सदा विघसका भोजन करनेवाला होय और सदा अमृतका भोजन करनेवाला होय विघस और अमृत शब्दोंका अर्थ करते हैं ब्राह्मण आदिकोंके भोजनसे बचे हुएको विघस कहते हैं और दर्शपौर्णमास आदि यज्ञोंसे बचा हुआ पुरोडाश आदि अमृत कहा जाता है ॥ ८५ ॥ यह पंचयज्ञोंके करनेकी विधि तु-मसे सब कही अब द्विजोंमें मुख्य जो ब्राह्मण हैं उसकी वृत्तियों जो मृत आदि हैं उनका अनुष्ठान सुनिये यह भृगुजी सब महर्षियोंसे कहते हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनय पण्डित केशवप्रसादशर्माद्विवेदिकतायां

कुङ्कुमभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

चतुर्थमायुषो भागमुचित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृत्  
तदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ अद्रोहेणैव भूतानां मर्त्यद्रोहेण वा पुनः ॥ यां  
वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

टीका—पहला चौथाई जो आयुष्यका भाग है तिसमें यथाशक्ति गुरुकुलमें  
वास करि दूसरे आयुष्यके चौथाई भागमें विवाह करिके घरमें वास करै ॥ १ ॥  
जीवोंसे द्रोहको न करके जो इसका असंभव होय तौ थोड़ेसे द्रोहको करके जो  
वृत्ति कहिये जीवनका उपाय है उसके आश्रयसे भार्या भृत्य और पंचयज्ञोंके क-  
रनेसे युक्त हो ब्राह्मण आपत्तिरहित कालमें जीवें क्षत्रिय आदि नहीं ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्धयर्थं स्वैः कर्मभिर्गर्हितैः ॥ अंकुशेन शरीरस्य  
कुर्वीत धनसंचयम् ॥ ३ ॥ ऋतानृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ॥  
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥

टीका—प्राणोंकी रक्षा और शास्त्रीय कुटुंबको बढाता हुआ तथा नित्यकर्मों-  
को करता हुआ केवल शरीर निर्वाहके भोगके लिये नहीं शास्त्रमें कहे हुए ऋत-  
आदि अर्ज्जनरूप कर्मोंसे शरीरके क्लेश विना धनका संग्रह करै ॥ ३ ॥ आप-  
त्ति रहित समयमें ब्राह्मण ऋत और अमृतते जीविका करै और विना आपत्ति  
के सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ४ ॥

ऋतमुच्छिशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयचितम् ॥ मृतं तु याचितं भैक्षं  
प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेनैवैवापि जी-  
व्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिरारण्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—खेत आदिमें पड़े हुए एक एक अन्नके दानके चुटकीसे बीननेको उ-  
छ कहतेहैं और अनेक धान्योंकी वालिभुटिया फली आदिके बीननेको शिल क-  
हते हैं उन दोनोंका सत्य समान फल है इससे उनको ऋत कहते हैं विना मागे  
प्राप्त हुआ अमृतके समान सुखका कारण होनेसे अमृत है ओर मागा हुआ भि-  
क्षा समूह मरनेके समान पीडा उत्पन्न करनेसे मृत कहाताहै अग्निहोत्री गृहस्थको  
भिक्षामें कच्चे चावल आदि लेने चाहिये पके हुए नहीं क्योंकि पंराई अग्निमें पकायें  
हुएका अग्निमें होम नहीं हो सकता हैं और कर्षण जो भूमिका जोतनाहै वह भू

मिमें स्थित अनेक जीवोंके मरनेका कारण होनेसे बहुत दुःखरूप फलका देनेवाला होनेसे जो प्रकृष कहिये अधिकतासे मृतके समान होय सो अमृत कहा जाता है॥ ९॥ बहुधा सच्चे झूठे व्यवहारसे होता है इससे वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं परंतु वाणिज्यमें शास्त्रसे झूठ संच्चक्री आज्ञा नहीं है तिसपरभी इसका सत्याऽनृतही नाम है उस वाणिज्यसेभी जीविका करै और इस श्लोकमें जो च शब्द है इससे व्याजभी जाना गया अर्थात् आपत्तिमें व्याजसेभी जीविका करै और सेवा-तौ दीन दृष्टिसे देखना और स्वामीके धमकाना नीच कामोंका करना आदि सेवा कुत्ता कीसी वृत्ति कही गई है इससे ब्राह्मण उसका त्याग करै अर्थात् सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ६ ॥

कुशलधान्यको वां स्यात्कुम्भीधान्यैक एव वां ॥ त्र्यहैहिको वा  
पि भवेदश्वस्तनिक एव वां ७ चतुर्णामपि चैतेषां द्विर्जानां गृहमे  
धिनाम् ॥ ज्यार्यान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोके जित्तमः ॥ ८ ॥

टीका—ईट आदिसे बने हुए अन्न रखनेके घरके कुशल कहते हैं उसमें भरे हु-  
ए धान्यका संचय करनेवाला होय अथवा एकवर्षके निर्वाह योग्य धान्यका संग्र-  
ह करनेवाला कुम्भी धान्य कहा जाता है वह होय अथवा त्र्यहैहिक उसको कह-  
ते हैं जिसके त्रीनिदिनको निर्वाहके योग्य अन्न होय ऐसा होय अथवा जो क-  
लह होय उसको श्वस्तन कहते हैं ऐसा अन्न जिसके होय वह श्वस्तनिक कहाता  
है सो न होय उसको अश्वस्तनिक कहते हैं ऐसा होय अर्थात् रोज उत्पन्न करके  
निर्वाह करनेवाला होय ॥ ७ ॥ इन चारि कुशल धान्य आदि गृहस्थ ब्राह्मणोंमें  
जो शेषमें बड़ा है अर्थात् पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा इस क्रमसे श्रेष्ठजनिये  
जिससे वह जीविकाके संकोचसे स्वर्ग आदि लोकोका जीतनेवाला होता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यैः प्रवर्तते ॥ द्वाभ्यामेकैश्चतुर्थस्तु  
ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥ वर्तयंश्च शिरोऽच्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ॥  
ईष्टीः पार्यायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

टीका—इन चारों कुशल धान आदि गृहस्थोंमें जिसके बहुतसे पोष्यवर्ग  
कहिये पालकरने योग्य बहुतसा कुटुंब है वह ऋत अयाचित भिक्षा खेती वाणि-  
ज्य इन पांचसे और छठे कुसीद कर्थात् व्याज इन छ कमोंसे जीविका करे औ-  
र अन्य जिसके थोडा कुटुंब है वह याजन प्रतिग्रह और अध्यापन इन तीनों  
से जीविका करै और उससे अन्य याजन तथा अध्यापनसे जीविका करै और



कहे हुए तीनोंकी अपेक्षा चौथा फिर ब्रह्मसूत्र जों पढ़ाना है तिस्से जीविका करै ॥ ९ ॥ शिल और उंछसे जीनेवाला ब्राह्मण धनसे करनेयोग्य दूसरे कर्मोंमें असमर्थ होनेसे अग्निहोत्रहीमें लगारहे पर्व और अनयके अंतकी इष्टि अर्थात् दर्श-पौर्णमास और आग्रयणात्मिक सदा करै ॥ १६ ॥

**भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥**

टीका—जीविकाकेलिये लोकवृत्त कहिये झूठी प्यारी बातके कहनेको और विचित्र हंसीकी कथा आदिको न करै और अजिह्वा कहिये झूठे अपने गुणोंके कहने आदि पापसे रहित और अशठा कहिये दंभ आदि कपटसे रहित और शुद्धा कहिये वैश्य आदिकी वृत्तियोंसे नही मिली हुई ब्राह्मणकी जीविका करै ॥ ११ ॥ संभवके अनुसार भृत्योंके तथा अपने प्राणोंके निर्वाहके लिये आवश्यक और पंचयज्ञोंके करनेहीके योग्य धनसे अधिक चाहना न करनेको संतोष कहते हैं उस संतोषका भली भांति आश्रय ले बहुतसे धनके जोड़ने में संयम करै जिस्से इस संसारमें संतोषही सुखका कारण है और परलोकमें स्वर्ग आदिके सुखका कारण है इस्से विपर्यय कहिये उलटा असंतोषहै सो दुःखका कारण है क्योंकि बहुत धन जोड़नेके श्रमसे बहुत दुःख उत्पन्न होनेके कारण संपत्ति तथा विपत्तिमें क्लेश होतहै ॥ १२ ॥

**अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥ स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतर्तुद्रितः ॥ तद्धि कुर्यन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् १४**

टीका—इन कही हुई वृत्तियोंमेंसे किसी एक वृत्तिसे जीवता हुआ स्नातक ब्राह्मण स्वर्ग आयु और यशके हितकारी आगे कहे हुए व्रतोंको यथा संभव करै यह मुझको करना चाहिये यह न करना चाहिये इस प्रकारका जो संकल्प है उसको व्रत कहते हैं ॥ १३ ॥ वेदमें तथा स्मृतिमें कहा हुआ अपने आश्रमका कहा हुआ कर्म जीवने पर्यंत आलस्यरहित होकै करै जिस कारणसे सामर्थ्यके अनुसार करता हुआ परमागति कहिये मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

**नैहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ॥ न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्थानि**

मपि यत्तस्ततः ॥ १५ ॥ इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ॥  
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्त्तयेत् ॥ १६ ॥

टीका—प्रसंग जो गाना, वज्राङ्गो है तिस्से द्रव्यको न जोडै और शास्त्रविरुद्ध कर्म जो अयाज्य याजनादि कहि तिस्से भी न जोडै और धन होनेपरभी न जोडै और धनके न होनेपरभी जो और प्रकार होय तौ इधर उधर पतित आदिकोंसेभी न ले ॥ १५ ॥ इन्द्रियोंके अर्थ कहिये विषय जे रूप रस गंध स्पर्श आदि निषिद्ध नहीं है उनमें अर्थात् अपनी स्त्री आदिके भोगमें कामसे अत्यंत सक्त न होय क्योंकि विषय अस्थिर है और स्वर्ग तथा मोक्ष रूप कल्याण-विरोधी हैं यह जानके इनसे मनसे निवृत्त होय ॥ १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ यथातथास्यार्थपयं  
स्तु सां ह्यस्य कृत्तकृत्यता ॥ १७ ॥ वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्या  
भिजनस्य च ॥ वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

टीका—वेदाभ्यासके विरोधी जो धनवानके समीप बहुत जाना खेतीलोक यात्रा आदि हैं उन सबको त्याग करै तौ कहिये कि भृत्योंका और अपना पालन कैसे होय यह शंका करिके कहते हैं जैसे तैसे स्वाध्यायके अविरोधी किसी उपायसे भृत्योंका और अपना पोषण करै जिस्से नित्यवेदाभ्यासमें लगा रहना यही स्नातककी कृतार्थता है ॥ १७ ॥ अवस्था क्रिया धन वेद और कुल इनके अनुरूप वेष बोल चाल और बुद्धि करता हुआ इस लोकमें विचरै जैसे तरुण अवस्थामें माला गंध लेपन आदिका धारण करना और त्रिवर्गकी अनुसरण करनेवाली वाणी और बुद्धि ऐसेही कर्म आदिकोंमेंभी जानिये ॥ १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकरण्यांशु धन्यानि च हितानि च न नित्यं शास्त्राण्यवे  
क्षेत निर्गमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥ यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं  
समधिगच्छति ॥ तत्रातथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते २०

टीका—वेदके विरोधि नहीं और शीघ्रही बुद्धिके बढ़ानेवाले व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदिशास्त्रोंको तथा धन्य कहिये धनके लिये हित वा-हस्पत्य औन्नस आदि अर्थशास्त्रोंको और हितकहिये भिनका उपकार देखा गया है ऐसे वैद्यक ज्योतिष आदिकोंको तैसेही वेदार्थके बोध करानेवाले

निगमनाम ग्रंथोंको विचारकरै ॥ १९ ॥ जैसे जैसे पुरुष शास्त्रको अच्छीतरहसे पढ़ता है वैसे वैसे विशेष कर जानताहै और अन्य शास्त्रोंके विषयकोभी विशेष ज्ञान इसको रुचता है अर्थात् उज्ज्वल होता है ॥ २० ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा । नृत्यज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न ह्यपयेत् ॥ २१ ॥ एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ॥

अनीहमानाः संततमिन्द्रियेष्विव जुह्वति ॥ २२ ॥

टीका—ऋषियज्ञ १ देवयज्ञ २ भूतयज्ञ ४ नृत्यज्ञ ५ इन पांचयज्ञोंको यथाशक्ति कभी न छोडै ॥ २१ ॥ गृहस्थके बाहरी तथा भीतरी यज्ञ करनेके शास्त्र जाननेवाले कोई गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ आदि नाम इन पांच महायज्ञोंको ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे बाहरी चेष्टाओं करि रहित हो पांच बुद्धीन्द्रियोंहीमें पांच जे रूपज्ञान आदि हैं तिनका संयम करते हुए संपादन करते हैं यहा हुआ धातुका संपादन अर्थ है ॥ २२ ॥

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ॥ वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिर्मक्षयाम् ॥ २३ ॥ ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येते मखैः सदा ॥ ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥

टीका—कोई ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ वाचिक कहिये प्राणवायुमें यज्ञ करनेके अक्षय फलको जानते हुए सदा वाणीमें प्राणको होमतेहै और वाणीको प्राणमें अर्थात् बोलता हुआ वाणीको प्राणमें होमताहै और नही बोलनेसे श्वास लेता हुआ प्राणमें वाणीको होमताहै इस्से ध्यान करना चाहिये यह विधान किया जाताहै इस्से अनंत अमृतरूप आहुतियोंको जागते सोते सदा होम करता है निश्चय बाहरी दीहुई और आहुतियां कर्ममयी होती हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ और ब्राह्मण सब भाति ब्रह्मज्ञानहीसे इन यज्ञों करि यजन करते हैं अर्थात् इन यज्ञोंको करते हैं कैसे करतेहै इसपर कहते हैं ज्ञान है मूल जिसका ऐसी इन यज्ञोंकी क्रियाकी उत्पत्तिको जानते हुए ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥ दर्शने चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैवं हि ॥ २५ ॥ संस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ॥ प्रशुना त्वयनस्यादौ संमान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

टीका—उदित होमपक्षमें दिन आदिमें और रातिकी आदिमें और अनुदिन

तथा होमपक्षमें दिनके अंतमें और रातिके अंतमें अथवा उदित होमपक्षमें दिन की आदिमें और दिनके अंतमें और अनुदित होम पक्षमें रातिकी आदिमें और रातिके अंतमें अग्निहोत्र करै और कृष्णपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें दर्शनाम कर्मसे और शुक्लपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें पौर्णमास नामकर्मसे यजन करै ॥ २५ ॥ पहले जोरे हुए धान्य आदि सस्यके समाप्त होनेपर अथवा न समाप्त होनेपरभी नवीन धान्यकी उत्पत्तिमें आग्रयण जो नवीन सस्यकी इष्टि है तिस्से यजन करै तथा ऋतुके अंतमें चातुर्मास्य यज्ञसे यजन करै और अयनोंकी आदिमें अर्थात् उत्तर तथा दक्षिण अयनके आरंभमें पशुसे यजन करै अर्थात् पशुबन्धनाम यज्ञकरै और शिशिर ऋतु करि वर्षके समाप्त होनेपर वसंत ऋतुमें सोमरससे करनेयोग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करै ॥ २६ ॥

नानिष्ट्वा नवर्षस्येष्ट्या पशूना चाग्निमान्द्विजः ॥ नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥ नवेनानर्चितौ ह्यस्य पशुहव्ये न चाग्नयः ॥ प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ २८ ॥

टीका—बड़ी आयुकी चाहनेवाला अग्निहोत्री द्विज नवीन सस्यकी इष्टि किये बिना नवीन अन्नको न खाय और पशुयाग किये बिना मांस न खाय ॥ २७ ॥ जिस्से नवीन अन्नसे और पशु हव्यसे नहीं पूजे हुए नवीन अन्न और मांसके चाहनेवाले अग्नि अग्निहोत्रीहर्षके प्राणोंके खानेकी इच्छा करते हैं ॥ २८ ॥

आसनाशनशय्याभिरर्द्धिर्मूलफलैर्वा ॥ नोस्यं कश्चिद्भेदे हे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥ २९ ॥ पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाच्छठान् ॥ हेतुकान्वकवृत्तिंश्च वाङ्मात्रेणापि नाचयेत् ॥ ३० ॥

टीका—शक्तिके अनुसार आसन भोजन शय्या जल कंद फल आदिसे नहीं पूजा गया अतिथि इस गृहस्थके घरमें न बसे ॥ २९ ॥ पाषण्डी कहिये वेदसे बाहरी व्रत तथा चिन्होंके धारण करनेवाले शाक्य भिक्षु क्षपणक आदि और विकर्मस्थ कहिये निषेध की हुई वृत्तिसे जीवनेवाले और वैडालव्रतिक कहिये बकवृत्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और शठ कहिये जो वेदमें श्रद्धा न रखते होय और हेतुक कहिये वेदके विरोधी तर्कोंसे व्यवहार करनेवाले इनमेंसे जो कोई अतिथिके समयमेंभी आवै तौ उसका वाणीमात्रसेभी सत्कार न करै ॥ ३० ॥

वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः ॥ पूजयेद्धव्यकव्येन वि

परीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमे  
धिना ॥ संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

टीका—जो वेदोंको समाप्त करि और व्रतोंको नहीं समाप्त करि घरको लौ-  
टता है वह विद्यास्नातक होता है और जो व्रतोंको समाप्त करि वेदोंको नहीं स-  
माप्त करि जो घरको लौटता है वह व्रतस्नातक कहा जाता है और जो दो-  
नोंको समाप्त करि लौटता है वह विद्याव्रतस्नातक कहा जाता है इन श्रोत्रिय ती-  
नों स्नातकोंको गृहस्थ हव्यसे पूजै ॥ ३१ ॥ गृहस्थ अपचमान कहिये जो अपने  
हाथसे पाक नहीं करते ऐसे ब्रह्मचारी संन्यासी और पाषंडीको शक्तिके अनुसार  
अन्नका भोजन दे और अपने कुटुंबके अनुरोधसे वृक्ष आदि पर्यंत प्राणियोंको  
जल आदिसेभी संविभाग कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ॥ यार्ज्यान्तेवासिनो  
वापि न त्वन्यत्तं ईति स्थितिः ॥ ३३ ॥ न सीदेत्स्नातको वि-  
प्रः क्षुधां शक्तः कथंचन ॥ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे संति ३४ ॥

टीका—क्षुधासे पीडित स्नातक द्विजातिसे प्रतिग्रहका संभव होनेपरभी शास्त्र-  
के अनुसार चलनेवाले क्षत्रिय अर्थात् राजासे अथवा यजमानसे और शिष्योंसे  
पहले धनकी इच्छा करै वे न होय तौ अन्यभी द्विजातिसे धन ग्रहण करै उसके  
अभावमें तौ सबसे ले यह आपत्तिका धर्म कहेंगे और से न ले यह मर्यादा है  
सो आपत्ति छोड़कै है ॥ ३३ ॥ विद्या आदिके योगसे दान लेनेमें समर्थभी स्नात-  
क ब्राह्मण कहे हुए राजा आदिके प्रतिग्रहके मिलनेपर क्षुधासे दुखी नहोय और  
धन होनेपर पुराने और मैले वस्त्र धारण न करै ॥ ३४ ॥

कूतकेशनखश्मश्रुदान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः स्वाध्याये चैवं युक्तः  
स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥ वैणवी धारयेद्यष्टिं सोदकं च  
कमण्डलुम् ॥ यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

टीका—कटे हैं केश नख और दाढ़ी मूछ जिसके ऐसा होय और दांत कहि  
ये तपके क्लेशका सहनेवाला होय सपेदवस्त्र रक्खै और बाहरी भीतरी शुद्धतासे  
युक्त रहै और वेदके आभ्यासमें लगा रहै और औषध आदिके सेवनसे अपने हि-  
तमें सदा तत्पर रहै ॥ ३५ ॥ वांसकी लाठी लिये रहै और जलसे भरा हुआ  
कमण्डलु रक्खै और यज्ञोपवीत कुशकी मुट्ठी तथा सुंदर सोनेके दोनो कुंडल ब्र-  
ह्मचारि धारण करै ॥ ३६ ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ नोपमृष्टं नैवारिस्थं  
न मध्यं नभसो गतम् ॥ ३७ ॥ नैलङ्घयेद्भूतसंततीं न प्रधावेच्च  
वर्षति ॥ न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥ ३८ ॥

टीका—उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्यके झंडलको संपूर्ण न देखै तथा राहुग्रहसे ग्रसे हुए और जलसे प्रतिबिंब पड़े हुए तथा आकाशके मध्यमें स्थित अर्थात् मध्यान्हके सूर्यको न देखै ॥ ३७ ॥ बछड़ा बांधनेकी रस्ती को न उलंघे और मेहवर्षणके समय नहीं दौरे और अपनी देहकी परछाईको जलमें न देखै ॥ ३८ ॥

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ॥ प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्र  
ज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥ नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तं  
वदंशने ॥ समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

टीका—मट्टीका देर, गौ, पाषाण आदिके बने हुए देवता, ब्राह्मण, घी, सहित चौराहा ओर बड़े प्रमाणसे जाते हुए बट पीपल आदि वृक्ष इन सबको मार्गमें दाहिने देकर चले ॥ ३९ ॥ कामसे पीडितभी पुरुष राजोद्देशनमें निषिद्ध होनेके तीन दिन स्त्रीसे भोग न करे और गमन न करते हुएभी उसके साथ एक पलंगपर न सोवै ॥ ४० ॥

रजसाभिपुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुः  
रायुश्चैव प्रहीयते ॥ ४१ ॥ तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभि  
पुताम् ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

टीका—रजस्वला स्त्रीसे भोग करनेवाले पुरुषके प्रज्ञा, तेज, बल, आंखि ये सब नष्ट होजाते हैं तिससे उसका त्याग करे ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्रीमें न गमन करनेवाले मनुष्यके प्रज्ञा, तेज, नेत्र, आयु ये सब बढ़ते हैं तिससे उसको बचावै ॥ ४२ ॥

नाश्रियाद्धार्या सार्धं नैर्नामीक्षेत चाश्रतीम् ॥ क्षुवतीं जृम्भमा  
णां वा न चासीनां यथासुखम् ॥ ४३ ॥ नाश्रयन्तीं स्वके नेत्रे न चा  
भ्यर्त्तामनावृताम् ॥ न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कां मोद्विजोत्तमः ॥ ४४

टीका—स्त्रीके साथ एकपात्रमें न खाय और खाती हुई छिकती हुई जम्हावी हुई और बेपर्दा बैठी हुईको न देखै ॥ ४३ ॥ तेजकी बृद्धि रखनेवाला मनुष्य

अपनी आंखांको आजती हुई और तेल लगाती हुई तथा स्तन ढकनेके वस्त्रसे रहित और बालकको जन्मती हुई स्त्रीको न देखे ॥ ४४ ॥

नौत्रमद्यादेकवांसा न नग्नः स्नानमार्चयेत् ॥ न मूत्रं पीथि कुर्वीत  
न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न  
च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न बल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥

टीका—एकवस्त्र पहिरे हुए भोजन न करे अर्थात् कंधेपर अंगोछा डारले और नंगा होके स्नान न करे और मार्गमें लघुबाधा न करे और भस्ममें तथा शौओंके स्थानमें मूत्र तथा मलका त्याग न करे ॥ ४५ ॥ हलसे जुते हुए खेतमें जलमें ईंट आदिसे बनाये हुए अग्निके स्थानमें पर्वतपर पुराने देवताके स्थानमें और बांभीमें कभी मूत्रका त्याग न करे ॥ ४६ ॥

न सप्तत्वेषु गतेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमांसाद्य  
न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥ वार्यवग्निविप्रमादित्यमपः पश्यं  
स्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विष्णुमूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

टीका—जीवों समेत गढिल्लोंमें चलता हुआ खड़ा हुआ नदीके किनारे और पर्वतके शिखरपर कभी मलमूत्रका त्याग न करे ॥ ४७ ॥ पवन अग्नि ब्राह्मण सूर्य जल और गौको देखता हुआ कभी मलमूत्रका त्याग न करे ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ॥ नियम्य प्रयतो वाचं  
संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥ मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादु  
दईमुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्यायश्च यथादिवा ॥ ५० ॥

टीका—काठ डेला फूस और सूखे पतों आदिसे भूमिको ढकिके मौन हो शरीरको वस्त्र आदिसे लपेटे हुए शिरमें वस्त्र बांधिके मलका त्याग करे अर्थात् दिशा जाय ॥ ४९ ॥ दिनमें तथा दोनों संध्याओंमें उत्तरको मुख करके और रात्रिमें दक्षिणको मुख करके मलमूत्रका त्याग करे ॥ ५० ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कु  
र्यात्प्राणबार्धाभयेषु च ॥ ५१ ॥ प्रत्यग्नि प्रतिसूर्य च प्रतिसोमोद  
कद्विजान् ॥ प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

टीका—रात्रिके समय छायामें अथवा अंधकारमें और दिनमें छाया तथा

कुहिर आदिके, अंधकारमें दिशा-विशेषका ज्ञान न होनेपर और चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राणोंके नाश होनेके भयमें इच्छापूर्वक मुखको करिके मलमूत्रका त्याग करै ॥ ५१ ॥ अग्नि सूर्य चंद्रमा जल ब्राह्मण गौ पवन इनके सन्मुख मलमूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नैक्षेत च स्त्रियम् ॥ नैमेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ  
न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥ अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभि  
लङ्घयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

टीका—अग्निको मुखसे न फूँके पंखा आदिसे जगाले और नंगी स्त्रीको मैथुनके बिना कभी न देखे और अपवित्र मूत्र विष्टा आदि अग्निमें न डाले और अग्निमें पैरोंको न तपावै ॥ ५३ ॥ खटिया आदिके नीचे अग्निकी अगीठी न रक्खे और अग्निको न उलांचे और सोया हुआ पैरोंकी और अग्निको न रक्खे और प्राणोंको पीडा देनेवाला काम न करै ॥ ५४ ॥

नाश्रीयत्संधिवेलायां न गच्छेन्नार्पि संविशेत् ॥ न चैव प्रलि  
खेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्वजर्म ॥ ५५ ॥ नाप्सु मूत्रं पुरीष वा छीर्वन वा  
समुत्सृजेत् ॥ अमेध्यलितमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

टीका—संध्याके समय भोजन दूसरे ग्राममें जाना और सोना इनको न करै और रेखा आदिसे भूमिको न लिखे और धारणकी हुई मालाको आप न उतारै किंतु दूसरेसे उतरवा दे ५५ जलमें मूत्र विष्टा और कफ आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरे हुए वस्त्र अथवा और कुछ खानेसे वचा हुआ अपवित्र रुधिर और कृत्रिम अकृत्रिम भेदसे दो प्रकारके विष जलमें न डाले ॥ ५६ ॥

नैकः स्वपेच्छून्यग्रे शयानं न प्रबोधयेत् ॥ नोदक्ययाभिभाषे  
त यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ५७ ॥ अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च  
सन्निधौ ॥ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

टीका—सूने घरमें अकेला न सौवै और सोते हुए धनविद्या आदि करि अपनेसे अधिकको न जगावै और रजस्वला स्त्रीसे बातचीत न करै और बिना वरण किया हुआ अर्थात् ऋत्विक् न होकर यज्ञमें न जाय देखनेको तो जाय ॥ ५७ ॥ अग्निके घरमें गौओंके निवासमें बहुतसे ब्राह्मणोंके समीप और वेद पाठ तथा भोजनके समग्रमें बांह समेत दाहिने हाथको वस्त्रसे बाहर निकाले ५८



नै वारयेद्वां धयेन्तीं न चैचक्षीत कस्यचित् ॥ नै दिवीन्द्रायुधं  
दृष्ट्वा कस्यचिदृशयेद्बुधः ॥ ५९ ॥ नार्धार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधि  
बहुले भृशम् ॥ नैकैः प्रपद्येताध्यानं न चिं रं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥

टीका—दूध वा जल पीती हुई गौको मने न करै और दूसरेके दूध आदि पीति हुईको उससे न कहै और निषिद्ध दर्शनके दोषका जाननेवाला आकाशमें इंद्र धनुषको देखिकै और किसीको न दिखावै ॥ ५९ ॥ जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते होय और जिसमें बहुतसे मनुष्य कठिन रोगोंसे पीडित होय उस ग्राममें अत्यंत वसना योग्य नहीं है और मार्गमें अकेला कभी न चले और बहुतकालतक पर्वतपर न बसे ॥ ६० ॥

नै शूद्रराजे निवसेन्नाधार्मिकं जनावृते ॥ नै पाषण्डिगणक्रान्ते नो  
पसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥ नै भुञ्जीतोद्धतस्नेहं नातिसौहित्वाचरे  
त् ॥ नातिप्रगे नातिसायं नै सायं प्रार्तराशितः ॥ ६२ ॥

टीका—जिस देशमें शूद्रराजा होय वहां न बसे और अधर्मी मनुष्यों करि बाहरसे घरे हुए ग्रामआदिमें न बसे और वेदसे बाहरी चिन्होंके धारण करनेवालों करि वश किये हुए तथा चांडाल आदि अत्यंजों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें न बसे ॥ ६१ ॥ चिकनाई निकाले हुए पीना आदिको न खाय और दोवारमें भी अति तृप्ति न करै अर्थात् बहुत पेट भरकै न खाय और सूर्यके उदयकाल तथा अस्तकालमें भोजन न करै और जो प्रातःकाल बहुत पेट भरकै खाले तौ संध्याको भोजन न करै ॥ ६२ ॥

नै कुर्वीत वृथाचेष्टां नै वार्यञ्जलिं नापिबेत् ॥ नै त्सङ्गे भक्षेयद्भक्ष्यां  
न्नै जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥ नै नृत्येदथवा गीयेन्नै वादित्राणि  
वादन्येत् ॥ नास्फोटयेन्नै च क्ष्वे डेन्नै च रक्तो विरार्येत् ॥ ६४ ॥

टीका—वृथा चेष्टा न करै और अंजलीसे जल न पीवै और गोदीमें रखकै लड्डू आदि न सांय और बिना प्रयोजनके यह क्या है ऐसे जाननेकी इच्छा की कुतूहल न करै ॥ ६३ ॥ शास्त्रसे भिन्न नाचना गाना बजाना न करै ताल न ठोकै तौतली बोली न बोले और प्रसन्नतामें भरकै गधा आदिका शब्द न करै ॥ ६४ ॥

नै पादौ धारयेत्क्रांस्ये कदाचिदपि भोजने ॥ नै भिन्नभार्षडे भु

अतीतं नं भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥ उपानहौ च वासश्च धृतमन्यै  
नं धारयेत् ॥ उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेवं च ॥ ६६ ॥

टीका—कांसेके पात्रमें पैर न धोवै और तांबा चांदी सोना इनको छोड़-  
कर और घातुओंके फूटे पात्रमें भोजन न करै और जिस्से मनको घिना होय ऐसे  
भाव दूषित पात्रमें न खाय ॥ ६५ ॥ लूता कपडा यज्ञोपवीत अलंकार फूलों-  
की माला और कमंडलु दूसरेके जूठे किये हुए इनको न धारण करै ॥ ६६ ॥

नारिणीतैर्व्रजेद्भुयैर्न च क्षुद्रार्थाधिपोडितैः ॥ न भिन्नशृङ्गाक्षिचुरै  
नं वारुधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥ विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्ष-  
णान्वितैः ॥ वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनार्तुदम्भशम् ॥ ६८ ॥

टीका—विना सिखाये हुऐ हाथी घोडा आदि वाहनोमें और मूख तथा रो-  
गसे दुखी और जिनके सींग आंखि और खुर टूटि फूटि गये हैं और बंडि पूं-  
छके वाहनोमें चढकर न चलै ॥ ६७ ॥ सिखाये हुए जलदी चलनेवाले शुभ सू-  
चक लक्षणों करिकै युंक्त सुंदर रंग और मनोहर स्वरतिके वाहनोमें कतुक्त  
आदिसे बहुत पीडा न देता हुआ गमन करै ॥ ६८ ॥

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥ न च्छिन्द्यान्नखलो  
मानिदं तैर्नो त्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥ न मृल्लोष्टं च मृद्रीयान्न च्छि  
न्द्यात्करजैस्तूर्णम् ॥ नैकं न निष्फलं कुर्यान्नैयत्यामसुखोदयम् ७०

टीका—बालातप कहिये पहले उदय हुए सूर्यका घाम अथवा कन्याकी सं-  
क्रांतिका घाम और जलते हुए मुरदेका धुआं तथा टूटा फूटा आसन ये वर्जित-  
हैं और नही बढे हुए नख तथा रोमोंको न काटै और दांतासे नखोंको न चावै  
॥ ६९ ॥ विनाकारण मृद्री तथा डेलोंको मर्दन न करै और नखोंसे तिनके न  
तोडै और दृष्ट अदृष्ट है फलरहित कर्म न करै और आगे दुखदेनेवाला कर्म न  
करै जैसे अजीर्णमें भोजन ॥ ७० ॥

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥ स विनीतं व्रजत्या-  
मूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥ न विगर्ह्यकथां कुर्याद्गहिर्माल्यं  
धारयेत् ॥ गर्वां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥

टीका—डेलोंका मर्दन करनेवाला और तिनकोंका छेदन करनेवाला तथा नखोंका

चवानेवाला मनुष्य और सूचक कहिये खल जो पराये दोषोंके न होनेपर उनको कहे और अशुचि कहिये जो वाहरी शौचसे रहित होय ये शीघ्रही देह धन आदिसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ शास्त्रके तथा लोकके व्यवहारमें हठसे वातचीत न करै और केशोंके समूहसे बाँध मालाको न धारण करै और पीठ पर चढकै बैलोंकी सवारी सब प्रकारसे निषिद्ध है पीठिके कहनेसे उन करि स्त्रीचे हुए रथ आदिमें चढनेका निषेध नहीं है ॥ ७२ ॥

अद्वारेण च नातोयाद्रामं वा वेष्टम वावृतम् ॥ रात्रौ च वृक्षमूला नि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥ नाक्षः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नो पानहो हरेत् ॥ शयनस्थोन भुञ्जीत न पाणिस्थं न चां सने ॥ ७४ ॥

टीका—परकोटा आदिसे घिरे हुए ग्राममें अथवा घरमें द्वारको छोडकै दूसरे मार्गसे अर्थात् परकोटेको फलांग कर न जाय और रात्रिमें वृक्षके मूलके पास न बैठे उनको दूरहीसे त्याग करै ॥ ७३ ॥ दांव लगाये विना कभीभी अर्थात् हंसीमेभी पांसे न खेले और पैरोमें पहिरनेके सिवाय आप अपने जूते हाथसे दूतरे देशको कभी न ले जाय और शय्यापर बैठकै न स्नाय और बहुतसा अन्न हाथमें रखकै क्रमसे न खाय और आसनपर भोजनके पात्रको रखकै भोजन न करै ७४ ॥

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥ न च नग्नः शयीते न चोच्छिष्टः केचिद्रजेत् ॥ ७५ ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

टीका—जो कुछ तिलोंसे मिला हुआ पदार्थ लड्डु आदि हैं उनको रात्रिमें न खाय और इस लोकमें नंगा होकै न सोवै और जूटा होकै कहीं न जाय ॥ ७५ ॥ जलसे गीले पेर होनेपर भोजन करै और गीले पैरोंसे सोवै नहीं और गीले पैरोंसे भोजन कर्ता हुआ पुरुष बड़ी आयुको प्राप्त होता है अर्थात् शतायु होता है ॥ ७६ ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ न विष्मूत्रमुदीक्षेत् न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥ अधितिष्ठेन्न केशास्तु न भस्मास्थि कर्पालिकाः ॥ न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ७८ ॥

टीका—जहां नेत्रोंसे नहीं देख सकते ऐसे वृक्षवेलि गुल्म आदिसे घने वन आदि दुर्ग कहिये कठिन स्थानमें कभी न जाय क्योंकि वहां साय चोर आदि-

के छुप रहनेका संभव है और विष्टा तथा मूत्रको न देखे और बाहोंसे नदीको न उतरै अर्थात् पैर कर नदीके पार न जाय ॥ ७७ ॥ जो बहुत दिनोंतक जीवना चाहै तौ बाल भस्म हाड खपरा विनौला भूसी. इन पर न बैठे ॥ ७८ ॥

नं संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुलकैसैः ॥ नं मूर्खैर्नोर्वलिसैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावर्सायिभिः ॥ ७९ ॥ नं शूद्राय मतिं दद्यान्मोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥ नं चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्यं व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

टीका—पतित चांडाल पुष्कस मूर्ख धनं आदिके मदसे गर्वित और अंत्य कहिये अंत्यज घोवी आदि और अंत्य कहिये अंत्यावसायी जो निषादकी स्त्रीमें चांडालसे उत्पन्न है ये दूसरे ग्रामकेभी रहनेवाले होंय तौभी इनके साथ एक वृक्षकी छायामें समीप न बसे ॥ ७९ ॥ शूद्रको मति न दे अर्थात् दृष्ट अर्थका उपदेश न करै और दाससे भिन्न शूद्रको जूग्य न दे और हविष्कृत कहिये हविकाशेष न दे और धर्मका उपदेश न करै और प्रायश्चित्तरूप व्रतभी इसको साक्षात् उपदेश न करै किन्तु ब्राह्मणको बीचमें करके उसको उपदेश करै ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ॥ सोऽसंवृतं नाम तमः—संह ते नैव मज्जति ॥ ८१ ॥ नं संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥ नं स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नान्याद्विना ततः ॥ ८२ ॥

टीका—जिस्से जो शूद्रको धर्म कहता है और जो प्रायश्चित्तका उपदेश करता है वह उस शूद्रसमेत जिसमे अधकार बहुत है ऐसे असंवृतनाम नरकमें डूबता है ॥ ८१ ॥ मिले हुए दोनो हाथोंसे अपने शिरको न खजावै और जूठे हाथोंसे अपने शिरको न छुवै और शिरकेविना नित्य नैमित्तिक स्नान न करै ८२

केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विर्वर्जयेत् ॥ शिरःस्नातश्च तैलेन नार्द्राकिं चिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥ नं राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराज्यप्रसूतितः ॥ सूनाचक्रध्वजवृतां वेशे नैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

टीका—क्रोधसे बाल पंकड़ना और चोंट मारना ये दोनो बातें शिरमें न करै और अपने शिरसे न्हाये हुएके किसी अंगको तैलसे न छुवै ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रियसे उत्पन्न नहीं है ऐसे राजासे धनको न ग्रहण करै और सूनावाले चक्रवाले तथा ध्वजवालोंसे सूना कहते हैं प्राणीके बधके स्थानको सो जिसके होय उसको सूनावाला कहते हैं अर्थात् पशुको मारकै मांस बेचनेवाला कसाई आदि बीजोका

वध करि वेचकै जीवनेवाला चक्रवाला कहाता है जैसे तेली और मद्यको वेचकर जीवनेवालेको ध्वजवान् कहतेहैं जैसे कलाल और वेशसे जीविका करनेवाले जैसे वेश्या बहुरूपिण्या आदि इनके धनको न ग्रहण करै ॥ ८४ ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमो वेशो दश  
वेशसमो नृपः ॥ ८५ ॥ दशसूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ॥  
तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

टीका—दशसूनावालोंमें जितना दोष होता है उतना एक तेलीमें होता है और दशतेलियोंमें जितना दोष होताहैं उतना एक कलालमें होता है और दशकलालमें जितना दोष होता है उतना एक वेश्या वा बहुरूपियामें होताहै और जितना दशवेश्या वा बहुरूपियामें होता है उतना एक राजामें मनु आदिकोने कहाहै । ८५ ॥ जो सूनावाला दशहजार जीवोंका वध करता है उसकी बराबर राजा मनु आदिकोने कहाहै तिस्सै राजाका धन लेना नरकका कारण होनेसे भयानक है ॥ ८६ ॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ स पर्यायेण यी  
तीर्मात्ररंकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

टीका—जो राजाका और शास्त्रका उल्लंघन करनेवाले लुपणका धन लेता वह क्रमसे आगे कहे हुए इक्कीस नरकोंमें जाताहै ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ नरकं कार्लसूत्रं च महान  
रकमेव च ॥ ८८ ॥ संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥ संह्रा  
तं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥ लोहशंकुमृजीषं च  
पन्थानं शाल्मलीनदीम् ॥ असिपत्रवनं च लोहदारकमेव च ९०

टीका—नरक गिनानें हैं जैसे तामिस्र १ अंधतामिस्र २ महारौरव ३ रौरव ४ कार्लसूत्र ५ महानरक ६ इन नरकोंका स्वरूप मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें विस्तारसे कहा है वहांसे जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ संजीवन ७ महावीचि ८ तपन ९ संप्रतापन १० संह्रात ११ सकाकोल १२ कुड्मल १३ पूतिमृत्तिक १४ ॥ ८९ ॥ लोहशंकु १५ ऋजीष १६ पन्थान १७ शाल्मली १८ नदी १९ असिपत्रवन २० लोहदारक २१ ॥ ९० ॥

एतद्भिदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मर्वादिनः ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति

प्रैत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥९१॥ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौ चानु  
चिन्तयेत् ॥ कार्यक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥९२॥

टीका—प्रतिग्रह नानाप्रकारके नरकोंका कारण है इस बातके जाननेवाले धर्मशास्त्र और पुराण आदिके जाननेवाले दूसरे लोकमें कल्याणके चाहने वाले ब्राह्मण राजाका दान नहीं लेते हैं ॥ ९१ ॥ ब्राह्ममुहूर्त जो रातिका पिछला पह-  
र है उसमें जागै फिर धर्म तथा अर्थका आपसमें विना विरोधके करनेके लिये चि-  
तवन करै और धर्म अर्थके इक्ठे करनेमें जो शरीरके क्लेश हैं उनकोभी विचारै अ-  
र्थात् जिसमें शरीरको अधिक क्लेश होय और धर्म तथा अर्थ थोड़ा होय तौ उ-  
सको छोड़ दे और ब्रह्मकर्मरूप वेदके तत्त्वका निश्चय करै क्योंकि उस समयमें  
बुद्धिका प्रकाश होता है ॥ ९२ ॥

उत्थायावश्यं कृत्वा कृत्तशौचः समोहितः ॥ पूर्वा संध्यां जपंस्तिं  
ष्टेस्वकाले चांपरां चिरम् ॥ ९३ ॥ ऋषयो दीर्घसंध्यात्वादीर्घमा  
युरवानुयुः ॥ प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

टीका—तिसपीछे प्रातःकाल शय्यासे उठकर वेग होनेपर दिश्र बाधा होकै  
आगे कहे हुए शौचको करि एकाग्रचित्त हो प्रातःकालकी संध्या बहुत देरतक  
गायत्री जपता हुआ करै जबतक सूर्यका उदय होय तबतक यह संध्याकी विधि  
कही है आयु आदि कामनावाला पुरुष उदयके उपरांतभी जप करै सायंकाल-  
की संध्याको भी अपने समयमें प्रारंभ करि ताराओंके उदयके उपरांतभी जपतां  
हुआ स्थित रहै ॥ ९३ ॥ जिस्से ऋषि बड़ी देरतक संध्या करनेसे बड़ी आयु प्र-  
ज्ञा बड़ी कीर्ति और वेदाध्ययन आदिसे संपन्न यशको प्राप्त हुए तिस्से आयु आ-  
दिका चाहनेवाला पुरुष बड़ी देरतक संध्योपासन करै ॥ ९४ ॥

श्रावण्यां प्रोष्टपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ॥ युक्तं च्छन्दांस्यधी-  
यीत मासान्विप्रोऽर्धश्चमान् ॥ ९५ ॥ पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्  
हिरुत्सर्जनं द्विजः ॥ माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहं नि ९६

टीका—श्रावणीमें अथवा भाद्रपदकी पूर्णमासीमें अपने गृहके अनुसार उपा-  
कर्म नाम कर्मको करिकै साढेचार महीनेतक उनमें तत्पर हो वेदोंको पढ़ै  
॥ ९५ ॥ तिस पीछे साढेचार महीनोंमें जब पुष्यनक्षत्र आवै तब ग्रामसे बाहर  
जाकै अपने गृहके अनुसार उत्सर्गनाम कर्म करै अथवा माघशुक्लके पहले  
दिन पूवान्ह समयमें करै ॥ ९६ ॥

## कृत्वैवमुत्सर्ग

शुद्धेषु

पठेत् ॥ वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए शास्त्रके अनुसार ग्रामसे बाहर वेदोंका उत्सर्गनाम कर्म करिके पक्षिणी रातिमें ठहर जाय पढ़ै नही पहला और पिछला दो दिन जिसके पक्षोंके समान होंय उनके बीचकी रात्रिको पक्षिणी कहते हैं इस पक्षमें तो उत्सर्गके रातिदिन और दूसरे दिनभी दिनमें न पढ़ना चाहिये दूसरी रात्रिमें तो पढ़ना चाहिये अथवा उसी उत्सर्गके दिन रातिमें अमध्याय करै ॥ ९७ ॥ उत्सर्गके पढ़नेके उपरांत मंत्र ब्राह्मणरूप वेदको शुक्लपक्षमें पढ़ै और शिक्षाव्याकरण आदि वेदके अंगोंको कृष्णपक्षमें पढ़ै ॥ ९८ ॥

नविस्पष्टमधीयीत नैशूद्रजर्जसन्निधौ ॥ न निशान्ते परिश्रान्ते  
ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥ ९९ ॥ यथोदितेन विधिना नित्यं छन्द  
स्कृतं पठेत् ॥ ब्रह्म छन्दस्कृतं चैवं द्विजो युक्तो ह्येनापदि ॥ १०० ॥

टीका—स्ववर्ण आदिके स्पष्ट उच्चारणके बिना और शूद्रके समीप न पढ़ै और रातिके पिछले पहर सोनेसे उठकर वेदको पढ़ि थका हुआ फिर न सोवे ॥ ९९ ॥ यथोक्त विधिसे नित्य छन्दस्कृत कहिये गायत्री आदि छंदों करि युक्त मंत्रसमूहको पढ़ै आपत्तिरहित समयमें सामर्थ्य होनेपर वेद ब्राह्मण और मंत्र समूहको कही हुई विधिसे युक्त हो द्विज पढ़ै ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ॥ अध्यापनं च कुर्वाणः  
शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥ कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसु  
समृहने ॥ एतौ वर्षास्वर्नध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ २ ॥

टीका—इन आगे कहे हुए सभ अनध्यायोंको उक्त विधिसे पढ़ता हुआ शिष्य और पढ़ता हुआ गुरु वर्जित करै ॥ १ ॥ रातिमें कानोंसे सुननेयोग्य शब्द करनेवाले पवनके चलनेपर और दिनमें धूलि उड़ानेवाले पवनके चलनेपर न पढ़ै वर्षाकालमें इन अनध्यायोंको तत्कालके अनध्यायोंके जाननेवाले मनु आदि कहते हैं ॥ २ ॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संल्लवे ॥ आकालिकमनध्या  
यमेतेषु मनुर्ब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतांस्त्वभ्युदितान्विद्यायदा प्रादुष्कृता

ग्रिषु ॥ तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ ४ ॥

टीका—विजलीका चमकना गर्जना और इन सर्वोंके एकसाथ होनेपर और इधर उधर बहुतसे उल्कापात अर्थात् तारोंके टूटने पर उस समयसे लगाके दूसरे दिन उसी समयतक मनुष्ये अकालिक अनध्याय कहा है ॥ ३ ॥ जो अग्निहोत्रके समय विजली आदि इन सब उत्पातोंको एकसाथ प्रकट हुए जानै तौ वर्षाऋतुमें अनध्याय करै सदा नहीं और ऋतुमें अग्निहोत्रके समय मेघके देखनेहीसे अनध्याय होताहै वर्षाऋतुमें नहीं होताहै ॥ ४ ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥ एतानर्कालिकान्वि  
द्यादनध्यायानृतावपि ॥ ५ ॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनि  
तनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषेरात्रौ यथा दिवा ॥ ६ ॥

टीका—आकाशमें उत्पन्न हुए उत्पात शब्दके होनेपर और भूमिकंप होनेपर और ज्योतिजे हैं सूर्य चंद्र तारागण तिनके उपद्रव होनेपर इन अनध्यायोंको अकालके जानै और ऋतुमेंभी वर्षाके विषे भूकंप आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस अभिप्रायसे ऋतौअपि यह कहा ॥ ५ ॥ होमके अग्निके प्रकाशित करनेपर संध्यासमय जो विजली और गर्जना होय वर्षा न होय तौ सज्योति अनध्याय होताहै अकालका नहीं है उनमें जो प्रातःकालकी संध्यामें विजली और गर्जना होय तौ जब सूर्यज्योति है तबतक एकदिनका अनध्याय होताहै और जो सायंकालकी संध्यामें होवे तौ जब ब्रह्मत्र ज्योति है तबतक रात्रिभरका अनध्याय होता है और विजली गर्जना तथा वर्षा तीनोंमेंसे जो वर्षानाम तीसराही होय तो जैसे दिनमें अनध्याय होताहै ऐसेही रात्रिमेंभी अर्थात् दिनरातिका अनध्याय होता है ॥ ६ ॥

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ॥ धर्मनैपुण्यकामानां पूं  
तिगन्धे च सर्वदा ॥ ७ ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ ॥  
अनध्यायो रूढमाने समवाये जनस्य च ॥ ८ ॥

टीका—धर्मकी अधिकता चाहनेवालेको ग्राम तथा नगरमें सदा अनध्याय होताहै और दुर्गंधके आनेमें सदा अनध्याय होता है ॥ ७ ॥ जिस ग्रामके भीतर स्थित मुर्दा जाना जाय उसमें और वृषल जहां अधर्मी होय उसके समीप और रोनेका शब्द होनेपर और किसी कामके लिये बहुत मनुष्योंका मेल होनेपर अनध्याय होताहै ॥ ८ ॥



उदके मध्यरात्रे च विष्णुर्त्रस्य विसर्जने॥ उच्छिष्टः श्राद्धमुक् चैव  
मनसापि न चिन्तयेत्॥ १॥ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य के  
तनं॥ त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११०॥

टीका—जलमें और आधी रातिमें चार मुहूर्ततक और मूत्र तथा पुरीषके  
जलनेके समय और अन्नके भोजन आदिमें उक्त वेदों के

उक्त वेदों का पठन न करे ॥ १॥ जो एकहीके लिये किया जाय वह एकोद्दिष्ट कहिये नवश्राद्ध उसमें न्योता मानिके निमंत्रण समयसे और क्षत्रिय जो देशका स्वामी है उसके पुत्रजन्म आदि के सूतकमें तथा राहुके सूतक अर्थात् सूर्य चंद्रके ग्रहणमें तीनि रात्रितक विद्वान् वेद न पढ़े ॥ ११०॥

यावदेकानुद्दिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ॥ विप्रस्य विदुषो देहं  
तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत्॥ ११॥ शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसं  
स्थिकाम् ॥ नाधी यीतामिषं जग्ध्वा सूतकां प्राद्यमेव च ॥ १२॥

टीका—एकोद्दिष्ट श्राद्धका उच्छिष्ट कुंकुम चंदन आदिका लेप विद्वान् ब्राह्मणके देहमें रहै तबतक तीनि दिनसे उपरांतभी वेद न पढ़े ॥ ११॥ शय्या पर पड़ा हुआ आसनपर पैर रखे हुए और दोनो घोटुओंको मोड़के और मांसखायके और जनन तथा मरणके सूतकका अन्न खायके वेदको न पढ़े ॥ १२॥

नीहारे वाणैशब्दे च संध्योरेव चोभयोः॥ अमावास्या चतुर्दश्याः  
पौर्णमास्यष्टकासु च॥ १३॥ अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति  
चतुर्दशी ॥ ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ १४॥

टीका—कुहिरमें और वाणके शब्दमें और दोनो संध्याओंमें और अमावास्या तथा चतुर्दशीको पूर्णमासी और अष्टमीको वेद न पढ़े ॥ १३॥ अमावास्या गुरुको मारती है और चतुर्दशी शिष्यको और अष्टमी तथा पूर्णमासी वेदको भुलाती है तिससे ये सब वेदके पढ़नेमें वर्जित हैं ॥ १४॥

पांशुवर्षे दिशां दोहे गोमायुविरुते तथा ॥ श्वखरोष्ठे च रुवति पं  
च न पठेद्विजः ॥ १५॥ नाधी यीत इमं शानान्ते आम्रान्ते  
ब्रजेऽपि वा ॥ वसित्वा मैथुनं वांसः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ १६॥

टीका—धूलिके बरसनेमें दिशाओंके दाहमें और स्यार कुत्ता गधा ऊंट इनके शब्द करनेपर और पंक्तिमें बैठकर ब्राह्मण वेदको न पढ़े ॥ १५ ॥ श्मशानके तथा ग्रामके समीप और गौओंके स्थानमें और मैथुन समयके वस्त्र पहिरिके और श्राद्धका अन्न लेकर वेदको न पढ़े ॥ १६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ तं दालभ्यां  
प्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ॥ १७ ॥ चौरैरुपप्लुते ग्रामे  
संभ्रमे चाग्निकारिते ॥ आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च १८

टीका—प्राणी गौ अश्व आदि अथवा अप्राणी वस्त्र माला आदि इनको दानके समय हाथसे पकड़कर अनध्याय होता है क्योंकि पाण्यास्यः अर्थात् हाथही हैं मुख जिसके ऐसा ब्राह्मण कहा गया है ॥ १७ ॥ चोरों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें और अग्निसे घर जलाने आदिके समयमें और दिव्य अंतरिक्ष तथा भूमिके अद्भुत उत्पातोंमें अकालका अनध्याय जानिये ॥ १८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिंशत्रं क्षेपणं स्मर्तम् ॥ अष्टकां सु त्वहोरात्रम्  
त्वंन्तासु च रात्रिषु ॥ १९ ॥ नाधीयीताश्चमारूढो न वृक्षं न च ह-  
स्तिनम् ॥ न नावं न खरं नोष्ट्रं न रिणस्थो न यानर्गः ॥ २० ॥

टीका—उपाकर्म और उत्सर्गमें तीनि रात्रिका अनध्याय कहा है और तैसैंही अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत कृष्णपक्षकी तीनि अष्टमियोंमें रात्रिदिनका अनध्याय होता है और ऋतुओंके अंतके रातिदिनका अनध्याय होता है ॥ १९ ॥ घोडा वृक्ष हाथी नाव गधा और ऊंट इनपर चढा हुआ और ऊपरदेशमें तथा गाडि आदि सवारीमें चलता हुआ वेदको न पढ़े ॥ २० ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे ॥ न भुक्तमात्रे न जीर्णे न  
वर्मित्वा सूक्तके ॥ २१ ॥ अतिथिश्चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा  
भृशम् ॥ रूधिरं च क्षुते गात्राच्छेदने च परिक्षते ॥ २२ ॥

टीका—विवाद कहिये बातोंकी लड़ाईमें और कलह कहिये लाठी डंडा आदिके चलनेमें और जिसमें युद्ध नहीं होने लगा है ऐसी सेनामें और युद्धमें और भोजनके पीछे जबतक हाथपैर गीले रहैं तबतक और अन्नके न पचनेमें और व मन करिके और खट्टीढकार आनेपर वेदको न पढ़े ॥ २१ ॥ अध्ययन करता हूँ यह आज्ञा जबतक अतिथिको नहीं दीजाती है तबतक और आंधी चलनेपर

और शरीरसे रुधिर निकलनेपर और रुधिर न निकलनेपरभी शस्त्रसे घाव होनेपर वेदको न पढ़े ॥ २२ ॥

सामध्वनावर्ग्यजुषी नधीयते कदाचन ॥ वेदस्याधीत्य वाप्यन्त  
मारण्यकर्मधीत्य च ॥ २३ ॥ ऋग्वेदो देवदेवत्यो यजुर्वेदस्तु मानु  
षः ॥ सामवेदः स्मृतः पितृयस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ २४ ॥

टीका—सामकी ध्वनि मुनी जानेपर ऋक् और यजुको कभी न पढ़े और वे  
दको समाप्त करि आरण्यकनाम वेदके एक देशको पढ़के उस रातिदिन दूसरा वेद  
न पढ़े ॥ २३ ॥ ऋग्वेद देवदेवत्यहै अर्थात् देवताही इसके देवताहैं और यजुर्वेद म-  
नुष्यदेवता होनेसे अथवा बहुधा मनुष्योंके कर्म उपदेश करनेसे मानुष है और  
सामवेद पितृदेवता होनेसे पितृयहै पितृकर्म करिके आचमन करना कहाहै  
तिससे उसकी ध्वनि अशुचिसीही है अशुचिही नहींहै इससे उसके मुननेपर  
ऋक् और यजु न पढ़े ॥ २४ ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥ क्रमशः पूर्वमभ्यस्य  
थर्वाद्वेदमधीयते ॥ २५ ॥ पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ॥  
अन्तरागमने विद्यादनध्यायमर्हन्निशम् ॥ २६ ॥

टीका—तीनों वेदोंके देव मनुष्य पितृदेवताहै इस बातको जानते हुए विद्वा-  
न् त्रयी निष्कर्ष कहिये तीनों वेदोंकानिकाला हुआ सार प्रणव व्याहृति सावित्री-  
रूप अर्थात् पहले क्रमसे प्रणव व्याहृति और सावित्रीको पढ़कर पीछे वेदका अ-  
ध्ययन करते हैं ॥ २५ ॥ गौ आदिपशु मेढक विलाव कुत्ता साप न्योला और मूसा ये  
जो गुरुशिष्यके बीचमें होंके निकल जाय तौ दिनरातिका अनाध्याय जानिये २६

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ॥ स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धा  
मात्मानं चाशुचिर्द्विजः ॥ २७ ॥ अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासी  
चतुर्दशीम् ॥ ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ २८ ॥

टीका—जूठनि आदिसे विगड़ी हुई वेदपाठकी भूमिको और कहे हुए शौच-  
से रहित आपको इन दोनों अनाध्यायोंको द्विज यत्नसे वर्जित करै ॥ २७ ॥ अ-  
मावास्या अष्टमी पूर्णमासी और चतुर्दशीको स्नातद्विज ऋतुकालमेंभी स्त्रीसे भो-  
ग न करै सदा ब्रह्मचारी रहै ॥ २८ ॥

न स्नानञ्चरे द्रुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥ न वांसोभिः

सर्वाविज्ञाते जलाशये ॥ २९ ॥ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययो  
स्तथा ॥ नैक्रामेत् कामतच्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ १३० ॥

टीका—भोजन करिकै अपनी इच्छासे स्नान न करै और रोगी होकै स्नान न करै और महानिशा जो बीचकै रातिके दो पहरहैं उनमें और वस्त्रोंसमेत और विना जाने हुए जलाशय अर्थात् नदी तलाव आदिमें स्नाने न करै ॥ २९ ॥ पत्थर आदिके बने हुए देवताओंकी गुरुकी राजाकी स्नातककी आचार्यकी कपिलकी और दीक्षितकी छायाको न उलांघै ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ॥ सन्ध्ययोरुभ-  
योश्चैवं न सेवेत् चतुष्पथम् ॥ ३१ ॥ उद्धर्तनमपस्नानं विष्मूत्रे  
रक्तमेव च ॥ श्लेष्मनिष्ठयूतवान्तानि नार्धितिष्ठेत्तु कामतः ॥ ३२ ॥

टीका—दिनके मध्यमें आधी रातिमें और मांससमेत श्राद्धको खायकै और दोनो संध्याओंमें चौराहेमें न जाय ॥ ३१ ॥ उबटनेका उतरा हुआ चून आदि स्नानका जल विष्ठा मूत्र थूका हुआ कफ और वमन किया हुआ इनसबोंमें जानै नकै किसीके ऊपर न बैठे ॥ ३२ ॥

वैरिणं नोषसेवेत् सहाय्यञ्चैवं वैरिणः ॥ अर्थार्मिकं तस्करञ्च परं-  
स्यैव च योषितम् ॥ ३३ ॥ न हीदृशं न आयुष्यं लोके किञ्चन  
विद्यते ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ३४ ॥

टीका—वैरीका और उसके मित्रका और अधर्मी चौरका तथा पराई स्त्रीका-  
कभी सेवन न करै ॥ ३३ ॥ उस लोकमें पुरुषकी आयु घटानेवाला ऐसा कुछ नहीं है जैसा पराई स्त्रीका सेवन ॥ ३४ ॥

क्षत्रियञ्चैवं सर्पञ्च ब्राह्मणञ्च बहुश्रुतम् ॥ नावमन्येत वै भूषणः  
कृशानपि कदार्चन ॥ ३५ ॥ एतत्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानित-  
म् ॥ तस्मादेतत्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ३६ ॥

टीका—धन आयु आदिकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य क्षत्रिय सर्प बहुश्रुत ब्रा-  
ह्मण और दुर्बलोंका कभी अपमान न करै ॥ ३५ ॥ तिरस्कार किये हुए ये  
क्षत्रिय आदि तीनो पुरुषको जलाव देते हैं तिस्से बुद्धिमान इन तीनोंका  
कभी अपमान न करै ॥ ३६ ॥

नोत्सामनमवमन्येत पूर्वाभिरसंमृद्धिभिः ॥ आमृत्योः श्रियमन्वि-  
च्छेन्नै<sup>१२</sup> नां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रू-  
यात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियं<sup>१३</sup> अनृतं<sup>१४</sup> ब्रूयादे<sup>१५</sup> धर्मः सनातनः ॥ ३८ ॥

टीका—धनके लिये उद्यम करनेपर जो धन न मिले तो मैं मंद धाम्य हैं ऐ-  
से कहकर अपनी निंदा न करे किंतु मरनेतक लक्ष्मीकी सिद्धिके लिये यत्न करे  
इसको दुर्लभ न माने ॥ ३७ ॥ देखा और सुना हुआ सत्य कहै और जैसे तुझा-  
रे पुत्र हुआ है ऐसी प्यारी बात कहै और देखा सुनाभी अप्रिय जैसे तुझारा पु-  
त्र मर गया ऐसा अप्रिय न कहै और प्यारीभी बात झूठ न कहें यह वेदमूलक  
सनातन धर्म है ॥ ३८ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येवं वा वदेत् ॥ शुष्कवैरं विवादं च न  
कुर्यात् केनचित् सह ॥ ३९ ॥ नातिकल्पं नातिसांयं नातिमध्य-  
न्दिने स्थिते ॥ नाज्ञातेन समं गच्छेत् नै<sup>१६</sup> को<sup>१७</sup> न वृषलैः सह ॥ १४० ॥

टीका—भद्रं भद्रं अर्थात् बहुत अच्छा २ ऐसे कहै अथवा भद्र ऐसाही अर्थात्  
अच्छा ऐसे कहै और सूखा वैर तथा विवाद किसीसे न करे ॥ ३९ ॥  
न बहुत सवेरे न बहुत संध्याको न ठीक दुपरमें और विन पहचानके साथ न  
अकेला न और वृषलोंके साथ गमन करे ॥ २४० ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ॥ रूपद्र-  
व्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ४१ ॥ न स्पृशेत् पा-  
णिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥ न चापि पश्येदशुचिः सु-  
स्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥ ४२ ॥

टीका—हीनअंगवालोंका अधिकअंगवालोंका मूर्खोंका बूढ़ोंका और रूप तथा  
द्रव्यसे हीन अर्थात् कुदूप और कंगालोंकी और हीन जातिका कभी काना आदि  
शब्द करकर पुकारनेसे निंदा न करे ॥ ४१ ॥ भोजन करिके वा भलमूत्रका त्याग करि-  
के ब्राह्मण विना शौच और आचमनकें और ब्राह्मण तथा अग्निको न छुवै ॥ ४२ ॥

स्पृष्टैतान् शुचिर्नित्यमर्द्धिः प्राणानुपस्पृशेत् ॥ गोत्राणि चैवं सर्वा-  
णि नाभिं पाणितलेन तु ॥ १४३ ॥ अनातुरः स्वानि खानि न स्पृ-

शेदनिमित्ततः । रोमाणि चं रहस्यानि सर्वाण्येवं विवर्जयेत् ॥४४॥

टीका—अशुद्धतामें इन गौ आदिको छूकर आचमन करि हाथमें लिये हुए जलसे प्राणोंको और नेत्र आदि इंद्रियोंको और शिरकंधा जान पैर और नाभिको हथेलीसे छुवै ॥४३॥ अच्छे भलेमें अपनी इंद्रियोंके नाक कान आदि छेदोंको विनाकारण न छुवै और छुपानेके योग्य लिंगके समीपके तथा कांख आदिके वालोंकोभी विनाकारण न छुवै ॥ ४४ ॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयत्नात्मा जितेन्द्रियः । जपेच्च जुहुयाच्चैर्वै नित्यमभिर्मतन्द्रितः ॥ ४५ ॥ मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयत्नात्मनाम् । जपतां जुह्वताच्चैर्वै विनिर्पातो न विद्यते ॥ ४६ ॥

टीका—चाहे हुए अर्थकी सिद्धिको मंगल कहते हैं उसका कारणके होनेसे गोरोजना आदिका लगाना मंगलहै और गुरुसेवा आदि आचार हैं उसमें लगा रहै अर्थात् सदा आचार करता रहै और बाहरी तथा भीतरी शौचसे युक्त जितेन्द्रिय रहै और गायत्री आदिका जप और विहित होमकों आलस्यरहित हो नित्यकरै ॥ ४५ ॥ मंगल तथा आचारसे नित्य शुद्ध और जप तथा होममें लगै हुए पुरुषोंको दैवी तथा मानुषी उपद्रव नहीं होतेहै ॥ ४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः । तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुप धर्मोऽन्य उच्यते ॥ ४७ ॥ वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैर्व च । अद्रोहेण च भूतानां जाति स्मरति पौर्विकीम् ॥ ४८ ॥

टीका—नित्यकर्मके समयमें कल्याणका करण होनेसे प्रणवसाहित गायत्री आदिवेदकों आलस्य छोड़के जपै जिस्से उस श्रेष्ठ ब्राह्मणका धर्म मनु आदि कहते हैं और धर्म तौ मुनियों करि उससे नीचा कहा गया है ॥४७॥ सदा वेदके अभ्यासमें और शौच तप तथा अहिंसा आदिसे पूर्व जन्मकी जातिका स्मरण करनेवाला होताहै ४८॥

पौर्विकीं स्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ॥ ब्रह्माभ्यासेन चा जन्मनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४९ ॥ सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः ॥ पितृश्वेषाष्टकास्वैत्रित्यमन्वष्टकासु च १५०

टीका—पूर्वजन्मकी जातिको स्मरण करताहुआ अर्थात् बहुतसे जन्मोंका स्मरण करता हुआ उनमें गर्भ जन्म जरा मरणके दुःखोंभी स्मरण करता हुआ संसारसे विरक्त हो सदा ब्रह्मकी अभ्यास करताहै अर्थात् श्रवण मनन और-

ध्यानसे साक्षात् करताहै उससे अनंत अविनाशी परमआनंदका प्रकट होनाही है लक्षण जिसका ऐसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ सूर्यहै देवता जिनके ऐसे होमोंको और अनिष्ट दूर होनेके लिये शांति होमोंको पूर्णमासी और अमावास्याको सदा करै तैसे अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत तीन कृष्णपक्षकी अष्टमियोंमें अष्टका नाम कर्मसे और श्राद्धसे और उसके भीतर कृष्णपक्षकी नवमी तिथियोंमें अन्वष्टका कर्मसे परलोकमें गये हुए पितरोंका प्रजन करै ॥ १५० ॥

दूरादावसंथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् ॥ उच्छिष्टान्नं निषेकञ्च  
दूरादेवं समाचरेत् ॥ ५१ ॥ मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनं मज्जनम् ॥  
पूर्वाह्णं एवं कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ५२ ॥

टीका—अग्नि गृहसे एक बाण चलानेकी भूसिसे कुछ आगे बढ़कर दूर मूत्र पुरीषका त्याग पैरोंका धोना और जलसमेत जूठे अन्नका तथा वीर्यका त्याग करै ॥ ५१ ॥ मैत्र कहिये दिशावाधा जाना और देहका प्रसाधन कहिये प्रातःकालका स्नान दतून करना अंजन लगाना इन सब बातोंको पूर्वाह्ण कहिये दिनके पहलेही भागमें करै ॥ ५२ ॥

देवतान्यभिर्गच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ईश्वरं चैव रक्षार्थं  
गुरुनेव च पर्वसु ॥ ५३ ॥ अभिवादयेद्दृढांश्च दद्याच्चैवांसनं स्वर्क  
म् ॥ कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ ५४ ॥

टीका—पाषाण आदिके वनेहुए देवतार्थके मंदिरमें और धर्मात्मा ब्राह्मणोंके समीप और राजा तथा गुरुकहिये पिता आदिके समीप अपनी रक्षाके लिये अमावास्या आदि पर्वोंमें उनके दर्शनको जाया करै ॥ ५३ ॥ घरमें आये हुए गुरुओंको नमस्कार करै और उनके बैठनेको अपना आसन दे और हाथ जोरि कै उनके समीप बैठे और जब वेचले तौ उनके पीछे पहुंचानेको चले ॥ ५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ॥ धर्ममूलं निषेवेत सदा  
चारमर्तन्द्रितः ॥ ५५ ॥ आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीर्प्सिताः ॥ प्र  
जाः ॥ आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ५६ ॥

टीका—वेद और स्मृतियों करके अच्छी भांति कहा गया और अध्ययन आदि अपने कर्मोंसे संबंध रखनेवाले और धर्मका कारण ऐसे साधुओंके आचारको आलस्यरहित हो सदा सेवन करै ॥ ५५ ॥ आचारसे वेदमें कही हुई आ-

युको प्राप्त होता है और चाही हुई पुत्र पौत्र और पुत्रीरूप सन्तानको तथा ब्रह्मसे धनको प्राप्त होता है आचारही अशुभ फलके सूचित करनेवाले देहमें स्थित कुलक्ष-  
णको निष्फल कर देता है ॥ ५६ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं  
व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ५७ ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचार  
वान्नरैः ॥ श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ५८ ॥

टीका—दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है और सदा दुःखका भोग-  
नेवाला रोगी और अल्पायु होता है तिससे सदा आचारयुक्त रहै ॥ ५७ ॥ जो  
सदा आचारवान् है और श्रद्धायुक्त है और पराये दोषोंको नही कहता है वह अ-  
पने शुभसूचक लक्षणोंसे शून्यभी सौवर्षकी आयुको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥ यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्त-  
त्से वेत यत्नतः ॥ ५९ ॥ सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥  
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ ६० ॥

टीका—जो जो कर्म पराये आधीन है अर्थात् दूसरे कहनेपर होसकता है  
उसको यत्नसे त्याग करै और जो स्वाधीन है, अर्थात् अपनी देहसे होसकता है  
उसको यत्नसे करै ॥ ५९ ॥ सब पराये आधीन क्राम अर्थात् दूसरे के कहने से  
जो होसकै वह दुःखका कारण है और सब अपने आधीन सुखका कारण है  
यही सुखदुःखका कारण जानै ॥ ६० ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ॥ तत्प्रयत्नेन कुं-  
र्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मा-  
तरं गुरुम् ॥ न हि संयाद्ब्राह्मणान्गांश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥ ६२ ॥

टीका—जिसकामके करते हुए करने वालिका आत्मा संतुष्ट होय उसको जत-  
नसे करै और जिससे संतुष्ट न होय उसको न करै ॥ ६१ ॥ आचार्य जो  
यज्ञोपवीत कराकै वेद पढ़ानेवाला होय उसको और प्रवक्ता कहिये वेदके अर्थके  
व्याख्यान करनेवालेको और पिता माता तथा गुरुको और ब्राह्मण गौ तथा  
सब तपस्वियोंको न मारे अर्थात् उनसे प्रतिकूल न बचै यहां हिंसा शब्दका  
प्रतिकूल वर्चना अर्थ है ॥ ६२ ॥

नास्ति क्वयं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ॥ द्वेषं दम्भं च मानं



चं क्रो<sup>१३</sup>धं तै<sup>१३</sup>क्ष्ण्यं च<sup>१३</sup> वर्जयेत् ६३ परस्य दण्डं नो<sup>१३</sup> द्यच्छेत् क्रुद्धो नै<sup>१३</sup>वं  
निर्पातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्टं च<sup>१३</sup> ताडयेत् तौ<sup>१३</sup> ६४ ॥

टीका—नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा देवताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड़दे ॥ ६३ ॥ क्रोधितहो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावै और न दूसरेके शरीरमें मारै पुत्र शिष्य स्त्री और दास इनको छोड़के अर्थात् अपराध करने पर इनको शिक्षाके लिये आगे कहे हुए प्रकारसे ताडना करै ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणायैव गुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्त्रे नर  
के परिवर्तते ॥ ६५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ॥  
एकविंशतिमाजातिः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

टीका—द्विजाति भी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेही पर मार-  
के नहीं सौ वर्षतक तामिश्रनाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर  
द्विनकेसेभी ब्राह्मणको मारिकै इक्कीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनि  
योंमें उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यामृगद्भतः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति  
प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति मे  
हीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ ६८ ॥

टीका—युद्ध न करते हुए ब्राह्मणके अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करके पर-  
लोकमें बड़े दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड्ग आदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला  
हुआ रुधिर भूमिमें गिरके जितने धूलिके द्यणुकोंको समेटता है उतनी वर्षोंतक  
परलोकमें मारनेवाला स्मर आदिकों करि खाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्विजे तस्माद्विद्वानवंगुरेदपि ॥ न ताडयेत् तृणेनापि न  
गात्रात्स्त्रावयेदमृक् ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यं  
नृतं धनम् ॥ हिसारतश्च यो नित्यं ने हासौ मुखमेधते ॥ ७० ॥

टीका—तिस्से विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावै भी नहीं औ-  
र तिनके सेभी ताडन न करै और न शरीरसे रुधिर निकालै ॥ ६९ ॥ जो नर  
अधर्मी अर्थात् शास्त्रमें मनेकिये हुए अगम्यागमन आदि का करनेवाला और जि-

सके गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूठ बोलनाही धनका उपाय है अर्थात् झूठीगवाही देकर धन लेता है और जो पराई हिंसाको करता है वह इस लोकमें सुखी नहीं रहता है ॥ १७० ॥

नं सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापानां मांशुपश्यन्विपर्ययम् ॥ ७१ ॥ नाधर्मश्चरितो लोकं सद्यः फलति गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुमूलानि कृन्तति ॥ ७२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुए धर्मको करता हुआ मनुष्य धन आदिके न होनेसे दुःखपानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करे यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले धन आदि संपत्तियों करि युक्तभी दिखाई देते हैं तिस परभी उन अधर्म चोरी आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आदिका नाशभी दीखता है इससे अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावै ॥ ७१ ॥ किया हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देने वाला नहीं होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरवालि मुट्ठी आदि नहीं उत्पन्न होते हैं किन्तु जब ऋतु आती है तभी होते हैं ऐसेही जब अधर्म फलके सन्मुख होता है तब करनेवालेको जड़से उखाड़ देता है अर्थात् देह धन आदि समेत नष्ट होजाताहै ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नृषु ॥ न त्वेवं तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ ७३ ॥ अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥ ततः सर्पत्नाञ्जयाति समूलस्तु विनश्यति ॥ ७४ ॥

टीका—जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदिफलको नहीं करताहै तौ उसके पुत्रोंमें नहीं तौ पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ अधर्मसे उसके फल होने तक ग्राम धन आदिसे बढ़ता है तिस पीछे बहुतसे सेवकों और गौ घोड़े आदि हतवस्तुओंको पाताहै तिस पीछे आपसे निर्बल शत्रुओंको जीतता है पीछे कुछकालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचं चैवारमेत्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्वाहूदरसंश्रयतः ॥ ७५ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥ धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ ७६ ॥

चं क्रो<sup>१३</sup> धं तैक्ष्ण्यं च<sup>१३</sup> वर्जयेत् ६३ परस्य दण्डं नो<sup>१३</sup> द्यच्छेत्कु<sup>१३</sup> द्रो नै<sup>१३</sup> व  
निर्पातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्टं च<sup>१३</sup> तौ<sup>१३</sup> डयेत्<sup>१३</sup> तौ<sup>१३</sup> ६४ ॥

टीका—नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा देवताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड़दे ॥ ६३ ॥ क्रोधितहो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावै और न दूसरेके शरीरमें मारे पुत्र शिष्य स्त्री और दास इनको छोड़के अर्थात् अपराध करने पर इनको शिक्षाके लिये आगे कहे हुए प्रकारसे ताड़ना करे ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणायोवगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्त्रे नर  
के परिवर्तते ॥ ६५ ॥ तौडयित्वा नृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ॥  
एकविंशतिमाजातिः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

टीका—द्विजाति भी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेही पर मार-  
के नहीं सौ वर्षतक तामिश्रनाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर  
द्विनकेसेभी ब्राह्मणको मारिके इक्कीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनि  
योंमें उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यामृगज्जतः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति  
प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति म  
हीतलात् ॥ तार्वतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽर्थते ॥ ६८ ॥

टीका—युद्ध न करते हुए ब्राह्मणके अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करके पर-  
लोकमें बड़े दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड्ग आदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला  
हुआ रुधिर भूमिमें गिरके जितने धूलिके द्यणुकोंको समेटता है उतनी वर्षोंतक  
परलोकमें मारनेवाला स्मर आदिकों करि खाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥ न तौडयेत् नृणेनापि न  
गात्रात्स्त्राविदेदमृक् ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्य  
नृतं धनम् ॥ हिसारतश्च यो नित्यं ने हासौ सुखमेधते ॥ ७० ॥

टीका—तिस्ते विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावै भी नहीं औ-  
र तिनके सेभी ताड़न न करै और न शरीरसे रुधिर निकालै ॥ ६९ ॥ जो नर  
अधर्मी अर्थात् शास्त्रमें मनेकिये हुए अगम्यागमन आदि का करनेवाला और जि-

सके गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूठ बोलनाही धनका उपाय है अर्थात् झूठीगवाही देकर धन लेता है और जो पराई हिंसाको करता है वह इस लोकमें सुखी नहीं रहता है ॥ १७० ॥

नं सीदन्नपि धर्मेण ममोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापानां मांशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ ७१ ॥ नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुमूलानि कृन्तति ॥ ७२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुए धर्मको करता हुआ मनुष्य धन आदिके न होनेसे दुःखपानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करै यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले धन आदि संपत्तियों करि युक्तभी दिखाई देते हैं तिस परभी उन अधर्म चोरी आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आदिका नाशभी दीखता है इससे अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावै ॥ ७१ ॥ किया हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देने वाला नहीं होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरवालि मुद्दे आदि नहीं उत्पन्न होते हैं किन्तु जब ऋतु आती है तभी होते हैं ऐसेही जब अधर्म फलके सन्मुख होता है तब करनेवालेको जड़से उखाड़ देता है अर्थात् देह धन आदि समेत नष्ट होजाताहै ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नृषु ॥ न त्वैव तु कृतोऽधर्मः कर्तुमर्हति निष्फलः ॥ ७३ ॥ अधर्मेण धते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥ ततः सर्पन्नाज्याति समूलस्तु विनश्यति ॥ ७४ ॥

टीका—जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदिफलको नहीं करताहै तो उसके पुत्रोंमें नहीं तो पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ अधर्मसे उसके फल होने तक ग्राम धन आदिसे बढता है तिस पीछे बहुतसे सेवकों और गौ घोड़े आदि हतवस्तुओंको पाताहै तिस पीछे आपसे निर्वल शत्रुओंको जीतता है पीछे कुछकालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमे त्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्वाहूदरसंशयतः ॥ ७५ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥ धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ ७६ ॥

टीका—सत्यधर्म और सज्जनोंके आचार तथा शौचमें सदा प्रीति करै और धर्मसे शिष्योंको शिक्षादे और वाणी बाहु तथा उदर इनका संयम करै वाणीका संयम सत्यबोलना बाहुका संयम बाहु बलसे किसीको पीड़ा न देना उदरका संयम जैसा मिलै वैसा थोड़ा भोजन करना ॥ ७५ ॥ जो अर्थ और काम धर्मको विरोधी होंय तौ उनको त्याग करै जैसे चोरी आदिसे द्रव्यका इकठ्ठे करना और दीक्षाके दिन यजमानकी स्त्रीसे भोग करना और जिस धर्ममें आगे दुःख उत्पन्न होय उसकाभी त्याग करै जैसे पुत्र आदि बहुतसे पालने योग्य होने पर सर्वस्वका दान करना और झोकमें निंदित जैसे कलियुगमें मध्यमाष्टकादि श्राद्धोंमें गो वध आदिका करना ॥ ७६ ॥

नं पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृनुः ॥ न स्याद्वाक्चपलश्चैवं  
न परद्रोहकर्मधीः ॥ ७७ ॥ येनास्य पितरो याता येन याताः पिता  
महाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका—हाथपैर आदिका चपलताको न करै हाथकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके वस्तुओंका उठाना धरना और पैरोंकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके भ्रमण आदि करना और नेत्र चापल्य जैसे पराई स्त्रीका देखने आदिका स्वाद और वाणीकी चपलता जैसे बहुत निंदाकी बातें बकना इन सबोंका त्याग करै और अनृजु कहिये कुटिल न होय और परद्रोह जो पराई हिंसा है तिसकी बुद्धि न करै ॥ ७७ ॥ बहुत प्रकारका शास्त्रका अर्थ होनेपर जिस धर्म मार्गसे इसके पिताचले और जिसे इसके पितामह चले उसी मार्गसे चलै वही सज्जनोंका मार्ग है उसमें चलताहुआ अधर्म करि नही मारा जाता है ॥ ७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥ बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्  
ज्ञातिसंबन्धिवान्धवैः ॥ ७९ ॥ मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रे  
ण भार्यया ॥ दुहित्रा दासवर्गेण विवादिनं समाचरेत् ॥ १८० ॥

टीका—ऋत्विक् पुरोहित कहिये शांति आदिका करनेवाला और आचार्य मामा अतिथि तथा संश्रित कहिये अनुजीवि और ज्ञाति कहिये पिताके पक्षके और संबंधी कहिये जमाई शाला आदि और बान्धव कहिये माताके पक्षके और यामी कहिये बहिन पुत्र वधू आदि इनसबोंसे वाणिका कलह अर्थात् बातोंका झगडा नकरै ॥ ७९ ॥ माता पिता और यामी कहिये बहनि पुत्र वधू आदि भाई पुत्र स्त्री बेटा और नौकरोंके समूहके साथ विवाद न करै ॥ १८० ॥

एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ एभिर्जितैश्च जयति स-  
र्वाल्लोकानिमान्गृही ॥ ८१ ॥ आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पि-  
ता प्रभुः ॥ अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चोत्त्वजः ॥ ८२ ॥

टीका—इन ऋत्विक् आदिकोंके साथ विवादोंको छोड़कर अज्ञानसे किये हु-  
ए सब पापोंसे छूटि जाता है और इनके साथ विवादकी उपेक्षा करनेसे गृहस्थ  
आगे कहे हुए इन सब लोकोंको जीति लेता है ॥ ८१ ॥ आचार्य ब्रह्मलोकका  
स्वामी हैं और प्राजापत्य लोकका पिता स्वामी है और इंद्रलोकका अतिथि त-  
था देवलोकके ऋत्विज स्वामी है विवाद छोड़नेसे इन सबोंके संतुष्ट होनेसे ब्रह्म-  
लोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥

याम्योऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ॥ संबन्धिनो ह्येषां लो-  
के पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥ ८३ ॥ आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्ध-  
कृशातुराः ॥ भ्राता ज्येष्ठः सप्तमः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥ ८४

टीका—वह्नि तथा पुत्र वधू अप्सराओंके लोकके अधिष्ठात्री हैं और बांधव  
वैश्वदेव लोकके और संबंधी वरुण लोकके और माता तथामाता पृथिवीके स्वा-  
मि हैं इनकी प्रसन्नतासे अप्सराओंके लोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ बा-  
लक वृद्ध लश कहिये धनहीन और आश्रित आतुर ज्येष्ठ भई पिताके समान है  
तिस्से वही प्रजापति लोकका स्वामी है और भार्या तथा पुत्र अपनाही शरी-  
र है इसे अपने साथ कैसे विवाद हो सकता है ॥ ८४ ॥

छाया स्वो दासवर्गश्च दुहितौ कृपणं परम् ॥ तस्मादेतैरधिष्ठितं  
सहेतो संज्वरः सदा ॥ ८५ ॥ प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जये-  
त् ॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्यार्शुं ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ८६ ॥

टीका—अपने दासोंका समूह सदा अनुगामी होनेसे अपनी छायाहीके सभान  
है विवादके योग्य नहीं है और पुत्री तो बहुतही कृपाका पात्र है तिस्से इच करिके  
तिरस्कार किया हुआ भी संतापन करके सहले विवाद न करे ॥ ८५ ॥ विद्या तप और  
आचारयुक्त होनेसे दान लेनेका अधिकारी होनेपर भी उसमें बारंवार प्रवृत्तिको  
छोड़दे अर्थात् दान न ले कारण यह है कि दान लेनेसे वेदपठन आदिसे उत्पन्न  
इसका ब्राह्मणतेज अर्थात् प्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८६ ॥

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥ प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुं

यांक्ष्वसीदन्नपि क्षुधा ॥ ८७ ॥ हिरण्यं भूमिमश्नं गोमंत्रं वासस्ति  
लान्धृतम् ॥ प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥ ८८ ॥

टीका—वस्तुओंकी दान लेनेमें धर्मके लिये-हितकारी विधानके विनाजाने बु-  
द्धिमान् क्षुधासे पीडित होने परभी दान न ले आपत्तिकेविना तौ फिर क्या कह-  
ना है ॥ ८७ ॥ सोना-भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल और घी इनका दान ले-  
ना हुआ मूर्ख दान रूपि अग्निसे काष्ठके समान उसी समय भस्म हो जाता है  
फेरि उत्पत्तिको नही प्राप्त होताहै ॥ ८८ ॥

हिरण्यमायुरन्नं च भूगोश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वचं वा  
सो धृतं तेजस्तिर्लाः प्रजाः ॥ ८९ ॥ अतपास्त्वनधीयानः प्रति  
ग्रहरुचिर्द्विजः ॥ अम्भस्यश्मं पुवेनेव सहते नैव मज्जति ॥ ९० ॥

टीका—सुवर्ण और अन्नका दान लेने वाले मूर्खकी आयुको जलाते हैं और  
भूमि तथा गौ शरीरको जलाते हैं घोड़ा नेत्रोंको वस्त्र त्वचाको घी तेजको औ-  
र तिल संतानको जलाते हैं ॥ ८९ ॥ तप और विद्यासे शून्य और दानकी इ-  
च्छा करनेवाला ब्राह्मण दानका अधिकारी न होनेसे मनमें विचारेही हुए उस  
दानसे अयोग्य दानरूप पापयुक्त दातासमेत नरकमें ऐसे डूबताहै जैसे पत्थरकी  
नावसे जलकी उतरता हुआ उस नावसमेत जलमें डूब जाता है ॥ ९० ॥

तस्माद्विद्वांन्विभिर्याद्यस्मात्तस्मै प्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्य  
विद्वान्हि पंड्वे गौरिव सीदति ॥ ९१ ॥ न वार्यपि प्रर्यच्छेत्तु वैडा  
लव्रतिके द्विजे ॥ न वक्रव्रतिके त्रिंशे न वेदविदि धर्मवित् ॥ ९२ ॥

टीका—तिसरे मूर्ख पुरुष जिसकीसी छोटि वस्तुके भी दानसे डरै क्योंकि सु-  
वर्णका तौ क्या कहना थोड़े दामके सीसा आदिके लेनेसे कीचमें फसकै गौके स-  
मान नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥ लेनेवालेका धर्म कहिकै अव देनेवालेका धर्म कह-  
ते है कौआ कुत्ता आदिको जो दिया जाता है वहभी धर्मज्ञ बिडालव्रती ब्राह्मण-  
को न दे इस अधिकतारके कहनेसे दूसरी चीजोंका दानमना किया जाता है केव-  
ल जलहीका दान नही पाषण्डिनो विकर्मस्थान् इस्से बैडालव्रतीके लिये अति-  
थिपनसे सत्कार करिकै द्रव्यदान आदिका निषेधकिया यहांतौ धनका दान मना-  
किया जाताहै इसीसे विधिनाप्यर्जितं धनं यह आगे कहेंगे और अवेदविद् कह-  
नेसे यह जानागया कि जबतकपढ़ा लिखामिलै तब तक मूर्खको न दे ॥ ९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि<sup>३</sup> विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुं भवत्यर्थं  
य परत्रादातुरेव च ॥ ९३ ॥ यथा पुत्रेनौपलेन निर्मज्जत्युदके तरं  
न् ॥ तथा निर्मज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ ९४ ॥

टीका—इनतीनि विडालवृत्ति आदिकोमें न्यायसे जोड़ा हुआ भी धन देनेसे देनेवाले और लेनेवालेको परलोकमें नरकका कारण होनेसे अनर्थके लिये होता है ९३ ॥ जैसे पत्थरकी बनीहुई नाव आदिसे जलमें तिरता हुआ उसके साथही नीचे जाता है ऐसेही दान और प्रतिग्रहके शास्त्रके न जाननेवाले दाता और लेनेवाला दोनो नरकको जाते हैं ॥ ९४ ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्चाद्विको लोकदम्भकः ॥ बैडालव्रतिको  
ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थ  
साधनतत्परः ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ ९६ ॥

टीका—जो बहुतसे मनुष्योंके सामने धर्म करता है और लोकमें आप कहता है तथा औरोंसे कहाता है. उसका धर्मही चिन्हहीसाहै इस कारण वह धर्म ध्वजी कहा जाता है और लोभी कहिये परायेधनकी इच्छा रखनेवाला और छात्रिक कहिये छल करने वाला और लोकदम्भक कहिये धरोहृद् आदिके पचाजानेसे लोगोंका ठगानेवाला और हिंस्र कहिये दूसरेकी हिंसाका स्वभाववाला और सर्वाभिसंधक कहिये पराये गुणोंको न सहकर सबकी निंदा करनेवाला और विडालव्रती कहिये जैसे विलाव बहुधा मूसा आदिके मारनेकी रुचिसे ध्यानमें लगासा नम्रहोकै बैठता है ऐसेही उसको जानिये ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टि कहिये जो अपनी नम्रता दिखानेके लिये सदा नीचेहीको देखता है और नैकृतिक कहिये जो निष्ठुरतायुक्त हो पराये अर्थको बिगाडकर अपने स्वार्थमें लगा रहै और शठ कहिये कुटिल और मिथ्याविनीत कहिये कपटसे नम्रतायुक्त और बकव्रतचरः बगलेकासाव्रत करनेवाला जैसे बगुला मछलियोंके मारनेके लिये झुठमूठको नम्रतासे बैठता है ॥ ९६ ॥

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥ ते पतन्त्यन्धता  
मिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥ ९७ ॥ न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा  
व्रतं चरेत् ॥ व्रतेन पापं प्रच्छेद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ ९८ ॥

टीका—जें ब्राह्मण बकवृत्तिवाले हैं और जे विडालव्रती हैं वे उस पापक-



मैंसे अंधतामिस्त्रनाम नरकमें गिरते हैं ॥ ९७ ॥ पापकारिके प्रायश्चित्तरूप प्राजापत्य आदि व्रतकरता हुआ ऐसा न कहैकि मैं धर्मके अर्थ, करता हों स्त्री शूद्र मूर्ख आदि जनोंको मोहित करता हुआ ऐसा न करै ॥ ९८ ॥

प्रेत्येह चेद्दशां विप्रां गृह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ छंदानां चरितं यच्च ब्रं  
तं रक्षांसि गच्छन्ति ॥ ९९ ॥ अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजी  
वति ॥ स लिङ्गिनां हस्त्येन स्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ २०० ॥

टीका—परलोकमें तथा इस लोकमें ऐसे ब्राह्मण ब्रह्मवादियों करि निंदाकि-  
ये जाते हैं और जो व्रत छलसे किया जाताहै वह रक्षसोंको प्राप्त होताहै ॥ ९९ ॥  
जो ब्रह्मचारी आदि नहीं है और ब्रह्मचारी आदिकोंके चिन्ह भेखला मृगचर्म  
दंड आदि वेषजाना जाता उनकी वृत्तिसे भिक्षाभ्रमण आदिकरि जीविका  
करता है वह ब्रह्मचारी आदिकोंका जो पाप है उसको अपनेमें खीचि लेता  
है और कूकुर आदिकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥ निपांनकर्तुः स्नास्त्वा तु  
दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ १ ॥ यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहा  
णि च ॥ अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २ ॥

टीका—पराये बनाये हुए ताल आदिमें कभी स्नान न करै उनमें न हायकै उ-  
नके बनवालेके पापसे चौथाई भागका पम्नेवाला होताहै विनावनाई हुई नदी  
आदि न होय तौ पराये बनाये हुए तालआदिमें प्रदानसे पहले पांच पिंडोंका उ-  
द्धार करि नहाना चाहिये ॥ १ ॥ पराया यान आसन कुआ बाग और घर जो विना-  
दिये इनका भोग करै तौ बनवानेवालेके पापके चतुर्थ अंशका भागी होता है ॥ २ ॥

नदीषु देवर्षातेषु तडागेषु सरैः सु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्र  
स्रवणेषु च ॥ ३ ॥ यमान्सेवेतं सततं न चित्यं नियमान्बुधः ॥ यं  
मान्पत्न्यकुर्वाणो नियमान्केवलांभजन् ॥ ४ ॥

टीका—नदीमें देवताओंके नामसे प्रसिद्ध तडागोंमें और प्रसिद्ध सरोंगर्तोंमें  
अर्थात् जिनकी गति आठ हजार धनुषसे कम नहीं है उनमें चारिहाथका एक  
धनुष होता है और झरणोंमें स्नान करै ॥ ३ ॥ पंडित जमोंका सदा सेवन करै और  
नित्यनियमोंका सेवन न करै यम जैसे ब्रह्मचर्य १ दया २ क्षमा ३ ध्यान ४ सत्य  
५ कष्ट भ करना ६ अहिंसा ७ चोरी न करना ८ मधुर बोलना ९ इंद्रियोंका

वश करना और नियम जैसे स्नान १ मौन २ उपवास ३ यज्ञ करना ४ वेद पढ़ना ५ शिश्न इंद्रियका रोकना ६ नियम ७ गुरुकी सेवा ८ शौच ९ क्रोध न करना १० प्रमाद न करना ११ यमोंको न करता हुआ केवल नियमों करता हुआ पुरुष पतित होता है ॥ ४ ॥

नान्नाश्रोत्रियतते येज्ञे ग्रामस्थाजिहुते तथा ॥ स्त्रियां कृविने च हुते  
भुञ्जीत ब्राह्मणः केचित् ॥ ५ ॥ अश्लीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्य  
मी हविः ॥ प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो वेद पाठी नहीं है ऐसे मनुष्यकरि आरंभ किये हुए और बहुतों के यजन करानेवाले करि होमे हुए और स्त्री तथा नपुंसक करि होम किये हुए यज्ञमें ब्राह्मण कभी न भोजन करै ॥ ५ ॥ पहलेकहे हुए वह याजक आदि जिसमें होम करते हैं वह कभी शिष्टोंको अश्लीक कहिये अलक्ष्मी देनेवाला है अर्थात् देवताओंको प्रतिकूल है तिससे इसको न करावै ॥ ६ ॥

मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ कैशकीदावपन्नञ्च पर्दा  
रूपृष्टञ्च कामतः ॥ ७ ॥ भ्रूणघ्रावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया ॥  
पतत्रिणार्वालीढञ्च शुनां संस्पृष्टमेव च ॥ ८ ॥

टीका—सिड़ी क्रोधी तथा रोगीका अन्न और वालों तथा कीड़ोंके योगसे विगड़ा हुआ और जानकर पैरसे छुआ हुआ अन्नकभी न खाय ॥ ७ ॥ गर्भहत्या गोहत्या आदिसे पतितोंकरि देखा हुआ अन्न और रजस्वला स्त्री करि छुआ हुआ तथा पक्षियों करि खाया हुआ और कुत्तेकरि छुआ हुआ अन्न न खाय ॥ ८ ॥

गवां चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः ॥ गणान्नं गणिकान्नञ्च विदु  
षां च जुगुप्सितम् ॥ ९ ॥ स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वाङ्मुषिकस्य  
च ॥ दीक्षितस्य कर्द्वस्य बर्द्वस्य निर्गडस्य च ॥ १० ॥

टीका—गौका संघा हुआ और घुष्टान्न कहिये कौन खानेवाला है ऐसे कहिके जो अन्न यज्ञ आदिमें दिया जाय और गणान्न कहिये मठ तथा ब्राह्मणोंके समूहका अन्न और वेश्याका अन्न और विद्वान् करि दुष्ट है ऐसे कहि कहि करि निंदाकिया गया अन्न विशेष करि कहिये बहुत दोषयुक्त होनेसे उस अन्नको कभी न खाय ॥ ९ ॥ चोरी तथा गानेकी जीविकावालेका और बर्दई तथा व्याज लेनेवालेका और दीक्षित तथा कृपणका और वेरियोंसे बधे हुएका अन्न कभी न खाय ॥ १० ॥

अभिषस्तस्य षण्ठस्य पुंश्चल्यां दाम्भिकस्य च ॥ शुक्तं पर्युषि  
तत्रैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ११ चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्यो  
च्छिष्टभोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥ १२ ॥

टीका—अभिषस्त कहिये जिसको लोकमें महापातक लगिरहा है उसका न-  
पुंसकका व्यभिचारिणी स्त्रीका और दाम्भिक कहिये छलसे धर्म करनेवाले विडा-  
लव्रती आदिका अन्न न खाय और शुक्त जो स्वभावसे मीठा दही आदि जल  
आदिके मिलनेसे खट्टा हुआ और पर्युषित कहिये रातिका बसा हुआ और  
शूद्रका अन्न कभी न खाय और उच्छिष्ट कहिये भोजनसे बचा हुआ अन्न-  
किसीका न खाय और गुह्यका जूठा तो विहित है इससे खाय ॥ ११ ॥ चिकि-  
त्सासे जीविका करनेवालेका अर्थात् वैद्यका और मांस बेचनेके लिये पशुओंके  
मारनेवालेका और क्रूर कहिये कुटिल प्रकृतिका और जूठा खानेवालेका अन्न न  
खाय और उग्रान्न कहिये शूद्रामें क्षत्रियसे उत्पन्नका और सूतिका स्त्रीके लिये जो अ-  
न्न किया जाय उसको उसके कुलकेभी न खाय एक पंक्तिमें स्थित औरोंका अप-  
मान करि जहां अन्न खाते हुए किसीकरि आचमन किया जाय वह पर्याचान्त  
कहा जाता है उस अन्नको ओर दशादिनके भीतर सूतिकाका अन्न न खाय ॥ १२ ॥

अनर्चितं वृथामांसमवीर्याश्वं योषितैः ॥ द्विषदन्नं नगैर्यन्नं पतितं  
न्नमवक्षुतम् ॥ १३ ॥ पिशुनानृतिनोश्चात्र क्रतुविक्रयिणस्तथा ॥  
शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ १४ ॥

टीका—पूजाके योग्यको जो अनादरसे दिया जाय और वृथा मांस जो दे-  
वतके लिये न किया जाय उसको और प्रति पुत्र रहित स्त्रीका और शत्रूका अ-  
न्न और नगरका तथा पतितोंका अन्न और जिसके ऊपर छीक हुई ऐसा अन्न न  
खाय ॥ १३ ॥ पिशुन कहिये जो पीठिपीछे दूसरेकी बुराई करता है उसका औ-  
र बहुत झूठ बोलनेवाला जैसे झूठा गवाही आदि उसका और क्रतुविक्रयी कहि-  
ये मेरे यज्ञका फल तुझारा हो ऐसे कहकर जो धन लेता है उसका और न-  
टका तथा दरजीका और कृतघ्न जो उपकार करनेवालेकीभी बुराई करै उ-  
सका अन्न न खाय ॥ १४ ॥

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥ सुवर्णकर्तुर्वैणस्य श-  
स्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ १५ ॥ श्वपतांशौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य  
च ॥ रज्जुकस्य बृंशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १६ ॥

टीका—लोहारका तथा निषादका और नट तथा गवैयासे भिन्न जो तमासा आदि करिकै जीविका करते हैं उनका और स्वनारका और बांसकी चीजें बनाकर बेचनेवालेका और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न न खाय ॥ १५ ॥ आखेटके लिये कुत्ते पालनेवालेका और मद्यबेचनेवालाका तथा धोबीका रंगरेजका निर्दयीका और जिसके घरमें अज्ञानसे जार रहता है उसका अन्न न खाय ॥ १६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपत्तिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥ अनिर्देशं च प्रेतान्नमर्तुष्टिकरमेव च ॥ १७ ॥ राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्म च सप्तम् ॥ आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मविकर्त्तिनः ॥ १८ ॥

टीका—जो घरमें जाने हुए स्त्रीके जारको सहते हैं उनके अन्नको न खाय और जो सब कामोंमें स्त्रीके आधीन रहते हैं उनका और दशदिनके भीतर प्रेतका अन्न और जिसे संतोष नहोय ऐसा अन्न न खाय ॥ १७ ॥ राजाका अन्न तेज का नाश करता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाश करता है और स्वनारका अन्न आयुका नाश करता है और चमारका अन्न यशका नाश करता है ॥ १८ ॥

कारुकां प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥ गणान्नं गणिकां च लोकभ्यः परिक्रान्तति ॥ १९ ॥ पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वं नमिन्द्रियम् ॥ विष्टां वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् २२० ॥

टीका—कारुक जो सूपकार आदि हैं उनका अन्न संततिका नाश करता है और धोबीका बलको तथा गण और गणिका का अन्न और शुभकर्मोंसे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोकोंको दूर करता है ॥ १९ ॥ चिकित्सकके अन्नमें पीवकों खानेके समान दोष है और व्यभिचारिणीका अन्न वीर्यके समान है और व्याज खानेवालेका अन्न विष्टाके समान है और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न विष्टासे भिन्न कफ आदिमलके समान है ॥ २२० ॥

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः पारकीर्त्तिताः ॥ तेषां त्वंगस्थि रोमाणि वेदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ २१ ॥ भुक्त्वा तोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ॥ मर्त्या भुक्त्वा चरेत्कुच्छं रेतोविण्मूत्रमेव च २२

टीका—यहां कहे हुआंसे अन्य जो अभोज्यान्न इस प्रकरणमें पढ़े हैं उनका अन्न त्वचा हड और रोमाओंके समान है अर्थात् त्वचा हड और रोमोंके खानेमें जो दोष होता है वही उनके अन्नके खानेमें जानना चाहिये ॥ २१ ॥ इनमें-

से किसीका अन्न विनाजाने खाय तौ तीनिदिन उपवास करै और जानकर खा-  
य तौ कृच्छ्र करै और वीर्य मूत्र विष्टाके खानेमेंभी यही कृच्छ्रव्रत जानिये ॥२२॥

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥ आददीतांममे  
वास्माद्वृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २३ ॥ श्रोत्रियस्य कर्दर्यस्य वदान्य  
स्य च वार्धुषेः ॥ मीमांसित्वाभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २४ ॥

टीका—विद्वान द्विज श्राद्ध आदि पंचयज्ञों करि शून्य शूद्रका पक्वान्न खा-  
य परन्तु जो और कहीसे न मिलसकै तौ एक रात्रिके निर्वाह योग्य कच्चाही  
अन्न इस्से ले पक्वान्न नहीं ॥ २३ ॥ एक वेदपढ़ा हुआ कृपण और दूसरा दाता  
श्रद्धिजीवी इन दोनोंका अन्न देवताओंने गुणदोषोंको विचारि समान कहा है  
क्योंकि दोनोंके गुण तथा दोष समानहैं ॥ २४ ॥

तान्प्रजापतिरौहृत्य मां कृध्वं विषमं समम् ॥ श्रद्धापूर्तं वदान्यस्य  
हृतमश्रद्धयेतरत् ॥ २५ ॥ श्रद्धयेष्टं च पूतं च नित्यं कुर्यादतन्द्रि-  
तः ॥ श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥ २६ ॥

टीका—देवताओंसे आकर ब्रह्मा बोलेकि विषम अन्नको सम मत करो विष-  
मका सम करना अनुचित है फिर उन दोनोंमें क्या विशेष है यह अपेक्षा हो-  
नेपर वेही बोले कि दान देनेवाले वार्धुषिकका अन्न श्रद्धासे पवित्र होता है औ-  
र कृपणका अन्न श्रद्धा न होनेके कारण हत कहिये दूषित तथा अधम होता  
है ॥ २५ ॥ वेदीके मध्यमें जो यज्ञ आदि कर्मकिया जाता है उसको इस कहतेहैं  
उस्से अन्य तलाव कुआ प्याऊ वाग आदिको पूत कहते हैं इन दोनों कर्मोंको स-  
दा आलस्य रहित हो फलकी इच्छा छोड़ श्रद्धासे करै जिस्से न्यायसे इकट्ठे  
किये हुए धनसे श्रद्धापूर्वक कियेगये वे दोनोंकर्म अक्षय मोक्षरूप फलके  
द देनेवाले होते हैं ॥ २६ ॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ॥ परितुष्टेन भावेन पात्रं  
मासाद्य शक्तिः ॥ २७ ॥ यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूय-  
या ॥ उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २८ ॥

टीका—विद्या तथा तपोयुक्त ब्राह्मणको प्राप्त होकै ऐष्टिक पौर्तिक कहिये  
अंतर्वेदि बहिर्वेदि दान धर्मको परितोषनाम अंतःकरणके धर्मसे शक्तिके अनुसार  
करै ॥२७॥ याचना कियेगये ईषारहित पुरुष करिकै थोडाभी शक्तिके अनुसार

ना चाहिये जिस्से सदा देनेवालेको कभी न कभी ऐसाभी पात्र मिलजायगा जो नरकमें डारहेवाले सब पापसे छुड़ादेगा ॥ २८ ॥

वारिदस्त्वृत्तिर्माप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ तिलप्रदः प्रजामिष्टां दी  
पदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २९ ॥ भूमिदो भूमिर्माप्नोति दीर्घमायुर्हरिण्यदः ॥  
गृहदोऽङ्ग्याणि वेदमानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ ३० ॥

टीका—जलका देनेवाला क्षुधापिपासा दूरि होनेसे तृप्तिको प्राप्त होता है और अन्नका देनेवाला अक्षय सुखको और तिलका देनेवाला चाही हुई संततिको और दीपका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ भूमिका देनेवाला भूमिको और सुवर्णका देनेवाला बड़ी आयुको और धरका देनेवाला बहुत अच्छे घरोंको और रूपेका देनेवाला संपूर्ण जनोके नेत्रोंका मनोहर रूपको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

वासोदश्वन्द्वसालोक्यमर्धिसालोक्यमश्वदः ॥ अनर्दुहः श्रियं पुष्टां  
गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ ३१ ॥ यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभ  
यप्रदः ॥ धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसाष्टिताम् ॥ ३२ ॥

टीका—वस्त्रोका देनेवाला चंद्रके समान लोकोंको प्राप्त होता है चंद्रलोकमें चंद्रके समान विभूति बसती है और घोडेका देनेवाला अश्विनीकुमारके लोकको और बलवान् बैलका देनेवाला बहुतसी लक्ष्मीको और गौका देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ रथआदि वाहनोंका तथा शय्याका देनेवाला स्त्रीको और अभयका देनेवाला अर्थात् प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला प्रभुताको और धान्य कहिये धान जव उडद मूग आदिका देनेवाला बहुत कालतक रहनेवाले सुखको और ब्रह्म जो वेद है उसका देनेवाला अर्थात् वेदका पढ़ानेवाला तथा व्याख्यान करनेवाला ब्रह्मकी साष्टिता कहिये समान गतिभावको अर्थात् उसकी तुल्यताको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥ वार्यन्नगोमहीवासस्ति  
लकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ ३३ ॥ येनयेन तु भावेन यैर्द्धानं प्रयच्छ  
ति ॥ तं तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ ३४ ॥

टीका—जल अन्न धेनु भूमि वस्त्र तिल सुवर्ण और घृत आदि सबोंके दानसे वेदका दान अधिक फलका देनेवाला है ॥ ३३ ॥ जिस जिस भाव कहिये

अभिप्रायसे अर्थात् मुझे स्वर्ग मिले और मुमुक्षुको मोक्षके अभिप्रायसे निष्काम जिस जिस दानको देता है उसी भावसे उपलब्धित उस उस दानके फल द्वारा दूसरे जन्ममें पूजित हो प्राप्त होता है अर्थात् जिस फलके अभिप्रायसे दान देता है वही फल उसको मिलता है ॥ ३४ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददत्यर्चितमेव चोत्तावुभौ गच्छंतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ ३५ ॥ न विस्मयेत तपसा वदेदिष्टा च नानृतम् ॥

नानृत्ताऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—जो दाता सत्कारपूर्वक देता है और जो लेनेवाला उस दानको सत्कारपूर्वक लेता है वे दोनो स्वर्गको जाते हैं और विपर्यय कहिये उलटे होनेमें नरक होता है अर्थात् विनासत्कारके देने लेने वाले दोनो नरक गामी होते हैं ३५ किये हुए चांद्रायण आदि तपमें कैसे मैने यह कठिनकाम करलिया ऐसे आश्चर्य न करै और यज्ञ करिके झूठ न बोलै और ब्राह्मणोंकरि पीडित होनेपर भी उनकी निंदा न करै और गौ आदि देकर मैने यह दिया ऐसे दूसरेसे न कहै ॥ ३६ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥ आयुर्विप्रापवादेन दा न च परिकीर्तनात् ॥ ३७ ॥ धर्मज्ञैः संचिनुयाद्ब्रह्मीकमिव पुत्तिकाः ॥ परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ३८ ॥

टीका—झूठसे यज्ञ निष्फल हो जाता है और आश्चर्यसे तप और ब्राह्मणके अपमानसे आयु और कहनेसे दान निष्फल होजाताहै ॥ ३७ सब जीवोंकी पीडाका त्याग करता हुआ परलोकमें सहायके लिये शक्तिके अनुसार हौलेहौले धर्मको ऐसे बढ़ावै जैसे दींवक बांवीको बढ़ाती है ॥ ३८ ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥ न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ ३९ ॥ एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोऽनुमुङ्गे सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ४० ॥

टीका—जिस्से परलोकमें सहायरूपी कार्यकी सिद्धिके लिये पिता माता पुत्र स्त्री और जातिके नहीं स्थित होते हैं किंतु एक धर्मही दूसराहो उपकारके लिये स्थित होता है तिस्से पुत्र आदिकेसेभी बड़े उपकार करनेवाले धर्मको करै ॥ ३९ ॥ प्राणी एकही उत्पन्नको होता है और एकही मरजाता है और एकही पुण्य तथा पापको भोगता है माता आदिके साथ नहीं तिस्से मातादिकोंकी अपेक्षासेभी धर्मको न छोडै ॥ ४० ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ॥ विमुखो बान्धवा  
यान्ति धर्मस्तंमनुगच्छति ॥ ४१ ॥ तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचि  
नुर्याच्छनैः ॥ धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ४२ ॥

टीका—मृत कहिये मन प्राण आदि करि छोडे हुए शरीरको काष्ठ तथा लो-  
हके समान भूमिमे छोडकै भाई बंधु मुह फेरकै चले जाते है मरे हुए जीवके  
साथ नही जाते हैं और धर्म तौ उसके साथ जाता है ॥ ४१ ॥ जिस कारण  
सहाय करनेवाले धर्मसे दुस्तरतम कहिये कंठिनाईसे उतरने योग्य नरक आदि-  
के दुःखको उतर जाता है तिससे धर्मको सहाय भावसे सदा हौले हौले करै ॥ ४२ ॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ॥ परलोकं नयत्याशु भास्वं  
न्तं खशरीरिणम् ॥ ४३ ॥ उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सह ॥  
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधर्मधर्मास्त्यजेत् ॥ ४४ ॥

टीका—धर्ममें लगे हुए पुरुषको दैवयोगसे पाप हो जानेपर प्राजापत्य आ-  
दि तपस्वरूप प्रायश्चित्तसे पापके नश होनेपर प्रकाशमान उस पुरुषको धर्मही शी-  
घ्र स्वर्ग आदि परलोकको पहुँचाता है खशरीरण कहिये ब्रह्मस्वरूप यद्यपि लिं-  
ग शरीरमें बैठा हुआ जीवही जाता है तिसपरभी ब्रह्मका अंश होनेसे ब्रह्मस्व-  
रूपत्व हो सकता है जो धर्मही परलोकको ले जाता है तौ धर्मको कुरै न अ-  
च्छी रीतिसे पढे हुए वेद और न नात्राप्रकारके पढे हुए शास्त्र वहां जाते है ज-  
हां एकधर्म इसके साथ जाता है ॥ ४३ ॥ कुलकी उन्नति चाहनेवाला पुरुष विद्या  
आचार जन्म आदिसे उत्कृष्ट पुरुषोंके साथ सदा कन्यादान आदि संबंधों कुरै  
और हीन संबंधोंके छौडदे और जो उत्तम न मिलै तौ अपनी बराबरीमें करै ॥ ४४ ॥

उत्तमानुत्तमानाच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामे  
ति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ ४५ ॥ दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसं  
वसन् ॥ अहिंसो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथार्त्रतः ॥ ४६ ॥

टीका—उत्तमोंके साथ संबंध करता हुआ और हीनोंको छोडता हुआ ब्रा-  
ह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है और उलटे आचारसे शूद्रताको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥  
दृढकारी कहिये आरम्भ कियेका पूरा करनेवाला और मृदु कहिये कठोर नही  
और दांत कहिये शीतघाम आदिके द्रव्यका सहनेवाला पुरुष क्रूर आचारवाले  
पुरुषोंके साथ मेलको छोडता हुआ पराई हिंसासे निवृत्त और वैसाही व्रत क-



रनेवाला दम कहिये इंद्रियोंके संयमसे तथा दानसे स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

एंधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥ सर्वतः प्रतिगृहीयान्मध्व  
थामयदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥ आहताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचो  
दिताम् ॥ मेने प्रजापतिग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४८ ॥

टीका—काष्ठ जल फल मूल मधु और विनामागा हुआ अन्न कुलटा पाप-  
ण्डी और पतित आदिकोंको छोड़ सर्वतः कहिये शूद्र आदिकोंसेभी कच्चाही  
ग्रहण करै और अपनी रक्षारूप अभयको चांडालादिकोंसेभी अंगीकार करै ॥  
॥ ४७ ॥ देनेके स्थानमें लाईगई और आगे रखीगई और लेनेवाले करि आप  
तथा दूसरेके मुहसे पहलेनही मागीगई और देनेवालेने भी पहले नही कहा कि  
मैं तुमको देता हों ऐसी सुवर्ण आदिरूप भिक्षाको सिद्ध अन्नको नही पतित आ-  
दिकोंको छोड़ पाप करनेवालेसेभी लेनेयोग्य ब्रह्माने कही है ॥ ४८ ॥

नां श्रन्ति पितरस्तस्यै दश वर्षाणि पञ्च च ॥ न च हव्यं वहत्यग्निं  
यस्तामभ्यवमन्यते ॥ ४९ ॥ शय्यां गृहोन्कुशान्गन्धानपः पुष्पं  
मणीन्दधि ॥ धाना मत्स्यानपयो मांसं शौकं चैव न निर्गुदेत् ५०

टीका—उस पुरुष करि श्राद्धमें दिये हुए कव्यको पितर पंद्रह वर्षोंतक नही  
खाते हैं और यज्ञोंमें उस करिके दिये हुए पुरोडाश आदि हव्यको अग्निदेवता-  
ओंके लिये नही पहुंचाता है जो उस भिक्षाको अंगीकार नही करता है ॥ ४९ ॥  
शय्या घर कुश और गंध कहिये गंधयुक्त कपूर आदि और जल फूल मणि दही  
लथा धान कहिये भूजे हुए जव और चामल मछली दूध मांस और शाक  
इन वस्तुओंके लेनेमें निषेध न करै ॥ ५० ॥

गुरुभृत्यांश्चोजिर्हीर्षन्नचिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृही  
यान्न तु तृप्येत्स्वयं तंतः ॥ ५१ ॥ गुरुषु त्वभ्येतीतेषु विना वा तै  
र्गृहे वसन् ॥ आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृहीयात्साधुतः सदा ॥ ५२ ॥

टीका—क्षुधासे पीडित माता पिता आदि गुरुओंको और स्त्री आदि सेवकों-  
को उससे वचानेके लिये पतित आदिकोंको छोड़ि सर्वतः कहिये शूद्र आदि असा-  
धुओंसेभी ग्रहण करै परंतु उसको आप न खाय ॥ ५१ ॥ माता पिता आदिके म-  
रनेपर अथवा उनके जीवते हुए उनसे पृथक् घरमें वसता हुआ अपनी जीविका-  
की इच्छासे सदा सज्जनोसे भिक्षाको ग्रहण करै ॥ ५२ ॥

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ॥ एते शूद्रेषु भोज्या  
 न्नार्थश्चात्मनं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं  
 च चिकीर्षितम् ॥ यथा चोपचरेदं न तथात्मानं निवेदयेत् ॥ ५४ ॥

टीका—आर्द्धिक कहिये खेती करनेवाला और जो जिसकी खेती करता है वह उसका भोज्यान्न है ऐसेही अपने कुलका मित्र और जो जिसका गोपाल है और जो जिसका दास है और जो जिसका नाई है काम करता है और जो मैं दुर्गतिमें हौं तुम्हारी सेवाकरता हुआ तुम्हारेही समीप बसताहों ऐसे कहकह कर अपना निवेदन करै ऐसा शूद्र उसका भोज्यान्न है ॥ ५३ ॥ शूद्रको जैसे अपना निवेदन करना चाहिये सो कहते हैं इस शूद्रका कुलशील आदिसे जैसा इसका आत्मा कहिये स्वरूप है और इसको जो काम करना वांछित है और जैसे इसको सेवा करनी है उस प्रकार आपको कहै ॥ ५४ ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ॥ सर्पापकृतमो लोके  
 स्तेन आत्मपहारकः ॥ ५५ ॥ वाच्यथा नियताः सर्वे वाङ्मूला वा  
 ग्विनिमृताः ॥ तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ ५६ ॥

टीका—जो कोई कुल आदिमें और है और आपको औरही सज्जनोंमें कहता है वह लोकमें बड़ाही पापी है और आपका चुरानेवाला चोर है और चोर दूसरी वस्तुओंको चुराता है यह तौ सबमें प्रधान आपहीको चुराता है ॥ ५५ ॥ सब अर्थशब्दोहीमें वाच्यभावसे नियत है और शब्दोका मूल वाणी है क्योंकि सबवातें शब्दोहीसे जान कर कीजाती हैं इस्से वाणीसे निकले कहे जाते हैं इस्से जो उस वाणीको चुराता है अर्थात् अन्यथा कहता है वह मनुष्य सब भांति चोरी करनेवाला होता है ॥ ५६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गर्त्वानृण्यं यथाविधि ॥ पुत्रे सर्वसमासज्य वंसे  
 न्मार्ध्यस्थमाश्रितः ॥ ५७ ॥ एकांकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमा  
 त्मनः ॥ एकांकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥ ५८ ॥

टीका—गृहस्थहीका यह संन्यास प्रकार कहते हैं वेद पढ़नेसे महर्षियोंका और पुत्रके उत्पन्न करनेसे पितरोंका और यज्ञसे देवताओंका ऋण शास्त्रके अनुसार दूर करि सब कुटुंबके भारको योग्य पुत्रमें स्थापित करि मध्यस्थताका आश्रय ले पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोड़ि ब्रह्मबुद्धिसे

सर्वत्र समदृष्टिहो घरहीमें रहै ॥५७॥ कामके कर्मोंका और धनके जोड़नेका त्याग करि पुत्र करि किया हुई जीविकासे शरीर निर्वाह करता हुआ अकेला एकान्त स्थानमें अपने हितकारी वेदान्तमें कहे हुए जीवके ब्रह्मभावका सदा ध्यान करै जिस्से उसका ध्यान करता हुआ ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप उत्कृष्ट श्रेयको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ॥ स्नातकव्रतकल्प  
श्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ ५९ ॥ अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदंशा  
स्त्रवित् ॥ व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीर्यते ॥ २६० ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

टीका—यह ऋत आदि वृत्ति गृहस्थ ब्राह्मणकी शाश्वती कहिये नित्य कही गई आपत्तिमें तौ अनित्य कहेंगे और सतोगुणका बढ़ानेवाला अच्छा स्नातकके व्रतका कल्प कहिये त्रिधि कहा गया ॥ ५९ ॥ इस शास्त्रमें कहे हुए आचारसे वेदका वेत्ता ब्राह्मण नित्यकर्मसे क्षीण पापहो ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे ब्रह्मही लोक हुआ उसमें लीन हो सबसे अधिक महिमाको प्राप्त होताहै ॥ २६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मन्तनुजपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविष्टतौचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् । इदंमूर्चुर्महात्मान  
मर्नलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥ एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठता  
म् । कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

टीका—ऋषियोंने स्नातकके कहे हुए धर्मोंको सुनकर महात्मा और परमार्थमें तत्पर और अग्निसे उत्पन्न ऐसे भृगुजीसे वचन बोले यद्यपि पहले अध्यायमें दश प्रजापतियोंमें भृगुनारदमें वच इस वचनसे भृगुकीभी सृष्टि मनुहीसे कही तिसपरभी कल्पके भेदसे अग्निसे उत्पन्न कहे जाते हैं इसमें श्रुति प्रमाणहै जै से तस्ययद्वेतसःप्रथममुददीप्यततदसावादित्योऽभवद्यद्वितीयमासीत्तद्भृगुरितिइसी से यह व्युत्पत्ति कीगई कि भ्रष्टात्रेतसःउत्पन्नत्वाद्भृगुःअर्थात् गिरे हुए वीर्यसे उ

त्पन्न होनेसे भृगु कहिये ॥ १ ॥ ऐसे यथोक्त अपने धर्मके करनेवाले और श्रुति तथा शास्त्रके ज्ञाननेवाले ब्राह्मणोंकी वेदमें कही हुई आयुसे पहले कैसे मृत्यु होती है क्योंकि आयुके कम होनेका कारण जो अधर्म है उसका अभाव है संपूर्ण संदेहोंके दूर करनेमें समर्थ होनेसे प्रभो यह संबोधन दिया ॥ २ ॥

संतांनुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ॥ श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्रार्जिषांसति ॥ ३ ॥ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥ आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रार्जिषांसति ॥ ४ ॥

टीका—वे मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगु जिस दोषसे थोड़े कालमें मृत्यु ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा करता है उस दोषको सुनिये इस भांति उन महर्षियोंसे बोलें ॥ ३ ॥ वेदोंका अभ्यास न करनेसे और अपने आचारके छोड़नेसे और सामर्थ्य होनेपर अवश्य करनेयोग्य कामोंमें नहीं उत्साहरूप आलस्यसे और स्वाने योग्य वस्तुओंके दोषसे मृत्यु ब्राह्मणोंको मारता है ॥ ४ ॥

लशुनं गृजनं चैव पल्लण्डं कर्कशानि च ॥ अभक्ष्याणि द्विजातीनामर्ध्वप्रभवानि च ॥ ५ ॥ लोहितान्वृक्षनिर्यासान्प्रश्नप्रभवांस्तथा ॥ श्लेष्मं गव्यं च पेषूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—वेदका अनभ्यास आदि तौ कह चुके अब अन्नके दोष कहते हैं लशुन गृजन प्याज धरतीके फूल और अशुद्धविष्ठा आदिमें उत्पन्न चौलाई आदि ये द्विजातियोंको अभक्ष्य हैं शूद्रोंको नहीं ॥ ५ ॥ लालरंगके वृक्षोंके गोद और कान्ठसे उत्पन्न रस और श्लेष्म कहिये बहुवारकफल और नवीन व्याई हुई गौके दूधकी पेउसी इन सबोंको यत्न सब वर्जित करै ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च ॥ अनुपाकृतमांसानि देवांत्राणि हवींषि च ॥ ७ ॥ अनिर्दश्या गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ॥ आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पर्यः ॥ ८ ॥

टीका—वृथा कर कहिये देवताके निमित्त नहीं केवल अपने लिये कृसर कहिये तिल चावल मिलाकै किया हुआ भात और संयाव कहिये घी दूध गुड़ और गहूँके चूनसे षनी लपसी और दूध तथा चावलोंकी खीर और पुआ वृथा पक इन सबोंको वर्जित करै और यज्ञ आदिमें जो अभिमंत्रित नहीं है ऐसे पशुका मांस और देवताओंके लिये किये अन्नोंको नैवेद्य लगानेके पहले और हवींषि कहि-

ये पुरोडास आदि होमसे पहले वर्जित करै ॥ ७ ॥ दशदिनके भीतर व्याई हुई गौका दूध गौके कहनेसे जिनका दूध पिया जाताहै वे सब पशु जानने चाहिये तिससे बकरी और भैंसकाभी दूधव्यानेसे दसदिनतक वर्जितहै तथा ऊँटका और एक खुरवाले घोडा आदिका और भेडका और संधिनी कहिये उठीहुई गौका दूध न पीवै और विवत्सा कहिये जिसका बछरा मरिगयाहै ऐसी गौका और जिसका बछरा पौस नहीं है उसकाभी न पीवै और बच्चाके मरनेपर बकरी तथा भैंसका मना नहीं है ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ॥ स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्या  
नि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥ दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च द  
धिसंभवम् ॥ यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

टीका—भैंसको छोडकै हाथी आदि सब जंगली पशुओंका दूध और स्त्रीका दूध और सशुक्त वर्जितहैं शुक्त उसको कहते हैं जो स्वभावसे मीठा आदिरसका लवलेशसे जल आदिके योग्यसे खट्टे हो जाते हैं ॥ ९ ॥ शुक्तोंमे दहीभक्ष्य कहिये खानेयोग्यहै और दहीसे उत्पन्न सब मठाआदि भक्ष्यहैं शुभ कहिये अच्छे पुष्प मूल फल तथा जलसे जो संधाने किये जाते हैं वेभी भक्ष्य हैं शुभ इस विशेषणसे यह जाना गया कि जिन वस्तुओंके संधानेमें नशा होता है वे मनेकी गई हैं ॥ १० ॥

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वस्तथा ग्रामनिवासिनः ॥ अनिर्दिष्टांश्चैकं श  
फांष्टिभिर्न च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥ कलविकं प्लवं हंसं चक्राङ्गं ग्रा  
मकुट्टम् ॥ सारस रज्जुवालं च दात्यूहं शुक्रसारिके ॥ १२ ॥

टीका—क्रव्याद कहिये कच्चे मांसके खानेवाले गीध आदि सब पक्षियोंका तथा कबूतर आदि ग्रामके पक्षियोंका और नहीं कहे हुए एक खुरवाले पशुओंका तथा टटहरी पक्षीका मांस वर्जित करै अर्थात् न खाये ॥ ११ ॥ ग्रामके तथा जंगली चिरोटा तथा प्लवनाम पक्षी हंस चकवा गांवका मुरगा सारस रज्जुवाल पैपैया तोता और मैना ये सब पक्षी अभक्ष्यहैं अर्थात् इनका मांस न खाया ॥ १२ ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान् ॥ निमज्जतश्च मत्स्या  
दान् शौनं वर्ज्यमेव च ॥ १३ ॥ बकं चैव बलाकां च कार्कोलं ख  
ज्जरीटकम् ॥ मत्स्यादान्विडराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

टीका—प्रतुद कहि जो चोंचसे फोडकर खाते हैं जैसे कठफोरा आदि और-

जालपाद कहिये जिनके पंजोमें महीनखालका जाल होता है जैसे वत्तक आदि औरको यष्टिकनाम पक्षी और नखविष्कर कहिये जो पंजोसे कुरेदि २ खाते हैं और आज्ञा दिये हुए जंगली कुकुट आदिकोंसे जुदेवाज आदि और जो जलमें डूबक मारकै मछलियोंको पकड़ते हैं जैसे महु आदि और सूना जो मारनेका स्थान है उसमें स्थित मांस और बल्लूर कहिये सूखा मांस ये सब वर्जित हैं ॥१३॥ बगला तथा क्लाका द्रोण काक खंजन और मछलियोंके खानेवाले और भी पक्षियोंसे भिन्न मगर आदि तथा विडूराह कहिये विष्टा खानेवाले सुअर और सब प्रकारकी मछलियोंको वर्जित करै अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १४ ॥

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसं द उच्यते ॥ मर्त्यादः सर्वमांसं दः  
स्तस्मान्मर्त्यान्विजयेत् ॥ १५ ॥ पाठीनरोहितावाँद्यौ नियुक्तौ  
हव्यकव्ययोः ॥ राजीवाँन्सिहतुण्डाँश्च शल्काँश्चै वँ सर्वशः ॥ १६ ॥

टीका—जो जिसके मांसको खाता है वह उसके मांसका खानेवाला कहा जाता है जैसे विलाव भूषिकका खानेवाला कहाता है ऐसेही भक्ष्याद कहनेसे वह सब प्रकारके मांसका खानेवाला कहनेयोग्य है तिससे मछलियोंको न खाय ॥ ॥ १५ ॥ पढीन मछली और रोहू मछली आद्य कहिये खानेयोग्य कही हैं और हव्यकव्यमे नियुक्त हैं और आगे कहे हुए लक्षणोंकरि युक्त राजीव सिंह-तुंड और शल्कसमेत सब आद्य कहिये भक्षण करने योग्य हैं अर्थात् ये सब हव्यकव्यके विनाभी खाने योग्य हैं ॥ १६ ॥

न भक्ष्येदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥ भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टां  
न्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥ श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्म  
शशांस्तथा ॥ भक्ष्यान्पञ्चखेष्वहुरनुष्टांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

टीका—जो बहुधा अकेले विचरते हैं जैसे सर्प आदि उनको न खाय और नाम तथा जातिके भेदसे जिनको नहीं जानते हैं ऐसे मृगों और पक्षियोंको न खाय और भक्ष्यत्व करिके कहे हुए सब पंचनखों अर्थात् वानर आदिको न खाय ॥ १७ ॥ श्वाविध कहि सेधानाम जीवभेद और शल्यक कहिये ऐसेही और गोह तथा गैडा कछुआ और शशा इनको पंच नखोंमें मनु आदि भक्ष्य कहते हैं और एक और दांतोकी पंक्तिवालोंमें ऊटको वर्जित करते है ॥ १८ ॥

छत्राकं विडूराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् । पलाण्डुं मृञ्जनं चै वँ मर्त्या

जग्ध्वा पततेद्विजः ॥ १९ ॥ अमृत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं  
चरेत् ॥ यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

टीका—धरतीका फूल विष्टाखानेवाला सुअर लहसन गांवका मुरगा प्या-  
ज गाजर इनमें किसीको जानकै खाय गौ द्विजाति पतित होय तिस पीछे प-  
तितका प्रायश्चित्त करै ॥ १९ ॥ इन छत्राक आदि छः चीजोंको जानि वृद्धिं खाय-  
कै ग्यारहें अध्यायमें कहे हुए सात दिनमें होने योग्य कृच्छ्रसान्तपन नाम  
अथवा यति चान्द्रायण करै और इनसे भिन्न लाल वृक्षोंके गोद आदिके  
खानेमें दिनरात्रिका उपवास करै ॥ २० ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ अज्ञातभुक्तशुद्धिर्चर्य  
ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगप-  
क्षिणः ॥ भृत्यानां चैवं वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्यचरेत्पुरा ॥ २२ ॥

टीका—द्विजाति बिनाजाने खाये हुएको शुद्धिके लिये एकवर्षमें एकभी कृ-  
च्छ्रप्राजापत्यनाम करै और फिर जानें हुए अभक्ष्यभक्षण दोषकी शुद्धिके लिये  
जो कहाहै उसी प्रायश्चित्तको करै ॥ २१ ॥ ब्राह्मण आदिको करिकै यज्ञके लिये  
प्रशस्त कहिये शास्त्रमें कहे हुए मृग तथा पक्षी मारनेयोग्य हैं और अवश्य पाल-  
नेयोग्य भृत्यो तथा वृद्धमातापिता आदि पोषणके लिये करै ॥ २२ ॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ॥ पुराणेष्वपि यज्ञेषु  
ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥ यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हि  
तम् ॥ तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं चैयं द्रवेत् ॥ २४ ॥

टीका—जिस्से पुराने यज्ञोंमें और ऋषियोंके यज्ञोंमें भक्ष्य कहिये खानेयोग्य  
मृगों और पक्षियोंके मांसका पुरोडाश कहिये यज्ञ भाग कहाहै ॥ २३ ॥ जो कु-  
छ भोज्यवस्तु घी तेल आदि स्नेहसे प्रकी हुई लड्डू आदि तथा खीर आदि भो-  
ज्य वस्तु किसी वस्तुके पडनेसे बिगडी न होय और बासीभी होय तौ उस-  
को घी तेल आदि मिलाकै खाय तथा पुरोडाश आदि बासीभी भोजनकालमें  
स्नेहसंयोगशून्यभी भोजन करै ॥ २४ ॥

चिरस्थितमपि त्वीदमस्नेहांतं द्विजातिभिः ॥ यवगोधूमजं सर्वं प-  
र्यस्रैर्वै विक्रिया ॥ २५ ॥ एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशे-  
षतः ॥ मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥

टीका—अनेक रात्रिके बसेभी जब गेहूं और दूधके पदार्थोंको चिकन्नाई मिलानेके बिनाभी द्विजाति भक्षण करै ॥ २५ ॥ द्विजातियोंका यह संपूर्ण भक्ष्य अभक्ष्य कहा इस पीछे मांसके खाने औ छोडनेकी विधि कहोंगा ॥ २६ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ॥ यथाविधि नियुक्तं स्तुं प्राणानामेवं चांत्यये ॥ २७ ॥ प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ॥ स्थावरं जङ्गमं चैवं सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

टीका—प्रोक्षणनाम संस्कारसे शुद्ध किये हुये औ यज्ञसे बचे हुए मांसको ब्राह्मण भक्षण करै और जौ ब्राह्मणोंकी मांस खानेकी इच्छा होय तौभी नियमही से एकवार खाय तथा श्राद्धमें और मधुपर्कमें गृह्यवचनके अनुसार नियमसे मांस खाना चाहिये और दूसरा आहार न मिलनेसे प्राणोंका नाश होता होय और रोगका कारण होय तौ नियमसे मांस खाय ॥ २७ ॥ प्रजापतिने यह सब प्राणका अन्न बनाया तौ कौनहै सो कहतैं हैं जैसे जंगम पशु आदि और स्थावर धान जव आदि यह सब उसको भोजन है तिससे प्राणोंकी रक्षाके लिये जीव मांसको खाय ॥ २८ ॥

चरणामन्नमचरां दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ॥ अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैवं भीरवः ॥ २९ ॥ नात्ता दुर्ष्यत्यर्द्धन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहं न्यपि ॥ धात्रैव सृष्टां द्याद्यांश्च प्राणिनोऽत्तारं एव च ॥ ३० ॥

टीका—चर कहिये चलनेवाले जो हरिण आदि हैं उनके अचर कहिये तृण घास आदि भक्ष्यहैं और डाढ़वाले ब्राघ आदिकोंके बिना डाढ़वाले हरिण आदि भक्ष्यहैं और हाथोंवाले जो मनुष्य आदि हैं उनके बिना हाथोंकी मछली आदि भक्ष्यहैं और शूर जौ सिंह आदि हैं उनको भीरु कहिये डरपोकने हाथी आदि भक्ष्य कहिये खानेयोग्य है ॥ २९ ॥ खानेयोग्य प्राणियोंको प्रतिदिन खाता हुआभी खानेवाला दोषयुक्त नहीं होताहै जिसे विघाताहीने खानेयोग्य और खानेवाले बनाये इन कहे हुए तीनि श्लोकोंमें प्राणोंके नाशका संभव होनेपर मांस खानेकी प्रशंसाकी है ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष देवो विधिः स्मृतः ॥ अतोऽन्यथां प्रवृत्तिस्तु राक्षसोऽपि धिरुच्यते ॥ ३१ ॥ क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेवं वा ॥ देवान्पितृन्तृणां च यित्वा खादन्मांसं न दुर्ष्यति ॥ ३२ ॥



टीका—यज्ञके लिये उसके अंगभूत मांसका खाना यह दैवविधि कही है और इस्से अन्यथा अर्थात् बिना यज्ञके मांस खाना राक्षसविधि कही जाती है ॥ ३१ ॥ मोल लेकर अथवा आप उत्पन्न करिके अथवा और किसी करि लायके दिये हुए मांसको देवता तथा पितरोंको देकर शेषको खाता हुआ पुरुष पापको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

नान्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदिद्विजः ॥ जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥ न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ॥ यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

टीका—मांस खानेकी विधिका जाननेवाला द्विज बिना आपत्तिकालके देवादिकी पूजन विधिके बिना मांस न खाय जिस्से बिनाविधिके मांसको खायके जिनका मांस वह खाताहै उन करिके परलोकमें वह परवश होके उन पशुओं करके खाया जाताहै ॥ ३३ ॥ धनके लिये मृगोंको मार कर जीविका करनेवाले वहेलिया आदिकोंको वैसा प्राप नहीं होताहै जैसा देवता तथा पितरोंके बिना दिये हुए मांसके खानेवालेको परलोकमें होताहै ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नास्ति मानवः ॥ संप्रेत्यं पशुतां याति संभवंनेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥ असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नान्याद्विप्रः कदाचन ॥ मन्त्रैस्तु संस्कृतानर्द्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

टीका—श्राद्धमें तथा मधुपर्कमें शास्त्रके अनुसार नियुक्त हो जो पुरुष मांसको नहीं खाताहै वह मरके इक्कीस जन्मोंतक पशु होताहै ॥ ३५ ॥ वेदमें कहे हुए मंत्रोंसे प्रोक्षण आदि संस्कार न किये हुए पशुओंको ब्राह्मण आदि कभी न खाय और शाश्वत कहिये प्रवाहकी अनादितासे नित्य जो पशुयाग आदि विधि है तिसमें स्थित संस्कार किये हुए मांसोंको खाय ॥ ३६ ॥

कुर्याद्दधृतपशुं संगे कुर्यात्पिष्टपशुं तथो ॥ न त्वेवं तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ३७ ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो हं मारणम् ॥ वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनिजन्मनि ॥ ३८ ॥

टीका—जो बहुतही खानेकी इच्छा होय तो घीका अथवा चूनका पशु बनाके खाय और देवताओंके निमित्त बिना कभी पशुओंके मारनेकी इच्छा न करे ३७

देवताके उद्देशविना अपने लिये जो पशुओंको मारताहै वह वृथा पशु मारने-  
वाला मरकै जितने पशुके रोमा है उतनेही जन्मोंमें मारा जाता है तिस्से पशु-  
को वृथा न मारै ॥ ३८ ॥

**यज्ञाथ पशवः**

**स्माद्यज्ञे वधो**

**णस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राशुर्वस्त्युत्सृज्यन्तीः पुनः ॥ ४० ॥**

टीका—यज्ञके लिये पशुके मारनेमें दोष नहीं है यह कहते हैं यज्ञकी सिद्धि  
के लिये प्रजापतिने आपही पशु उत्पन्न किये और यज्ञ कहिये अग्निमें डाली हुई  
आहुति इस सब जगतकी वृद्धिके लिये होती है तिस्से यज्ञमें जो वध हैं वह अवध  
है अर्थात् वध नहीं है ॥ ३९ ॥ औषधी-कहिये धान जव आदि और पशु कहिये-  
छाग आदि और वृक्ष यज्ञस्तंभ आदिके लिये और तिर्यच कहिये कछुआ आदि  
और पक्षी चिरोटा आदि यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुए फिरि दूसरा जन्म होने  
पर ऊची जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

**मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥ अत्रैव पशवो हिंस्यां नान्यं  
त्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥ एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थं वि  
द्विजः ॥ आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥**

टीका—समांसो मधुपर्कः अर्थात् मांस समेत मधुपर्क होताहै इस वचनसे म-  
धुपर्कमें और यज्ञकर्ममें और ज्योतिष्टोम आदि पित्र्य तथा दैवकर्ममें पशु मार-  
नेयोग्य हैं अन्यत्र नहीं मनुजीने यह कहा ॥ ४१ ॥ इन मधुपर्क आदि पदार्थों  
में पशुओंको मारता हुआ वेदके तत्त्व अर्थका जाननेवाला द्विज आपको त-  
था पशुको उत्तमागति जो स्वर्ग आदिके भोग योग्य अद्भुत देह तथा देश-  
में पहुंचाय देता है ॥ ४२ ॥

**गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ॥ नान्वेदविहितां हिंसां  
मापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥ यां वेदविहितां हिंसां नियताऽस्मि  
श्वराचरे ॥ अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्वर्तमानः ॥ ४४ ॥**

टीका—गृहस्थाश्रममें तथा ब्रह्मचर्य आश्रममें और वानप्रस्थ आश्रममें वस-  
ता हुआ प्रशस्त आत्मावाला द्विज अशास्त्रीय कहिये शास्त्रमें नहीं कही हुई हिं-  
साको न करै ॥ ४३ ॥ वेदमें कही हुई कर्मविशेषमें तथा देशकाल आदिमें निय-

त हिंसाको इस स्थावर जंगमरूप जगतमें अहिंसा जनै जिस्से और प्रमाणों-  
काभी धर्म वेदहीसे सब निकलाहै ॥ ४४ ॥

ये हिंसकाणि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ॥ स जीवश्च मृ-  
तश्च वै न किंचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥ यो बन्धनबन्धकेशान्प्राणिनां न  
चिकीर्षति ॥ स सर्वस्य हितप्रेम्तुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

टीका—जो अपने सुखकी इच्छासे हिंसा न करनेवाले जीवोंको मारताहै  
वह इस लोकमें तथा परलोकमें सुख नहीं पाताहै ॥ ४५ ॥ जो प्राणियोंके बांध-  
ने तथा मारनेके क्लेशको नहीं किया चाहता है और सबके सुखका चाहनेवाला  
है वह अनंत सुखको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यं ह्यचोयति यत्कुंरुते धृतिं ब्रुधाति यत्र च ॥ तद्वाप्रोत्ययत्नेन  
यो हिनस्ति न किंचन ४७ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसं सुत्पद्यते  
कचित् ॥ न च प्राणिर्वधः स्वर्ग्यस्तस्मां न्मांसं विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

टीका—धर्म आदि मेरे होय यह जो चितवन करताहै और जो कल्याण क-  
रनेवाले कर्मको करताहै और जिस परमार्थके ध्यान आदिमें धीरजको बांधताहै  
उस सबको सहजहीमें प्राप्त होताहै जो दुःख देनेवाले डांस मच्छड आदिकोंको  
भी नहीं मारताहै ॥ ४७ ॥ प्राणियोंके मारनेविना कही मांस नहीं उत्पन्न हो-  
ताहै और प्राणियोंका मारना स्वर्गका कारण नहीं है किन्तु नरकहीका का-  
रण है तिस्से मांसको छोडदे ॥ ४८ ॥

समुत्पतिं च मांसस्य बधबन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्ते-  
त सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४९ ॥ न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा  
पिशाचवत् ॥ स लोके प्रियतमं याति व्याधिभिश्च न पीडयते ॥ ५० ॥

टीका—शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिररूप घिन उपजानेवाली मांस  
की उत्पत्तिको जानि और प्राणियोंके मारने तथा बांधनेको क्रूरकर्म जानि सर्व-  
प्रकारके मांसको अर्थात् कहे हुएभी मांसको न खाय तौ विना कहेका क्या क-  
हनाहै ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कही हुई विधिको छोड पिशाचके समान मांसको  
नहीं खाताहै वह लोकका प्यारा होताहै और रोगोंसेभी नहीं पीडित होताहै ५०

अनुमन्ता विशंसिता निर्हन्ता क्रयविक्रयी ॥ संस्कर्ता चोपहर्ता च

खादकश्चेति घातकाः ५१ स्वमांसं परमासेन यो वर्धयितुमिच्छति ॥ अनर्भ्यर्च्य पितृन् देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

टीका—अनुमंता कहिये जिसकी आज्ञा बिना मार न सकै और विशसिता जो अंगोंको काटकर जुदा १ करै और क्रयविक्रयी जो मोल ले और बैचै और संस्कर्त्ता जो पाक करै और उपहर्त्ता कहिये परोसनेवाला और खादक कहिये खानेवाला ये सब श्रातक कहिये मारनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ अपने शरीरके मांसको दूसरेके शरीरके मांससे देवता पितरोंकी पूजाके बिना जो बढ़ाना चाहताहै उससे और पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥ मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥ फलमूलाशनेर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ॥ न तत्फलमर्वाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

टीका—जो सौवर्षतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेधसे यजन करताहै और जो जन्मभर मांसको नहीं खाता उन दोनोंके पुण्यका फल स्वर्ग आदिके समान है ॥ ५३ ॥ पवित्र फलमूलोंके खानेसे और वानप्रस्थों करि करि खानेयोग्य तृण धान्य समा आदिके खानेसेही बह फल नहीं मिलताहै जो शास्त्रमें नियम किये हुए मांसके न खानेवालेको मिलताहै ॥ ५४ ॥

मांसभक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहादयर्हम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवर्दन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥ न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफलं ॥ ५६ ॥

टीका—इस लोकमें जिसके जिसके मांसको मैं खाताहूँ परलोकमें वह मुझको खायगा पंडितोंने मांसशब्दका यही अर्थ किया है ॥ ५५ ॥ मांस और मदिरा इनके भक्षणमें दोष नहीं है जिसे खाने पीने और मैथुन आदिमें प्रवृत्ति यह प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म है और छोड़नेका तौ बड़ा फलहै अब इसका अभिप्राय यह है कि मांसभक्षण मदिरापान मैथुन इन तीनोंके विधान करनेवाले जो वाक्य हैं वे प्रवृत्ति करानेवाले नहीं हैं क्योंकि अप्रवृत्ति तौ इच्छाहीसे होती है तब ये सब वाक्य व्यर्थ होकै यज्ञमें मांस भक्षण विवाहमें मैथुन और श्रोत्रामणी यज्ञमें मद्य पीना इन सबोंके करनेसे दोषका न होना सूचित करते हैं और उन सब वचनोंका अभिप्राय इन तीनोंके न करनेमेंही है ॥ ५६ ॥

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ॥ चतुर्णामपि वर्णानां  
यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥ दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च सं  
स्थिते ॥ अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ ५८ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंकी प्रेतशुद्धि कहिये पिता आदिके मरनेपर पुत्र आदिकी शुद्धिको ब्राह्मण आदिके क्रमसे जो जिसवर्णका है उसकी और द्रव्य जो तैजस अर्थात् धातु आदिकी शुद्धिको आगे कहेंगे ॥ ५७ ॥ दांतोंके उत्पन्न होनेपर और दांत होनेके पीछे और मुंडन तथा यज्ञोपवीतके होने पर जो लडका मरजाय तौ सर्पिड और समानोदक बान्धव अशुद्ध होते हैं तैसे लडका लडकीके उत्पन्न होनेमें अशुद्ध होते हैं यह कहते हैं ॥ ५८ ॥

दशार्हं शार्वमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ अर्वाक् संचयनाद-  
स्थानां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥ सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे वि-  
निवर्तते ॥ समानोदकं भावस्तु जन्मनाम्रोर्वदने ॥ ६० ॥

टीका—सात पुरुषोंतक सपिण्डता कहेंगे सपिण्डोंमें मरनेका आशौच कहिये सूतक ब्राह्मणोंमें दशराति दिनका कहाहै और अस्थिसंस्त्रयनके पीछे तीन दिन-रातिका अथवा एक दिनरातिका होताहै इसकी व्यवस्था यहहै कि वेदके मंत्र ब्राह्मण दोनो भागोंके जाननेवाला होय और अग्निहोत्र करता होय उसको एक दिनरातिका तथा जो केवल वेदहीको पढा होय और अग्निहोत्र न करता होय उसको तीन रातिदिनतक और जो वेद पढना तथा अग्निहोत्र दोनोसे रहितहै परंतु स्मृतिमें कही हुई अग्निसे युक्तहै तौ उसको चारि दिनरातितक और सब गुणोंसेही न होय तौ उसको दश दिनरातितक आशौच होताहै ॥ ५९ ॥ सातमें पुरुषमें सपिण्डता दूर होजाती है और समानोदक भाव तौ फिर हमारे कुलमें अमुक नामका हुआ इस प्रकार ज्ञान और नाम दोनोके ज्ञान न होनेमें दूर होताहै ॥ ६० ॥

यथेदं शार्वमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ जन्मनेऽप्येवमेव स्यात्  
त्रिपुणं शुद्धिं मिच्छताम् ॥ ६१ ॥ सर्वेषां शार्वमाशौचं मातापि  
त्रोस्तु सूतकम् ॥ सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पितां शुचिः ६२ ॥

टीका—जैसे यह दशदिन आदिका आशौच मरनेमें कहाहै ऐसेही अच्छी भांति

शुद्धि चाहनेवाले सपिंडोंके जन्ममेंभी दशही दिनका सूतक होता है ॥ ६१ ॥ मरनेके कारण नहीं छूनेरूप आशौच सब सपिंडोंको समान होता है और जन्मके कारणसे तौ मातापिताहीको दश दिनतक न छूनेरूप सूतक होता है उसमेंभी यह विशेष है कि जनननिमित्त सूतक माताको दशदिन तक होता है पिता तौ स्नानसे छूनेयोग्य होता है ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ॥ वैजिकादभिसंवन्धादनुस्नानादपि त्र्यहम् ॥ ६३ ॥ अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ॥ श्वस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहोदुदकदारिणः ६४

टीका—पैथूनके विनाभी कामसे वीर्यस्खलन होने अर्थात् निकलनेमें स्नान करनेसे पुरुष शुद्ध होता है और विना कामके स्वप्न आदिमें मूत्रके समान वीर्यके स्खलित होनेपर स्नानके विनाभी गृहस्थकी शुद्धि होती है और ब्रह्मचारीकी तौ कामके विनाभी स्वप्नमें स्खलित होनेसे स्नानसे शुद्धि कही है और पह लेपतिको छोड़कर जिस स्त्रीने दूसरा पति किया है उस स्त्रीमें दूसरे पतिसे संतति उत्पन्न होनेपर पतिको तीन दिनरातिका आशौच होता है ॥ ६३ ॥ सपिंड तीन दिनरातिमें शुद्ध होते हैं और जो सपिंड पहले कहे हुए गुणों करि युक्त होय तौ वह एक दिनरातिमें शुद्ध होय वे जो स्नेह आदिसे अतक छुवें तौ दशही दिनमें शुद्ध होते हैं और समानोदक तीन दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समार्चयन् ॥ प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५ ॥ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥ रजस्युपरंते सार्धं स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

टीका—गुरु कहिये आचार्य आदि असपिंडका दाह करके शिष्यभी प्रेतके लेजानेवाले गुरुके सपिंडोंके समान दशदिनरातिमें शुद्ध होता है ६५ तीसरे महीनेसे लगाकै जितने महीनोंके गर्भका पात होता है उतनेही दिनरातिमें चारोवर्णकी स्त्री शुद्ध होती हैं यह छ महीनेतक जानिये इसके उपरांत अपनी जातिका कहा हुआ शौच उनमें जानिये और रजस्वला स्त्री रजके बंद होनेपर पाचमेंदिन स्नानसे कर्म योग्य होती है और छूनेयोग्य तौ चौथेदिन स्नानकरनेसेही शुद्ध होती है ॥ ६६ ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥ निर्वृतचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥ जनद्विर्वाधिकं प्रेतं निदध्युर्वा-

न्धर्वां बहिः ॥ अलंकृत्यं शुचौ भूर्मावस्थिसंचयनादृते ॥ ६८ ॥

टीका—बिना मुंडन किये हुए बालकोंके मरनेपर सपिंडोकी रातिदिनमें शुद्धि होती है औ मुंडन होजानेके पीछे यज्ञोपवीतसे पहले मरनेमें तीनि रात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ६७ ॥ दो वर्षसे कम बिना मुंडन किया हुआ बालक मरे तौ उसको माला आदिसे शोभित करि ग्रामके बाहर लेजाके शुद्ध भूमिमें गाडदे अस्थि संचय न करै ॥ ६८ ॥

नास्यं कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ॥ अरण्ये काष्ठ-  
वत्यर्त्ता क्षपेयुर्यहमेव च ॥ ६९ ॥ नात्रिर्वर्षस्य कर्तव्या बान्धवै-  
रुदकक्रिया ॥ जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाग्निं वापि कृते सति ॥ ७० ॥

टीका—इस दो वर्षके मरे हुए बालकका न अग्निसंस्कार करै और न जल-दान करै किंतु वनमें काठके समान ढोडके तीनि रातिदिनका आशौच मानै ॥ ६९ ॥ तीनि वर्षसे कम अवस्थाके बालकको उसके सपिंड जलदान न करै और दांत उत्पन्न होनेपर तथा नामकरण होजानेपर जलदान तथा अग्निसंस्कार करना चाहिये और प्रेतका पिंडश्राद्ध आदि वनिसके तौ करे क्योंकी करनेसे प्रेतको आनंद होताहै और जो न करै तौ कुछ दोष नहीं है ॥ ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीति क्षपणं स्मृतम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु  
त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥ स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यह-  
च्छुध्यन्ति बान्धवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः ७२

टीका—साथ पढनेवालेके मरनेमें एकदिनका आशौच होताहै और समानो-दकोंके पुत्रका जन्म होनेपर तीनिरात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ बिना व्याही हुई वाग्दत्ता कहिये जिनका वातोंसे संबध हुआ है उन लडकियोंके मरनेमें बांधव कहिये पति आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं और विवाह होनेके पीछे मरनेमें पिता भाई आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निर्मज्जेषु ते त्र्यहम् ॥ मांसाशनं च नां  
श्रीयुः शयीरं पृथक् क्षितौ ॥ ७३ ॥ संनिधावेष वै कल्पः शवां  
शौचस्य कीर्तितः । अंसनिधावेषं ज्ञेयो विधिः संवाधिवान्धवैः ॥ ७४ ॥

टीका—क्षारलवण कहिये बना हुआ नोनका न खाना तथा नदी आदिमें तीन दिनतक स्नान करना और मांस न खाना तथा जुदे २ भूमिमें सोना चाहिये

॥ ७३ ॥ मृतकके समीप रहनेमें यह शावाशौच कहिये मरणनिमित्तक आशौच कहाहै और समीप न होनेमें संबंधी तथा बांधवोंको जो आगे कहेंगे वह आशौच जानना चाहिये सर्पिण्डोंको संबंधी कहते हैं औ समानोदकोंको बांधव कहते हैं ७४

विगतं तु विदेशस्थशृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेव शुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वै वापो विशुध्यति ॥ ७६ ॥

टीका—विदेशमें मरे हुएके समाचार दशदिनके भीतर सुननेमें आवैं तौ दशदिनमें जितने दिन बाकी रहे होंय उतने दिनतक आशौच मानना चाहिये ॥ ७५ ॥ दशदिनके उपरांत सुननेमें आवैं तौ तीनि दिनराति आशौच जानना और एकवर्ष के उपरान्त सुने तौ जलका स्पर्श करिके अर्थात् स्नान करिके शुद्ध होय ॥ ७६ ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सर्वासा जलमाप्लुत्य । भवति मानवः ॥ ७७ ॥ बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे संस्थिते ॥ सर्वासा जलमाप्लुत्य संघ एव विशुध्यति ॥ ७८ ॥

टीका—दशदिनके उपरांत जातिका मरना और पुत्रका जन्म सुननेमें आवैं तौ वस्त्रोंसमेत स्नान करिके शुद्ध होय ॥ ७७ ॥ परदेशमें समानोदक बलकका मरना सुनिके वस्त्रोंसमेत स्नान करनेसे उसीसमय शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ॥ तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ ७९ ॥ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ॥ तस्य पुत्रे च पत्न्या च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

टीका—एकका जन्म होनेपर दशदिनके भीतर दूसरेका जन्म होय और एकके मरनेसे दशदिनके भीतर दूसरा मरे तौ पहले आशौचके दूर होनेमें दूसरा भी दूर होजाताहै ॥ ७९ ॥ आचार्यके मरनेमें शिष्यको तीनि रातिका आशौच होताहै और आचार्यके पुत्र तथा स्त्रीके मरनेमें एक दिनरातिका आशौच होता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ मातुले पक्षिणी रात्रि शिष्यत्विग्वान्धवेषु च ॥ ८१ ॥ प्रेतै राज्ञे सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः । तथा गुरौ ॥ ८२ ॥



टीका—वेदशास्त्रका पढ़नेवाला मरै तो प्रीतिसे उसके समीप रहनेवालेको अथवा उसके घरमें रहनेवालेको तीन रात्रिका आशौच होताहै और मामा शिष्य ऋत्विक् तथा बांधवके मरनेमें पक्षिणी अर्थात् पहले और पिछले दिनसमेत रात्रिका आशौच होताहै ॥ ८१ ॥ जिस देशमें ब्राह्मण आदि वसते होय उस देशके राजा अर्थात् अभिषेकयुक्त क्षत्रिय आदिके मरनेमें सज्योति कहिये दिन होय तो जबतक सूर्य रहैं तबतक और राति होय तो जबतक तारा रहैं तबतक का आशौच होताहै और श्रोत्रिय मरै तो तीन रात्रिका कहाहै रातिमेंभी नहीं और जो रातिमें मरै तो रातिहीभरिका यह जानना चाहिये और अंगोंसमेत वेदके पढ़नेवाले तथा गुरुके मरनेपर एकही दिनका आशौच मानना चाहिये ॥ ८२ ॥

शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः॥ वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥ ८३ ॥ न वैध्वयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ॥ न च तत्कर्म कुर्वाणः सर्वाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

टीका—यज्ञोपवीत किये हुए सापिंडके मरनेमें तथा पूरे दिनोमें जन्म होनेपर वेदपाठरहित ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होताहै और क्षत्रिय बारहदिनमें तथा वैश्य पंद्रहदिनमें और शूद्र एक महीनेमें शूद्रके यज्ञोपवीतके स्थानमें विवाह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ आशौचके दिनोंकी न बढ़ावै और उन दिनोंमेंभी श्रौत अग्निहोत्रके होममें बाधा न करै जो असमर्थ होय तो पुत्रादिकोंसे करावै इसमें कारण कहते हैं कि जिस्से उस अग्निहोत्ररूप कर्मको करता हुआ पुत्र आदि सापिंड अशुद्ध नहीं होताहै ॥ ८४ ॥

दिवाकीर्तिसुदक्क्यां च पतितं सूतिकां तथा॥ शवं तंत्स्पृष्टिनं चैवं स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति ॥ ८५ ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिर्दर्शने ॥ सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तिं तः ॥ ८६ ॥

टीका—चांडालको रजस्वलाको ब्रह्महत्यारे आदिको और दशदिनके भीतर प्रसूता स्त्रीको मुर्देको तथा मुर्देछूनेवालेको छूकर स्नानसे शुद्ध होताहै ॥ ८५ ॥ चांडाल आदि अशुद्धके दर्शन होनेपर आदृ तथा देवपूजा आदिको किया चाहता पुरुष स्नान तथा आचमन करि सूर्य जिनका देवता ऐसे उदुत्यं जातवेदसे इत्यादिमंत्रोंको और पावमानी ऋचाओंको शक्तिके अनुसार जपै ॥ ८६ ॥

नारं स्पृष्ट्वास्थिं संस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥ आचम्यैवं तु निः

स्नेहं गोमालभ्यां कर्मिर्धर्म्यं वा ॥ ८७ ॥ आदिष्टी नोदकं कुर्यादात्र  
तस्य समापनात् ॥ समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुष्यं ति ॥ ८८ ॥

टीका—चिकनाई पुक्त ममुष्यकी हड्डीको छूके ब्राह्मण आदि स्नानसे  
शुद्ध होते हैं और स्नेह रहित हड्डीके छू आचमन करिके अथवा गौको  
छूके अथवा सूर्यका दर्शन करिके शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिपर्यं-  
त प्रेतोदक अर्थात् पूरक पिंडश्राद्ध आदि प्रेतके कृत्य न करे फिर ब्रह्मचर्यके  
समाप्त होनेपर प्रेतोदक करिके तीनि रातितक आशौच मानिके शुद्ध होता है ॥ ८८

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ आत्मनस्त्यागिनां  
चैवं निवर्तेतोदकक्रियां ॥ ८९ ॥ पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां  
च कर्मतः ॥ गर्भभर्तृद्वुहां चैवं सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

टीका—अपने धर्मका छोड़नेवाला और हीन जातिके पुरुषसे ऊँची  
जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न तथा झूठे संन्यासका धारण करनेवाला और व्यर्थ कहिये  
शास्त्रसे मने किये हुए विष आदिसे जानकर मरनेवाला इन सर्वोंके मरनेमें ज-  
लदान न करे ॥ ८९ ॥ वेदसे बाहर गेरुआ कपड़े और मूड मुढाना आदि  
व्रतोसे पाषण्ड करनेवाली और अपनी इच्छासे जहां तहां फिरनेवाली और म-  
र्भपात तथा पतिका दध करनेवाली और मद्य पीनेवाली द्विजातिकी स्त्रीको  
इन सर्वोंके मरनेमें जलदान न करना चाहिये ॥ ९० ॥

आचार्य स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥ निर्हृत्य तु व्रंती प्रेतां  
न व्रतेनं विरुज्यते ॥ ९१ ॥ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ॥  
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

टीका—आचार्य कहिये जो यज्ञोपवीत करके संपूर्ण शास्त्राओंको पढ़ावै और  
उपाध्याय जो वेदका एक देश अथवा अंगशिक्षा आदि पढ़ावै पिता माता और  
गुरु जो एक वेदका अथवा सबवेदोंके एकदेशका व्याख्यान करे इन सर्वों-  
की दाह आदि प्रेतक्रिया करनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका लोप नहीं होता है ९१ मरेहुए  
शूद्रको पुरके दक्षिणाद्वारमें होकर निकाले और द्विजातियोंको यथायोग्य कहिये  
युक्तिसे हीनवैश्य क्षत्रियके क्रमसे पश्चिम उत्तर पूर्वके द्वारोंमें होकर निकाले ९२

न राज्ञामर्षदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ॥ ऐन्द्रं स्थानं मुपा-  
सीनां ब्रह्मभूता हि ते संदा ॥ ९३ ॥ राज्ञो माहोत्तिके स्थाने सर्वः

शौचं विधीयते ॥ प्रजांनां परिरक्षार्थमांसनञ्चात्र कारणम् ॥ ९४ ॥

टीका—राजा व्रती कहिये ब्रह्मचारी चांद्रायण आदि व्रतोंका करनेवाला तथा सत्री कहिये यज्ञ करनेवाला इन तीनोंको सर्पिण्डके मरने आदिमें आशौच दोष नहीं लगताहै क्योंकि राजा तौ इंद्रके स्थानमें स्थित है और ब्रह्मचारी व्रती तथा यज्ञकरनेवाला ये सदा ब्रह्मका स्वरूपहैं ॥ ८३ ॥ राज्यपदमें बैठे हुए राजाकीशी शुद्धि कही है प्रजाओंकी रक्षाके लिये राज्यपदमें बैठनाही आशौच न लगनेका कारणहै ॥ ९४ ॥

डिवाहर्वहतानां च विद्युतां पार्थिवेन च ॥ गोब्राह्मणस्य चैवार्थं यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥ सोमाभ्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्येत्योर्यमस्य च ॥ अष्टानां लोकपालानां वंपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

टीका—जिसमें राजा नहीं है उस युद्धमें जो मारे गये हैं और बिजली अर्थात् वज्रसे जो मारे गये हैं मारनेके योग्य अपराध करनेमें राजा करि जो मारे गये और गौ तथा ब्राह्मणके लिये ये युद्धके विनाशभी जलअग्नि तथा व्याघ्र आदि करि मारे गये और जिस पुरोहित आदिकी राजा अपने कामके लिये शुद्धि चाहै उन सबोंकी शीघ्रही शुद्धि होती है ॥ ९५ ॥ चंद्रमा अग्नि सूर्य वायु इंद्र यम कुबेर वरुण इन आठो लोकपालोंके शरीरको राजा धारणकरताहै ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नान्यथाशौचं विधीयते ॥ शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महर्त्तस्य च ॥ सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

टीका—राजा ऊपरके श्लोकमें कहे हुए इंद्र आदि लोकपालोंके अंशोंसे युक्त होताहै इसलिये राजाको आशौच नहीं लगताहै कारण यहहै कि मनुष्योंका जो शौच और आशौच है सो लोकपालोंसे उत्पन्न होताहै तथा दूरि होताहै ॥ ९७ ॥ संग्राममें उठे हुए खड्ग आदि शस्त्रोंसे लाठी पत्थर आदिसे नहीं किंतु क्षत्रियधर्मसे सन्मुख मारे गये पुरुषका उसीसमय ज्योतिष्टोमआदियज्ञ समाप्त होताहै अर्थात् यज्ञफलसे वह युक्त होताहै और आशौचभी उसी समय समाप्त होजाताहै यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ९८ ॥

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनार्थमुधम् ॥ वैश्यं प्रतोदं रथार्थं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥ एतद्गोऽभिहितं शौचं स-

पिण्डेषु द्विजोत्तमाः ॥ असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ३०० ॥

टीका—आशौचके अंतमें श्राद्ध आदि कृत्य करिकै ब्राह्मण दाहिने हाथसे जलको छूकर शुद्ध होताहै और क्षत्रिय हाथी आदि वाहनोंको तथा खड्ग आदि शस्त्रोंको और वैश्य अग्रभागमें लोह लगे हुए बैलोंके हांकनेकी लकड़ीको अथवा जोतेको और शूद्र वांसकी दंडिकाको छूकर शुद्ध होताहै ॥ १९ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो मैंने तुमसे यह आशौच सपिण्डोंके मरनेमें कहा, अब असपिण्डोंके मरनेमें प्रेत शुद्धिको सुनो ॥ १०० ॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ॥ विशुद्ध्यति त्रिंशत्रे-  
ष मांतुरांतांश्च बान्धवान् ॥ १ ॥ यद्यन्नमर्त्ति तेषां तु दशाहेनैव  
शुद्ध्यति ॥ अनदन्नन्नमर्त्तैर्व न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥ २ ॥

टीका—असपिण्ड मरे हुए ब्राह्मणको मित्रतासे श्मशानमें लेजाय करि तथा मा-  
ताके सगे भाई बहिन आदि बांधवोंको पहुंचायकै ब्राह्मण तीनि रात्रिमें शुद्ध  
होताहै ॥ १ ॥ जो लेजानेवाला आशौचयुक्त मरे हुएके सपिण्डोंका अन्न खायतौ  
दशही दिनमें शुद्ध होय और जो उनका अन्न न खाय और उनके घरमें न वसै  
तौ तीनि दिनरातिहीमें शुद्ध होजाय औ उसके घरमें तौ वसै परंतु उसके सपिण्डों-  
का अन्न न खाय तौ पहले कही हुई तीनि रात्रिमें शुद्ध होय ॥ २ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ॥ स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वा-  
ग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शू-  
द्रेण नाययेत् ॥ अस्वर्ग्या ह्याहुतिं सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥ ४ ॥

टीका—अपनी जातिके तथा और जातिके मृतकके साथ अपनी इ-  
च्छासे जायकै वस्त्रोंसमेत स्नान करि और अग्निको छू घी खायकै शुद्ध होताहै ॥  
॥ ३ ॥ समान जातिके स्थित होनेपर पुत्र आदि मृतकको शूद्रसे न उठवावै क्योंकि  
उसकी आहुति शूद्रके स्पर्शसे दूषित हो स्वर्गके लिये हित नहीं होती है अर्थात्  
स्वर्गमें नहीं पहुंचाती है अपनोंके होनेपर इसके कहनेसे यह जान गया कि ब्रा-  
ह्मणके न होनेमें क्षत्रिय और क्षत्रियके न होनेमें वैश्य वैश्यके भी न होनेमें  
शूद्रसेभी उठवाकै मृतकको लिवाय

ज्ञानं तपोग्निराहारो मूर्ध्नो वायुपांजनम् ॥ वायुः कर्मार्ककालौ  
च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं

स्मृतम् ॥ योऽर्थं शुचिर्हि स शुचिर्न मृदारिशुचिः शुचिः ॥ ६ ॥

टीका—ज्ञान तप आग्नि आहार मृत्तिका मन जल लेप पवन कर्म सूर्य और काल ये देहियोंकी शुद्धि करनेवाले हैं ॥ १ ॥ सब शौचोंमें अर्थात् मट्टी पानी आदिसे देहकी शुद्धि और मनकी शुद्धि इन सबोंमें अर्थशुद्धि कहिये अन्यायसे पराये धनके लेनेकी इच्छाको छोड़कर धनका इकट्ठा करना सबसे अधिक शौच मनु आदिकोंने कहाहै क्योंकि जो धनमें शुद्ध है वह शुद्ध है और जो मृत्तिका तथा जलसे शुद्ध है और धनमें अशुद्ध है वह अशुद्ध ही है ॥ ६ ॥

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनौ कार्यकारिणः ॥ प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तर्माः ॥ ७ ॥ मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ ८ ॥

टीका—दूसरेके अपकार करनेपर उसके बदलेके अपकार करनेमें बुद्धि न करनेरूप क्षमासे पंडित शुद्ध होते हैं औ नही करनेयोग्य कामके करनेवाले दानसे और जिनके पाप क्षुपे हुए हैं वे जपसे और वेदका अर्थ तथा चांद्रायण आदि तपके जाननेवाले एकादश अध्यायमें कहेंगे उस तपसे शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ मल आदिसे दूषित शोधने योग्य मृत्तिका तथा जलसे शोध जाते हैं और श्लेष्मा आदि अशुद्धसे दूषित तदीका प्रवाह वेगसे शुद्ध होता है और परपुरुषसे मैथुनके संकल्पसे दूषित है मनजिसका ऐसी स्त्री प्रतिमासमें रजोधर्मसे उसपापसे शुद्ध होती है और ब्राह्मण छठे अध्यायमें जो कहेंगे उस संन्याससे शुद्ध होता है ॥ ८ ॥

अद्विर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति १ एष शौचस्य वै प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ॥ नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥ ११० ॥

टीका—पसीना आदिसे दूषित अंगजलके धोनेसे शुद्ध होते हैं और निषिद्ध-चिंता आदिसे दूषित मन सत्यसे शुद्ध होता है और सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें अवच्छिन्नजीव आत्मा ब्रह्मविद्या तथा पापके नाशकरनेवाले तपसे शुद्ध होता है और अन्यथा ज्ञानसे दूषित बुद्धि यथार्थविषयके ज्ञानसे शुद्ध होती है ॥ ९ ॥ मैनेशरीरके शौचका यह निश्चय तुमसे कहा अब नानाप्रकारके द्रव्योंमें जो जिसे शुद्ध होता है उसके निर्णयको सुनौ ॥ ११० ॥

तैजसानां मैणिनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ भस्मनाद्भिर्मृदा चै

वं शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ ११ ॥ निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरे  
वं विशुध्यति ॥ अञ्जमश्ममयं चैवं राजतं चानुपस्कृतम् ॥ १२ ॥

टीका—तैजस कहिये सुवर्ण आदिकोंकी और मरकत आदि मणिघोंकी और सब पत्थरकी वस्तुओंकी भस्म जल तथा मट्टीसे मनु आदिकोंने शुद्धि की है ॥ ११ ॥ उच्छिष्ट आदिके लेपसे रहित सुवर्णका पात्र और जलसे उत्पन्न शंख सीप आदि और पत्थरका पात्र तथा रेखारहित चांदीका पात्र भस्म आदिसे रहित केवल जलसे शुद्ध होता है ॥ १२ ॥

अपामग्रेऽथ संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्वभौ ॥ तस्मात्तयोः स्वयोन्यै  
वं निर्णेको गुणवत्तरः ॥ १३ ॥ ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीस  
कस्य च ॥ शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ १४ ॥

टीका—जल और अग्निसे संयोगसे सोना और रूपा उत्पन्न हुआ हैं तिसरे उनके कारण अर्थात् उत्पन्न करनेवाले जल और अग्निहीसे शुद्धि सबसे उत्तम है ॥ १३ ॥ तांबा लोहा कांसा पीतलि रांग और सीसा इनका भस्म तथा खटाईके पानीसे यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्य होय उससे उसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

द्रवाणां चैवं सर्वेषां शुद्धिराप्नुवन् स्मृतम् ॥ प्रोक्ष्णं संहतानां च  
दारवाणां च तर्क्षणम् ॥ १५ ॥ मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिनम् यज्ञक  
र्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ १६ ॥

टीका—काँआ कीड़ा आदि करि दूषित किये गये एक पसेभर धाँ तेल आदिकी प्रादेशप्रमाण दो कुशके पत्रोंको उसमें डालकरि उछालनेसे और शय्या आदि जो उच्छिष्ट आदिसे दूषित होय तौ जलके छिड़कनेसे और काष्ठका कटोता आदि जो उच्छिष्ट आदिसे अत्यंत दूषित होय तौ उनकी छीलनेसे शुद्धि होती है ॥ १५ ॥ यज्ञमें चमस ग्रह तथा अन्य यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि पहले हाथसे मलकै जलके धोनेसे होती है ॥ १६ ॥

चरूणां सुक्खुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणां स्फ्यशूर्पशकटानां च  
सुसलालूखलस्य च बहूनां धान्य  
वाससाम् ॥ प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका—चिकनाई करि युक्त चरु सुक् आदिकी शुद्धि उष्णजलके धोनेसे

होती है और जिनमें चिकनाई नहीं है उनकी यज्ञके लिये केवल जलसे शुद्धि होती है और स्नय स्नप गाढी मूसल और ओखलीकी शुद्धि उष्णजलसे होती है ॥१७॥ बहुतसे धान्य और वस्त्र जो चांडाल आदि करि दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे उनकी शुद्धि होती है बहुत उसकों कहते हैं जो एक पुरुषके लेचलनेसे अधिक होय उससे थोड़ेकी शुद्धि मनु आदिने धोनेसे कही है ॥ १८ ॥

चैलवस्त्रमणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ॥ शाकमूलफलानां च धान्यं वच्छुद्धिरप्येत ॥ १९ ॥ कौशेयाविक्रयो रूषैः कुतपानामरिष्टकैः ॥

श्रीफलैरशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ २० ॥

टीका—छूनेयोग्य पशुके चर्मके पात्र और वांसेके पात्रकी शुद्धि वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये और शाक मूल फल इनकी शुद्धि धान्यकी शुद्धिके समान जानिये ॥ १९ ॥ रेशमी और ऊनी वस्त्रकी शुद्धि खारी मट्टीसे होती है और नेपालके कंबलोंकी रीठके चूर्णसे और पट्टवस्त्रकी वेलके फलसे और अलसीकी छालिका वस्त्र सपेद सरसोंसे शुद्ध होता है ॥ २० ॥

क्षौमर्वच्छुद्धशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥ शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ २१ ॥ प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलां चैव शुद्धयति ॥ मार्जनोपाज्जनैर्वैर्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २२ ॥

टीका—शंखका पात्र तथा छूनेयोग्य पशु हाथी आदि तिनके दांत सींग तथा हाडके पात्रकी शुद्धि अलसीके वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये अर्थात् सपेद सरसोंके कल्कसे अथवा गोमूत्रसे शुद्धि होती है ॥ २१ ॥ चांडाल आदिके छूनेसे दूषित तृण काट और पयार जलके छिडकनेसे शुद्ध होते हैं और रजस्वला आदिके वसनेसे दूषित घर झाडने और लीपनेसे शुद्ध होता है और उच्छिष्ट आदिसे दूषित मट्टीका वासन फिर पकानेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा घृथैर्नैः पूर्यशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्ध्यति पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २३ ॥ संमार्जनोपाज्जनेनैः सेकनोल्लेखनेन च ॥ गर्वां च परिव्रासेन भूमिः शुद्ध्यति पश्चाभिः ॥ २४ ॥

टीका—मद्य मूत्र विषा थूक पीव तथा रुधिरसे विगडा हुआ मट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्ध नहीं होता है ॥ २३ ॥ झाडने लीपने छिडकने सोदने अर्थात् कुछ मट्टीके छीलनेसे तथा गौओंके रहनेसे इन पांच बातोंसे भूमि शुद्ध होती है ॥ २४ ॥

पक्षिजगंधं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम्॥दूषितं केशकीटैश्च मृत्पक्षे  
पेर्णं शुद्धयति ॥ २५ ॥ यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्रन्धो लेपश्च तत्कृ  
तः ॥ तावन्मृद्धारि चादेयं<sup>४</sup> सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ २६ ॥

टीका—कौआ गीघ आदिको छोड़के अन्य पक्षियों करि कुछ खाया हुआ और गौ करि सूंघा हुआ तथा पैरसे छुआ हुआ और जिसके ऊपर छींक हुई और बाल तथा कीड़ोंसे दूषित थोड़ी मट्टीके ढालनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥ अप-  
वित्र विष्टा आदिसे लिपी वस्तुसे जबतक उसका गंध तथा लेप शेष रहै तबतक  
सब वस्तुओंको शुद्धके लिये मट्टी और जलसे मांजै ॥ २६ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्नि-  
र्णितं यच्चैवाचारं प्रशस्यते ॥ २७ ॥ आर्पः शुद्धां भूमिर्गता वैतृण्यं  
यासु गोर्भवेत् ॥ अव्याप्ताश्चैदमेध्वेन गन्धवर्णरसान्विताः ॥ २८ ॥

टीका—देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन वस्तु पवित्र की हैं एक तौ अदृष्ट  
अर्थात् जिसका दूषित होना आँखिसे नहीं देखा गयाहै और दूसरा दूषित होने  
की शंका होनेपर जलसे धोना और तीसरा दूषित होनेकी शंका होते ही पवित्र  
होय इस ब्राह्मणकी वाणीसे जो प्रशस्तहै ॥ २७ ॥ जितने जलमें एक गौकी प्या-  
स दूर होय गंध वर्ण और स्वाद जिसका न बिगड होय और अपवित्र वस्तुसे  
युक्त न होय शुद्ध भूमिमें स्थित होय ऐसा जल शुद्ध कहाहै ॥ २८ ॥

नित्यं शुद्धैः कारुहस्तः पर्ण्ये यच्च प्रसारितम् ॥ ब्रह्मचारिगतं भ-  
क्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ २९ ॥ नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां  
शकुनिः फलपातने॥प्रसवे च शुचिर्वत्सः<sup>५</sup> मृगग्रहणे शुचिः १३०

टीका—देवता तथा ब्राह्मण आदिके लियेभी माला आदिके बनानेमें माली  
आदि कारीगरोंके हाथ शुद्ध विशेषके न करनेपरभी स्वभावहीसेसदा शुद्ध हैं तै-  
सेही जन्म मरणमें अपने काममें शुद्धहै और ब्रह्मचारीकी भिक्षा विना न्हाई स्त्री-  
के देने और मल्लो आदिमें चलनेपरभी सदा शुद्धहै यह शास्त्रकी मर्यादा है॥२९॥  
स्त्रियोंका मुख सदा पवित्रहै और कौआ आदि पक्षियोंकी चोचके लगनेसे गिरा  
हुआ फल शुद्धहै और गौके दुहनेके समय दूधके पन्हुआनेमें वछडेका मुख  
शुद्ध है और कुत्ता जब मृग आदिकोंको मारनेको पकडै तब उसकाममें व-  
हभी शुद्ध होताहै ॥ १३० ॥



श्वभिर्हतस्यैयन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥ क्वव्याद्विश्वं हतस्या  
न्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि  
मेध्यानि सर्वशः । यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैर्वमलाश्च्युताः ॥ ३२

टीका—कुत्तों करि मारे हुए मृग आदिका मांस मनुजीने शुद्ध कहा है तथा  
और कच्चे मांसके खानेवाले बाघ वाज आदिकों करि और मृगोंको मारकर  
जीविका करनेवाले नहोलिया आदि करि मारे हुए मृग आदिका मांस पवित्र है  
॥ ३१ ॥ नाभिके ऊपर जे इंद्रिमा हैं वे सब पवित्र हैं इससे उनके छूनेमें अपवित्र-  
ता नही होती है और जो नाभिके नीचे हैं वे अशुद्ध हैं और देहसे निकले हुए  
देहके मलसे अशुद्ध होते हैं ॥ ३२ ॥

मक्षिकां विष्णुश्छाया गौरश्चः सूर्यरश्मयः ॥ रजो भूवायुरग्निश्च  
स्पर्शमेध्यानि निर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ विष्णूत्रोत्सर्गशुद्धयर्थं मृदायां दे-  
यमर्थवत् ॥ देहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वर्पि ॥ ३४ ॥

टीका—अपवित्र वस्तुकी छूनेवालीभी मक्षिकायां और मुखसे निकले हुए छो-  
टे २ जलके कण और पतित आदि न छूनेयोग्यकी छाया और गौ घोडा सूर्य-  
के किरण रज भूमि पवन अग्नि ये सब चांडाल आदिके छूनेपरभी छूनेमें अशुद्ध  
नही होते हैं ॥ ३३ ॥ विष्टा तथा मूत्रका जिनसे त्याग किया जाता है उन गुदा  
आदिकी शुद्धिके लिये प्रयोजन मात्र कहिये जितनेसे बारहों छिद्रोंके वसा आ-  
दि मलोंके गंध तथा लेपकी शुद्धि होजाय उतनी मट्टी तथा जल लेना चाहिये  
अन्यस्मृतियोंसे जाना गया कि पहिली छः इंद्रियोंकी शुद्धिके लिये मट्टी और ज-  
ल लेने चाहिये और दूसरे छः की शुद्धिके लिये केवल जल लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

वसां शुक्रमसृङ्मज्जां मूत्रं विट् प्राणकण्विट् ॥ श्लेष्माश्च दूषिका  
स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ ३५ ॥ एका लिङ्गे गुदे तिस्र-  
स्तथैकत्र करे दर्श ॥ उर्भयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिर्मभीप्सता ॥ ३६

टीका—वसा कहिये देहकी चिकनाई और वीर्य राधिर मज्जा कहिये शिरके  
भीतर इकट्ठा हुआ स्नेह मूत्र विष्टा नाक तथा कानका मैल कफ आंसू अंशु-  
कीचर तथा पसीना ये बारह मनुष्योंके शरीरके मैल हैं ॥ ३५ ॥ मूत्र तथा पुरीष-  
के त्याग करनेके पीछे शुद्धता चाहनेवाला पुरुष लिंगमें एकवार जलसमेत मट्टी  
लगावे और गुदा में तीनवार और एक बांये हाथमें दशवार लगावे और सातवा-  
र दोनो मिलायकै मट्टीलगावे ॥ ३६

एतच्छौचं गृहस्थानां त्रिगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ त्रिगुणं संन्यासिनां  
नां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्वान्या  
चान्तं उपस्पृशेत् ॥ वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमंश्च सर्वदा ॥ ३८ ॥

टीका—यह शौच गृहस्थोंका कहा गया और ब्रह्मचारियोंको इस्से दूना क-  
रना चाहिये और वानप्रस्थोंको त्रिगुना और संन्यासियोंको चौगुना करना चा-  
हिये ॥ ३७ ॥ मूत्र तथा पुरीषका त्यागकर कहे-हुए शौचके पीछे तीनवार आ-  
चमन करिके इंद्रियोंको अर्थात् नाभिसे ऊपरके छिद्रोंको छुवै और वेदका अध्य-  
यन किया चाहै अथवा अन्न खाना चाहै तौ सदा यह विधि करै ॥ ३८ ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ शारीरं शौचमिच्छ  
न्हि स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत् ३९ शूद्राणां मांसिकं कार्यं वपनं न्यायं  
वर्तिनाम् ॥ वैश्यं च शौचं कल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥ १४० ॥

टीका—देहकी शुद्धिका चाहनेवाला पुरुष पहले तीनवार जलका आचमन  
करै तिस पीछे दोवार मूख धोवै और स्त्री तथा शूद्र एकवार आचमन करै ॥ ३९ ॥  
शास्त्रके अनुसार चलनेवाले और ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले शूद्रोंको महीने म-  
हीनेमें मुंडन करना चाहिये और मृतक सूतक आदिमें वैश्यके सम्मान आशौच  
मानना चाहिये और ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट भोजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः ॥ नैश्मश्रीणि गतां  
न्यास्यार्घ्नं दन्तान्तरं धिष्ठितम् ४१ स्पृशन्ति विन्दवः पादौ यं आ  
चामयतः परान् ॥ भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रियतो भवेत् ४२

टीका—मुखमेंसे निकले हुए थूकके छोटे छोटे बूंद शरीरपर गिरनेसे तथा मु-  
खमें गये हुए मूछोंके बाल और दांतोंकी संधिमें अटका हुआ अन्न अशुद्धताकी  
नहीं करताहै ॥ ४१ ॥ औरोंको आचमन करनेके लिये जल देते हुए मनुष्यके  
पैरोंपर जलके बूंद गिरते हैं वे शुद्ध भूमिमें भरे हुए जलके समान हैं उनसे  
अशुद्ध नहीं होताहै ॥ ४२ ॥

उच्छिष्टेन तु संपृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ॥ अनिधायैव तद्द्रव्यं  
माचान्तः शुचितामियात् ४३ ॥ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्रा  
शनमाचरेत् ॥ आचामेदेवं भुक्त्वा न्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥ ४४ ॥

टीका—कंधे आदिपर स्थित किसी वस्तुको लिये हुए जो उच्छिष्ट करि छुआ जाय तौ उस वस्तुको लियेही हुए आचमन करनेसे शुद्ध होताहै और वह वस्तुभी शुद्ध होती है ॥ ४३ ॥ वमन हुआ होय अथवा विरेचन हुआ होय तौ स्नान करि घी खाय और जो भोजनके पीछेही वमन करै तौ केवल आचमन करे स्नान तथा घृत भक्षण न करै और मैथुन करिके स्नान करै ॥ ४४ ॥

सुत्वा<sup>१३</sup> क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्टीर्व्योक्तवानृत्तानि च ॥ पीत्वापोऽ<sup>१३</sup>  
ध्येयमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि<sup>१४</sup> सन् ॥ ४५ ॥ एष शौचवि-  
धिः<sup>१५</sup> कृत्स्ना द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ॥ उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां  
धर्मान्निबोधत ॥ ४६ ॥

टीका—सोयके छीकके थूकके झूठबोलके और जल पीके जो वेद पढा चाहै तौ शुद्धभी होनेपर आचमन करै ॥ ४५ ॥ यह ब्राह्मण आदिवर्णोंके जन्ममरण आदिमें दशरात्र आदिकी सब आशौच विधि तथा सब द्रव्योंकी अर्थात् धातु वस्त्र जल आदिकी शुद्धि तुमसे कही अब स्त्रियोंके करनेयोग्य धर्मोंको सुनिये ॥ ४६ ॥

बाल्या वा युवत्या वा वृद्ध्या वापि योषिता ॥ न स्वातन्त्र्येण क-  
र्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि<sup>१६</sup> ४७ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राह-  
स्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तारि प्रेते न भजेत्स्त्री<sup>१७</sup> स्वतन्त्रताम् ४८ ॥

टीका—बालकपनमें तथा तरुण अवस्थामें अथवा वृद्ध अवस्थामें स्थित स्त्रीको घरमें भी कुछ काम स्वाधीन होके न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ बालकपनमें पिताके वशमें रहै और तरुण अवस्थामें पतिके आधीन रहै और पतिके मरनेपर पुत्रोंके और जो पुत्र न होय तौ उनके सपिंडोंके और सपिंडभी न होय तौ पिताके पक्षके और जो दोनो पक्ष न होय तौ जाति तथा राजा आदिके आधीन रहै कभी स्त्री स्वतंत्र न होय ॥ ४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि ने च्छे द्विरहमात्मनः ॥ एषां हि विरहेण  
स्त्री<sup>१८</sup> गृहे कुंयादुभे कुले<sup>१९</sup> ॥ ४९ ॥ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहका-  
र्येषु दक्षया ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ५० ॥

टीका—पिता पति तथा पुत्रोंसे स्त्री कभी पृथक् न होय क्योंकि इनसे अलग रहनेसे कुलटापनको प्राप्तहो पिता तथा पतिके दोनो कुलोंको निन्दित कर-

ती है ॥ ४९ ॥ तदा प्रसन्न मुख घरके कामोंमें चतुर और कमखरच करनेवाली स्त्रीको होना चाहिये ॥ १९० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ॥ तं शुश्रूषेत जीवन्तं  
संस्थितं च न लब्धयेत् ॥ ५१ ॥ मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां  
प्रजापतेः ॥ प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ५२ ॥

टीका—पिता अथवा पिताफी आज्ञासे उसका भाई जिसको देवै जीवते हुए उस पतिकी सेवा करै और मरे हुएका उल्लंघन न करै अर्थात् अन्य पतिकी इच्छा न करै ॥ ५१ ॥ विवाहमें स्वस्त्ययन कहिये शांतिके मंत्रोंका पढ़ना और ब्रह्मा-के लिये जो योग होताहै सो इन स्त्रियोंके मंगलके लिये होताहै अर्थात् इष्टकी प्राप्तिके निमित्त कर्म है और जो प्रथम प्रदान कहिये वाग्दानरूप कर्म है वही पतिके स्वामी होनेका कारणहै ॥ ५२ ॥

अनृतारुतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृतपतिः ॥ सुखस्य नित्यं दातेह  
परलोके च योषितः ॥ ५३ ॥ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिव  
र्जितः ॥ उपचर्यः स्त्रियां सार्ध्या संततं देववत्पतिः ॥ ५४ ॥

टीका—ऋतुकालमें अथवा ऋतुभिन्नकालमें मन्त्रसंस्कार करनेवाला पति इ-स लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवालाहै ॥ ५३ ॥ शील करि रहित होय अथवा दूसरी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला होय अथवा विद्या आदि गुणों करि हीन होय तिसपरभी पतिव्रता स्त्रीको पति देवताके समान सेवा करनेयोग्यहै ॥ ५४ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ॥ पतिं शुश्रूषते  
येन तेन स्वर्गे महीर्यते ॥ ५५ ॥ पाणिग्राहस्य सार्धं स्त्री जीव  
तो वा मृतस्य वा ॥ पतिलोकमभीप्सन्ती नाचं रेतिकचिदप्रियम् ५६

टीका—जैसे पतिकी किसी स्त्रीके रंजोधर्म आदिके योगसे उपस्थित न होनेपर दूसरी स्त्रीसे यज्ञकी सिद्धि होजाती है ऐसे स्त्रियोंकी भर्ताके बिना यज्ञ-सिद्धि नहीं होती है और भर्ताकी आज्ञाबिना व्रत तथा उपवासभी नहीं हैं कि-तु भर्ताकी सेवाहीसे स्त्री स्वर्गलोकमें पूजित होती है ॥ ५५ ॥ पतिकी सेवासे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोककी इच्छा करनेवाली पतिव्रतास्त्री जीवते हुए अथवा मरे हुए पतिका कुछभी अप्रिय न करै मरे हुएका अप्रिय व्यभिचारसे तथा क-हे हुए श्राद्धके न करनेसे होताहै ॥ ५६ ॥

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ न तु नामापि गृण्हीर्या  
त्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥५७॥ आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्र  
ह्मचारिणी ॥ यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥५८॥

टीका—पतिके मरनेपर व्यभिचारकी बुद्धिसे दूसरे पतिका नामभी न ले  
किन्तु पवित्र फूल मूल फलोंसे थोड़ा आहार करिके देहको क्षीण करे ॥ ५७ ॥  
क्षमायुक्त नियमवाली और पतिव्रताओंके उत्तम धर्मको चाहनेवाली तथा मधु  
मांस मैथुनके त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे शोभित मरण पर्यंत रहे और जो पुत्ररहितभी  
होय तो पुत्रके लिये परपुरुषकी सेवा न करे ॥ ५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥ दिवं गतानि विप्राणा  
मकृत्वा कुलसंततिम् ॥ ५९ ॥ मृते भर्तारि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये  
व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६०

टीका—बालकपनसे ब्रह्मचारी जिन्होंने विवाह नहीं किये ऐसे सनक वाल-  
स्त्रिय आदि हजारों ब्राह्मण कुलकी वृद्धिकेलिये संततिके उत्पन्न किये विना-  
भी स्वर्गको गये ॥ ५९ ॥ अच्छाई आचार जिसका ऐसी स्त्री भर्ताके मरनेपर  
परपुरुषसे मैथुनको न करके पुत्ररहितभी स्वर्गको जाती है जैसे वे सनक वाल-  
स्त्रिय पुत्र न होनेपरभी स्वर्गको गये ॥ ६० ॥

अपत्यलोभायां तु स्त्री भर्तारमतिवर्त्तते ॥ सेह निन्दामवाप्नो  
ति पतिं लोकाच्च हीयते ॥६१॥ नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्य  
न्यपरिग्रहे ॥ न द्वितीयश्च साध्वीनां कंचिद्भूतोपदिश्यते ॥६२॥

टीका—मेरे पुत्र उत्पन्न होय उससे मैं स्वर्गको जाउगी इस लोभसे जो स्त्री  
भर्ताका उल्लंघन करती है अर्थात् व्यभिचार करती है वह इस लोकमें निंदा-  
को प्राप्त होती है और उस पुत्रसे स्वर्गको नहीं प्राप्त होती है ॥ ६१ ॥ जिसे  
भर्तासे भिन्न पुरुषसे उत्पन्न वह संतति शास्त्रीय नहीं होती है दूसरी स्त्रीमें उत्प-  
न्न किई हुई प्रजा उत्पन्न करनेवालेकी नहीं होती है और अच्छे आचारवाली  
स्त्रियोंका शास्त्रमें कही दूसरा पति नहीं कहा है ॥ ६२ ॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ॥ निन्द्यैव सा भवेन्नो  
केपरपूर्वेति चोच्यते ॥६३॥ व्यभिचारार्तुं भर्तुः स्त्री लोके  
प्राप्नोति निन्द्यताम् ॥ शर्गालयोनिं प्राप्नोति पापरोगे च पीडयते ॥६४

टीका—अपलुष्ट कहिये क्षत्रिय आदि अपने पतिको छोड़कर उत्कृष्ट कहिये ब्राह्मण आदिका आश्रय लेती है वह लोकमें निन्दित होती है और इसका दूसरा भर्त्ता है ऐसे कही जाती है ॥ ६३ ॥ पराये पुरुषके साथ भोग करनेसे स्त्री लोकमें निंदाको प्राप्त होती है और मरकै सगाली (स्यारी) होती है और कुष्ठ आदि पापयोगों करि पीडित होती है ॥ ६४ ॥

पतिं या नोभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः सांघ्वीति चोच्यते ॥ ६५ ॥ अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ॥ ईहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ ६६ ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी और देहसे संयत हो पतिका उल्लंघन नहीं करती है वह भर्त्ताके साथ उत्पन्न किये हुए लोकोंको जाती है और सज्जनों करि पतिव्रताभी कहि जाती है ॥ ६५ ॥ इस स्त्रीधर्मके प्रकारसे कहे हुए आचारसे मन वाणी और कायसे सावधान स्त्री इस लोकमें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होती है और परलोकमें पतिके साथ प्राप्त किये हुए स्वर्ग आदिलोकोंको प्राप्त होती है ॥ ६६ ॥

एवंवृत्तां सर्वर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणोम् ॥ दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६७ ॥ भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ॥ पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ ६८ ॥

टीका—दाहके धर्मका जाननेवाला द्विजाति कहे हुए आचार करि युक्त आपसे पहले मरी हुई सर्वर्णा स्त्रीको श्रौत तथा स्मार्त्त अग्निसे और यज्ञपात्रोंसे दाह करै ॥ ६७ ॥ पहले मरी हुई भार्याके लिये अन्त्यकर्ममें दाहके निमित्त अग्नि देके गृहस्थाश्रमकी इच्छा करता हुआ पुत्रके होते वा अन होते दूसरा विवाह करै और श्रौत तथा स्मार्त्त अग्नियोंका आधान करै अर्थात् अग्निहोत्रको ग्रहण करै ॥ ६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्नं हापयेत् ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वै सेत् ॥ ६९ ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

टीका—इस तीसरे अध्यायमें कही हुई विधिसे प्रतिदिन पंचयज्ञोंको न छोड़ै और दूसरे आयुष्यके विवाह गृहस्थके कहे हुए करता हुआ घरमें बसे ॥ ६९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेकितायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ शौचविधिकथनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## अथ षष्ठोऽध्यायः

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नानं द्विजः ॥ वने वसेत्तु  
नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली  
पालितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

टीका—जिसका समावर्त्तन कहिये गृहस्थाश्रमका ग्रहण हुआ है ऐसा स्नातक  
द्विज कहे हुए प्रकारसे शास्त्रके अनुसार गृहस्थाश्रमको करिके निश्चयपूर्वक यथावि-  
धि आगे कहेहुए धर्मसे विशेष करि जितेन्द्रिय हो वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहण करै  
॥ १ ॥ गृहस्थ जब अपनी देहकी त्वचाको शिथिल देखै और वालोंको सपेद देखै  
और पुत्रके पुत्र उत्पन्न हुआ देखै तब विषयोंमें वैराग्य युक्त हो वानप्रस्थ आ-  
श्रमके लिये वनका आश्रय ले ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छेदम् ॥ पुत्रेषु भार्या निक्षि-  
प्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निर्प-  
रिच्छदम् ॥ ग्रामादररण्यं निःसृत्य निवसेन्निर्यतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

टीका—ग्राम्य जो धान जव आदि हैं तिनके आहारको और गौ घोडा श-  
य्या आसन आदि उपकरणोंको छोड़ि भार्याके रहते साथ जानेकी इच्छा न  
होय तौ पुत्रोंमें राखि और जो साथ जाना चाहै तौ उसके साथही वनको जा-  
य ॥ ३ ॥ श्रौत अग्निको तथा उसके उपकरण सुक् सुवा आदिको लेकर ग्रा-  
मसे वनमें निकल जितेन्द्रिय हो वनमें वसै ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेघैः शकमूलफलेन वा ॥ एतान्येव महायज्ञा  
त्रिर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ वसीत चर्म चिरं वा सायं स्नायात्प्रगे  
तथा ॥ जटाश्च विभृत्यान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥

टीका—मुनियोंके अन्न कहिये नानाप्रकारके नीवार आदि अन्नोंसे और वनमें  
उत्पन्न हुए पवित्र शाक मूल फलोंसे गृहस्थ कहे हुए इन पंचमहायज्ञोंको शास्त्र-  
के अनुसार करै ॥ ५ ॥ मृगचर्मको अथवा वस्त्रखंडको धारण करै और हारी-  
तने तौ बल्कल आदिकीभी आज्ञा दी है और सायंकाल तथा प्रातःकालः स्नान-  
करै और शिरमें जटा डाढी मूछ तथा नखोंको सदा धारण करै ॥ ६ ॥

यद्द्रव्यं स्यात्ततो दद्याद्द्वलिं भिक्षां च शर्तितः ॥ अम्मूलफलभि

क्षाभिर्ऋचयेदांश्रमागतान् ॥ ७ ॥ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्द्वान्तो  
मैत्रः समीहितः ॥ दार्ता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

टीका—जो भोजन करै उसमेंसे शक्तिके अनुसार बलि तथा भिक्षाको देवै और जल मूल फल तथा भिक्षा देकर आश्रममें आये हुए अभ्यागतोंका पूजन करै ॥ ७ ॥ वेदके अभ्यासमें सदा लगा रहै और शीत घाम आदिके दुःखका सहनेवाला और सर्वोंका उपकार करनेवाला और सावधान मन सदा देनेवाला और सदा दान लेनीकी इच्छाका न रखनेवाला और सब जीवोंपर दया करनेवाला होय ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौ  
र्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥ ऋक्षेष्टचाग्रयणं चैवं चातुर्मास्यानि चाह  
रेत् ॥ उत्तरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेवं च ॥ १० ॥

टीका—शास्त्रके अनुसार वैतानिक अग्निहोत्र करै और अमावास्या तथा पूर्णिमा इन पर्वोंमें श्रुति स्मृतिमें कहे हुए दर्शपौर्णमाससे यज्ञोंको न छोडै ॥ ९ ॥ नक्षत्रइष्टि तथा आग्रयण कहिये नवसस्यकी इष्टि और चातुर्मास्य तथा उत्तरायण और दाक्षियायन श्रौतकर्मोंको क्रमसे करै ॥ १० ॥

वासंतशरदैर्मध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥ पुरोडाशांश्चरुंश्चैवं वि  
धिर्विंश्रिर्वेत्पृथक् ॥ ११ ॥ देवताभ्यस्तु तद्धुत्वां वन्यं मेध्यतरं  
हविः ॥ शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

टीका—वसंतऋतुमें तथा शरद ऋतुमें उत्पन्न हुए और अपने हाथसे लाये हुए पवित्र मुनियोंके अन्नोंसे पुरोडाशचरुको शास्त्रके अनुसार उन २ यज्ञोंकी सिद्धिके लिये करै ॥ ११ ॥ उस वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदिसे बने हुए अत्यंततासे यज्ञके योग्य हविको देवताओंके लिये देकर बाकी आप स्वाय और अपने बनाये हुए स्वारिनीन आदि स्वाय ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ॥ मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्या  
त्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥ १३ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कव  
कानि च ॥ भूस्तृणं शिथुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

टीका—स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए शाकोंको और जंगली यज्ञियवृक्षोंके पुष्प, मूल फलोंको तथा हिंगोट आदिके फलोंसे निकले हुए स्नेहोंको स्वाय ॥ १३ ॥ शहत मांस तथा भूमिमें उत्पन्न हुए धरतीके फूलोंको और मालवदेशमें



भुस्तृणनाम शाकको तथा शिमुक कहिये संजनेको और श्लेष्मातक कहिये ल-  
भेरेके फलोंको वर्जित करै ॥ १४ ॥

त्यजेदार्धयुजे मांसि मुन्यैन्न पूर्वसंचितम् ॥ जीर्णानि चैव वांसांसि  
शाकमूलफलानि च ॥ १५ ॥ न फालकृष्टमश्रियादुत्तमैष्टमपि के  
नंचित् ॥ न ग्रामजातान्यातोऽपि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

टीका—पहले इकट्ठे किये हुए नीवार आदि धान्योंको और जीर्ण वस्त्रोंको  
और शाक मूल फलोंको आश्विनमासमें त्यागि दे ॥ १५ ॥ वनमेंभी हलसे जुते हुए  
खेतमें उत्पन्न स्वामी करके छोड़े हुएभी धान आदिको न खाय तैसेही ग्राममें विना  
जुती भूमिमेंभी उत्पन्न लता वृक्षोंके मूल फलोंको भूखाभी वानप्रस्थ न खाय ॥ १६ ॥

अग्निपकाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा । अश्मकुट्टो भवेद्वापि  
दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥ सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससं-  
चयिकोऽपि वा । षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥ १८ ॥

टीका—अग्निमें पका हुआ जंगली अन्न और कालमें पके हुए फल आदि अ-  
थवा ओखली मूसलको छोड़के पत्थरोंसे कूटिके कच्चाही खाय अथवा दांतही हैं  
ओखलीके स्थानमें जिसके ऐसा होय अर्थात् दांतोहीसे चाविले ॥ १७ ॥ एक  
दिनके खानेयोग्य अथवा एक मासके योग्य अथवा छः महीनेके योग्य अथवा  
एक वर्षके निर्वाह योग्य नीवार आदि इकट्ठा करै ॥ १८ ॥

नक्तं चात्रं समश्रियादिवा वाहृत्यशक्तिः । चतुर्थकालिको वा  
स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥ चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृ-  
ष्णे च वर्तयेत् ॥ पक्षान्तयोर्वाप्यश्रयोर्द्यवागूं कथितां संकृत् ॥ २० ॥

टीका—सामर्थ्यके अनुसार अन्नको लायके सायंकाल भोजन करै अथवा दिनहीमें  
अथवा चौथेकालमें भोजन करनेवाला होय सायंकाल प्रातःकालका भोजन मनुष्यों  
का देवताओंका बनाया हुआ है वहाँ एकदिन व्रत करिके दूसरे दिन संध्याको  
भोजन करै अथवा अष्टमकालिक कहिये तीनि राति व्रत करिके चौथेदिनकी  
रातिमें भोजन करै ॥ १९ ॥ कृष्णपक्षमें एक एक पंडि घटावै और शुक्लपक्षमें एक  
एक बढ़ावै इत्यादि ग्यारहें अध्यायमें वक्ष्यमाण चान्द्रायण व्रतोसे जीवै ॥ २० ॥

युष्मूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा । कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखा-  
नसमत्वे स्थितः ॥ २१ ॥ भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदौर्दिनम् ॥  
स्थानांसनाभ्यां विहरेत्सर्वनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥

टीका—अथवा कालमें पके हुए अग्निसे नहीं पके वृक्षसे आप गिरे हुए फलों-से जीवै और वैखानस जो वानप्रस्थहै उसके धर्मके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रके मतमें स्थित रहै ॥ २१ ॥ विना विछौने भूमिमें लोटता हुआ आवै जाय अथवा स्थान आसन आदिमें बैठा रहै और उठै अर्थात् घूमै आवश्यक भोजन आदि-को छोड़के यह नियमहै ऐसेही आगेभी जानिये अथवा पैरोंके अग्रभागसे दिन-भर खड़ा रहै और कुछकाल ठहरा रहै वा कुछकाल बैठा रहै बीचमें फिरै नहीं और सवनोमें अर्थात् संध्यासमय प्रातःकाल तथा मध्यान्हमें स्नान करै ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वर्भावकाशिकः॥ आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयस्तपः ॥ २३ ॥ उपस्पृशस्त्रिषवणं पितृन्देवांश्च तर्पयेत् ॥ तपश्चरंश्चोर्ग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

टीका—अपना तप बढ़ानेके लिये ग्रीष्म कहिये गरमीकी ऋतुमें चारो ओर रक्खी हुई चार अग्नियोंके और ऊपर सूर्यके तेजसे अपने शरीरको तपावै और वर्षाऋतुमें मेघवर्षनेके समय खुले स्थानमें छाता आदिके विना स्थित होय और हेमन्त ऋतुमें गीले वस्त्र पहिरै एकवर्षकी गर्मी जाड़ा चौमासा ये तीनि ऋतु करके यह एकवर्षका नियमहै ॥ २३ ॥ प्रातःकाल मध्यान्ह तथा सायंकालके तीनों स्नानोंमें देवता ऋषि और पितरोंके तर्पणको करता हुआ तथा औरभी पक्ष तथा मासके व्रत आदि तीव्रतप करता हुआ अपने शरीरको सुखावै ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि॥ अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धर्माशयः ॥ शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः २६ ॥

टीका—वैखानस शास्त्रके विधानसे भस्म आदिकों पीकर श्रौत अग्नियोंको अपने भीतर स्थापित करिकै लौकिक अग्नि और घरसे रहित हो मौनव्रतकी धारण करि फल मूल स्वायं नीवार आदि न स्वाय ॥ २५ ॥ सुखके प्रयोजनोंमें अर्थात् स्वादिष्ट फलोंके खाने और शीत तथा घामके बचानेमें उपाय न करै स्त्रीसे भोग न करै भूमिमें सोवै और रहनेके स्थानोंमें ममता न करै वृक्षोंके नीचे रहै ॥ २६ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्रीयादष्टौ ग्रासान्वने

वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

टीका—वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे प्राणोंकी रक्षाके योग्य भिक्षा लावै और उनके न होनेमें अन्य वनके वसनेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंसे लावै ॥ २७ ॥ ग्रामसे लाके ग्रामके अन्नके आठप्रास पत्तोंके दोनेमें अथवा सरवा आदिके खंडमें अथवा हाथोंहीमें लेकर वानप्रस्थ भोजन करै ॥ २८ ॥

एतांश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ॥ विविधांश्चोपनिषदी  
रार्त्तमसंसिद्धये श्रुतीः २९ ॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ॥  
विद्यातपोविवृद्धयर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥

टीका—वानप्रस्थ इन नियमोंका तथा वानप्रस्थके शास्त्रमें कहे हुए अन्य नि-  
ग्रहोंका अभ्यास करै और उपनिषदोंमें पढ़ी हुई ब्राह्मणका प्रतिपादन करनेवा-  
ली अनेक श्रुतियोंका अपनी ब्रह्मत्व सिद्धिके लिये ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास  
करै ॥ २९ ॥ जिस्से ये उपनिषद ऋषियों और सन्यासियों तथा वानप्रस्थों क-  
रिके अद्वैत ब्रह्मके ज्ञान तथा धर्मकी वृद्धिके लिये सेवन किये गये हैं तिस्से  
इनका सेवन करै ॥ ३० ॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्वगः ॥ आनिपाताच्छरीरस्य यु-  
क्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया  
तनुम् ॥ वीर्तशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

टीका—जिसकी चिकित्सा न हो सकती होय ऐसे रोग आदिके उत्पन्न हो-  
नेमें अपराजिता जो ईशान्यदिशा है तिसका आश्रय लेकै योगमें निष्ठ हो जल तथा  
पवनका आहार करता हुआ शरीरके गिरनेतक सीधा चलाजाय महाप्रस्थान-  
नाम यह मरण शास्त्रमें कहा है इस्से विधिके विना मरनेका निषेध है शास्त्रमें क  
हे हुए का नहीं ॥ ३१ ॥ इन पहले कहे हुए अनुष्ठानोंमेंसे किसीएकसे शरीरको  
छोड़ि दुःखके भयसे रहित हो ब्रह्मलोकमें पूजाकी प्राप्त होता है अर्थात् मो-  
क्ष पाता है ॥ ३२ ॥

वनेषु च विद्वत्सैव तृतीयं भागमायुषः ॥ चतुर्थमायुषो भागं त्य-  
क्त्वा संगोन्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥ आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जि-  
तेन्द्रियः ॥ भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

टीका—जो मरता नहीं है उसके लिये कहते इस भांति वनमें विहार करि-

कै अर्थात् नाना प्रकारके कठिन तपोंके करनेसे विषयोंके रागकी शान्तिके लिये आयुके तीसरे भागमें कुछ कालतक वानप्रस्थोंके आश्रममें रहिकै . आयुके चौथे भागमें अर्थात् बाकी आयुके समयमें सब भांतिविषयोंके संगको छोड़ि संन्यासाश्रमको धारण करै ॥ ३३ ॥ पहले पहले आश्रमसे आगे आगेके आश्रममें जायकै अर्थात् ब्रह्मचर्यसे गृहस्थाश्रममें और गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थाश्रममें जायकै शक्तिके अनुसार गये हुए आश्रमोंका किया है होम जिसने ऐसा भिक्षा तथा बलिदानके बहुत दिनोंतक करनेसे थका हुआ संन्यासको करता हुआ परलोकमें मोक्षके लाभसे ब्रह्मभूत बड़ीभारी ऋद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यर्थः ॥ ३५ ॥ अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ॥ इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—आगेके श्लोकमें कहे हुए तीन ऋणोंको दूर करिकै ब्राह्मण मोक्षके अंगरूप संन्यासमें मनको लगावै उन ऋणोंके विना दूर किये जो मोक्ष कहिये चौथे आश्रमको धारण करताहै वह नरकमें जाताहै ॥ ३५ ॥ उन्ही ऋणोंको दिखाते हैं उत्पन्न होता हुआ ब्राह्मण तीन ऋणोंसे ऋणी होताहै अर्थात् यज्ञसे देवताओंका और संततितसे पितरोंका तथा वेदके पढ़नेसे ऋषियोंका यह श्रुतिमें लिखाहै इसीसे शास्त्रके अनुसार वेदोंको पढिकै और पवोंमें गमन न करना इत्यादिक धर्मोंसे पुत्रोंको उत्पन्न करिकै और सामर्थ्यके अनुसार ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञोंकोभी करिकै मोक्षके अंगरूप चौथे आश्रममें मनको लगावै ॥ ३६ ॥

अधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तर्था सुतान् ॥ अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यर्थः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्नीं समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्दृहात् ॥ ३८ ॥

टीका—द्विजवेदोंको न पढकै और पुत्रोंको न उत्पन्न करिकै और यज्ञोंसे यजन न करिकै मोक्षको चाहता हुआ नरकमें जाताहै ॥ ३७ ॥ यजुर्वेदके उपाख्यान ग्रंथोंमें कहा हुआ और सर्वस्वहै दक्षिणा जिसमें और प्रजापति जिसका देवता ऐसे यज्ञको करिकै उसकी कही हुई विधिसे अपनेमें स्थापित करिकै वानप्रस्थाश्रमको करिहीकै चौथे आश्रममें वास करै ॥ ३८ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ॥ तस्य तेजोमया लोकां भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥ यस्मादर्णवपि भूतानां द्विजान्नो

त्पद्यते भयम् ॥ तस्य देहाद्रिमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ४० ॥

टीका—जो सब स्थावरजंगम प्राणियोंको अभय देकर गृहस्थाश्रमसे संन्यासको लेताहै ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदमें नेष्टावाले उस पुरुषके तेजसे सूर्यआदिके प्रकाशरहित हिरण्यगर्भ आदिकोंके लोक प्रकाशित होते हैं उनको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ जिस द्विजसे भूतोको थोड़ाभी भय नहीं होताहै उसके वर्तमानदेहके नाश होनेपर किसीसेभी भय नहीं होताहै ॥ ४० ॥

आंगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥ समुपोटेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्धयर्थमसहायवान् ॥ सिद्धिमेकस्य संपश्यन्नं जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

टीका—घरसे निकला हुआ पवित्र दंड कर्मडलु आदि करि युक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामोंमें अर्थात् किसीकरि पहुँचाये हुए स्वादिष्ट अन्नआदिमें इच्छारहित हो संन्यासधारण करै ॥ ४१ ॥ सब संगरहित एक पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है इसवातको अकेलाही सदा मोक्षके लिये विचरै एकही इसके कहनेसे पहले पहिचाने हुए पुत्र आदिका त्याग कहा गया और असहायवान् कहिये सहज्यक कोई न होय जो एककी विचरताहै वह किसीको नहीं छोड़ताहै और न किसीके छोड़नेका दुःख पाताहै न किसी करि वह छोड़ा जाता है और न कोई इस करके छोड़नेके दुःखको अनुभवकराया जाताहै तिससे सर्वत्र ममत्तरहित सुखसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्भारमन्त्रार्थमाश्रयेत् ॥ उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥ कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ४४ ॥

टीका—लौकिक अग्निके छूनेसे तथा घरसँ रहित और उपेक्षाकरे कहिये शरीरमें रोग आदिके उत्पन्न होनेपर उसके दूरि होनेका उपाय न करै और असंकुसुक कहिये स्थिरबुद्धि रहै और मुनि कहिये मौनी हो भाव जो ब्रह्महै तिसमें मनको एकाग्र लगाके वनमें दिनराति बसता हुआ केवलभिक्षाहीके लिये ग्राममें आवै ॥ ४३ ॥ मट्टीका खपरा आदि भिक्षाका पात्र और बसनेके लिये वृक्षोंके मूल और मोटा फटा वस्त्र कहिये कोपीन कंथा आदि और सबोंमें ब्रह्मबुद्धि होनेसे शत्रु मित्रका न होना यह मुक्तिका साधन होनेसे मुक्तका चिन्हहै ४४ ॥

नाभिर्नन्देत मरणं नाभिर्नन्देत जी वितम् ॥ कालमेव प्रतीक्षेत नि  
दे शं भूतको यथा ॥ ४५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबे  
त् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

टीका—जीवने और मरनेकी इच्छा न करै किंतु अपने कर्मके आधीन मर-  
ण जो कालहै तिसकी प्रतीक्षा करै जैसे सेवक अपने सेवनकालके शोधनेकी प्र-  
तीक्षा करताहै ॥ ४५ ॥ बाल तथा हाड आदि बचानेके लिये आखोंसे देखकर  
भूमिमें पैर रक्खै और वस्त्रसे छानिकै जल पीवै तथा सत्यसे पवित्र वाणी बोलै  
और निषिद्ध संकल्पोंसे रहित मनसे सदा पवित्रात्मा होय ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितीक्षेत नोवमन्येत कंचनान्नं चै मं देहमाश्रित्य वै  
रं कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥ क्रुध्यन्तं न प्रतिकुद्ध्येदाकुण्ठः कुश-  
लं वदेत् ॥ सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

टीका—दूसरेकी कही कठोर बातोंको सहिले किसीका अपमान न करै औ-  
र रोग आदिकोंके स्थानमें इस चंचल देहका आश्रय लेकर इसके लिये किसीसे  
वैर न करै ॥ ४७ ॥ क्रोध करनेवालेके ऊपर क्रोध न करै और दूसरा निंदा क-  
रै तो मधुर वाणी बोलै आपभी निंदा करै और सप्तद्वारावकीर्णां अर्थात् चक्षु  
आदि पांच बुद्धिद्रिय और मन तथा बुद्धि इन सप्तों करिकै ग्रहण किये हुए प-  
दार्थोंके मध्ये कुछ वचन न कहै किंतु ब्राह्मही विषयक कहै अनृत कहिये नाश-  
होनेवाले कार्योंके मध्ये वाणीको न उच्चारण करै किंतु अविनाशी ब्रह्मके मध्ये  
प्रणव तथा उपनिषद्रूप वाणीका उच्चारण करै ॥ ४८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥ आत्मनैव सहायेन सु-  
खार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्य-  
या ॥ नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

टीका—सदा ब्रह्मके ध्यानमें लगा हुआ और स्वस्तिक आदियोगके आस-  
नमें बैठा हुआ दंड कमंडलु आदिमें भी विशेष करि अपेक्षा रहित और निरामिष  
इच्छारहित सहायसे मोक्षके मुर चाहनेवाला  
संसारमें विचरै ॥ ४९ ॥ भूकंप आदि उत्पाताका और नेत्रोंके फटकने आदि  
निमित्तोंके और अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तथा सामुद्रिकसे हाथोंकी रेखाओंके  
फल कहनेसे और नीतिमार्गके उपदेशसे और शास्त्रका अर्थ कहनेसे कभी  
भिक्षा पानेकी इच्छा न करै ॥ ५० ॥

नत ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥ अंकीर्णं भिक्षुकैर्वा  
न्यैरगौरमुपसंजते ॥५१॥ कृतकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुं  
मुम्भवान् ॥ विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

टीका—वानप्रस्थों करिकै तथा अन्य खानेवाले ब्राह्मणों करिकै और पक्षि-  
यों तथा कुत्तों करि युक्त घरमें भिक्षाके लिये न जाय ॥५१॥ केश नख तथा डा-  
डी मूछोंको रखाये हुये और भिक्षापात्र दंड तथा कमंडलुको लिये हुए सब  
प्राणियोंको पीडा न देता हुआ सदा विचरे ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्यस्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामर्द्धिः स्मृतं  
शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥५३॥ अंलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदं  
लं तथा ॥ एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

टीका—सुवर्ण आदि धातुओंको छोड़के छेदों करि रहित संन्यासीके भि-  
क्षापात्र होंय उन पात्रोंकी यज्ञमें चमसोंके समान जलसे शुद्धि होती है ॥ ५३ ॥  
तुंबी काठ मृत्तिका तथा वांस आदिके खंड सेवने हुए संन्यासियोंके भिक्षापात्र  
होते हैं यह स्वायंभू मनुने कहा है ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद्भिक्षं न प्रसंजते विस्तरे ॥ भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्वि  
षयेष्वपि संजति ॥५५॥ विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥  
वृत्ते शरीरसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका—एकवार प्राणधारणके लिये भिक्षा करै अधिक न करै क्योंकि ब-  
हुत भिक्षाके भोजन करनेवाले यतीकी प्रधान धातुके बढनेसे स्त्री आदि विषयों-  
की इच्छा होगी ॥५५॥ रसोईका धुआँ दूर होनेपर और मूसलके कूटनेका श-  
ब्द बंद होनेपर तथा रसोईकी आगि बुझि जानेपर और गृहस्थतक सर्वोंके भो-  
जन करलेनेपर त्याग किये हुए सरीवोंमें यती सदा भिक्षाको करै ॥ ५६ ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैवं न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः  
स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥५७॥ अभिपूजितलाभास्तु जुगुप्सते  
व सर्वशः ॥ अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥

टीका—भिक्षा आदिके न मिलनेमें दुःखी न होय और मिलनेमें सुखी न होय प्रा-  
णोंके निवाह योग्य भोजन किया करै और दंड कमंडलु आदि मात्राओंमेंभी यह दु-

राहे इसको छोड़ताहों यह अच्छाहै इसको लेताहों ऐसी बातोंको छोड़दे ॥ १७ ॥  
आदरसमेत भिक्षाके लाभकी सदा निंदा करै अर्थात् ग्रहण न करै जिस्से सत्कार  
पूर्वक भिक्षा लेनेसे देनेवालेमें स्नेह ममता आदिसे आसन्नमुक्तिभी यति जन्मरू-  
प बंधनको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥ ह्रियैर्माणानि विषयैरि-  
न्द्रियाणि निर्वर्त्तयेत् ॥ ५९ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ॥  
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

टीका—थोड़े आहारके खानेसे और एकांत स्थानमें रहनेसे रूप आदि वि-  
शेषों करि खींची गई इंद्रियोंको निवृत्त करै अर्थात् विषयोंसे हटावै ॥ ५९ ॥  
इंद्रियोंके रोकनेसे और रागद्वेषके दूरि होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे  
मोक्षके योग्य होताहै ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥ निरये चैव पतनं यातनाश्च  
यर्मक्षये ॥ ६१ ॥ विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तर्थाप्रियैः ॥ जरया  
चाभिर्भवं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुएके न करने और निंदितके करनेरूप कर्मके दोषसे उत्पन्न हुई  
मनुष्योंकी पशु आदि योनिकी प्राप्तिका और नरकमें गिरनेका और यमलो-  
कमें स्थितका तीव्र खड़्गसे काटने आदिसे उत्पन्न श्रुति पुराण आदिमें कही  
हुई तीव्र पीडाओंका चिंतवन करै ॥ ६१ ॥ प्यारे पुत्र आदिके वियोगको और अ-  
निष्ट कहिये न चाहे हुए हिंसक आदिके मिलनेको और बुढापे कारि दवाय लेने-  
को तथा रोग आदिसे पीडित होने आदिको कर्मके दोषोंसे उत्पन्न चिंतवन करै ॥ ६२ ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भं च संभवम् ॥ योनिर्कोटिसहस्रेषु  
मृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥ अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरी-  
रिणाम् ॥ धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥

टीका—इसदेहसे जीवात्माका निकलना अर्थात् मर्मके भेदन करनेवाले बड़े  
रोगों करि धिरे हुए और कफ आदि दोषों करि धिरे हुए कंठसे बड़ी व्यथा-  
का तथा गर्भमें उत्पन्न होनेके बड़े दुःखयुक्त कुत्ता स्यार आदिकी नीच करोड़ों  
योनियोंमें जानेको अपने कर्मके बंधन चिंतवन करै ॥ ६३ ॥ जीवात्माओंको  
अधर्मकारण दुःख होनेका और धर्म जिस कारण ऐसा अर्थ ब्रह्मका साक्षात् हो-  
ना तिस्से उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्मसुखके मिलनेका चिंतवन करै ॥ ६४ ॥



सूक्ष्मतां चान्वे<sup>१</sup>क्षेत यो<sup>२</sup>गेन परमात्मनः ॥ देहेषु च संमुत्पत्तिमु  
त्त मे<sup>३</sup>ष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥ दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ॥  
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

टीका—योगसे अर्थात् विषयोंसे चित्तकी वृत्तिके रोकनेसे परमात्माके स्थूल  
शरीर आदिकी अपेक्षासे सबके अंतर्ग्रामी भावसे सूक्ष्मता कहिये अवयव रहित  
होनेका उसके त्यागसे ऊचनीच देव पशु आदि शरीरोंमें जीवोंके शुभ अशुभ फल  
भोगनेके लिये उत्पन्न होनेका चिंतवन करै ॥ ६५ ॥ जिस किसी आश्रममें स्थित  
उस आश्रमके विरुद्ध आचारसे दूषित होनेपरभी और आश्रमके चिन्होंसे रहित  
भी सब भूतोंमें ब्रह्मबुद्धिसे समान दृष्टि होता हुआ धर्मको करै दंड आदि चि-  
न्होंका धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु शास्त्रमें कहे हुएका करना  
यह धर्मकी मुख्यता दिखानेके लिये कहा है कुछ दंड आदि चिन्होंके त्यागके  
लिये नहीं कहा है ॥ ६६ ॥

फलं कर्तकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ॥ न नामग्रहणादेव तस्य  
वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥ संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावर्हनि वा सदा ॥  
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

टीका—यद्यपि रीठके वृक्षका फल जलका निर्मल करनेवाला है तबभी उसके  
नाम लेनेसे जल निर्मल नहीं होता है किंतु फलके डारनेसे ऐसेही केवल चिन्हधा-  
रण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु कहे हुएका करना ॥ ६७ ॥ शरीर-  
को दुःख होनेपरभी छोटी चीटी आदिकी रक्षाके लिये रातिमें अथवा दिनमें स-  
दा भूमिको देखकै विचरै ॥ ६८ ॥

अह्ना रात्र्या च या जन्तून्दिनस्त्यजानतो यतिः ॥ तेषां स्नात्वा विशु  
द्धयर्थं प्राणायामान्पठोचरेत् ॥ ६९ ॥ प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयो  
ऽपि विधिवत्कृताः ॥ व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ७० ॥

टीका—यती रातिदिनमें अज्ञानसे जिन प्राणियोंको मारता है उनके मारनेसे  
उत्पन्न पाप दूर होनेके लिये स्नान करिकै छः प्राणायामोंको करै ॥ ६९ ॥ सा-  
त व्याहृति और प्रणव करिकै युक्त पूरक कुंभक रेचक विधिसे किये गये तीनि  
भी प्राणायाम ब्राह्मणका श्रेष्ठ तप जाना चाहिये ॥ ७० ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलः ॥ तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥ प्राणायामैर्देहदोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ७२

टीका—जैसे घरियामें रखकै तपानेसे सुवर्ण आदि सब धातुओंके मल जल जाते हैं ऐसेही प्राणायामके करनेसे इंद्रियोंके सब दोष भस्म हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ प्राणायामोंसे राग आदि दोषोंको जलावै और अपेक्षित द्वेषमें परब्रह्म आदिमें मनकी धारणसे पापका नाश करै और प्रत्याहार कहिये विषयोंसे इंद्रियोंके स्वीचनेसे विषयोंके योगका निवारण करै और ब्रह्मके ध्यानसे जो ईश्वर विषयक नहीं हैं ऐसे क्रोध लोभ अस्त्रया आदि गुणोंको निवारण करै ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयैर्मकृतैः त्मभिः ॥ ध्यानयोगेन संपश्येद्वृत्तिं मस्यान्तरात्मनः ॥ ७३ ॥ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निर्वध्यते ॥ दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

टीका—शास्त्रसे जिनका अंतःकरण संस्कारयुक्त नहीं है ऐसे पुरुषों करि दुःखसे जाननेयोग्य ऐसी इस जीवकी ऊच नीच देव पशु आदिमें जन्मकी प्राप्ति-को ध्यानके योगसे कारणसहित भलीभांति जानै तिसपीछे ब्रह्मज्ञानमें निष्ठ हो-य ॥ ७३ ॥ तत्त्वसे ब्रह्मका साक्षात्करनेवाला पुरुष कर्मोंसे नहीं बंधता है और कर्म उसके फिर जन्मके लिये नहीं समर्थ होते हैं कारण यह है कि पहले इकठे किये हुए पाप पुण्यका ब्रह्मज्ञानसे नाश होजाताहै औ दर्शन जो ब्रह्मका साक्षात्कर-ना है तिस्से रहित संसार कहिये जन्ममरणके प्रबंधको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

अहिंसयेन्द्रियांसंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ॥ तपसंश्चरणैश्चोपैः सार्धं यन्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥ अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥ चर्मावर्नद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

टीका—निषिद्ध हिंसाके बचानेसे और विषयोंके संगसे इंद्रियोंके रोकनेसे और वेदमें कहे हुए नित्य कर्मोंके करनेसे और तप जे हैं उपवास चांद्रायण आदि ति-नके करनेसे इस लोकमें उसके पद अर्थात् ब्रह्ममें अत्यंत लयको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ हड्डीही जिसमें थूनीके समानहैं और स्नायुरूपी रस्सियो से बंधा हुआ है मांस तथा रुधिरसे लिपा हुआ है और चर्मसे मढा हुआ मूत्र तथा विष्टासे भ-रा हुआहै इस्से दुर्गन्धयुक्त है ॥ ७६ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यं च भू-  
तावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुं  
निर्यथा ॥ तथा त्यजेन्निमं देहं कृच्छ्राद्वाहाद्विमुच्यते ॥ ७८ ॥

टीका—बुढ़ापा तथा शोक करि युक्त और नानाप्रकारके रोगोंका स्थान और आतुर कहिये क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिमें घबरानेवाला तथा रजोगुण करिके युक्त और अनित्य कहिये नाश होनेवाले और पृथिवी आदि पांच भूतोंसे बने हुए इस आवास कहिये जीवके घररूप देहको छोड़ दे जैसे फिर देह न धारण करनेपरै सो करै ॥ ७७ ॥ जो कर्माधीन देहके पातको देखताहै वह नदीके किनारेको जैसे वृक्ष छोड़ देताहै अर्थात् अपने गिरनेको नही जानता हुआ नदीके वेग करि गिराया जाताहै तैसे देहको छोड़ता हुआ ज्ञान तथा कर्मकी अधिकतासे भीष्म आदिकोंके समान स्वाधीनमृत्यु हो वह जैसे पक्षी अपनी इच्छा से वृक्षको छोड़ि देताहै तैसे इस देहको छोड़ता हुआ ग्राहसे मानो ऐसे संसारके कष्टसे छूटि जाता है ॥ ७८ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ विमृज्य ध्यानयोगेन  
ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ७९ ॥ यदा भावेन भवति सर्वभावेषु  
निःस्पृहः ॥ तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्यर्चे ह च शाश्वतम् ॥ ८० ॥

टीका—ब्रह्मके जानने रूप आपने प्रियके हित करनेवालोंमें सुकृतको और अप्रिय कहिये अनहित करनेवालोंमें दुष्कृत जो पापहै ताहि राखिके ध्यानके योगसे नित्य ब्रह्ममें लीन होताहै ॥ ७९ ॥ जब परमार्थसे विषयोंमें दोषोंकी भावना करिके सब विषयोंमें अभिलाष रहित होताहै तब इस लोकमें संतोषसे उत्पन्न सुख होताहै और परलोकमें अविनाशी मोक्ष सुखको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥

अनेन विधिना सर्वास्त्यक्त्वा संगान् शनैःशनैः ॥ सर्वद्वन्द्ववि-  
निर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥ ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिज्ञ-  
ब्धितम् ॥ न ह्यनर्घ्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्रुते ॥ ८२ ॥

टीका—पुत्र स्त्री वित्त आदिमें ममत्तरूप सब संगोको छोड़कै द्वंद्व जे मानस अपमान आदिहै तिनसे छूटि करि इस कहे हुए ज्ञानकर्मके करनेसे ब्रह्ममें आत्यंतिक लयको प्राप्त होताहै अर्थात् तद्रूप होजाताहै ॥ ८१ ॥ जो यह पुत्र पौत्र आदिकी ममताका त्याग और मान अपमान आदिकी हानि कही सो सब यह

ध्यानिक है अर्थात् आत्माका परमात्मारूपसे ध्यान करने करिकै होता है जब आत्माको परमात्मा यह जानता है तब सब सत्त्वोंसे विशेष नहीं होता है अर्थात् उसका कहीं ममत्व और मान अपमान आदि नहीं होता है और जो जीवका परमात्मापन कहा है उसको जो नहीं जानता है वह ममताका त्याग तथा मान अपमान आदिकी हानिको और मोक्षरूप ध्यानके फलको नहीं प्राप्त होता है ॥८२॥

अधिर्यज्ञं ब्रह्म जपेदांश्चिदैर्विकमेव च ॥ आर्ध्यात्मिकं च सततं वे-  
दान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥ इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजान-  
ताम् ॥ इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

टीका—यज्ञके मध्ये जो वेद प्रवृत्त है तथा देवताओंके मध्ये जो प्रवृत्त है तथा जीवके मध्ये जो वेदांतमें सत्यज्ञानमन्तर्ब्रह्म इत्यादिक ब्रह्मके प्रतिपादन करने-वाले वेद है उसको सदा जपे ॥ ८३ ॥ यह वेदनाम ब्रह्म उसका अर्थ न जानने-वालोंकी भी शरण कहिये गति है अर्थात् पाठमात्रभी पापके क्षयका कारण है तौ स्वर्ग तथा मोक्षके चाहनेवाले जो उसके अर्थके ज्ञाता है उन्नता उनके उपायका उपदेश करने और प्राप्ति का कारण होनेसे यही शरण कहिये गति है ॥ ८४ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ॥ स विधूयेह पाप्मानं प्ररं ब्र-  
ह्माधिगच्छति ॥ ८५ ॥ एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मना  
म् ॥ वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥ ८६ ॥

टीका—इस क्रमसे कहे हुए अनुष्ठानसे जो संन्यासको धारण करता है वह इस लोकमें पापको छोड़कर परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस है संज्ञा जिनकी ऐसे चारौ यती कहिये संन्यासियोंका साधारण धर्म तुमसे कहा अब यतिविशेष जे कुटीचकनाम है जो वेदमें कहे हुए अग्निहोत्र आदि कर्मके त्यागी हैं उनके मुख्य वक्ष्यमाण कर्मसंबंधको सुनिये ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एते गृहस्थप्रभवाश्च  
त्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८७ ॥ सर्वेऽपि क्रमशस्त्वे ते यथाशास्त्रं निषे-  
वित्ताः ॥ यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

टीका—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये पृथक् आश्रम कहे ये चारों गृहस्थसे उत्पन्न हैं ॥ ८७ ॥ शास्त्रके अनुसार सेवन किये हुए ये चारों आश्रम कहे हुएके अनुसार करनेवाले ब्राह्मणको मोक्षरूप गतिको पहुंचाते हैं ॥ ८८ ॥

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः॥ गृहस्थ उच्यते  
 त्री नैतान्निर्भति हि ॥ ८९ ॥ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति  
 संस्थितिम् ॥ तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ९० ॥

टीका—इन सब ब्रह्मचारी आदिकोंमें गृहस्थ अग्रिहोत्र आदिके करनेसे मनु आदिकोंने श्रेष्ठ कहा है जिसे यह गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यती इन तीनोंको भिक्षा देनेसे पालन करता है इससेभी यह श्रेष्ठ है ॥ ८९ ॥ जैसे सब नदीनदगंगाशोण आदि समुद्रमें अवस्थितिको प्राप्त होते हैं ऐसे गृहस्थसे अन्य सब आश्रमी गृहस्थके आधीन जीवन होनेसे उसके समीप अवस्थितिको प्राप्त होते हैं ९०

चतुर्भिरपि चैतैर्नित्यमाश्रमभिर्द्विजैः दशलक्षणको धर्मः से  
 विर्व्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय  
 निग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दश कं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

टीका—इन ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमी द्विजो करिके दशप्रकारका है स्वरूप जिसका ऐसा धर्म यत्नसे सदा करने योग्य है ॥ ९१ ॥ धृति कहिये संतोष और क्षमा कहिये दूसरे करि अपकार करनेपरभी उसका बदलेका अपकारन करना और दम कहिये विकारके कारण विषयके निकट होनेपरभी मनका नहीं विगडना और अस्तेय कहिये अन्यायसे पराये धनका न लेना और शौच कहिये मिट्टी तथा जलसे देहका शुद्ध करना और इन्द्रिय निग्रह कहिये विषयोंसे चक्षु आदिका रोकना और धी कहिये शास्त्र आदिके तत्वका ज्ञान और विद्या कहिये आत्मज्ञान और सत्य कहिये यथार्थ कहना और अक्रोध कहिये क्रोधका कारण होनेपरभी क्रोध न होना यह दशप्रकारका धर्मका स्वरूप है ॥ ९२ ॥

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीर्यते ॥ अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥ दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ॥ वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनुत्तमं द्विजः ॥ ९४ ॥

टीका—जो ब्राह्मण ये दशप्रकारके धर्मस्वरूपोंको पढ़ते हैं और पढ़कर आत्मज्ञानकी सहायतासे अनुष्ठान करते हैं वे ब्रह्मज्ञानके उत्कर्षसे मोक्षरूप परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ कहे हैं लक्षण जिसके ऐसे दशप्रकारके धर्मको सावधान मनसे करता हुआ गृहस्थकी अवस्थामें उपनिषद् आदिके अर्थके अध्ययन धर्मोंको गुरुके मुखसे सुनिकै देव आदि तीनों ऋणोंका शोधन करि संन्यासको करै ॥ ९४ ॥

संन्यस्य सर्वकर्मणि कर्मदोषानपानुर्दन् ॥ नियतो वेदमभ्यस्य पु-  
त्रैश्वर्यं सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥ एवं संन्यस्य कर्मणि स्वकार्यपरमोऽ-  
स्पृहः ॥ संन्यासेनापहत्यैनः प्रीप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

टीका—गृहस्थ करि करनेयोग्य अग्निहोत्र आदिकर्मोंको छोडकर विना जा-  
ने हुए जीवोंके वध आदिसे उत्पन्न हुए पापोंको प्राणायाम आदिसे नाश करता  
हुआ जितेंद्रिय हो उपनिषदोंका ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करि पुत्रके घरमें पु-  
त्र करि दिये हुए भोजन वस्त्रसे जीविकाकी चित्तरहित हो सुखसे बैसे कुटीचर-  
का यही मुख्य धर्म कहा है ॥ ९५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे वर्त्तमान अग्निहोत्र  
आदि गृहस्थके कर्मोंका त्याग करि आत्माका साक्षात्कार स्वरूप कार्य है प्रधान  
जिसके ऐसा और बंधका कारण होनेसे स्वर्ग आदिकीभी इच्छारहित संन्यास धर्म-  
से पापोंको नाश करि ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होता है ९६

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥

पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्म निबोधता ॥ ९७ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

टीका—ऋषियोंको संबोधन देकर भृगुजी कहते हैं कि तुमसे यह ब्राह्मणका  
क्रियाकलाप धर्म कहा उसीका ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ आदिके भेदसे पर-  
लोकमें अक्षय चारिप्रकारका फल कहा अब राजसंबंधी धर्मोंको सुनिये इस  
श्लोकमें तौ ब्राह्मणको चारो आश्रमोंका उपदेश होनेसे और ब्राह्मणः प्रव्रजेत्  
यह पहले कहा है तिसरे ब्राह्मणहीका संन्यासमें अधिकार है ॥ ९७ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-

यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## अथ सप्तमोऽध्यायः ।

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ॥ संभवश्च यथा तस्य  
सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा-  
विधि ॥ सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

टीका—राजा शब्द यहां क्षत्रिय जातिहीका कहनेवाला नहीं है किंतु जिस-  
का राज्यमें अभिषेक हुआ है और जो पुरका पालन करनेवाला है उसका वाची

है इसीसे यथावृत्तोभवेन्नृपः अर्थात् जैसे आचारवाला राजा होय उसके करनेयोग्य धर्मोंको कहौंगा और जिसप्रकारसे राजाको प्रभुने उत्पन्न किया इत्यादिसे उसकी उत्पत्ति और जैसे इष्ट अष्ट फलकी संपत्ति है उस सबको कहौंगा॥१॥  
ब्रह्म जो वेद है तिसकी प्राप्तिके लिये शास्त्रके अनुसार उपनयन संस्कारको प्राप्त जो क्षत्रियहै उसको शास्त्रके अनुसार अपने सब देशकी रक्षा नियमसे करनी चाहिये इससे यह दिखाया गया कि क्षत्रियही मुख्य राज्यका अधिकारी है॥२॥

— अराजके हि लोके ऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ॥ रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानममृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ॥ चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निहृत्य शाश्वतीः ॥ ४ ॥

टीका—जिस्से राजा रहित जगतको भूयसे सब ओरोंमे चलायमान होनेपर इस सब चर अचरकी रक्षाके लिये राजाको उत्पन्न किया तिस्से राजाको रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ इंद्र पवन यम सूर्य अग्नि वरुण चंद्र और कुबेर-इन सबोंके सारभूत अंशोंको खींचिकरि प्रभुने राजाको बनाया ॥ ४ ॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥ तस्मादभिर्भवत्येष सर्वभूतानि तेजसां ॥ ५ ॥ तर्पत्यादित्यवज्जैष चक्षुषि च मनीसि च ॥ न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभि वीक्षितुम् ॥ ६ ॥

टीका—जिस्से इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओंके अंशसे राजा उत्पन्न किया गया है तिस्सेही राजा सब प्राणियोंसे पराक्रममें अधिक होताहै ॥ ५ ॥ यह राजा अपने तेजसे सूर्यके समान देखनेवालोंकी आखों और मनको तपाताहै पृथिवीमें इस राजाको कोई सामनेसे नहीं देखि सकताहै ॥ ६ ॥

सो ऽग्निर्भवाति वायुश्च सो ऽर्कः सोमः संधर्मराट् ॥ स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥ बालोऽपि नैवमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥ महती देवता ह्येषा नैरूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

टीका—ऐसे अग्नि आदि पहले कहे हुए देवताओंके अंशसे उत्पन्न होने और उनका कर्म करनेसे वह राजा शक्तिकी अधिकतासे अग्नि आदिका रूप होताहै ॥ ७ ॥ मनुष्य ऐसा समझिके बालकभी राजा अपमानके योग्य नहीं है जिस्से यह कोई बड़ी देवताहै मनुष्यके रूपसे स्थितहै ॥ ८ ॥

एकमेव दहत्यग्निं नरं दुरुपसर्पिणम् ॥ कुलं दहति राजाग्निः संप-

शुद्रव्यसंचर्यम् ॥ ९ ॥ कार्यं सोऽवेक्ष्यं शक्तिं च देशकालौ च त-  
त्त्वतः ॥ कुरुते धर्मसिद्धयर्थं विश्वं रूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

टीका—जो असावधानीसे अग्निके समीप जाताहै वह दुरूपसर्पी कहाताहै उस एकको अग्नि जलाताहै उसके पुत्र आदिको नही और क्रोधित हुआ राजा रूपं अग्नि पुत्र स्त्री भाई आदि सब कुलको और गौ घोडा आदिको सुवर्ण आदिधनसंचयसमेत दोषीको मारताहै ॥ ९ ॥ वह राज्ञ प्रयोजनकी अपेक्षासे देशकाल तथा अपनी शक्तिको देखि कार्यकी, सिद्धिके लिये तत्त्वसे बारंबार बहुतसे रूपोंको करताहै और शक्तिके न होनेपर क्षमा करताहै और शक्तिको पाके उखाड देताहै ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीविजयं पराक्रमे ॥ मृत्युश्च वसति क्रोधे स-  
र्वतेजोर्मयो हि सः ॥ ११ ॥ तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्सं विनश्यत्य-  
संशयम् ॥ तस्य ह्यंशुं विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

टीका—जिसकी प्रसन्नतामें बहुतसी लक्ष्मी होती है इस्से लक्ष्मीकी इच्छा-वालेको राजा सेवन करनेयोग्यहै और जिसके पराक्रममें विजय होताहै और जिसके क्रोधमें मृत्यु वसताहै अर्थात् जिसपर क्रोध करताहै उसको मारताहै तिस्से जो पुरुष जीवना चाहै वह राजाको क्रोधित न करै जिस्से वह राजा सूर्य अग्नि और चंद्रमा आदिके तेजको धारण करताहै ॥ ११ ॥ मूर्खतासे जो उस राजासे द्वेष करताहै अर्थात् उसको अप्रसन्न करताहै वह राजाके क्रोधसे निश्चय नाशको प्राप्त होताहै जिस्से राजा उसके नाशमें मन लगाताहै ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मयमिष्टेषु सर्वव्यस्येन्नराधिपः ॥ अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं  
धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥ तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममा-  
त्मजम् ॥ ब्रह्मतेजोर्मयं दण्डं ममैजतपूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

टीका—जिस्से राजा सर्व तेजोमयहै तिस्से अपेक्षितोमें जिसयज्ञको शास्त्रसे करनेयोग्य निश्चय करताहै उसको स्थापित करताहै उस धर्मका उल्लंघन न करै ॥ १३ ॥ उस राजाकी प्रयोजन सिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले धर्मस्वरूप पुत्र दंडको ब्रह्मके केवल तेजसे बनाया ब्रह्माने पहले पंचभूतोंसे बने हुए देहको नही बनाया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ भयोद्गोभाय क



लपन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥१५॥ तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां  
चावेक्ष्य तत्त्वतः । यथार्हतः संप्रणयेन्नरो धन्यायर्वतिषु ॥ १६ ॥

टीका—उस दंडके भयसे स्थावर जंगम सब प्राणी भोग करनेको समर्थ होते हैं और जो दंड न होता तौ बलवान् दुर्बलके धनदारा आदिके लेनेमें और उससे बलवानको उसके तौ किसीकाभी भोग सिद्ध न होता और वृक्ष आदि स्थावरोंके काटनेमें भोगकी सिद्धि न होती तैसेही सज्जनोंकोभी नित्य-नैमित्तिक अपने धर्मका करना योग्य हुआ न करनेमें यमयातना कहिये दंडके भयसेही ॥ १५ ॥ उस दंड तथा देश काल शक्ति और विद्या आदिको और जिस अपराधमे जो दंड योग्य होय इत्यादिको शास्त्रके अनुसार तत्त्वसे समझके अपराधियोंको दंडदे ॥ १६ ॥

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ॥ चतुर्णामाश्रमाणां  
च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१७॥ दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डं  
एवाभिरक्षति ॥ दण्डः सुतेषु जागति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८॥

टीका—वही दंड वास्तवमें राजाहै और वही पुरुषहै और सब स्त्रियाँ है और वही नेता कहिये सबके कार्योंका प्राप्त करनेवाला और वही शासिता कहिये आज्ञा देनेवाला और वही चारो आश्रमोंका जो धर्म है उसके प्रतिपादन करनेमें प्रतिभू जो जमानत करनेवालाहै उसके समान मुनियोंने कहाहै ॥१७॥ दंड सब प्रजाओंका शासन करताहै और दंडही सब प्रजाओंकी रक्षा करताहै और सबोंके सोनेपर दंडही जागताहै अर्थात् उसके भयसे चोर आदि नहीं आते हैं और दंडहीको धर्मका कारण होनेसे दंडहीको धर्म जानते हैं यहां कार्यमे कारणका उपचार और इस लोक तथा परलोकके धर्म दंडहीके भयसे किये जाते हैं १८

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ॥ असमीक्ष्य प्रणी  
तंस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥ यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं द-  
ण्डचेष्टतन्द्रितः ॥ शूलं मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलान्वलवत्तराः ॥२०॥

टीका—शास्त्रकी रीति भली भांति विचारिके अपराधके अनुसार देह धन आदिमें किया गया दंड सब प्रजाओंको प्रीतियुक्त करताहै और विना विचारके लोभ आदिसे किया हुआ सब देश धन पुत्र आदिकोंको नाश कर देताहै ॥ १९ ॥ जो राजा आलस्य रहित होके दंड न दे तौ बलवान् दुर्बलोंको ऐसे मारै जैसे शूलमें छेदिके मछलियोंको भूजते हैं ॥ २० ॥

अद्यात्कार्कः मुरोडाशं श्वां च लिह्याद्धविस्तथा ॥ स्वाम्यं च न स्या  
त्कस्मिंश्चित्प्रवर्तते ताधरोत्तरम् ॥ २१ ॥ सर्वो दण्डजितो लोको दुर्ल  
भो हि शुचिर्नरः ॥ दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते २२

टीका—जो राजा दंड न दे तौ यज्ञोंमें सब प्रकारसे हविके अयोग्य कौआ पु-  
रोडाश जो यज्ञभाग है तिसे खाय जाय तैसेही कुत्ता खोर आदि हविको चाटि  
जाय और किसीका कही अधिकार न होय क्योंकि बलवान् उसको छीनले  
और ब्राह्मण आदिवर्णोंमें जो नीच शूद्र आदि हैं वेही मुख्य होजाय ॥ २१ ॥  
दंड करि नियममें स्थापित किया गया सब लोक सन्मार्गमें स्थित रहताहै स्वभा-  
वसे शुद्ध मनुष्य कठिनतासे मिलताहै तैसेही यह सब जगत् दंडहीके भयसे आ-  
वश्यक भोजन आदिके भोगमें समर्थ होताहै ॥ २२ ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतंगो रगाः ॥ तेषां भोगाय कल्प  
न्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥ दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसे  
तवः ॥ सर्वलोकप्रकोपश्च भवेदण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

टीका—इंद्र अग्नि सूर्य वायु आदि देवता तथा दानव गन्धर्व राक्षस पक्षी औ-  
र सर्पभी जगदीश्वरके परमार्थ भयसे पीडितही वरसने आदिके उपकारके लिये  
प्रवृत्त होते हैं ॥ २३ ॥ दंडके न करनेसे अथवा अमुचित करनेसे ब्राह्मण आदि  
वर्ण आपसमें स्त्रीगमन करनेसे वर्णसंकर होजाय और धर्म अर्थ काम मोक्ष है  
फल जिनका ऐसे सब शास्त्रोंके नियम नष्ट होजाय और चोरी तथा साहस आ-  
दिसे दूसरेका अपकार करनेसे सब लोकमें उपद्रव उत्पन्न हो जाय ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहृत् ॥ प्रजास्तत्र न मुह्यं-  
ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ २५ ॥ तस्याहुः संप्रणेतां राजानं सत्य-  
वादिनम् ॥ समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

टीका—जिस देशमें शास्त्रके प्रमाणसे जाना हुआ श्यामवर्ण लाल जिसके ने-  
त्र ऐसाहै देवता जिसका ऐसा दंड विचरता है वहां प्रजा व्याकुल नहीं होती है  
जो दंड देनेवाला विषयके अनुरूप दंडको भलीभांति जानता होय ॥ २५ ॥ सत्यबो-  
लनेवाले और विचारिकै करनेवाले तथा तत्व अतत्त्वके विचारमें उचित बुद्धिसे  
शोभायमान और धर्म अर्थ कामके जाननेवाले अभिषेक आदि गुणों करि युक्त  
राजाको मनु आदि दंडका प्रवर्तक अर्थात् चलानेवाला कहते हैं ॥ २६ ॥

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ॥ कामात्मा विषमः क्षु-  
द्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥ दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकू-  
र्तात्मभिः ॥ धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सवान्धवम् ॥ २८ ॥

टीका—उस दंडको भलीभांति प्रवृत्त करता हुआ राजा धर्म अर्थ और काम से वृद्धिको प्राप्त होताहै और जो विषयकी इच्छा रखनेवाला तथा विषम क्रोध करनेवाला क्षुद्र तथा छलका दूढ़नेवाला राजा होताहै वह अपनेही किए हुए दंड करि मंत्री आदिके कोपसे अथवा अधर्मसे नष्ट किया जाताहै ॥ २७ ॥ दंड अति उत्कृष्ट तेजस्वरूपहै और अपने शास्त्र कहिये राजनीति करि जिसके आत्माका संस्कार नहीं है ऐसे पुरुष करि दुःखसे धारण किया जाताहै इस्से राज-धर्म रहित राजाहीको पुत्रबंधुसमेत नाश करताहै ॥ २८ ॥

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ॥ अंतरिक्षगतांश्चैवं मु-  
नीन् देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥ सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृत-  
बुद्धिना ॥ न शक्यो न्यायतो नेतुं सत्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

टीका—दोष आदिकोंकी अपेक्षा विना जो दंड किया जाताहै वह बंधुसमेत राजाके नाशके पीछे धन्य आदि दुर्गको और राष्ट्र कहिये देशको तथा स्थावर-जंगम समेत पृथिवी लोकको और हविके न देनेके कारण आकाशमें स्थित ऋषियों तथा देवताओंको पीडित करताहै ॥ २९ ॥ मंत्री सेनापति और पुरोहित आदिकी सहायतासे हीन मूर्ख लोभी और जिसकी बुद्धिका शास्त्रसे सत्कार न-ही हुआहै अर्थात् जिसने नीतिशास्त्र नहीं पढ़ाहै और जो विषयोमें लगा हुआ है ऐसे राजा करि न्यायसे दंड नहीं दिया जासक्ताहै ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥ प्रणेतुं शक्यते द-  
ण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥ स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्दृशदण्ड-  
श्च शत्रुषु ॥ सुहृत्स्वाजिह्वः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमां न्वितः ॥ ३२ ॥

टीका—द्रव्य आदिकी शुद्धतासे जो युक्तहै और जिसकी प्रतिज्ञा सत्यहै और जो शास्त्रसे व्यवहारको करताहै और जिसके सहायक मंत्री आदि अच्छे हैं और जो तत्त्वको जानताहै ऐसा राजा दंड करि सकताहै ॥ ३१ ॥ अपने देशमें शास्त्रकी रीतिसे व्यवहार करनेवाला होय और शत्रुओंमें तेज दंड देनेवाला होय और स्वभावसे स्नेहके स्थान मित्रोंमें कुटिल न होय और थोडा अपराध करनेपरभी ब्राह्मणोंमें क्षमायुक्त होय ॥ ३२ ॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोच्छेनापि जीवतः ॥ विस्तीर्यते यंशो  
लोके तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥ अतस्तु विपरीतस्य नृपतेर  
जितात्मनः॥संक्षिप्यते यंशो लोके घृतविन्दुरिवाम्भसि ॥ ३४ ॥

टीका—शिलोच्छृत्तिसेभी जीविका करनेवाला अर्थात् जिसके द्रव्यका भंडार खाली होगयाहै ऐसेभी उक्त प्रकारसे चलनेवाले राजाकी कीर्त्ति जलमें तैलकी बूंदके समान लोकमें फैलजातीहै ॥ ३३ ॥ कहे हुए आचारसे विपरीत आचारवाले अजितेंद्रिय राजाकी कीर्त्ति जलमें घीकी बूंदके समान लोकमें सकुडि जाती है ॥ ३४ ॥

स्वस्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः॥ वर्णानामाश्रमाणां च राजा  
सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ ३५ ॥ तेन यद्यत्समृत्त्येन कर्त्तव्यं रक्षता  
प्रजाः ॥ तत्तद्दोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥ ३६ ॥

टीका—क्रमसे अपने अपने धर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण आदि सब वर्णों तथा ब्रह्मचारी आदि आश्रमोंकी रक्षा करनेवाला राजा विधाताने उत्पन्न किया है तिससे उनकी रक्षा न करता हुआ राजा प्रायश्चित्ती होताहै इससे यह सूचित हुआ कि अपने धर्मके त्यागियोंकी न रक्षा करनेमेंभी राजा प्रायश्चित्ती नहीं होताहै ॥ ३५ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करते हुए मंत्री समेत राजाको जो जो कर्त्तव्यहै वह सब तुमसे कहोंगा ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः॥ त्रैविध्यवृद्धान्विदुषस्ति  
ष्ठेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥ वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदुः शु  
चीन् ॥ वृद्धसेवी हि सततं रक्षो भिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

टीका—प्रतिदिन प्रातःकाल उठिकै ऋक् यजु सामनाम तीनों विद्याओंके ग्रंथोंके अर्थ जाननेवाले और नीतिशास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणोंका सेवन करै अर्थात् उनकी आज्ञासे काम करै ॥ ३७ ॥ अवस्था तथा तपस्या आदिसै वृद्ध और अर्थ तथा ग्रंथसै वेदके जाननेवाले और बाहर भीतर द्रव्य आदिसैं शुद्ध ऐसे ब्राह्मणोंका सदा सेवन करै जिससे वृद्धका सेवन करनेवाला सदा हिंसा करनेवाले राक्षसों करिकै भी पूजा जाताहै अर्थात् वेभी उसका हित करते हैं और मनुष्य तौ बहुतही हित करते हैं ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्दिनयं विनीतात्मापि नित्यशः॥विनीतात्मा हि

नृपतिं न विनश्यति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ बहवोऽविनयात्रष्टौ राजा  
नः सपरिच्छदाः॥वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे४०॥

टीका—स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र आदिके ज्ञानसे नम्रभी अधिक नम्रताके लिये उनसे विनयका अभ्यास करै जिस्से नम्र राजाका कभी नाश न ही होताहै ॥ ३९ ॥ हाथी घोडा धनके भंडार आदि सामग्री करि युक्तभी राजा विनय रहित होनेसे नष्ट होगये और सामग्री हीन बर्नके रहनेवालेभी बहुतसे विनयकरि राज्यको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

वेनो विनष्टोऽविनयात्रहुषश्चैव पार्थिवः ॥ सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरैव च ॥ ४१ ॥ पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ॥ कुबेरश्च धनैश्चर्य ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥

टीका—वेण तथा नहुष राजाभी और यवनका पुत्र सुदासनाम तथा सुमुख और निमि ये अविनयसे नाशको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ पृथु तथा मनुने विनयसे राज्य पाया और कुबेर विनयसे धनके स्वामी हुए और गाधिके पुत्र विश्वामित्रने क्षत्रिय होनेपरभी उसी शरीरसे ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ आन्वीक्षिकीं च त्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां जये यो गं समातिष्ठेद्विनिशम् ॥ जितेन्द्रियो हि शक्रोति वंशेस्थापयितुं प्रजाः ४४

टीका—त्रिवेदीरूपविद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे तीनो वेदोंको ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करै और शाश्वती कहिये सदासे चलि आई हुई नीतिविद्या जो अर्थशास्त्र है तिसको उसके जाननेवालोंसे सीखै तथा युक्ति और प्रत्युत्तरमें सहायता देनेवाली आन्विक्षिकी कहिये तर्कविद्याको तथा उदय और दुखमें हर्ष विषादकी शांत करनेवाली ब्रह्मविद्याको सीखै और वाणिज्य पशु पालन आदि-वार्त्ताको और उसके आरंभ धनके उपायार्थोंको उनके जाननेवाले कर्षक आदि कोसे सीखै ॥ ४३ ॥ चक्षु आदि इंद्रियोंको विषयोंमें आसक्त होनेसे रोकनेमें सदा यत्न करै क्योंकि जितेन्द्रिय राजा सदा प्रजाओंको वशमें रखनेके लिये समर्थ होताहै ॥ ४४ ॥

दर्शकामसमुत्थानि तथार्थौ क्रोधजानि च ॥ व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु मही

पतिः ॥ विर्युज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तुं ॥ ४६ ॥

टीका—आदिमें सुख और अंतमें दुःख देनेवाले दशकामके और आठ क्रोधके व्यसनोको यत्नसे त्याग करै ॥ ४६ ॥ जिस्से कामके व्यसनोमें प्रसक्त कहिये लगा हुआ राजा धर्म तथा अर्थसे हीन होजाताहै और क्रोधके व्यसनोमें प्रसक्त प्रकृति कोपसे देहके नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वमः परिव्रादः स्त्रियो मदः ॥ तौर्यत्रिकं वृथात्था च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥ पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूर्यार्थदूषणम् ॥ वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

टीका—उन व्यसनोको नामसे दिखाते हैं मृगया कहिये अहेर और अक्ष कहिये जुआ खेलना और सब कामोकी नाश करनेवाले दिनकी नींद और पराये दोषका कहना तथा स्त्रीका भोग और मद्यपानसे उत्पन्न मद और तौर्यत्रिक कहिये नाचनो गाना बजाना आदि और वृथा भ्रमण करना यह दशका गण काम जो सुखकी इच्छाहै उससे उत्पन्न है ॥ ४७ ॥ पैशुन्य कहिये अज्ञात दोषका प्रकट करना और साहस कहिये बंधन आदिसे दंड देना और द्रोह कहिये छलसे मारना और ईर्षा कहिये दूसरेके गुणोका न सहना और असूया कहिये पराये गुणोमें दोषोका प्रकट करना और अर्थ दूषण कहिये द्रव्यका लेना तथा देने योग्यका न देना और वाग्दंड कहिये गाली देना और पारुष्य कहिये ताडन आदि यह आठका गण क्रोधसे उत्पन्न जानिये ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥ तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥ पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम् ॥ एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

टीका—जिसको कामसे तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोके गणका कारण स्मृतियोंके बनानेवाले जानते हैं उस व्यसनके कारणरूप लोभको यत्नसे त्याग करै जिस्से ये दोनो गण लोभसे उत्पन्न होते हैं कही धनके लोभसे और कही दूसरे प्रकारके लोभसे ॥ ४९ ॥ मद्यका पीना फांसोसे खेलना स्त्रीका भोग और मृगया कहिये अहेर क्रमसे पढ़े हुए ये चारि कामसे उत्पन्न व्यसनोमेंसे बहुत दोषयुक्त होनेसे इन चारोको अतिशय करिकै दुःखका कारण जानै ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥ क्रोधजेऽपि गणे वि

• ध्यात्कष्टमेतत्रिकं सदा ॥५१॥ सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुष  
ङ्गिणः ॥ पूर्वपूर्वं गुरुतरं विद्याद्वयसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

टीका—क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणमें दंड देना वाणीकी कठोरता तथा अर्थदूषण इन तीनोंको बहुत दोषयुक्त होनेसे सदा अधिक दुःख देनेवाले जानै ॥ ५१ ॥ काम तथा क्रोधसे उत्पन्न इस मद्यपान आदि सात व्यसनोंके गण जो सब राजमंडलमें बहुधा स्थित है उसमेंसे प्रशस्त चित्तवाला राजा पहले पहलेको अगले अगलेसे अति कठिन जानै सोई कहते हैं जैसे जुवासे मद्यका पीना अति-कष्ट देनेवाला है क्योंकि मद्य पीनेसे संज्ञा न रहनेके कारण इच्छापूर्वक चेष्टा करनेसे देह धन आदिके बिगाडनेवाले दोष होते हैं और जुआमें तौ धन आता है अथवा जाता है और स्त्रीव्यसनसे जुआ अति कष्टका देनेवाला है जुआमें बैर-का उत्पन्न होना आदि नीतिशास्त्रके कहे हुए दोष होते हैं और मूत्रपुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है और स्त्रीव्यसनमें फिर संतानकी उत्पत्ति आदि गुणोंका योगभी है और मृगया तथा स्त्रीका व्यसन इन दोनोंमें स्त्री-व्यसन दुष्ट है उसमें कार्योंका नहीं देखना और कालके उल्लंघन करनेसे धर्मलोप आदि दोष होते हैं और मृगयामें तौ श्रम करनेसे आरोग्य आदि गुणोंका भी योग है इस प्रकार कामसे उत्पन्न चारि व्यसनोंके गणमें पहला पहला भारी दोषयुक्त है और क्रोधसे उत्पन्न वाक् पारुष्य आदि तीनोंमें वाक्पारुष्यसे दंडपारुष्य दुष्ट है क्योंकि अंगच्छेद आदिका समाधान नहीं होसकता है और वाक्पारुष्य में तौ दान मान और पानीके छिडकनेसे क्रोध रूप अग्निकी शांति होसकती है और अर्थदूषणसे वाक्पारुष्य दोषयुक्त तथा मर्मस्थानकों पीडा देनेवाला है क्योंकि वाक्पारुष्यकी चिकित्सा अतिकठिन है सोई कहा है की नप्ररोह तित्वाकृतं अर्थात् वाणीका किया हुआ फिर नहीं ऊगता है अर्थदूषणका तौ बहुत साधन देनेसे समाधान होसकता है इस भांति क्रोधज तीन व्यसनोमें पहला पहला अतिदुष्ट है इससे इसको यत्नसे त्यागिदे ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ॥ व्यसन्यधोऽधो व्रजति  
स्वयात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥ मौलच्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षा  
न्कुलोद्गतान् ॥ सचिंवात्सर्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥

टीका—ऊपर कहेहुये व्यसन और मृत्यु उसमेंसे व्यसन बहुत दुःखदा है कारण व्यसनी मनुष्य व्यसनसे नीचेनीचे बहुत नरकमें जाता है और निर्व्यसनी मरा हुआ ऊपर स्वर्गमें जाता है ५३ मौल कहिये बापदादेके क्रमसे सेवक होय वेभी लोभ आदिके

क्रमसे अन्यथा कर सकते हैं इसके रोकने लिये शास्त्रविदः कहिये शास्त्रके जाननेवाले होंय और शूर होंय तथा शस्त्रविद्याको भली भांति जानते होंय और शुद्ध कुलमें उत्पन्न होंय ऐसे सात अथवा आठ मंत्रियोंको मंत्र आदि करनेके लिये नियत करै ५४

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥ विशेषतोऽसह्येन  
किंतु राज्यं महोदयम् ॥ ५५ ॥ तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं  
संधिविग्रहम् ॥ स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

टीका—सुखसेभी करनेयोग्य कामको एक मनुष्य कठिनाईसे करसकता है विशेष करिकै राज्य जिसका बड़ा फल है उसको एक कैसे कर सकता है ॥ ५५ ॥ उन मंत्रियोंके साथ सामान्य कहिये मंत्रोंमें नही छुपानेयोग्य ऐसे संधिविग्रह आदिकोंको सोचै और जिससे स्थित होय ऐसे स्थान तथा दंड कोश पुर देशरूप चारि प्रकारके सोचै और जिससे दंड दिया जाय ऐसे दंड कहिये हाथी घोड़ा रथ पयादे आदिके पोषणका चिंतवन करै और कोश कहिये धनका-समूह उसकी आमदनी तथा खरचका तथा पुरकी रक्षा आदिका और देशके वसनेवाले मनुष्य पशु आदिके धारणकी योग्यताका चिंतवन करै और समुदाय कहिये धान्य हिरण्य आदिके उत्पत्तिस्थानका चिंतवन करै तथा गुप्ति कहिये अपनी और देशकी रक्षा चिंतवन करै और अपने परीक्षा किए हुए अन्नका भोजन करै और प्राप्त हुए धनके प्रशमन कहिये सत्पात्रमें देने आदिका चिंतवन करै ५६

तेषां स्वस्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्पृथक् ॥ समस्तानां च  
कार्येषु विद्व्याद्वितमात्मनः ॥ ५७ ॥ सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्म-  
णेन विपश्चिता ॥ मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

टीका—एकांतमें उन सब सचिवोंके अपने अपने अभिप्रायोंको जानि कार्योंमें जो अपना हित होय उसको करै ॥ ५७ ॥ इन्हीं सब सचिवोंमेंसे विशिष्ट कद्रिये विद्वान् ब्राह्मणके साथ संधिविग्रह आदि, वक्ष्यमाण छः गुणों करि युक्त प्रकृष्टमंत्रका निरूपण करै ॥ ५८ ॥

नित्यं तस्मिन्समाश्रितः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥ तेन सार्धं वि  
निश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥ ५९ ॥ अन्यानिपि प्रकुर्वीत शु-  
चीन्प्राज्ञानवस्थितान् ॥ सम्यगर्थसमाहर्तृन्मातृत्यान्सुपरीक्षितान् ॥

टीका—उस ब्राह्मणमें सदा विश्वासयुक्त हो जिनको करै उन सबोंका समर्पण करै तिसपीछे उसके साथ निश्चय करिकै सब कामोंका आरंभ करै ॥ ५९ ॥



द्रव्यदान आदिसे शुद्ध बुद्धिमान् तथा भलीभाँति धनके जोड़नेवाले और धर्म आदिसे परीक्षा किए गये और भी कर्म सचिवोंको राजा नियत करै ॥६०॥

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतो ऽतन्द्रितान्  
दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥ तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्  
दक्षान् कुलोद्गतान् ॥ शुचीनाकर्मकर्मान्ते भीरून् नन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

टीका—इस राजाका काम जितने मनुष्योंसे होय उतनेही आलस्य रहित कामोंमें उत्साहवाले और उन कार्योंके जाननेवाले मनुष्योंको वहां नियतकरै ६१ इन सचिवोंमेंसे वीर चतुर और अपने कुलकी मर्यादाके रखनेवाले शुद्ध तथा निस्पृहको धन उत्पन्न होनेके स्थानमें रक्खै और अंतर्निवेशने कहिये भोजन शयन तथा रनवास आदिमें भीरु कहिये डरनेवालोंको नियत करै ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शु-  
चिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् द-  
शकालवित् ॥ वर्षुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशंस्यते ॥ ६४ ॥

टीका—दृष्ट अदृष्ट अर्थशास्त्रका जाननेवाला और इंगित कहिये अभिप्रायका सूचित करनेवाला और आकार कहिये देहधर्म आदि मुखकी प्रसन्नता अथवा विरुत होना रूप प्रीति तथा अप्रीतिका सूचित करनेवाला और चेष्टा कहिये क्रोध आदिका सूचित करनेवाला हाथोंका फटकारना आदिके तत्त्वका जानने-वाला और द्रव्यके देने और स्त्री आदि व्यसनसे रहित शुद्धतायुक्त तथा चतुर और कुलीन दूत नियत करै ॥६३॥ अनुरक्त कहिये लोगोमें प्रीतियुक्त होय और धन स्त्री आदिमें शुद्धतायुक्त होय और दक्ष कहिये चतुर होय और स्मृतिमा-न् कहिये संदेशकी न भूलै और देश तथा कालका जाननेवाला होय और सु-रूप कहिये सुंदररूपका होय और निर्भय होय तथा अच्छा बोलनेवाला होय अर्थात् संस्कृतआदिभी बोल सकै ऐसा दूत राजाका प्रशंसायोग्य होताहै ॥ ६४ ॥

अर्मात्ये दण्डे आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया । नृपतौ कोशराष्ट्रे  
च दूते संधि विपर्ययौ ॥ ६५ ॥ दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च  
संहतान् ॥ दूतस्तत्कुर्वते कर्म भिद्यन्ते येन वा नैवा ॥ ६६ ॥

टीका—सेनापतिके आधीन दंड और दंडके सुंदर शिक्षा और राजाके आ-धीन देश तथा कोश कहिये द्रव्य समूहहैं और मेल तथा विगाड दूतके आधी-

नहै क्योंकि उसकी इच्छासे होते हैं ॥ ६५ ॥ दूतही भिन्नोको मिलाताहै और जो मिले हैं उनको फोड़ता है और दूत परदेशमें उस कर्मको करताहैं जिस्से मिले हुए फूटि जातेहैं अथवा नहीं फूटते हैं ॥ ६६ ॥

सं विद्यादस्यै कृत्येषु निर्गुणोद्भितचेष्टितैः॥ आकारमिद्भित चेष्टां  
भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥ बुद्धौ च सर्वं तत्त्वेन पराजचि  
कीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

टीका—वह दूत इस प्रतिपक्षी राजाके कर्त्तव्य कामोंका आकार तथा हृदय का भाव और चेष्टासे जानै औरगुप्त दूत प्रतिपक्षी राजाका परिजन होके उस-समीप नियोजितकिये गये क्रोधी लोभी और अपमान किये गये सेवकोंमें उन-के आकार और हृदयका भाव तथा चेष्टासे प्रतिपक्षी राजाका काम जिसको वह किया चाहताहै जानै ॥ ६७ ॥ जिसके लक्षण कहे हैं ऐसे दूतके द्वारा प्रति-पक्षी राजाके चाहे हुये कर्त्तव्य कामोंको तत्वसे जानिके ऐसा यत्न करै जिसमें अपनेको पीडा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रोयमनाविलम् ॥ रम्यमानतस्मान्तं स्वां  
जीव्यं देशमार्वसेत् ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्षमेव वा ॥  
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुंरम् ॥ ७० ॥

टीका—जिसदेशमें जल तथा लूण कम होता होय और पवन तथा घाम बहुत होता होय तथा बहुतसे धान्य आदि करि युक्त होय और जिसमें बहुतसे धर्मात्मा मनुष्य रहते होंय और रोग आदि जिसमें कम होय और फल फूल वृक्ष लता आदिकोंसे मनोहर होय और जिसमें वीर आदि सब प्रजा नअत्रापूर्वकविकार रहित रहती होय और खेती कृषिज्य आदि जीविका सुलभ होय ऐसे देशका आश्रय लेकर राजा निवास करै ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्ग कहिये जिसके चारो ओर १० कौशतक मरु कहिये जल रहित देश होय और मही दुर्ग कहिये पत्थरों अथवा ईदोसे बना हुआ चौड़ाईसे दुगुणा ऊँचा अर्थात् वारह हाथ आदि ऊँचा और युद्धके लिये चलने फिरने योग्य और रोकयुक्त झरो खा वा रंदो करि युक्त परकोटेसे घिरा हुआ स्थान और जलदुर्ग कहिये अथा ह जलसे सब ओर घिरा हुआ और वार्षदुर्ग बाहर चारों ओर चारि कोश तक बड़े वृक्षका टोंके लता गुल्मआदिसे व्याप्त होय और नृदुर्ग चारों ओर रहनेवाले हाथी घोडा रथ युक्त बहुतसे पया दों करि रक्षा किया गया होय और

द्रव्यदान आदिसे शुद्ध बुद्धिमान् तथा भलीभाँति धनके जोड़नेवाले और धर्म आदिसे परीक्षा किए गये और भी कर्म सचिवोंको राजा नियत करै ॥६०॥

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतो ऽतन्द्रितान्  
दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥ तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्  
दक्षान् कुलोद्गतान् ॥ शुचीनां कर्मकमान्ते भीरून् नन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

टीका—इस राजाका काम जितने मनुष्योंसे होय उतनेही आलस्य रहित कामोंमें उत्साहवाले और उन कार्योंके जाननेवाले मनुष्योंको वहाँ नियत करै ६१ छन सचिवोंमेंसे वीर चतुर और अपने कुलकी मर्यादाके रखनेवाले शुद्ध तथा निस्पृहको धन उत्पन्न होनेके स्थानमें रखै और अंतर्निवेशने कहिये भोजन ज्ञान तथा रनवास आदिमें भीरु कहिये डरनेवालोंको नियत करै ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ इन्द्रिताकारचेष्टज्ञं शु-  
चिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः  
शैकालविद् ॥ वर्षुष्मान् वीतंभीवार्गमी दूतो राज्ञः प्रशंस्यते ॥ ६४ ॥

टीका—दृष्ट अदृष्ट अर्थशास्त्रका जाननेवाला और इंगित कहिये अभिप्रायका सूचित करनेवाला और आकार कहिये देहधर्म आदि मुखकी प्रसन्नता अथवा विरुत होना रूप प्रीति तथा अप्रीतिका सूचित करनेवाला और चेष्टा कहिये क्रोध आदिका सूचित करनेवाला हाथोंका फटकारना आदिके तत्त्वका जाननेवाला और द्रव्यके देने और स्त्री आदि व्यसनसे रहित शुद्धतायुक्त तथा चतुर और कुलीन दूत नियत करै ॥६३॥ अनुरक्त कहिये लोगोंमें प्रीतियुक्त होय और धन स्त्री आदिमें शुद्धतायुक्त होय और दक्ष कहिये चतुर होय और स्मृतिमान् कहिये संदेशकी न भूलै और देश तथा कालका जाननेवाला होय और सु-रूप कहिये सुंदररूपका होय और निर्भय होय तथा अच्छा बोलनेवाला होय अर्थात् संस्कृतआदिभी बोल सकै ऐसा दूत राजाका प्रशंसायोग्य होताहै ॥ ६४ ॥

अमात्ये दण्डं आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया । नृपतौ कोशराष्ट्रे  
च दूते संधि विपर्ययो ॥ ६५ ॥ दूत एव हि संधत्ते भिन्नत्येव च  
संहतान् ॥ दूतस्तत्कुर्वते कर्म भिद्यन्ते येन वा नैवा ॥ ६६ ॥

टीका—सेनापतिके आधीन दंड और दंडके सुंदर शिक्षा और राजाके आधीन देश तथा कोश कहिये द्रव्य समूहहैं और मेल तथा विगाड दूतके आधी-

नहै क्योंकि उसकी इच्छासे होते हैं ॥ ६५ ॥ दूतही भिन्नोको मिलाताहै और जो मिले हैं उनको फोड़ता है और दूत परदेशमें उस कर्मको करतहैं जिसे मिले हुए फूटि जातेहैं अथवा नहीं फूटते हैं ॥ ६६ ॥

सं विद्यादस्यै कृत्येषु निर्गुणोद्भितचेष्टितैः॥ आकारमिद्भितं चेष्टां  
भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥ बुद्धौ च सर्वं तत्त्वेन परराजचि  
कीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

टीका—वह दूत इस प्रतिपक्षी राजाके कर्चव्य कामोंका आकार तथा हृदय का भाव और चेष्टासे जानै औरगुप्त दूत प्रतिपक्षी राजाका परिजन होके उस-समीप नियोजितकिये गये क्रोधी लोभी और अपमान किये गये सेवकोंमें उन-के आकार और हृदयका भाव तथा चेष्टासे प्रतिपक्षी राजाका काम जिसको वह किया चाहताहै जानै ॥ ६७ ॥ जिसके लक्षण कहे हैं ऐसे दूतके द्वारा प्रति-पक्षी राजाके चाहे हुये कर्चव्य कामोंको तत्वसे जानिके ऐसा यत्न करै जिसमें अपनेको पीडा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमैर्यप्रायमनाविलम् ॥ रम्यमान्तसामन्तं स्वां  
जीव्यं देशमवसेत् ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ॥  
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुनरम् ॥ ७० ॥

टीका—जिसदेशमें जल तथा लूण कम होता होय और पवन तथा घाम बहुत होता होय तथा बहुतसे धान्य आदि करि युक्त होय और जिसमें बहुतसे धर्मात्मा मनुष्य रहते हों और रोग आदि जिसमें कम होय और फल फूल वृक्ष लता आदिकोंसे मनोहर होय और जिसमें वीर आदि सब प्रजा नम्रतापूर्वकविकार रहित रहती होय और खेती कृषिज्य आदि जीविका सुलभ होय ऐसे देशका आश्रय लेकर राजा निवास करै ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्ग कहिये जिसके चारों ओर १० कौशतक मरु कहिये जल रहित देश होय और मही दुर्ग कहिये पत्थरों अथवा ईदोसे बना हुआ चौड़ाईसे दुगुणा ऊँचा अर्थात् वारह हाथ आदि ऊँचा और युद्धके लिये चलने फिरने योग्य और रोकयुक्त झरो खा वा रंदो करि युक्त परकोटेसे घिरा हुआ स्थान और जलदुर्ग कहिये अथा ह जलसे सब ओर घिरा हुआ और वार्क्षदुर्ग बाहर चारों ओर चारि कोश तक बड़े वृक्षका टोंके लता गुल्मआदिसे व्याप्त होय और नृदुर्ग चारों ओर रहनेवाले हाथी घोडा रथ युक्त बहुतसे पया दों करि रक्षा किया गया होय और

गिरिदुर्ग कहिये बड़ी कठिनतासे चढ़नेके योग्य पहाड़उपर सकड़े मार्गों करि युक्त भीतर नदी झरणा आदिके जलसे युक्त और बहुत अन्न जिनमें उत्पन्न होताहै ऐसे खेतोंकरि युक्त ऐसे दुर्गोंमेंसे किसी एक दुर्गका आश्रय लेकर राजा अपना नगर बसावै ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं संमाश्रयेत् ॥ एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥ त्रीण्याद्यन्याश्रितास्त्वेषां भृगुर्गर्ताश्रयाऽप्चराः ॥ त्रीण्युत्तराणि क्रमशः पृवङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

टीका—इन सब दुर्गोंमें गिरि दुर्गके गुण अधिकहैं तिस्से संपूर्ण प्रयत्नोंसे गिरिदुर्गका आश्रय ले क्योंकि इसमें शत्रु कठिनाईसे चढ़ि सकताहै और दूरसे थोड़ेही यत्नसे चलाई हुई शिला आदिसे बहुत शत्रुकी सेना मारी जा सकती है इत्यादिक बहुतसे गुणहैं ॥ ७१ ॥ इन दुर्गोंमेंसे तीनि पहले दुर्गोंमें मृग आदि रहते हैं उनमें पहले धन्वदुर्गमें मृग रहते हैं और महीदुर्गमें विलोंके रहनेवाले मूसे आदि रहते हैं अपदुर्गमें मगर आदि जल जीव रहते हैं और अन्य तीनि वृक्षदुर्ग आदिकोंमें बंदर आदि रहते हैं उनमें वृक्षदुर्गमें बंदर और नृदुर्गमें मनुष्य तथा गिरिदुर्गमें देवता रहते हैं ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नो पृथिसन्ति शत्रवः ॥ तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥ शतं दशसहस्राणि तस्मादुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

टीका—जैसे दुर्गमें रहनेसे मृगादिकोंको व्याध आदि शत्रु नहीं मार सकते हैं, ऐसेही दुर्गमें बैठे हुए राजाको शत्रु नहीं मारसकते ॥ ७३ ॥ जिस्से प्राकार जो किला आदि है उसमें बैठकर हुआ एकसौ शत्रुओंसे युद्ध कर सकताहै और प्राकारमें बैठे हुए सौ धनुष्यधारी दशहजार शत्रुओंको लडा सकते हैं तिस्से दुर्ग बनानेका उपदेश किया जाताहै ॥ ७४ ॥

तत्स्योदायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥ ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥ तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्दृढमात्मनः ॥ गुप्तं सर्वतुक्तं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

टीका—वह दुर्ग सङ्ग आदि शस्त्रों तथा धन धान्य हाथी घोड़े आदि वाहनों और ब्राह्मणों तथा कारीगरों और यंत्रों तथा घास पानी आदिसे भरा हुआ

आ होय ॥ ७६ ॥ उस दुर्गके मध्यमें सुंदर और पर्याप्त कहिये पृथक् २ स्त्री गृह देवालय शस्त्र अस्त्रोंका गृह तथा अग्निशाला आदिक बने होय और वह खाई परकोटे आदिसे रक्षित होय और सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फल फूलों करि युक्त होय और चूनेसे पोता हुआ सपेद होय और बावडी आदिके जलसे युक्त होय और वृक्ष जिसमें होय ऐसा अपने रहनेका घर बनवावे ॥ ७६ ॥

तदध्यास्योद्ग्रहेन्द्रायां सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥ कुले मर्हति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥ पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेवं चैत्विजम् ॥ तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्वुर्वैतानि कानि च ॥ ७८ ॥

टीका—उस घरमें स्थित होकै समान वर्ण और शुभसूचक लक्षणों करि युक्त बड़े कुलमें उत्पन्न मनकी हरनेवाली सुंदर रूपवती गुणवाली स्त्रीसे विवाह करै ७७ अथर्वणकी विधिसे पुरोहितको करै और कर्म करनेके लिये ऋत्विजको बरै वे इस राजाके गृहमें कहे हुए तीनों अग्नियों करि होनेयोग्य कर्मोंको करै ॥ ७८ ॥

यजेत राजा ऋतुभिर्विविधैरासदक्षिणैः ॥ धर्मार्थं च वै विप्रैर्भ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥ ७९ ॥ सांवत्सरिकमाप्तैश्च राश्रादाहारयेद्वर्लिम् ॥ स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥ ८० ॥

टीका—राजाअनेक प्रकारके बहुत दक्षिणावाले अश्वमेध आदि यज्ञोंको करै और ब्राह्मणोंको स्त्री गृह शय्या आदि भोगोंको तथा सुवर्णवस्त्र आदि धनान्कोदे ॥ ७९ ॥ राजा समर्थ मंत्रियोंसे वर्षमें लेनेयोग्य धान्य आदिके भागको मगवावे और लोकमें कर आदिके लेनेमें शास्त्रके द्वारा निष्ठ होय तथा अपने देशके रहनेवाले मनुष्योंमें स्नेह आदिसे पिताके समान वर्त्ते ॥ ८० ॥

अध्यक्षान् विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपैश्चितः ॥ तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्तृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ ८१ ॥ आवृत्तानां गुरुकुलाद्भिप्राणां पूजको भवेत् ॥ नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ८२

टीका—हाथी घोडा रथ पयादोंके तथा घनो स्थानोंमें पंडित और कामोंके चतुर देखनेवाले मनुष्योंको जुदे २ रक्खै वे इस राजाके उन हाथी घोडे आदि के स्थानोंमें काम करनेवाले मनुष्योंके सब कामोंको अच्छेप्रकारसे करनेके लिये देखै ॥ ८१ ॥ वेद पढिकै गुरुकुलसे लैटे हुए गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंकी नियम करिकै धन धान्यसे पूजा करै ॥ ८२ ॥

नै तं स्तेनो न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ॥ तस्माद्ब्राह्मणानि धा-  
तव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८३॥ न स्कन्दते न व्यथते न वि-  
नश्यति कर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ८४

टीका—ब्राह्मणमें रक्खी हुई निधिको न तो चोर ले सकते हैं न शत्रु अन्यनिधि-  
के समान भूमिमें रक्खा हुआ काल वशसे नाशको प्राप्त होता है अथवा स्थान-  
के भ्रमसे नहीं दीखता है तिस्से अक्षय और अनंत फल जो यह निधिके समान  
निधि कहिये धनका समूह है सो राजा करि ब्राह्मणोंमें रखनेयोग्य है अर्थात् उ-  
नके देनेयोग्य है ॥ ८३ ॥ अग्निमें जो हावि होमी जाती है वह कभी नीचे गिर  
जाती है कभी व्यथा करै है अर्थात् सूख जाती है और कभी दाह आदिसे न-  
ष्ट होजाती है और ब्राह्मणके मुखमें जो होमाजाता है उसमें कहे हुए दोष नहीं  
होते हैं तिस्से अग्निहोत्र आदिसे ब्राह्मणका देना श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवोप्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेद-  
पारगे ॥८५॥ पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धाधानतयैव च ॥ अल्पं वा  
बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय आदिके लिये जो दान देना है वह समान फ-  
ल है अर्थात् जिस देने योग्य वस्तुका जो फल सुना है उससे अधिक वा न्यून न-  
ही होता है जो क्रियारहित ब्राह्मण आपको ब्राह्मण कहता उसको ब्राह्मणब्रुव  
कहते हैं उसको देनेका फल पहलेकी अपेक्षा दूना होता है ऐसे प्रकांत कहिये वे-  
दाध्ययनके आरंभ करनेवाले ब्राह्मणमें लाख गुना फल होता है और सब शास्त्र-  
के पढनेवालेमें अनंत फल होता है ॥ ८५ ॥ पात्रको पाकर श्रद्धासे दिया हुआ  
दान देनेवालेको प्रलोकमें थोडा बहुत फल देनेवाला होता है ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः ॥ न निर्वर्तेत संग्रामा-  
त्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥८७॥ संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पाल-  
नम् ॥ शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८८॥

टीका—बराबरके बलवाले अथवा अधिक बलवाले वा हीन बलवाले राजा-  
करि युद्धके लिये बुलाया हुआ राजा प्रजाओंका पालन करता हुआ युद्धसे न हटै  
और युद्धके लिये बुलाये हुए क्षत्रियको अवश्य युद्ध करना इस क्षत्रियके धर्मका  
स्मरता रहै ॥८७॥ युद्धसे न हटना और प्रजाओंका पालन करना तथा ब्राह्मणों  
की सेवा करना ये सब राजाके बहुतही स्वर्ग आदि कल्याणके उपाय हैं ॥८८॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः॥ युध्यमानाः परं श-  
क्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥ न कूटैरायुधैर्हन्त्याद्युध्य-  
मानो रणे रिपून्॥ न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजैः ९०

टीका—आपसमें स्पर्द्धासे एकको एक मारनेकी इच्छा करनेवाले राजा बड़ी शक्तिसे सन्मुख हो युद्धको करते हुए स्वर्गको जाते हैं ॥ ८९ ॥ कूट आयुध कहिये ऊपरसे काठ आदिसे बने होंय और भीतर उनके तीक्ष्णशस्त्ररूपे हुए होंये ऐसे आयुधोंसे युद्ध करता हुआ राजा शत्रुको न मारै और जिनके फल काँटेके आकार टेढ़े मांसके खीचनेवाले होंय तथा विषके बुझे हुए और अग्नि करि तपाये हुए ऐसे बाणोंसे शत्रुको न मारै ॥ ९० ॥

न चैन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ॥ न मुक्तकेशं ना-  
सी न न तवास्मीति वादिनम् ॥ ९१ ॥ न सुप्तं न विसन्नाहं न  
नग्नं न निरायुधम् ॥ नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

टीका—आप रथमें बैठा हुआ रथको छोड़िके भूमिमें खड़े हुएको न मारै तथा नपुंसकको और हाथ जोरिके सन्मुख आये हुए को और बाल जिसके खुले होय और जो बैठा होय तथा मै तुझारा हों ऐसे कहनेवालेको न मारै ॥ ९१ ॥ सोतेहुएको विना कवचवालेको नंगेको शस्त्ररहितको नही लड़नेवालेको युद्ध देखने वालेको और दूसरेसे युद्ध न करनेवालेको न मारै ॥ ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नाति नातिपरिक्षतम् ॥ न भीतं न परावृत्तं सतां  
धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥ यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते प्र-  
रैः ॥ भर्तुर्यं दुष्कृतं किंचित्ते सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूटि गये हैं और जो पुत्र आदिके शोकसे व्याकुल है और जो बहुत चोटोंसे व्याकुल है तथा जो युद्धसे भागा है इन सर्वोंको काठिन क्षत्रिय धर्मका स्मरण करता हुआ न मारै ॥ ९३ ॥ डरिके भागा हुआ जो युद्धमें मारा जाता है वह पालन करनेवाले अपने स्वामीके समस्त पापोंको प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपाजितम् ॥ भर्ता तत्सर्वमादत्ते  
परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥ रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्नि-  
यः ॥ सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयाति तस्य तत् ॥ ९६ ॥



टीका—युद्धमें भागिकर मारे गये पुरुषका परलोकके लिये जो कुछ जोड़ा पुण्य वह उसके सब स्वामीको मिलताहै ॥ ९५ ॥ रथ घोड़ा हाथी, छत्र धन धान्य पशु स्त्री ये सब और गुड नोन आदि वस्तु और कुप्य कहिये सोना चांदी छोड़कै तांबा आदि जो जुदा जीतिकर घरका लावै वह उसीका है और सोना चांदी रत्न आदि धन तौ राजाहीको देना चाहिये ॥ ९६ ॥

राज्ञश्च दैद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥ राज्ञां च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥ एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः स सनातनः॥ अस्माद्धर्मात्रे च्यवेत क्षत्रियो धनं रणे रिपून् ॥ ९८ ॥

टीका—वे योद्धा जीते हुए धनमेंसे राजाको उद्धारदें अर्थात् जितना उसमें सुवर्ण चांदी रत्न आदि उत्तम धन होय सो और हाथी घोड़े आदि वाहनभी राजाको देने चाहिये और राजाभी साथ जीते हुए धनमेंसे सब योद्धाओंको उनके अधिकारके योग्य बांघिदे ॥ ९७ ॥ यह जो निंदारहित सनातन योद्धाओंका धर्म कहा युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मको न छोड़े ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्रयत्नतः॥ रक्षितं वर्धयेच्चैव बृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ९९ ॥ एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

टीका—नहीं जीते हुए भूमि सुवर्ण आदिके जीतनेकी इच्छा करै और जीते हुएकी यत्नसे रक्षा करै और रक्षा किये हुएको वाणिज्य आदिसे बढ़ावै और बढ़े हुएको पात्रोंमें दान करै ॥ ९९ ॥ यह चारिप्रकारका पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदि हैं तिसका प्रयोजन ऐसा जानै इससे आलस्य रहित हो सदा इसको करै १००

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया॥ रक्षितं वर्धयेद्दृढ्या बृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १ ॥ नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥ नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसारिणः ॥ २ ॥

टीका—जो नहीं प्राप्तहै उसकी हाथी घोड़ा रथ पयादे रूपदंडसे जीतनेकी इच्छा करै और जीते हुएकी देखनेसे रक्षा करै और रक्षा किये हुएको स्थल तथा जलके मार्गसे वाणिज्य आदि बढ़नेके उपायोंसे बढ़ावै और बढ़े हुएको शास्त्रमें कहे हुए विभागसे पात्रोंको दान करै ॥ १ ॥ हाथी घोड़ा युद्ध आदिकी शिक्षा का अभ्यास रक्खै और सदा प्रकाश की हुई शस्त्रविद्या आदिसे अपने पुरुषार्थ-

को प्रकट करै और मंत्रआचार चेष्टा आदिको सदा गुप्त रखै और सदा शत्रुके व्यसन आदि छिद्रोंके देखनेमें लगा रहै ॥ २ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ॥ तस्मात्सर्वाणि भू-  
तानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥ अमाययैव वर्त्तेत न कथंचन माय-  
या ॥ बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ ४ ॥

टीका—जिसका दण्ड सदा उद्यतहै उससे सब जगत् डरताहै तिससे सब जग-  
तको दण्डहीसे अपने आधीन करै ॥ ३ ॥ मंत्री आदिकोमें कपटसे न वर्त्ते जो क  
पट करै तौ सबोंका विश्वास योग्य न रहै धर्मकी रक्षाके लिये सत्यहीसे व्यवहा-  
र करै और यत्नसे अपने पक्षकी रक्षा करता हुआ शत्रुकी किई हुई प्रजाके भेद  
रूप मायाको दूतके द्वारा जानै ॥ ४ ॥

नॉस्यं छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥ गूहेत्कूर्म इवा  
ङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ५ ॥ बर्कवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च प  
राक्रमेत् ॥ वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च वि निष्पतेत् ॥ ६ ॥

टीका—ऐसा यत्न करै जिससे शत्रु प्रकृतिके भेद आदि अपने छिद्रको न  
जानै और शत्रुके प्रकृतिभेद आदि छिद्रोंको गुप्त दूतोसे जानै और कैछुआ जैसे  
अपने मुख चरण आदि अंगोंको अपने देहमें छुपाय लेताहै ऐसे राज्यके अंगमंत्री  
आदिकोंको दान सन्मान आदिसे अपने वश करै और देवसे जो प्रकृतिभेदरूप  
छिद्र होजाय तौ यत्नसे उसका निवारण करै ॥ ५ ॥ जैसे बगला जैसे जलमें अति-  
चंचलभी मछलीसे पकड़नेके लिये एकाग्र मनसे ध्यान लगाकैं चिंतवन करताहै  
ऐसेही एकान्तमें रक्षायुक्तभी शत्रुके देश लेने आदि अर्थोंका चिंतवन करै और  
जैसे सिंह प्रबल बहुत मोटेभी हाथीके मारनेको उछलताही है ऐसे बलवान करि  
दवाया हुआ थोड़े बलवाला, संपूर्ण शक्तिसे शत्रुके मारनेको चढाई करै और जै-  
से भेडिया पालनेवाले करि रक्षा किये हुएभी पशुको रक्षककी असावधानीमें मा-  
रिही लेताहै ऐसे दुर्ग आदिमें स्थितभी शत्रुको असावधान पाकै मारै और जैसे  
शशा नानाप्रकारके धनुषधारी व्याधोंके बीचमें आकैं टेढी गतिसे उछलकर भा-  
गि जाताहै ऐसे आप निर्बल भी बलवान् शत्रुसे घेरे जानेपर कैसे हू श-  
त्रुकी असावधानी पाकै गुणवान दूसरे राजाका आश्रय लेनेकै लिये भागिजाया ॥ ६ ॥

एवं विजेयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ॥ तानानयेद्दृशं सर्वा

न्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ७ ॥ यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमै-  
स्त्रिभिः ॥ दण्डेनैव प्रसह्यताञ्छनकैर्वशमानयेत् ॥ ८ ॥

टीका—इस कहे हुए प्रकारसे विजयमें प्रवृत्त राजाके जे विरोधी होय उन सबोंको साम दान भेद दंड नाश उपायोंसे वशमें लावे ॥७॥ वे जो विजयके वि-  
रोधी पहले तीन उपायोंसे न माने तौ उनको बलसे देश आदिके विगाड़ने करि  
युद्धसे हौले हौले लघु गुरु दंडके क्रमसे दंडहीसे वश करै ॥ ८ ॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ॥ सामदण्डौ प्रशंस-  
न्ति नित्यं राष्ट्रभिबुद्धये ॥ ९ ॥ यथोद्धरन्ति निर्दाता कक्षं धान्यं  
चैरक्षति ॥ तथा रक्षेत्रूपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ १० ॥

टीका—चारौ सामादिक उपायोंमें साम दंडहीकी देशकी वृद्धिके लिये पांडि-  
त सदा प्रशंसा करते हैं ॥९॥ जैसे खेतमें साथ उत्पन्न हुए धान्य तृण आदिकोंमें-  
से निराव करनेवाला धान्योंकी रक्षा करताहै और तृणोंको उखाड़ताहै ऐसे रा-  
जा देशमें दुष्टोंको मारै और शिष्टोंसमेत देशकी रक्षा करै ॥ १० ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥ सोऽर्चिराद्धृश्यते रा-  
ज्यांजी विताञ्च सर्वान्धवः ॥ ११ ॥ शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते  
प्राणिनां यथा ॥ तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ १२ ॥

टीका—जो राजा दुष्ट शिष्टके ज्ञान बिना अपने देशके सब मनुष्योंको शा-  
स्त्रमें कहे हुए धन लेने तथा मारने आदिके कष्टसे पीड़ा देताहै वह शीघ्रही देश-  
के वैर नाम प्रजाके कोपसे और अधर्म करि राज्यसे तथा जीनेसे पुत्रादिको स-  
मेत भ्रष्ट होजाताहै ॥ ११ ॥ जैसे आहार आदिके रोकने करि शरीरके मुखानेसे  
प्राणियोंके प्राण क्षीण होजातेहैं ऐसेही राजाओंकेभी देशको पीड़ा देनेसे प्रजा-  
के कोप आदि करि प्राणनाशको प्राप्त होते हैं तिससे राजाको अपने शरीरके स-  
मान देशकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ॥ सुसंगृहीतराष्ट्रो हि  
पार्थिवः सुखमेधते ॥ १३ ॥ द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधि-  
ष्ठितम् ॥ तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ १४ ॥

टीका—देशकी रक्षा करनेमें आगे कहे हुए इस उपायको करै जिस्से देशकी  
रक्षा करनेवाला राजा बिना श्रमके बढ़ताहै ॥१३॥ दो ग्रामोंको मध्यमें तथा तीन

के व पांचके अथवा सौ ग्रामोंके बीचमें गुल्म कहिये रक्षा करनेवाले पुरुषोंके समूह को सच्चे प्रधानपुरुषको उसका अधिष्ठाता करिके देशकी रक्षाका स्थान करै॥१४॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्यादशग्रामपतिं तथा विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ १५ ॥ ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनैः स्वयम् ॥ शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ १६ ॥ विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥ शंसेद्ग्रामशतेशस्तु स हस्रपतये स्वयम् ॥ १७ ॥

टीका—एकग्रामका दशग्रामका बीसका तथा सौके स्वामी नियत करै॥ १५॥ एकगांवका स्वामी जो गांवमें हुए चोर आदि दोषोंका आप प्रबंध न करसकै तो दश गांववालेसे कहे और ऐसेही दशगांववाला बीस गांववालेसे और बीस गांववाला सौ गांववालेसे कहै ऐसा होनेपर चोर आदि कंटकोंका अच्छी रीतिसे उद्धार होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवा सिभिः ॥

अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाभुयात् ॥ १८ ॥

टीका—एक ग्रामके अधिकारीकी वृत्ति कहते हैं जो अन्नपान ईधन आदि ग्रामवासियोंको प्रतिदिन राजाके लिये देनेयोग्य होय उसको वर्षमें देनेयोग्य धान्यके अष्टम भाग आदिको छोड़के ग्रामकास्वामी जीविकाले लिबे ग्रहण करै॥ १८

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि चाग्रामं ग्रामशताध्यक्षः

सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ १९ ॥ तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्या

णि चैव हि राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥ २० ॥

टीका—धर्मका एक हल आठ बैलोंका होता है और जीविकावालोंका छः बैलोंका और गृहस्थोंका चार बैलों और दो बैलोंका ब्रह्महत्यावालोंका एक हल होताहै यह हारीतस्मृतिमें लिखाहै छः बैलोंका मध्यम हल होता है ऐसे दो हलोंसे जितनी भूमि जोती जाय उसको कुल कहते हैं उसको एक ग्रामका स्वामी जीविकाके लिबे ग्रहण करै ऐसेही बीस ग्रामका स्वामी पांच कुलोंको ग्रहण करै और सौ ग्रामका स्वामी एक मध्यम ग्रामको और हजारका स्वामी एक मध्यम पुरको जीविकाके लिये ग्रहण करै ॥ १९ ॥ उन ग्रामके बसनेवालोंके ग्रामसंबंधी कामो तथा निज कामोंको राजाका हित करनेवाला मंत्री आलस्यको छोड़कर देखै ॥ २० ॥

नगरेनगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥ उच्चैःस्थानं घोररूपं न  
क्षत्राणामिदं ग्रहम् ॥ २१ ॥ स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेवं सदा स्व  
यम् ॥ तेषां वृतं परिणयेत्सम्यग्ग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ २२ ॥

टीका—प्रत्येक नगरमें उच्चैःस्थानं कहिये कुल आदिसे बड़े और प्रधानभूत  
तथा हाथी-घोड़े आदि सामग्रीसे भयानक नक्षत्रोंमें शुक्र आदि ग्रहके समान  
तेजस्वी कार्य द्रष्टाको नगरका स्वामी करै ॥ २१ ॥ वह नगरका अधिकारी ग्रा-  
भके स्वामी आदिकोंको विना प्रयोजन सबकालमें बलसे देखै और दूतोंसे स-  
वोंकी मनकी बातोंको जानै ॥ २२ ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ॥ भृत्या भवन्ति  
प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमां प्रजाः ॥ २३ ॥ ये कार्याकेभ्योऽर्थमेवं  
गृह्णीयुः पापचेतसः ॥ तेषां सर्वस्वमार्दाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ २४ ॥

टीका—बहुधा राजाके अधिकारी पराये धनके लेनेवाले और शठ कहिये  
बंचक होते हैं इसलिये राजा उनसे प्रजाकी रक्षा करै ॥ २३ ॥ जो पापबुद्धिरक्षाके  
अधिकारी कार्याश्रियों (मुकदमेवालों) से वाणीके छल आदिको प्रकट करि लोभसे  
अशास्त्रीय धनको लेते हैं राजा उनका सर्वस्व छीनकै अपने देशसे निकालदे ॥ २४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥ प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं  
स्थानकर्मणुरूपतः ॥ २५ ॥ पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य  
वेतनम् ॥ पाण्मासिकस्तथा च्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥ २६ ॥

टीका—राजाओंकाम करनेवाले जो स्त्री और भृत्यजन हैं उनकी उत्कृष्ट म-  
ध्यम तथा अपकृष्ट स्थानके योग्य प्रतिदिनकी जीविका करै ॥ २५ ॥ घरके झा-  
रनेवाले और पानी लानेवालेको एक पण नित्य दे पणका लक्षण आगे कहेंगे  
और महीनेमें एक द्रोण अबदे छठे महीने दो वस्त्र दे और उत्तम कर्म करनेवा-  
लेको छ पण नित्य दे और छठे मासमें छ जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास छ  
द्रोण धान्य दे और इसी रीतिसे मध्यम कर्म करनेवालेको तीन पण नित्य दे  
और छठे महीने दो जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास तीन द्रोण धान्यदे ॥ आ-  
ठ खुट्टीकी एक कुंसी होती है और आठ कुंचियोंका एक पुष्कल होता है और  
चारि पुष्कलोंका एक आढक और चारि आढकोंका एक द्रोण होता है और चा-  
रि द्रोणकों खारी कहते हैं ॥ २६ ॥

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥ योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य व  
णिजो दापयेत्करान् ॥ २७ ॥ यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च  
कर्मणाम् ॥ तथा विक्ष्य नृपो राष्ट्रं कल्पयेत्सततं करान् ॥ २८ ॥

टीका—यह वस्त्र नोन आदि वस्तु कितनेमें मूल ली है और बेचनेमें कितना मिलेगा और कितनी दूरसे लाया है और इस वणिजके भोजनमें शाकदालि आदिके खरचमें कितना लगा है और वन आदिमें चोर आदिकोंसे रक्षा करनेमें कितना खर्च हुआ है और इसके नफेका योग कितना है इन सब बातोंको देखकर वनियोंसे करलेवै ॥ २७ ॥ जैसे राजा प्रजा पालन आदि कर्मके फलसे और जैकिसानबानिआ आदि खेतीवाणिज्य आदि कर्मोंके फलसे युक्त होता है ऐसा सोचके राजा देशके करोंको लेवै ॥ २८ ॥

यथाल्पालपमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सपट्पदाः ॥ तथाल्पालपो ग्रही  
तव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ २९ ॥ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञां  
पशुहिरण्ययोः ॥ धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ ३० ॥

टीका—इसमें दृष्टांत कहते हैं जैसे जौके बछड़ा और भ्रमर थोड़ा २ रक्त दूध तथा मधुको खाते हैं ऐसे ही राजा राज्यसे वर्षके करको थोड़ा थोड़ा लेवै ॥ २९ ॥ पशु और सुवर्णके लाभमेंसे राजा पचासवां भाग लेवै ऐसेही धान्योंका छठवां आठवां अथवा बारहवां भाग लेवै भूमिकी उत्कर्षता न्यूनता तथा जुताईके न्यूनके अधिक अमको देखके यह कर लेनेकी न्यूनता अधिकताका विकल्प है ॥ ३० ॥

आदं दीतार्थं षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् । गन्धौषधिरसानां च पु  
ष्पमूलफलस्य च ॥ ३१ ॥ पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य  
च ॥ मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्यैव सममस्य च ॥ ३२ ॥

टीका—वृक्ष १ मांस २ मधु ३ घी ४ गंध ५ औषधी ६ रस ७ पुष्प ८ मूल ९ फल १० पत्र ११ शाक १२ तृण १३ चर्म १४ वांसका पात्र १५ मट्टीका पात्र १६ पत्थरका पात्र १७ इन सबकोका छठा भाग राजा लेवै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

म्रियमाणोऽप्यादं दीतं न राजा श्रोत्रियात्करम् ॥ न च क्षुधाऽस्य  
संसीदे च श्रोत्रियो विषये वसन् ॥ ३३ ॥ यस्य राज्ञस्तु विषये श्रो  
त्रियः सीदति क्षुधा तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचि रेणैव सीदति ॥ ३४ ॥

टीका—धनके क्षीण होनेपरभी राजा वेदपाठी ब्राह्मणसे कर न और इसके देशमें बसता हुआ वेदपाठी भूखसे पीड़ित न होय ॥ ३३ ॥ जिस राजाका श्रोत्रिय भूखसे दुख पाताहै उसका देशभी उसकी क्षुधासे थोड़ेही कालमें नष्ट हो जाताहै ॥ ३४ ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ संरक्षेत्सर्वतश्चैनं  
पिता पुत्रं मि वौरसम् ॥ ३५ ॥ संरक्ष्यमाणो राज्ञाय कुरुते धर्ममन्व  
हम् ॥ तेनार्युर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ ३६ ॥

टीका—शास्त्रका पढ़ना और आचरण जानिकै इसकी उनके अनुरूप धर्मसे जीविका नियत करै और जैसे पिता अपने निजपुत्रकी रक्षा करताहै ऐसे चोर आदिकोंसे इसकी रक्षा करै ॥ ३५ ॥ राजा करि अच्छी भांति रक्षा किया हुआ वह श्रोत्रिय जिस धर्मको प्रतिदिन करताहै उससे राजाकी आयु धन तथा देशबढ़ताहै ॥ ३६ ॥

यत्किंचिदपि वर्षस्य दीपयेत्करसंज्ञितम् ॥ व्यवहारेण जीवन्तं  
राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ ३७ ॥ कारुकांश्छिल्पिन्श्चैव शूद्राश्चात्मो  
पजीविनः ॥ एकैकं कारयेत्कर्म मासिमासि महीपतिः ॥ ३८ ॥

टीका—राजा अपने देशमें थोड़े मोलकेभी शाकपत्तें आदिके खरीदने बेचनेसे जीविका करनेवाले निकृष्ट मनुष्यसे थोड़ाभी कर वर्षमें दिवावै ॥ ३७ ॥ कारुक कहिये सूफकार आदि शिल्पियोंसे जो कुछ ऊँचे हैं और शिल्पी कहिये लुहार आदि और शूद्र जो शरीरसे श्रम करिकै जीविका करते हैं जैसे बोझाढोनेवाले उनसे राजा महीने महीनेमें एक एक दिन काम करवा लेवै ॥ ३८ ॥

नोच्छिन्त्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ॥ उच्छिन्दन् ह्यात्म  
नो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ ३९ ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार  
यं वीक्ष्य महीपतिः ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमत् ॥ ४० ॥

टीका—प्रजाके स्नेहसे कर तथा महसूल आदिके न लेनेसे अपने मूलको न उखाड़ै तथा अतिलोभसे बहुतसा कर लेकै दूसरोंका मूल न उखाड़ै ये दोनों बातें न करै जिस्से अपने मूलको उखाड़कै कोश कम होनेसे आपको पीडा देताहै तथा दूसरोंका मूल उखाड़कै उनको पीडा देताहै ॥ ३९ ॥ कार्यविशेषको देखकै किसी काममें तेज और किसीमें मृदु होय एक रूपको न धारण करै जिस्से उक्तरूप राजा सबको प्यारा होताहै ॥ ४० ॥

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्रौढं दान्तं कुलद्वतम् ॥ स्थापयेदासने त-  
स्मिन् खिन्नैः कार्यक्षणे नृणाम् ॥ ४१ ॥ एवं सर्वं विधायेदमि-  
त्तं व्यमात्मनः ॥ युक्तं चैवाप्रमत्तं च परिरक्षेदिमां प्रजाः ॥ ४२ ॥

टीका—आप कार्योंके देखनेमें खेदयुक्त राजा धर्मके जाननेवाले पंडित जि-  
तेन्द्रिय तथा कुलीन श्रेष्ठ मंत्रीको उस कार्यदर्शनके स्थानमें नियत करै ॥ ४१ ॥  
इस भाँति कहे हुए प्रकारसे अपने सब कार्योंको करिकै मनको लगाय प्रमाद र-  
हित हो प्रजाओंकी रक्षा करै ॥ ४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्रात् ह्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ॥ संपश्यतः स-  
भृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ ४३ ॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजा-  
नामेव पालनम् ॥ निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ४४ ॥

टीका—मंत्री आदिकों समेत जिस राजाके देखते देशसे पुकारती हुई प्रजा  
चौर आदिकों करि लूटी जाती है वह मरा हुआ है जीवता नहीं है ॥ ४३ ॥ प्र-  
जाकी रक्षा करनाही क्षत्रियका सबसे बड़ा धर्म है जिस्से कहा हुआ है ल-  
क्षण और फल जिसका ऐसे कर आदिका भोगनेवाला राजा धर्मसे युक्त होता है ४४

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ॥ हुताग्निर्वाह्मणांश्चाच्य-  
प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥ ४५ ॥ तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य  
विसर्जयेत् ॥ विमृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥ ४६ ॥

टीका—वह राजा रातिके पिछिले पहर उठिकै मूत्रपुरीषत्याग आदि शौ-  
चको करिकै एकाग्र मन हो अग्निहोत्रको करि ब्राह्मणोंको पूजि सुंदर शुभसंभामें  
प्रवेश करै ॥ ४५ ॥ उस सभामें बैठा हुआ राज्य दर्शनके लिये आई हुई सब प्र-  
जाको बोलने और दर्शन देने आदिसे आनंदित करिकै बिदा करै उनको प-  
ठवाकै मंत्रियोंके साथ संधिषिग्रहादिकोंका विचार करै ॥ ४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ अरण्ये निःशर्लके वा म-  
न्त्रयेदविभावितः ॥ ४७ ॥ यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथ-  
ग्जनाः ॥ स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहिनोऽपि पार्थिवः ॥ ४८ ॥

टीका—पर्वतके ऊपर बैठकै अथवा शूने महलके ऊपर और वनमें अथवा  
एकांत स्थानमें मंत्रके भेद करनेवालोसे छुपिकै कामोंके आरंभका उपाय १ पुरुषे



प्र द्रव्यसंपत्ति २ देशकाल विभाग ३ विनिपातका प्रतीकार ४ और कार्यकी सिद्धि ५ इस पंचांग मंत्रका विचार करै ॥ ४७ ॥ जिस राजाके मंत्रियोंसे भिन्न और लोग मिलिके उसके मंत्रको नही जानतें हैं वह कोश क्षीण होनेपरभी सब पृथिवीको भोगताहै ॥ ४८ ॥

जडमूकान्धबर्धिरास्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ॥ स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥ ४९ ॥ भिन्दन्त्यर्वमता मन्त्रं ति र्थग्योनास्तथैव च ॥ स्त्रियश्चैवं विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ५०

टीका—बुद्धि वाणी नेत्र कान आदिसे बिगड़े हुए मनुष्योंको तथा तिर्यक् ग्रीनि तोता मैना आदिको और अति बूढ़े स्त्री म्लेच्छरोगी और अंगहीनों को मंत्रके समय निकाल देवै ॥ ४९ ॥ पुराने पापके कारण जडपन आदिके पानेवाले ये अधर्मके कारण अपमानित होनेपर मंत्रभेदको करि देते हैं तैसेही तोता आदि और अतिबुद्ध और स्त्री विशेषकरि चंचल बुद्धि होनेसे मंत्र भेद कर देते हैं तिससे उन सबोंको यत्नसे निकाल देवै ॥ १५० ॥

मध्यदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ॥ चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तै र्कं एव वा ॥ ५१ ॥ परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपाज नम् ॥ कन्यानां संप्रदानं च कुमारानां च रक्षणम् ॥ ५२ ॥

टीका—दिनके मध्यमे अथवा रात्रिके मध्यमें स्वस्थ शरीर राजा मंत्रियोंके साथ अथवा अकेला धर्म अर्थ कामके करनेका चिंतवन करै ॥ ५१ ॥ बहुधा आपसमें विरोधवाले धर्म अर्थ कामके विरोधको बचाके उनके अर्जनका उपाय शोचै और अपने कार्यकी सिद्धि लिये पुत्रियोंके देनेका निरूपण करै और विनयके सिखाने तथा नीतिशास्त्रकी शिक्षाके लिये कुमारोंकी रक्षाका चिंतवन करै ५२

दूतसंप्रेषणं चैवं कार्यशेषं तथैव च ॥ अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधी नां च चेष्टितम् ॥ ५३ ॥ कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ॥ अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ ५४ ॥

टीका—गुप्त चिट्ठी पत्री आदि लेखके लेजानेवाले दूतोंके पराये देशमें भेजनेका चिंतवन करै तथा आरंभ किये हुए कामोंके शेष पूरे होनेका चिंतवन करै स्त्रियोंका चेष्टित बहुतही विषम होताहै जैसे चोटीमें छुपाये हुए शस्त्रसे रानीने विदूरथको मारा और विषसे लिये हुए विष्णुसे विरक्त रानीने काशिराजको

मारा इत्यादिक बातोंको ज्ञानकर रनवासकी स्त्रियोंका चेष्टित सखी दासी आ-  
दिकोंसे जानै और दूसरे राजाओंके यहां भेजे हुए दूतोंके चेष्टितोंको दूसरे दूतों-  
से जानै ॥ ५३ ॥ प्रजाओंसे कर लेना १ भृत्योंको धन देना २ इस लोक तथा  
परलोकके लिये कर्म करना ३ तथा न करना ४ इस बातकी मंत्रियोंको आज्ञा  
देना कार्यसंदेहमें आज्ञा देना ५ प्रजाके लेन देन आदिके व्यवहारका देखना  
६ व्यवहारमें जो हारै उस्से शास्त्रोक्त धन लेना ७ पापियोंको प्रायश्चित्त करना ८  
इन आठों कर्मोंका चिंतवन करना और तत्वसे अर्थात् सिद्धांतसे पंचवर्गका चि-  
तवन करै वह पंचवर्ग लिखते हैं दूसरेकी भीती वातका जाननेवाला नि-  
र्भय बोलनेवाला कपटव्यवहार करनेवाला ऐसा मनुष्य जीविकाके लिये आवै-  
तौ उसको दान मनसे अपना करकै एकांतमे कहैं कि जिसका दुष्ट कर्म देखो  
उसी समय हमसे कहौ १ संन्याससे जो भ्रष्ट हैं उनका दोष तौ लोकमे विदित  
है उनको बुद्धि तथा पवित्रतासे युक्त करिकै बहुत पैदावाले मठमें स्थापित करिकै  
एकांतमें पहलेकी भांति बोलै और जिस भूमिमे बहुतसा धान्य उत्पन्न होय वह  
भूमि उसको जीविकाके लिये देवै वह भ्रष्टसंन्यासी राजाके काम करनेवाले जो  
दूसरे संन्यासीहैं उनको भोजन और वस्त्र देवै २ और जीविकासे रहित खेती-  
करनेको बुद्धि तथा शौचसे गुप्त करिकै एकांतमें पहलेकी भांतिसे बोलै और खे-  
ती करनेकेलिये अपनी भूमि देवै ३ और जीविका रहित बनियाको पहलेकी  
भांति कहिकै धन तथा मानको दे अपने आधीन करिकै बनियोंके कर्म करवै ४  
जीविकासे रहित मुडिया होय अथवा जटाधारी होय उसको गुप्तजीविका देकर  
एकांतमें पहलेकी भांति कहै और कपटी बहुतसे मुडिये तथा जटाधारी शिष्यों  
समेत तपस्या करै महीने दो महीने सबोंके आगे मुठ्ठीभर वेर आदिका भोजन  
करै और रातिमें कोई न जानै तब भोजन करै और शिष्य उसकी सिद्धाई  
को प्रकाशित करैं कि गुरुजी भूत भविष्य वर्तमान तीनोकालके जाननेवाले हैं  
इस्से सब लोग अपने २ अर्थको कहेंगे ५ ये पांचो क्रमसे कापटिक उदास्थित  
गृहपति वैदिक तापस कहाते है इन पांचो कर्मोंका चिंतवन करै इन्होंसे दूसरे  
राजाका और अपने मंत्री आदिकी प्रीति तथा अप्रीतिको जानिकै उसका  
उपाय करै कि कौनसा राजा मेलचाहता है और कौनसा विगाड चाहता है यह  
जानिकै वैसा उपाय करै ॥ ५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥ उदासीनप्रचारं च  
शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥ एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समा

सतः॥ अष्टौ चान्या समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः ॥५६॥

टीका—अरि विजिगीषू अर्थात् जीतनेकी इच्छा करनेवाला और मध्यम अर्थात् अरि विजिगीषू इन दोनोंकी भूमिके समीपमें रहनेवाला मिले हुए दोनो राजाओं के अनुग्रहमें और विगडे हुए इन दोनोंके निग्रहमें समर्थ इन सबोंका चेष्टित अर्थात् करनेकी इच्छाका चिंतवन करै ॥ ५५ ॥ संक्षेपसे राजमंडलके ये चारि मूल प्रकृति हैं तथा आठ और हैं उनको कहते हैं शत्रुकी भूमिके आगे मित्र अरिमित्र मित्रमित्र अरिमित्रमित्र और पीछे पार्ष्णिग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासार ये पहले कहे हुए आठ चारोको मिल्युके बारह होते हैं ॥ ५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डारूपाः पञ्च चापराः॥प्रत्येकं कथितं त्वे  
ताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ५७॥ अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेवं  
च ॥ अरेरनन्तरं भिन्नमुदासीनं तयोः परम् ॥ ५८ ॥

टीका—चारि मूलप्रकृति आठ शाखाप्रकृति इन्होंने एक एकके पांच पांच द्रव्यप्रकृतिहैं उन पांचोंके ये नामहैं जैसे अमात्य कहिये मंत्री १ राष्ट्र कहिये राज्य २ दुर्ग कहिये किला ३ अर्थ कहिये धन ४ और दंड ५ ये सब मिलिके संक्षेपसे बृहत्तरि ७२ प्रकृति हैं ॥ ५७ ॥ अपने राज्यके समीपका राजा शत्रुहै और उसका सेवन करनेवालाभी शत्रुहै और उसके आगेका राजा मित्र है और अरि तथा मित्रसे जो परे है वह उदासीन है ॥ ५८ ॥

तान्सर्वानभिंसंदर्ष्यात्सामादिभिरुपक्रमैः॥ व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च  
पौरुषेण नयेन च ॥५९॥ संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेवं च ॥  
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥६०॥

टीका—उन सब राजाओंको साम भेद दान दंड इन उपायोंसे संभवके अनुसार जुदे जुदासे अथवा सबोंसे वशमें लवै अथवा पौरुष कहिये केवल दंडहीसे अथवा नीति कहिये एक सामहीसे वशमें लवै सोई कहाहै कि देशकी वृद्धि के लिये साम तथा दंडकी प्रशंसा करते है ॥ ५९ ॥ संधिकहिये मिलाप विग्रह कहिये लड़ाई यान कहिये शत्रुके ऊपर चढ़ाई करना आसन कहिये शत्रुको घेरिके पडे रहना द्वैधी भाव कहिये फोडफाड करना संश्रय कहिये बलवानका आश्रय लेना इन छः गुणोंका सदा चिंतवन करै ॥ ६० ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेवं च ॥ कार्यं वीक्ष्य प्रयुज्यते

द्वैधं<sup>१२</sup> संश्रयमेव<sup>१३</sup> च<sup>१४</sup> ॥६१॥ संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव<sup>१५</sup> च<sup>१६</sup>  
उभे<sup>१७</sup> यानां सने<sup>१८</sup> चैव<sup>१९</sup> द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६२ ॥

टीका—अपनी समृद्धि और शत्रुकी हानि आदिक कार्योंको देखके विग्रह यान आसन द्वैधीभाव और संश्रय इनमेंसे किसीके साथ संधि और किसीके साथ विग्रह इत्यादि करै ॥६१॥ राजा संधि विग्रह यान आसन तथा द्वैधीभाव और संश्रय इन छहो गुणोंको दो प्रकारके जानै ॥ ६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च<sup>१</sup> ॥ तदा त्वायतिसंयुक्तः<sup>२</sup> स<sup>३</sup>  
धिज्ञो<sup>४</sup> यो द्विलक्षणः<sup>५</sup> ॥ ६३ ॥ स्वयंकृतश्च<sup>६</sup> कार्यार्थमकाले काल<sup>७</sup>  
एव वा ॥ मित्रस्य चैव<sup>८</sup> पकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः<sup>९</sup> ॥ ६४ ॥

टीका—तत्कालके फल लाभके लिये अथवा आगेको फलके लाभके लिये जहां दूसरे राजाके साथ अन्यराजाके ऊपर चढाई आदि कर्म किये जाते हैं वह समानकर्मा संधि है औ जो फिर तुम यहाँ जाओ मैं यहाँ जाऊँगा यह उसी कालके तथा आगेके फलकी चाहनासे की जाती है उसको असमानकर्मा संधि कहते हैं ऐसे दो प्रकारकी संधि जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥ शत्रुके विजयरूप प्रयोजनके लिये शत्रुका कष्ट आदि जानिके आगे कहे हुए मार्गशीर्ष आदि कालसे दूसरे कालमें अथवा कहे हुएही कालमें आप करि किया हुआ एक विग्रह है और दूसरे राजा करि मित्रका अपकार करनेपर मित्रकी रक्षाके लिये दूसरा विग्रह होता है इस प्रकार दो प्रकारका विग्रह होता है ॥ ६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया<sup>१</sup> ॥ संहतस्य च<sup>२</sup> मित्रे<sup>३</sup>  
ण द्विविधं यानमुच्यते ॥६५॥ क्षीणस्य चैव<sup>४</sup> क्रमशो देवात्पूर्वकृ<sup>५</sup>  
तेन वा ॥ मित्रस्य चानुरोधेन<sup>६</sup> द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ ६६ ॥

टीका—अपना आवश्यक काम तथा शत्रुके व्यसन आदि अकस्मात् होने पर समर्थका अकेले चढाई करना यह येक प्रकारका यान हुआ और असमर्थका मित्र सहित चढाई करना यह दो प्रकारका यान कहा जाता है ॥६५॥ पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापोंसे जिसके हाथी घोडा कोश आदि क्षीण होगया हैं तब दूसरे पर चढाई न करना अथवा संपन्नका मित्रके अनुरोधसे उसके कार्यकी रक्षाके लिये चढाई न करना यह दो प्रकारका आसन मुनियोंने कहा है ॥ ६६ ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव<sup>१</sup> स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥ द्विविधं कीर्त्यते

द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥६७॥ अर्थसंपादनार्थं च पीडयमानस्य  
शत्रुभिः ॥ साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६८ ॥

टीका—अपनी प्रयोजन सिद्धिके लिये सेनापति समेत सेनाको शत्रुके उपद्र-  
वकी शांतिके लिये एक स्थानमें रक्खै और दूसरे स्थानमें किलेके भीतर कुछ से-  
नासमेत राजा रहै इस भांति संधि आदि छ गुणोंके उपकार जाननेवालोंने दो  
प्रकारका द्वैध कहा है ॥ ६७ ॥ शत्रुओं करि पीडा दिया शत्रुकी पीडाकी वि-  
वृत्ति रूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अथवा उस समय पीडाके न होनेपर आगे  
होनेवाली शत्रुपीडाकी शंकासे यह राजा इस महाबली राजाका आश्रितहै यह  
व्यपदेश सर्वत्र प्रकट करनेके लिये बलवानका आश्रय लेना इस भांति संश्रय  
दो प्रकारका कहा गया है ॥ ६८ ॥

यदावर्गच्छेदायत्यामार्धिक्यं ध्रुवमात्मनः॥ तदात्वे चाल्पिकां पी  
डां तदा संधि समाश्रयेत्॥६९॥ यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृ  
तीर्भृशम् ॥ अत्युच्छ्रितं तथार्त्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥७०॥

टीका—जब युद्धके उपरांत निश्चय अपनी अधिकता जानै उस कालमें थोड़े धन आ-  
दिके क्षयकोभी अंगीकार करिकै संधि करि लेवै ॥६९॥ जब मंत्री आदि सब प्र-  
कृतियोंको दानसन्मान आदिसे बहुतही संतुष्ट जानै और आपकौ हाथी घोड़े  
खजाना आदिसे पुष्ट जानै तब विग्रह कहिये युद्ध करै ॥ ७० ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं सूदकम् ॥ परस्य विपरीतं च त  
दा यायाद्रि पुं प्रति ॥७१॥ यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन  
च ॥ तदासीति प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ ७२ ॥

टीका—जब अपनी अमात्य आदि सेनाको हर्षयुक्त और धन आदिसे  
पुष्टत्वसे जानै और शत्रुके अमात्य आदि बलको अपनेसे विपरीत जानै तब  
शत्रुपर चढ़ाई करै ॥ ७१ ॥ जब हाथी घोडा आदि वाहनोंसे और मंत्री आदि  
सेनासे क्षीण होय तब हौले हौले सामसे भेट आदि देनेसे शत्रुको शांत करता  
हुआ यत्नसे आसन करै अर्थात् चुपचाप बैठ रहै ॥ ७२ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ॥ तदा द्विधा बलं कृत्वा  
साधयेत्कार्यमात्मनः॥७३॥ यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ॥  
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ ७४ ॥

टीका—जब राजा सब भांति शत्रुको बलवान और संधि न करता हुआ जानै तब कुछ सेना समेत आप किलेमें रहै और सेनाके एक भागसे शत्रुके साथ युद्ध करै ऐसे सेनाके दो भाग करिकै मित्र संग्रह आदि अपना काम सिद्ध करै ॥ ७३ ॥ जबतौ अमात्य आदि प्रकृतिके दोष आदिसे बहुत ही ग्रहण करनेयोग्य होय और सेनाके दो भाग करिकै किलेमें रहनेपरभी अपनी रक्षा न कर सकै तब शीघ्रही धर्मात्मा तथा बलवान् राजाका आश्रय लेवै ॥ ७४ ॥

निर्ग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽर्बलस्य च ॥ उपसेवेत तं नित्यं  
सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ ७५ ॥ यदि तत्रापि संपश्येदोषं संश्रयकारितम् ॥  
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ ७६ ॥

टीका—कैसा बलवान होय सो कहते हैं जिनके दोषसे यह अत्यंत जानेयोग्य हुआ उन प्रकृतियोंका और जिस्से शत्रुके बलसे इसको भय उत्पन्न हुआ होय उन दोनोंको जो दंड देनेको समर्थ होय उस राजाका नित्य गुरूके समान सेवन करै ॥ ७५ ॥ जिसकी गति नहीं है उसकी गति आश्रय लेना है जो उसमें भी आश्रयका किया हुआ दोषदेखै तौ उसकालमें निस्संदेह होकै सुंदर युद्ध करै दुर्बलकाभी बलवानसे विजय देखा गया है और जो माराजाय तौ स्वर्गमिलै ७६

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥ यथास्यभ्यधिका  
न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ७७ ॥ आयति सर्वकार्याणां तदात्वं च  
विचारयेत् ॥ आयतीनां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ ७८ ॥

टीका—सब सामआदि उपायोंसे नीतिका जाननेवाला राजा ऐसा यत्न करै जिसमें इसके मित्र उदासीन और शत्रु बहुत न होय अधिकतर होनेपर यह उनके ग्रहण करनेयोग्य होजाता है क्योंकि धनके लोभसे मित्रभी शत्रु होसकते हैं ॥ ७७ ॥ सब थोड़े वा बहुतकार्योंके उत्तरकाल तथा गुणदोषका विचार करै और वर्तमानकालका तौ शीघ्रही करनेके लिये विचार करै और बीते हुए सब कार्योंके गुणदोषोंको इनमें क्या किया और क्या दोष है ऐसे यथार्थ विचार करै ॥ ७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ॥ अतीते कार्यशेषज्ञः  
शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ७९ ॥ यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥  
तथा सर्वसंविदर्थादेर्षं सामासिको नयः ॥ १८० ॥

टीका—उत्तरकालमें कार्योंके गुणदोषको जानता है वह गुणवान् कार्यका आरंभ करता है और दोषयुक्तका परित्याग करता है और जो वर्त्तमानकालमें शीघ्रही निश्चय करिकै कार्यको करता है और बीते कार्य हुए में शेषको जानता है वह उस कार्यकी समाप्तिमें फलको पाता है जिस्से ऐसे तीनो कालोंमें सावधान होनेसे कभी शत्रुओं करि नहीं दवाया जाता है ॥ ७९ ॥ जैसे इस राजाको कहे हुए मित्र उदासीन तथा शत्रुबाधा न देवें ऐसा सब समान करै यह नीतिका संक्षेप है ॥ १८० ॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ॥ तदानेन विधानेन याया  
दरिपुरं शनैः ॥ ८१ ॥ मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ॥  
फाल्गुनं वार्थं चैत्रं वा मासौ प्रति यथावलम् ॥ ८२ ॥

टीका—जब समर्थ हो शत्रुके देशपर चढाईका आरंभ करै तब इस आगे कहे हुए प्रकारसे शत्रुके देशको शीघ्रता न करिकै जाय ॥ ८१ ॥ चतुरंगसेनाकरि युक्त राजा हाथी रथ आदिकी यात्राके विलम्बसे देरमें यात्रा करता हुआ तथा हेमन्त ऋतुके बहुतहैं धान्य जिसमें ऐसे शत्रुके देशपर चढाई किया चाहता वह अपनी यात्राके लिये सुन्दर मार्गशीर्षके महीनेमें यात्रा करै और जिस राजाके घोड़े बहुत होंय और शीघ्रगति राजा होंय वह राजा वसन्त ऋतुके जिसमें धान्य बहुतहै ऐसे शत्रुके देशपर चढाई करना चाहता होय वह फाल्गुनमें अथवा चैतमें अपनी सेनाके जाने योग्य कालका उल्लंघन न करिकै यात्रा करै ॥ ८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पर्येष्टुं जयम् ॥ तदा यायाद्विगृ  
ह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ ८३ ॥ कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं  
च यथाविधि ॥ उपगृह्णारूपदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥ ८४ ॥  
संशोध्य विविधं मार्गं पैद्विधं च बलं स्वर्कम् ॥ सांपरायिककल्पेन  
यायादरिपुरं शनैः ॥ ८५ ॥

टीका—कहे हुए कालोंसे भिन्न कालोंमेंभी जब निश्चय अपना जय जानै तब अपनी सेनाके योग्य ग्रीष्म आदि कालमेंभी हाथी घोड़े आदि बहुत सेनावाला विरोधही करिकै यात्रा करै और शत्रुका अमात्य आदि प्रकृतिमें दंड पारुष्य आदि व्यसन उत्पन्न होनेपर शत्रुके पक्षमें उसकी प्रजाके होनेपर कहे हुए कालसे और कालमेंभी चढाई करै ॥ ८३ ॥ मूल कहिये अपने किले तथा देशमें पार्ष्णिग्राह किये गये प्रधान पुरुषको अधिष्ठाता करिकै रक्षा करनेके

योग्य सेनाको एक स्थानमें स्थापित करि यात्राके उपयोगी वाहन आयुध और कवचका शास्त्रकी रीतिसे यात्राका विधान करिकै जैसे पराये देशमें गये हुए इस राजाका ठहरना होय ऐसेको लेकर शत्रुके पक्षवाले भृत्योंको अपने आधीन करिकै कपट करनेवाले दूतोंको शत्रुके देशकी वार्त्ता जाननेके लिये भेजिकै भलीभांति जांगल आनूप आठविक भेदसे तीन प्रकारके मार्गको वृक्षगुल्म आदिके काटने और ऊँचे नीचेके बराबर करने आदिसे शोध न करि हाथी घोडा रथ पयादोंकी सेना और कर्मकर कहिये कामकरनेवालों समेत छः प्रकारकी सेनाको आहार औषध सत्कार आदिसे शोधन करिकै संग्रामकी उचित विधिसे शीघ्रही शत्रुके देशको यात्रा करै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ॥

गंतप्रत्यगाते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ ८६ ॥

टीका—जो मित्र गुप्तरूपसे शत्रुका सेवन करताहै और जो भृत्य आदि पहले विगडकर चला गया और पीछे आगया होय उन दोनोंसे सावधान रहै जिस्से वह बहुतही कठिन शत्रुहै ॥ ८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यांयात्तु शकटेन वा । वराहमकराभ्यां वा सूच्या

वा गुरुडेन वा ॥ ८७ ॥ यतश्च भयमाशङ्केततो विस्तारयेद्दलम् ॥

पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत् सदा स्वयम् ॥ ८८ ॥

टीका—दंडकी आकृति व्यूहकी रचना आदि है उसको दंडव्यूह कहते हैं ऐसेही शकट आदि व्यूह भी होते हैं दंड व्यूहमें सेनाके आगे सेनाका स्वामी मध्यमें राजा पीछे सेनापति बगलोंमें हाथी उनके समीप घोडे तिस पीछे पयादे ऐसे रचना करनेसे सब औरसे बराबर स्थितियुक्त दंड व्यूह होताहै उससे चहू ओर भय होनेपर चलनेयोग्य मार्गको चले और मुख तथा पीछेका भाग पतला-बीचका भाग भारी ऐसा वराह व्यूह होताहै इसीका जो बीचका भाग बहुत भारी होय तौ गरुड व्यूह होताहै जो दोनो बगलोंसे भय होय तौ इन दोनो व्यूहों से यात्रा करै वराह व्यूहका उलटा मकरव्यूह होताहै उससे आगे पीछे दोनो ओर भय होनेपर यात्रा करै और चींटियोंकी पंक्ति के समान आगे पीछे इकट्ठा हो-कै जहां जहां सेनावालोंकी स्थिति है और वीरपुरुष जिसके आगेके भागमें स्थित है वह सूचीमुखव्यूह उससे आगे भय होनेपर यात्रा करै ॥ ८७ ॥ जिस दिशासे शत्रुके भयकी शंका होय उसीमें अपनी सेनाको फैलावै जिसके चारो ओ-



र चरावरि सेना फैली होय और बीचमें जिसके राजा स्थित है उस कमल व्यूह करि पुरसे निकलकै सदा पडाव डालै ॥ ८८ ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ॥ यतश्च भयमांशङ्केत्प्रा  
चीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ ८९ ॥ गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृत  
संज्ञान्समन्ततः ॥ स्थाने युद्धे च कुशलानभीरून्विकारिणः १९० ॥

टीका—हाथी घोड़े रथ पयादे रूप दश अंगका एक पति करना चाहिये उसको पत्तिक कहते हैं दशपत्तिकका एक स्वामी सेनापति कहाता है दश सेनापतिकी नायक एक एक सेनानायक वा बलाध्यक्ष होता है उन दोनों सेनापति और बलाध्यक्षको सब दिशाओंमें युद्धके लिये नियुक्त करै और जब जिस दिशासे भयकी शंका होय तब उस दिशाको आगे करै ॥ ८९ ॥ विश्वासवाले पुरुष जिनके अधिष्ठाता हैं ऐसे गुल्मनाम सेनाके भागोंको तथा स्थित होके अथवा हटिके युद्ध करनेके लिये किया है भेरि ढोल शंख आदिका संकेत जिन्होंने और ठहरने तथा युद्धमें प्रवीण निर्भय व्यभिचार रहित सेनापति बलाध्यक्षोंको दूर सब दिशाओंमें दूसरेका प्रवेश रोकनेके लिये और शत्रुकी चेष्टा जाननेके लिये नियत करै ॥ १९० ॥

संहतान्योर्ध्वेदुर्लपान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ सूच्या वज्रेण चैवेतां  
न व्यूहेन व्यूह्य योर्ध्वयेत् ॥ ९१ ॥ स्यन्दनाश्वैः समे युद्धयेदनुपे  
नौ द्विपैस्तथा ॥ वृक्षगुल्मावृते चामैरसिचिर्मायुधैः स्थले ॥ ९२ ॥

टीका—थोड़े योद्धाओंको इकट्ठे करिके लडावै और बहुतोंको अच्छे प्रकारसे फैलायदे पहले कही हुई सूचीसे अथवा वज्रनाम व्यूहसे तीनी प्रकारसे खड़ी है सेना जिसकी ऐसी रचना करिके योद्धाओंको लडावै ॥ ९१ ॥ समान भूमिके भागमें रथ तथा घोड़ोंसे युद्ध करै वहां उनकी युद्धकी सामर्थ्य है और जिस देशमें जल बहुत है वहां नाव तथा हाथियोंसे युद्ध करै और वृक्ष तथा गुल्मोंसे घिरे हुए स्थानमें धनुषधारियोंसे और गढिले कूटक पत्थर आदि रहित स्थलमें ढाल बलवारि भाला आदि शस्त्रोंसे युद्ध करै ॥ ९२ ॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् ॥ दीर्घालंघूश्चैव न  
रान्ग्रीनीकेषु योजयेत् ॥ ९३ ॥ प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्  
परीक्षयेत् ॥ चेष्टांश्चैव विजानीयादरीन् योधयतांमपि ॥ ९४ ॥

टीका—कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको तथा मत्स्य कहिये विराट् देशके निवासियोंको और पांचाल कहिये कान्यकुब्ज तथा अहिछत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको और शूरसेन कहिये माथुरोंको बहुधा भारी शरीर शूरता तथा अहंकारको योग होनेसे सेनाके आगे युद्ध करावै तैसेही और देशोंकेभी छोटी बड़ी देहवाले युद्धके अभिमानी मनुष्योंको सेनाके आगेही रक्खै ॥ ९३ ॥ सेनाकी व्यवस्था रचना करिकै विजयमें धर्मका लाभ और सन्मुख मारे गयेको स्वर्गका लाभ और भागनेमें स्वामीके पाप तथा नरककी प्राप्ति होती है ऐसे कहिकै उनको युद्धका उत्साह करावै और वे किस अभिप्रायसे प्रसन्न होते हैं और किससे कुपित होते हैं इस बातकी परीक्षा करै ऐसेही शत्रुओंसे युद्ध करते हुएभी योद्धाओंकी सकपट निष्कपट चेष्टाओंको जानै ॥ ९४ ॥

उपर्युधैरिमांसीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ॥ दूषयेच्चास्यं सततं  
यवसांनोदकेन्धनम् ॥ ९५ ॥ भिन्द्याच्चैवं तडोगानि प्राकारपरि  
खास्तथा ॥ समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वितासयेत्तथा ॥ ९६ ॥

टीका—किलेमें होवै अथवा बाहर होय ऐसे युद्ध करते हुए राजाको घेरिकै पडा रहै और इसके देशको उजाडै और इसके घास अन्न पानी ईंधनको नष्ट वस्तुओंके मिलाने आदिसे दूषित करै ॥ ९५ ॥ शत्रुके जल पीनेयोग्य तलाव आदिकोंको और किलापर कोटा आदिको तोडदे और उसकी खाइयोंको तोडने भरदेने आदिसे जल रहित करदे ऐसे शत्रुओंको शंका रहित होकै दवावै और शक्तिको ले लेवै और रात्रिमें डक्का काहलिक आदि शब्दोंसे डरपावै ॥ ९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्दुष्टयेतैर्वै च तत्कृतम् ॥ युक्ते च दैवं युद्धयेत्  
जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ ९७ ॥ साम्रा दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृ  
थक् ॥ विजेतुं प्रयतेतारिर्न युद्धेन कदाचन ॥ ९८ ॥

टीका—भेदके योग्य राज्यके चाहनेवाले शत्रुके वंशके लोगोंको तथा क्षोभयुक्त अमात्य आदिकोंको फोडै और भेदसे अपने किये गये उनकी चेष्टाओं जानै और शुभग्रहकी दशा आदिसे फलयुक्त दैवको जानिकै जयकी इच्छासे निर्भय युद्ध करै ॥ ९७ ॥ प्रीति तथा आदरसे देखने और हितके कहने आदि रूप समीसे और शत्रुकी हाथी घोडा रथ सुवर्ण आदिके देने रूपदानसे और शत्रुकी प्रजा और राज्य चाहनेवाले उसके अनुगामियोंके फोडनेरूप भेदसे इन सब उपायोंसे सामर्थ्यके अनुसार शत्रुओंके जीतनेका यत्न करै युद्धसे कभी नहीं ॥ ९८ ॥

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ॥ पराजयश्च संग्रामे  
तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ १९ ॥ त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानाम  
सम्भवेऽतथा युद्धचेत संपन्नो विजयेत रिपून् यथा ॥ २० ॥

टीका—युद्ध करते हुए राजाओंकी थोड़े बल और बहुत बलकी अपेक्षाके  
विनाही निश्चयसे जीति हारि हो देखी जाती है तिससे और उपायोंके होनेपर  
युद्धको नहीं करै ॥ १९ ॥ पहले कहे हुए तीन साध आदि उपायोंसे काम न  
होनेपर जीति हारिके संदेहमेंभी यत्नवाला ऐसे युद्ध करै जैसे शत्रुओंको जीति  
लेवे जिस्से जीतिमें अर्थका लाभ होता है और सन्मुख मरनेमें स्वर्ग मिलताहै  
और जहां निस्संदेह पराजय कहिये हारना पड़े वहां युद्धसे हठिजाना अच्छा है  
जैसे आगे कहेंगे कि आत्मातु रक्ष्य इति अर्थात् अपनी सदा रक्षा करै यह मेधा-  
तिथि और गोविंदराजने लिखाहै ॥ २० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैवं धार्मिकान् ॥ प्रदद्यात्परिहारं  
श्चैव स्थापयेदर्भ्यानि च ॥ १ ॥ सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चि-  
कीर्षितम् ॥ स्थापयेत्तत्र तद्वश्यं कुर्याच्च सम्यक्क्रियाम् ॥ २ ॥

टीका—पराये देशको जीतिके उसमें जो देवता होय उनको तथा धर्म प्रधा-  
न ब्राह्मणोंकी भूमि सुवर्ण आदिके दान तथा सन्मानसे पूजन करै जीते हुए द्र-  
व्यके एक भागके देने आदिहीसे यह पूजनहै सो याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ नातः पर  
तरो धर्मो नृपाणां यद्राजाजितम् । विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाऽभयं सदा ॥ अर्थ  
इस्से परे राजाओंको धर्म नहीं है कि रणमें जोड़ा हुआ धन ब्राह्मणोंको दिया  
जाय और प्रजाको सदा अभय दिया जाय इति ॥ तथा देवता और ब्राह्मणों-  
के लिये मैंने यह दिया ऐसे देशके वासियोंको परिहार दे तथा स्वामीकी  
भक्तिसे जिन्होंने हमारा अपकार कियाहै उनकी मैंने क्षमा की अब निर्भय हो  
सुखसे व्यापार करौ ऐसे अभय करै ॥ १ ॥ शत्रु और उसके मंत्री आदि सर्वोही  
का संक्षेपसे अभिप्राय जानकर उस देशमें बलसे मारे हुए राजाके वंशहीके पुरु-  
षको राज्यमें स्थापित करै और तुमको यह करना चाहिये यह न करना चाहिये  
यह उसके लिये तथा उसके मंत्रियोंके लिये नियम करै ॥ २ ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥ रत्नैश्च पूजये  
देवं प्रधानपुरुषैः सह ॥ ३ ॥ औदानमप्रियं करं दानं च प्रियं करं  
कम् ॥ अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशंस्यते ॥ ४ ॥

टीका—उन पराये मनुष्योंके लिये देशके धर्मसे शास्त्रसे प्राप्त आचारोंको प्रमाण करै और इस राज्यमें बैठाए हुए राजाको मंत्री आदिके समेत रत्न आदिकों के देनेसे पूजन करै ॥ ३ ॥ यद्यपि वांछित वस्तुओंका ले लेना अप्रिय करनेवाला है और देना प्रिय करनेवाला है यह स्वभाव है तिसपरभी समय समयमें लेना देना प्रशंसाके योग्य होता है इस्से उसी कालमें पूजन करै ॥ ४ ॥

सर्वं कर्मदुर्मार्यत्तं विधाने दैवमानुषे ॥ तयोदैवमचिन्त्यं तु मानुषे  
विद्यते क्रिया ॥ ५ ॥ सह वापि ब्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ॥  
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यन्निविधं फलम् ॥ ६ ॥

टीका—पूर्व जन्ममें इकठे किये पुण्य पाप रूप कार्य दैवके आधीन हैं और इस जन्ममें इकठे किये हुए मनुष्यके व्यापारके आधीन हैं उन दोनोमेंसे दैवका तौ चिंतवन नहीं हो सकता है मानुषमें तौ विचार होसकता है इस लिये मानुषके ही द्वारा कार्यसिद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥ चढाई करनेयोग्य शत्रुसे युद्ध करना चाहिये अथवा वही मित्र होजाय और उस करिके सुवर्ण दिया जाय अथवा भूमिका एक देश दिया जाय इन तीनोंको यात्राका फल जानिके उसके साथ संधि कहिये मिलाप करिके यत्नसे चलदे ॥ ६ ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ॥ मित्रादथाप्यमित्रा  
द्रो यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तं  
यैधते ॥ यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमर्ष्यायतिक्षमम् ॥ ८ ॥

टीका—जीतनेकी इच्छासे शत्रुपर गये हुए राजाके पीछे जो आके उसके देश आदिको दवाता है वह पार्ष्णिग्राह कहता है वैसा करनेवाले उसका रोकनेवाला जो अनंतर राजा है उसको आक्रन्द कहते हैं उन दोनोको देखकर यत्रा करनी चाहिये अथवा मित्रताको प्राप्त हुए शत्रुसे यात्राका फल ग्रहण करै उन दोनोके बिना देखे ग्रहण करता हुआ राजा कदाचित् उनके किये हुए दोष करि ग्रहण किया जाय ॥ ७ ॥ सुवर्ण और भूमिके लाभसे राजा ऐसा नहीं वृद्धिको प्राप्त होता है जैसा इस समय दुर्बलभी आगेको वृद्धियुक्त स्थिर मित्रको पाके वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ॥ अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु  
मित्रं प्रशस्यते ॥ ९ ॥ प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दार्तारमेव च ॥  
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमादुरारिं बुधाः ॥ २१० ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला तथा किये हुए उपकारका जाननेवाला और जिसकी प्रकृति कहिये स्वभाव संतोषयुक्त होय ऐसा और प्रीति करनेवाला और जिनके आरंभ स्थिर हैं ऐसे कामोंका करनेवाला मित्र प्रशस्त कहिये उत्तम है ॥ ९॥ विद्वान् कुलीन शूर चतुर दाता कियेका जाननेवाला और धीरजवाला अर्थात् सुखदुःखमें एकरूप ऐसे शत्रुकों पंडित दुरुच्छेद कहिये दुःखसे उखाड़ने योग्य कहते हैं तिससे ऐसे शत्रुके साथ मिलापकरना चाहिये ॥ ११० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ॥ स्थौललक्ष्यं च  
संततमुदासीनगुणोदयः ॥ ११ ॥ क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृ  
द्धिकरीमपि ॥ परीत्यजेन्नृपो भूमिमात्माथमविचारयन् ॥ १२ ॥

टीका—साधुपन पुरुषविशेषका जानना श्रुता दयावान होना बहुत देनेवाला होना ये उदासीनके सब गुण हैं तिससे इस प्रकारके उदासीनका आश्रय लेकर जिसके लक्षण कहि चुके हैं ऐसे शत्रुके साथभी युद्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ अनाम य कहिये रोग न होने आदि कल्याणकी देनेवाली और नदीमातृक होनेसे सदा सब शस्त्रोंकी देनेवाली और बहुतसे तृण अदिके योगसे पशुओंकी बढ़ानेवाली भूमिको अपनी रक्षाके लिये राजा शीघ्रही अपनी रक्षाका और प्रकार न होनेपर त्याग करै ॥ १२ ॥

आपत्तौ धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्देवैरपि ॥ आत्मानं संततं  
पि धनैरपि ॥ १३ ॥ सह सर्वाः सुमुत्पन्ना प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ॥  
संयुक्तांश्च विर्युक्तांश्च सर्वोपायान् मृजेद्बुधः ॥ १४ ॥

टीका—आपत्ति निवारण करनेके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये और धनके परित्यागसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये और अपनी फिर स्त्री तथा धनके त्यागसे भी रक्षा करै ॥ १३ ॥ कोपका क्षय प्रकृतिका कोप मित्रका व्यसन इत्यादिक आपत्तियोंको एकसाथ अधिकतासे उत्पन्न जानिके मोहको न प्राप्त होय किन्तु जुदे जुदे अथवा सब सामादिक उपायोंको शास्त्रका जाननेवाला काममें लावै ॥ १४ ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ॥ एतंत्रयं समाश्रित्य प्रयते  
तार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ॥  
व्यायम्यार्पुत्य मध्यान्धे भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥ १६ ॥

टीका—उपेता कहिये उपाय करगेवाले आपको और उपेय कहिये प्राप्त होने योग्यको और उपाय सामादिक ये सब परिपूर्ण इन तीनोंका आश्रय लेके सामर्थ्यके अनुसार प्रयोजनसिद्धिके लिये यत्न करै ॥ १५ ॥ ऐसे पहले कहे हुए प्रकारसे मंत्रियोंके साथ सब राज्यके वृत्तांतका विचार करि पीछे शस्त्र आदिकोंके अभ्यासकी कसरत करिकै मध्यान्हमें स्नान आदि तथा मध्यान्हके कृत्य करि भोजनको रनवासमें जाय ॥ १६ ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरर्हायैः परिचारकैः ॥ सुपरीक्षितमन्त्राद्यमर्थां  
नर्मन्त्रैर्विषांपहैः ॥ १७ ॥ विषघ्नैरैर्गदैश्चास्यं सर्वद्रव्याणि योजयेत् ॥  
विषघ्नानि च रत्नानि निर्यतो धारयेत्सदा ॥ १८ ॥

टीका—वहां रनवासमें अपने तुल्य भोजन करनेके समयके जाननेवाले दूसरे करि नही फोड़नेयोग्य ऐसे रसोई करनेवालों करि किये हुए और अच्छी भांति चकोर आदिके देखनेसे परीक्षा किये गये अर्थात् सविष अन्नको देखकै चकोरकी आंखें लाल होजाती हैं और विषके दूरि करनेवाले मंत्रों करि जपे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ विषकी नाश करनेवाली औषधियाँसे सब भोजनके पदार्थोंको मिलवै और विषके हरनेवाले रत्नोंको यत्न करिके सदा धारण करै ॥ १८ ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यंजनोदकधूपनैः ॥ वेषाभरणसंशुद्धः स्पर्श  
शेयुः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥ एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाश  
ने ॥ स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥ २० ॥

टीका—गूढ चारके द्वारा परीक्षा की गई और गुप्त शस्त्रका ग्रहण तथा विषसे लिपे हुए आभरणोंके धारण करनेकी शंकासे जिनके वेष और आभरण देखि लिये गये हैं और जिनका मन अन्यत्र नहीं है ऐसी स्त्रियां चमर स्नान पान जल और धूप देना इन सब बातोंसे राजाकी सेवा करै ॥ १९ ॥ ऐसे वाहन शय्या आसन भोजन स्नान और चंदन जादि अनुलेपन इन सब अलंकारकी वस्तुओंमें नावाप्रकारकी परीक्षा आदि प्रयत्न करै ॥ २० ॥

मुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ॥ विहृत्य तु रथका लं पु  
नः कार्याणि चिन्तयेत् ॥ २१ ॥ अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पु  
नर्जनम् ॥ वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥ २२ ॥

टीका—भोजन करिकै वहीं रनवासमें भार्याओंके साथ विहार करिकै दिनके

सातमें भागतक क्रीडा करि आठमें भागमें राज्यसंबंधी कार्योंका विचार करै ॥  
॥ २१ ॥ अलंकृत अर्थात् सब वस्त्र आभूषण आदिकोंको धारण किये हुए शस्त्र  
धारण करनेवाले मनुष्योंको अर्थात् सिपाहियोंको देखै और सब चाहनोंको तथा  
शस्त्रों और आभरणोंको देखै ॥ २२ ॥

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेदमनि शस्त्रभूत् ॥ रहस्थाख्यायिनां  
चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ २३ ॥ गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समं  
नुज्ञाप्य तं जनम् ॥ प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः २४

टीका—उसके पीछे संध्योपासन करिकै अंतःपुरके एकांतस्थानमें जाकै  
शस्त्रोंको लिये हुए एकांतमें कहनेवाले दूतोंके कामोंको सुनै ॥ २३ ॥ उन म-  
नुष्योंको आज्ञा देकर दूसरी कक्षमें जाकै स्त्रियों करि युक्त भोजनके लिये  
फिर रनवासमें जावै ॥ २४ ॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तर्यघोषैः प्रहर्षितः ॥ संविशेत्तु यथाका  
लमुत्तिष्ठेच्च गतकुर्मः ॥ २५ ॥ एतद्विधानमतिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ॥  
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनि योजयेत् ॥ २६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां राजधर्मोनामसप्त ० ७ ॥

टीका—ब्रह्मा कुछ खायकै नगरोंके शब्दसे आनंदित हो उचित समयमें श-  
यन करै फिर श्रमरहित हो पहर भरके तूडके उठै ॥ २५ ॥ रोगरहित राजा इस-  
कहे हुए विधानको आप करै ओर जो अस्वस्थ अर्थात् रोग आदिसे ग्रस्त होय  
तौ यह सब सेवकोंसे करावै ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मद्विवेदितनुजश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्वि-  
वेदिकृतायां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अथ अष्टमोऽध्यायः ।

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः । मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव  
विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥ तत्रासीनः स्थितो वापि पाणि  
मुद्यम्य दक्षिणम् । विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् २

टीका—इस प्रकारके शत्रु राजाओंसे प्रजाकी रक्षासे पाई है जीविका जिस-  
ने ऐसा उन्हीं प्रजाओंके आपसके विवादसे उत्पन्न पीडाकी शांतिके लिये ऋणा-

दान आदि अठारह है विषय जिसके ऐसे विरोधयुक्त अर्थों प्रत्यर्थी ( मुद्दई मुद्द-  
आलह ) के वचनोंसे उत्पन्न हुए संदेहके हरनेवाले विचारको व्यवहारः

उन व्यवहारोंके देखनेकी इच्छा करता हुआ राजा जो आगे कहे जायंगे उन ल-  
क्षणों करि लक्षित ब्राह्मणों और मंत्रियोंके और सातमें अध्यायमें कहे हुए पंचां-  
ग मंत्रोंके साथ नम्र तथा वाणी हाथ पावकी चपलतां न होनेसे शांतस्वरूप  
क्योंकि राजाके उद्धत होनेसे वादी प्रतिवादियोंकी बुद्धि ठीक न रहनेसे अच्छी  
भांति न कह सकनेपर तत्त्वका निर्णय नहीं होता है इस भांति आगे कही सभामें  
प्रवेश करै ॥ १ ॥ उस सभामें भारी कामकी अपेक्षासे बैठा हुआ और छोटे कां-  
ममें खड़ा हुआभी दाहिनी भुजाको उठाय अनुद्धत वेष अलंकारी हो राजा  
कार्योंका विचार करै ॥ २ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।

अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक् ॥३॥

टीका—अठार व्यवहारके मार्गोंमें पढ़े हुए और देश जाति कुलके व्यवहारोंसे  
जाने गये उन ऋणादान आदि कार्योंको शास्त्रसे निश्चय किये हुए दिव्य कहिये श-  
पथ आदि कारणोंसे पृथक्प्रतिदिन विचार करै उन्ही अठारहको गिनाते हैं ॥३॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ॥ संभूय च समुत्थानं  
दत्तस्यानपकर्म च ॥४॥ वेतनस्यैव चादानं संविदं च व्यतिक्रमः ॥  
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥५॥ सीमाविवादध-  
र्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके । स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव  
च ॥६॥ स्त्रीपुंभर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ॥ पदान्यष्टादं-  
शैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥७॥

टीका—उनमें पहला ऋणादान अर्थात् उधार लेना १ निक्षेप कहिये धरोह-  
ड २ अस्वामिविक्रय कहिये स्वामीके बिना बेचिदेना ३ संभूय समुत्थान कहि-  
ये इकट्ठे हो बन्धिया आदिकोंकी क्रियाका करना ४ दत्तस्यानपकर्म कहिये दि-  
ये हुए धनका अपात्रकी बुद्धिसे अथवा क्रोध आदिसे ले लेना ५ नौकरका मा-  
सिक न देना ६ किई हुई व्यवस्थाको न मानना ७ लेने तथा बेचनेमें पछितावां  
करनेसे बदल जाना ८ स्वामीका और पशुओंके पालनेवालेका झगडा ९ ग्रा-  
म आदिकी सीमाका झगडा १० वाक्पारुष्य कहिये गाली आदिका देना ११  
दंडपारुष्य मारना आदि १२ स्तेय कहिये चुराकै धन लेना १३ साहस कहिये



बलसे, धन छीन लेना १४ स्त्रीका पराये पुरुषसे, संयोग १५ स्त्रीसहित पुरुषकी धर्मव्यवस्था १६ पिता आदिके धनका विभाग १७ फासोंसे खेलना अथवा दाव लगाकै पक्षी मेंढा आदिका लडाना १८ ये अठारह व्यवहार के स्थानहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥  
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥८॥

टीका—इन ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें बहुधा विवाद करनेवाले मनुष्योंके अनादि तथा परंपरासे चले आये हुए नित्य धर्मका आश्रय ले कार्यका निर्णय करै भूयिष्ठ शब्दसे और भी विवादके स्थानहैं यह सूचित करताहैं वे प्रकीर्णक शब्दसे नारदादिकोंने कहे हैं सोई नारदने कहाहै जैसे नदष्टं यच्चपूर्वेषुसर्वतस्यात्प्रकीर्णकमिति अर्थ जो पहले कहे हुए अठारहमें नहीं देखे गये है वे सब प्रकीर्णक हैं ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥ तदा नियुज्याद्विद्वां  
सं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥ सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव  
त्रिभिवृतः ॥ सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥

टीका—जब दूसरे कामोंकी आवश्यकतासे अथवा रोग आदिसे राजा आप कार्योंको न देखे तब उनके देखनेके लिये कार्य देखना जानने वाले ब्राह्मणको नियत करै ॥ ९ ॥ वह ब्राह्मण राजाके देखनेयोग्य कार्योंको सभाके योग्य धर्मात्मा और कार्य देखनेके जाननेवाले तीन ब्राह्मणों करि युक्त उसी सभामें जाय बैठिकै अथवा खड़ा होकै फिरता हुआ नहीं उन ऋणादान आदि कार्योंको देखे ॥ १० ॥

यस्मिन्देसे निषीदन्ति विप्रां वेदविदस्त्रयः ॥ राज्ञश्चाधिकृतो वि  
द्वां ब्राह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥ धर्मो विद्वत्त्वधर्मेण सभां  
यत्रोपतिष्ठते ॥ शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्वास्तत्र सभासदः १२

टीका—जिस स्थानमें ऋक् यजु और सामके जाननेवाले तीनभी ब्राह्मण और राजाका अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण बैठताहै उस सभाको चतुर्मुख सभा मानते हैं ॥ ११ ॥ भा प्रकाशको कहते हैं उस करिकै सहित होय उसको सभा कहते हैं यहां विद्वानोंके समूहको सभा मानते हैं देशमें विद्वानोंके समूहरूप-सभामें सत्य कथनसे उत्पन्न धर्म मिथ्या कथनसे उत्पन्न अधर्म करि पीड़ित होताहै अ-

थीत अर्थी प्रत्यर्थियोंके मध्यमें एकके सत्य कहनेसे और दूसरेके झूठ कहनेसे वें सभासद इस धर्मके पीडा देनेवाले होनेसे कांटेके समान अधर्मको नहीं निकालते हैं तब वेही उस अधर्मरूपी शल्यसे विधि जाते हैं ॥ १२ ॥

सभां वा नै प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समर्जसम् । अङ्गुर्विबुवन्वापि नै  
रो भवति किं लिषी ॥ १३ ॥ यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन  
च ॥ हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

टीका—सभाको जानकर व्यवहार देखनेके लिये उसमें न जाना चाहिये और जो पूछा जाय तौ सत्यही कहना चाहिये चुप बैठा हुआ अथवा झूठ कहता हुआ दोनो प्रकारसे शीघ्रही पापी होता है ॥ १३ ॥ जिस सभामें सभासदोंके देखते हुए उनका अनादर करिकै अर्थी प्रत्यर्थियों करि अधर्मसे धर्म नहीं दिखाई देता है और जहां साक्षियों करि सत्य झूठसे नाश किया जाता है और वे सभासद उसका यथार्थ निर्णय नहीं करसकते वहां वेही सभासद उस पापसे नष्ट होजाते हैं १४

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ तस्माद्धर्मो न हन्ति  
व्यो मां नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १५ ॥ वृषो हि भगवान्धर्मस्त  
स्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥

टीका—अतिक्रमण किया हुआ अर्थात् न माना हुआ धर्मही इष्ट अनिष्ट समेत नाश कर देता है अर्थी प्रत्यर्थी आदि नहीं वही धर्म अनतिक्रान्त कहिये माना हुआ इष्ट अनिष्टसमेत रक्षा करता है तिससे धर्मका अतिक्रमण न करना चाहिये अतिक्रमण किया हुआ धर्म तुम समेत हमको न मारै सभासदोंके कुमार्गमें प्रवृत्त होनेपर यह प्राड्विवाकका संबोधन है अथवा नो यह निषेध अर्थमें अव्यय है तौ नो हतो धर्मो माऽवधीत् अर्थात् नहीं अतिक्रमण किया हुआ धर्म नहीं मारता है यह अभिप्राय है ॥ १५ ॥ कामनाओंको जो बरसै उसको वृष कहते हैं वृष शब्दसे धर्मही कहा जाता है और अलं शब्दका अर्थ वारण कहिये मना करना है तिससे जो धर्मका वारण करता है, उसको देवता वृषल जानते हैं जाति वृषल नहीं है तिससे धर्मका लोप न करै ॥ १६ ॥

एक एव मुहूर्द्धर्मो निर्धनेऽप्यनुयाति यः ॥ शरीरेण संमं नाशं सं  
वर्मन्यर्द्धि गच्छति ॥ १७ ॥ पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणम्  
च्छति ॥ पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

टीका—धर्मही एक मित्रहै जो मरनेके समयभी वांछित फल देनेके लिये साथ जाताहै और सब स्त्री पुत्र आदि शरीरहीके साथ नाशको प्राप्त होते हैं तिस्से पुत्र आदिकोंके स्नेहकी अपेक्षासेभी धर्म न छोड़ना चाहिये ॥ १७ ॥ दुष्टव्यवहार देखनेसे अर्थात् सत्यनिर्णय न करनेसे अधर्मका चौथा भाग अधर्म करनेवाले अर्थी वा प्रत्यर्थीको प्राप्त होताहै और दूसरा चौथा भाग झूठ बोलनेवाले साक्षी को और तीसरा चौथा भाग सब सभासदोंको और शेष चौथा भाग राजाको पहुँचताहै इस भांति सब पापके भागी होतेहैं ॥ १८ ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः॥ एनो गच्छति कर्तारं  
निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥ जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्या  
ब्राह्मणब्रुवः । धर्मप्रवक्ता नृपते न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥

टीका—जिस सभामें झूठ बोलनेसे निंदाके योग्य अर्थी वा प्रत्यर्थी अच्छे प्रकार न्यायके देखनेसे निंदा किये जाते हैं वहां राजा पाप रहित होताहै और सभासदोंकोभी पाप नहीं लगताहै करनेवाले अर्थी आदिकोहीको पाप प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ जिसकी केवल जाति ब्राह्मणहै कर्म नहीं हैं और वैश्य आदिके समान साक्षी आदिकोंसे न्याय अन्यायके करनेको समर्थ ऐसा ब्राह्मण जातिभी अथवा जिसका संदेहहै आपको ब्राह्मण कहता है वहभी कहे हुए योग्य ब्राह्मणके न होनेपर कही राजाके कार्य दर्शनमें नियुक्त होताहै और धर्मात्मा व्यवहारका जाननेवालाभी शूद्र कभी नहीं होताहै अर्थात् योग्य ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यभी कार्यका देखनेवाला होताहै शूद्र कभी नहीं होताहै ॥ २० ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् । तस्य सीदति तद्राष्ट्रं  
पङ्के गौरिव पर्यतः ॥ २१ ॥ यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाकां  
न्तमद्विजम् । विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्ष्यव्याधिपीडितम् २२

टीका—जिस राजाके धर्मका निर्णय शूद्र करताहै उसके देखते हुए उसका देश कीचमें गौके समान दुखी होताहै-॥ २१ ॥ जिस देशमें शूद्र बहुतहैं और नास्तिक अर्थात् जो परलोकको नहीं मानते ऐसे बहुत होंय ओर जो ब्राह्मणों से शून्य होय वह सब दुर्भिक्ष तथा रोगसे पीडित हो शीघ्रही नष्ट होजाताहै॥२२

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥ प्रणम्य लोकपालेभ्यः  
कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥ अर्थानर्थाबुधौ बुद्ध्या धर्माधर्मौ च केव

लौ । वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् ॥ २४ ॥

टीका—धर्म देखनेके लिये आसनपर बैठके देहको ढके हुए एकाग्रमन हो लोकपालोंको प्रणाम करि कार्योंको देखै ॥२३॥ प्रजाकी रक्षा तथा खराबनेरूप वेदसंबंधी अर्थ और अनर्थको जानकर परलोकके लिये केवल धर्म अधर्मका अनुरोध करि जिसमें विरोध न होय ऐसे कार्यार्थियोंके (मुकदमेंवालोंके) कार्योंको ( मुकदमोंको ) देखै जो कई वर्णोंके होंय तौ ब्राह्मण आदिके क्रमसे देखै ॥२४॥

वाह्यैर्विभावयेल्लङ्घ्यैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् । स्वरवर्णेद्भिर्ताकारैश्च  
क्षुषां चेष्टितेन च ॥२५॥ आकारैरिद्भिर्तेर्गत्यां चेष्टया भाषितेन  
च । नेत्रवक्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

टीका—वाहरी स्वर आदि चिन्होंसे अर्थी ( मुर्दई ) और प्रत्यर्थी (मुद्दाल-ह ) के भीतरी अभिप्रायको लक्षित करै स्वरका गद्गद होना कहिये बोलनेमें गलाभरि आना और वर्ण कहिये स्वाभाविक रंगसे मुखका रंग बदल जाना अर्थात् मुखमें कालापन आदिका होजाना और इंगित कहिये नीचेको देखना आदि और आकार कहिये देहमें पसीना आना रोमोंका खड़ा होना आदि और चेष्टा कहिये हाथोंका फटकारना आदि इन सब बातोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके हृदयकी सच्ची झूठी बातोंको लक्षित करै ॥ २५ ॥ पहले कहे हुए आकार आदिसे और गतिसे अर्थात् पैरोंके ठोक न रखनेसे चेष्टासे बोलनेसे और नेत्र तथा मुखके विकारसे मनकी भीतरी बात जानी जातीहै ॥२६॥

बालदार्यादिकं रिक्थं तावद्राज्ञानुपालयेत् ॥ यौवत्सं स्यात्सर्मावृ  
त्तो यौवच्चातीतशैशवं ॥२७॥ वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं नि  
ष्कुलासु च ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वार्तुरासु च ॥ २८ ॥

टीका—जिसके बालकके चाचा ताऊ आदि अन्यायसे लिया चाहते होंय ऐसे अनाथ बालकके धनकी राजा तब तक रक्षा करै जबतक यह बालक छत्तीस वर्षके कहे हुए ब्रह्मचर्यको पूरा करिके गुरुके कुलसे न लौटके आवै ऐसेका बालकपन अवश्य दूर होजायगा और जो असमर्थ होनेसे बालकही लौट आके उसकाभी जबतक बालकपन न निकल जाय तबतक उसके धनकी रक्षा करै बालपन सोलह वर्षतक रहताहै क्योंकि बाल आषोडशाद्वर्षात्त सौलह वर्ष तक बालक रहताहै यह नारदका वचनहै ॥ २७ ॥ जिसके पतिने दूसरा विवाह कर

लिया है ऐसी स्वामी करि निर्वाहके लिये दिया हुआ बांझ स्त्रीका धन और पुत्र रहितका और पतिव्रता विधवाका और रोगिणी स्त्रीका जो धन है उसकी बालकके धनके समान रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

जीर्वन्तीनां तु तासां ये तद्वरेयुः स्वबान्धवाः । तच्छिष्याचौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥ प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निर्धापयेत् । अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥ ३० ॥

टीका—हम इस तुझारे धनकी और अधिकारियोंसे रक्षा रखेगे ऐसे वहानेसे जे बांधव जीवती हुई स्त्रीके धनको लेलें उनको आगे कह हुए चोरके दंडसे धर्मात्मा राजा दंड देवै ॥ २९ ॥ जिसका स्वामी नहीं जाना भया इसको वही राजा किसका क्यों खोगया है ऐसे ढोंडी पिटवाके राजद्वारा आदिमें रखवाके तीन वर्षतक देखै जो तीन वर्षके भीतर धनका स्वामी आय जाय तौ वही लेवै और तीनवर्षके पीछे राजा अपने काममें लावै ॥ ३० ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि । संवाद्यं रूपसंख्या दीन् स्वामी तद्व्यमर्हति ॥ ३१ ॥ अवेदथानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः । वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

टीका—जो कहै कि यह मेरा धन है उससे कैसा है कितना है और कहां खोया इस भांति पूछनी चाहिये तिस पीछे जो वह रूप और संख्या आदिको सत्य कहै तौ वह धनका स्वामी धन पानेके योग्य है ॥ ३१ ॥ नष्ट हुए द्रव्यके देशकालको अर्थात् इस देशमें और इस समयमें नष्ट हुआ है और वर्ण कहिये सपेद आदि रंग वाकडा मुकुट आदि और प्रमाणको न जानता हुआ पुरुष उस नष्ट हुए द्रव्यके बराबर दंडके योग्य है ॥ ३२ ॥

अददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ॥ दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥ प्रणष्टाधितं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ॥ यांस्तत्र चौरान् गृणीयात्तान् राजभेन धातयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—जो खोया हुआ धन राजाने पाया है उसमेंसे छठा दशमा अथवा बारहवां भाग रक्षा आदिके कारणसे पहले साधुओंका यह धर्म है इस बातको जानता हुआ राजा ग्रहण करै धनके स्वामीकी निर्गुणता तथा सगुणताकी अपेक्षा यह छठे भाग आदिके लेनेका विकल्प है बाकी धनके स्वामीको देवै ॥ ३३ ॥ जो

किसीका खोया हुआ धनराजाके नौकरोंको मिले उसको राजा पहरमें रखवावै उसकी चोरीमें जिन चोरोंको पकड़े उनको हाथीसे मरवावै ॥ ३४ ॥

ममार्थमिति यो ब्रूयाद्भिर्निधेन सत्येन मानवः । तस्याददीत पदं भागं राजा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥ अनृतं तु वदन्दण्डः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ॥ तस्यैव वा निर्धानस्य संख्याया लपीयसी कलाम् ॥ ३६ ॥

टीका—जो मनुष्य आप निधिको ( भूमिमें गड़ी द्रव्यका ) पाकै अथवा औरकी पाई हुईको मेरी यह निधि है यह सत्य प्रमाणसे अपने संबंधको प्रकट करै उस पुरुषकी सगुण निर्गुणकी अपेक्षा उस निधिसे आठवां भाग राजा लेवै और शेष उसको देवै ॥ ३५ ॥ जो अपना नहीं है उसको अपना कहता हुआ पुरुष अपने धनके आठमें भागसे दंड योग्य है अथवा उसी निधिके बहुतही छोटे भागको गनिकै जिस्से उसको दुःख न होय दंड करै ॥ ३६ ॥

विद्वान्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ॥ अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥ यं तु पश्येद्भिर्निधिराजा पुराणं निहितं क्षितौ ॥ तस्माद्विजेभ्यो दत्त्वा धर्मधनं चैव प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥

टीका—विद्वान् ब्राह्मण तौ पहले रक्खी हुई निधिको देखकर सब ले लेवै छठा भाग राजाको न देवै जिस्से वह सब धनसमूहका स्वामी है ॥ ३७ ॥ जो पुरानी भूमिमें गड़ी हुई बिना स्वामीकी निधिको राजा पावै तौ उसमेंसे आधी ब्राह्मणोंके देकर आधी अपने भंडारमें जमा करै ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ । अर्धभागक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥ ३९ ॥ दार्तव्यं सर्ववर्णेभ्यो राजा चौरैर्हृतं धनम् । राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

टीका—अपनी नहीं पुरानी भूमिमें गड़ी हुई निधिको और सुवर्ण आदिकी खानिको जो ब्राह्मणको छोड़के अन्य जाति पावै तौ उसके आधेका राजा स्वामी है कारण यह है कि वह रक्षा करता है और भूमिकाभी स्वामी है ॥ ३९ ॥ लोगोंका जो धन चोर लेजाय राजा उसको चोरोंसे मगवाकै धनके स्वामीको दे देवै उस धनको आप लेनेसे राजा चोरके पापको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्माश्च धर्मवित् ॥ समीक्ष्य कुलधर्मा

ॐ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ४१ स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संन्तो  
ऽपि मानवाः॥प्रियाभवंति लोकस्य स्वेस्वे कर्मण्यर्वास्थिताः॥४२

टीका—जाति धर्म कहिये ब्राह्मण आदि जातिमें नियत याजन आदि धर्मों-  
को तथा जानपद कहिये देशमें व्यवस्थित वेदसे विरुद्ध नहीं ऐसे धर्मोंको और  
श्रेणी धर्म कहिये बनिया आदि क्रयविक्रय करनेवालोंके कुलमें स्थित धर्मोंको  
जानिकै उनसे विरुद्ध न होय ऐसे धर्मोंको राजा व्यवहारमें स्थापित करै  
॥४१॥ जाति देश कुल धर्मादिक अपने कर्मोंको करते हुए और अपने २  
नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें स्थित दूरि रहनेपरभी निकट रहनेका स्नेह न रहनेपरभी  
लोकके प्यारे होते हैं ॥ ४२ ॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नार्प्यस्य पूरुषः ॥ न च प्रापितमन्ये  
न प्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥ यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः  
पदम् ॥ नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

टीका—प्रसंगसे आये हुए इसको कहिकै फिरि प्रकृतको कहते हैं॥ राजा अ-  
थवा राजाका नियत किया हुआ प्राड्विवाक आदि धनके लोभ आदिसे कार्य जो  
ऋण आदिका विवाद ( झगडा ) है उसको आप न उत्पन्न करै और अर्थो अथ-  
वा प्रत्यर्थी करि पहुचाये हुए कार्यकी धन आदिके लोभसे उपेक्षा ( बेपरवाही )  
न करै ॥ ४३ ॥ जैसे वहेलिया शस्त्रसे मारे हुए मृगके स्थानमें रुधिरके  
गिरनेसे पहुंचि जाता है वैसेही अनुमानसे अथवा दृष्ट प्रमाणसे राजा धर्मके  
तत्त्वका निश्चय करै ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ॥ देशं रूपं च कालं  
च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥ सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च  
द्विजातिभिः ॥ तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

टीका—व्यवहारके देखनेमें प्रवृत्त राजा छलको छोडकै सत्यको देखै तैसेही  
अर्थकोभी अर्थात् गौ सुवर्ण आदि धनके विषयमें स्थित व्यवहारको देखै आंखि  
मटकाकै इसने मेरी हंसी की इत्यादि छोटे अपराधोंको न सुनै और तत्त्वके नि-  
र्णयमें स्वर्ग आदिके फल पानेवाले आपको और सत्य बोलनेवाले साक्षियोंको  
और देश तथा कालको अर्थात् देश तथा कालमें उचितहै स्वरूप जिसका ऐसे  
व्यवहारके स्वरूपकी गुरुता लघुता आदि देखै ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धर्ममें प्र-

धान कहिये मुख्य ऐसे ब्राह्मणों करि देखे हुए और उस देश कुल तथा जातिसे विरुद्ध नहीं ऐसे शास्त्रके लेकर व्यवहारका निर्णय करै ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्धयर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥ दार्पयेद्धनिकस्यार्थं  
धर्मर्णाद्विभूवितम् ॥ ४७ ॥ यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तम  
र्णिकः ॥ तैस्तेरुपायैः संगृह्य दार्पयेद्धर्मर्णिकम् ॥ ४८ ॥

टीका—अधमर्ण जो ऋण लेनेवाला है उसकी अर्थ सिद्धिके लिये दिये हुए धनकी सिद्धिके लिये धनके स्वामी करि सूचित किया गया राजा जो आगे कहे जायगे ऐसे लेख्य ( तमस्सुक ) आदिके प्रमाणसे निश्चय किये हुए धनको अधमर्ण कहिये ऋणलेणेवालसे उत्तमर्ण अर्थात् धन देनेवालेको दिवावै ॥ ४७ ॥ कैसे दिवावै सो कहते हैं जो आगे कहे जायगे उन उपायोसे दिये हुए धनको उत्तमर्ण पावै उन उन उपायोसे वशमें करिकै उस धनको दिवावै ॥ ४८ ॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ॥ प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन  
बलेन च ॥ ४९ ॥ यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णेऽधर्मर्णिकात् ॥ न  
स राज्ञाभिर्भयोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

टीका—उन उपायोंको कहते हैं धर्मसे व्यवहारसे छलसे आचरितसे तथा पाचमें बलसे दिये हुए धनका साधन करै ॥ ४९ ॥ जो उत्तमर्ण दिये हुए धनको अधमर्णपर आपही बल आदिसे साबित करै वह अपने धनको भली भांति साधन करता हुआ हमसे बिना कहे तुझे क्यों बल आदि किया ऐसे कहकर राजाको न मना करना चाहिये ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभूवितम् ॥ दार्पयेद्धनिकस्यार्थं  
दण्डलेशं च शक्तिः ॥ ५१ ॥ अपहृत्त्वेऽधर्मर्णस्य देहीत्युक्तस्य  
संसदि ॥ अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

टीका—मैं इसका देनदार नहीं हूँ ऐसे धनके विषयमें छुपानेवाले अधमर्णको करण कहिये लेख्य तथा साक्षी और दिव्य ( कसम ) आदिसे साबित किये हुए धनको राजा उत्तमर्णके लिये दिवावै और छुपानेमें पुरुषशक्तिसे आगे कहे हुए दशमें भागसे न्यूनभी दंड दिवावै ॥ ५१ ॥ उत्तमर्णका धन दे इस भांति सभामें प्राड्विवाक करि कहे हुए अधमर्णके मैं इसका देनदार नहीं हूँ ऐसे मुकरनेपर अभियोग ( लानिश ) करनेवाला अर्थात् धन देनेके समय वर्तमान साक्षीको लावै



क्योंकि बहुधा स्त्री मूर्ख आदिके धनका निर्णय साक्षियोंहीसे होताहै इस्से प्रथम साक्षी देवै अथवा और लेख्य आदि दिखावे ॥ ५२ ॥

अदे॒श्यं यश्च॑ दि॒शति॑ नि॒दि॒श्याप॑न्दुते च॒र्यः॥ यश्चा॑र्धरोत्तरान॒र्थो  
न॒ वि॒गीता॑न्नावबुद्ध॒चये॑ ॥ ५३ ॥ अपदि॒श्यापदे॑श्यं च पुनर्यस्त्व  
पधा॑वति ॥ संम्यक् प्रणि॑हितं चार्थं पृष्टः सन्ना॑भिनेन्दति ॥ ५४ ॥  
असंभाष्ये साक्षिभिश्च॑ देशे संभाषते मिथः॥ निरुच्यमानं प्रश्नं च  
ने च्छेद्यश्चापि॑ निष्पतेत् ॥ ५५ ॥ ब्रूहीत्युक्तं च न ब्रूयादुक्तं च न  
विभा॑वयेत् ॥ न च पूर्वापरं विद्यात्तस्माद॒र्थात्स॑ होयते ॥ ५६ ॥

टीका—जो अदेश्य कहिये जिस देशमें ऋण लेनेके समय अधमर्णकी सदा स्थि-  
तिका संभव नहीं है उसको कहै अथवा जो देश आदिको कहिकै मैने यह नहीं  
कहाहै ऐसे मुकर जाय और जो पहले तथा पीछे अपने कहे हुए अर्थोंको विरु-  
द्ध नहीं जानताहै और जो मेरे हाथसे इसने सुवर्णका एक पल लियाहै ऐसे कहकै  
फिरि कहै कि मेरे पुत्रसे लियाहै और जो भलीभांति प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको तुमने  
रातिमें साक्षियोंके बिना क्यों दिया ऐसे प्राद्विवाकके पूछनेपर समाधान न करै  
और जो बात करनेके अयोग्य निर्जन आदि देशमें साक्षियोंके साथ परस्पर बा-  
त करै और जो कहे हुए अर्थकी दृढताके लिये प्राद्विवाकके कहे हुए प्रश्नकी इ-  
च्छा न करै और निष्पतेत् कहिये यहां ठरना योग्य नहीं जो तुम्हारे औरोंका  
ऐसा व्यवहार होनेपर ऐसे कहिकै नियत स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाय  
और जो कहौ ऐसे कहनेपर कुछ न कहै और जो कहे हुए साध्यको प्रमाणसे  
सिद्ध न करै और जो पहले साधनको और दूसरे साध्यको नहीं जानताहै असा-  
धनको साधन करिकै कहताहै असाध्यही जैसे इसने शशके सींगका बना मे-  
रा धनुष लियाहै इसको देना चाहिये इत्यादि बातोंको साध्यत्वसे कहै वह इस  
साध्य अर्थसे हीन होजाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दि॒शेत्युक्तो दि॒शेन्न॑ यः । धर्मस्थः कां  
रणैरेत॑ हीनं तमपि॑ निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥ अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्  
ध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः न चेद्ब्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मप्रति॑ पराजितः ५८

टीका—मेरे साक्षी हैं ऐसे कहिकै उनको लाओ ऐसा कहनेपर जो साक्षियों-  
को नहीं लाताहै उसको धर्ममें स्थित प्राद्विवाक पहले कहे हुए इन कारणोंसे हा-

रा हुआ कहै ॥ ५७ ॥ जो अर्थी राजस्थानमे निवेदन ( लानिश ) करिकै भाषा-  
में ( इजहारोंके समय ) न कहै तौ विषम तथा भारी मुकद्दमेकी अपेक्षासे ब-  
धके योग्यहै और हलकेमें धर्मसे दंडके योग्यहै और जो प्रत्यर्थी तीनिपक्षमें न  
कहै तौ धर्मसे हारताहै छलसे नहीं ॥ ५८ ॥

यो यावन्निन्दुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ॥ तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ  
दोष्यौ तद्विगुणं दमम् ॥ ५९ ॥ पृष्टोऽप्यव्ययमानस्तु कृतावस्थो  
धनेषिणा ॥ त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

टीका—जो प्रत्यर्थी जितने धनको मुकरि जाय अथवा अर्थी जितने धनमें  
मिथ्या बोलै वे दोनो अधर्मी छुपाने तथा झूठ कहे हुए धनसे दुगुना दंड दिवा-  
ने योग्यहैं अधर्मज्ञौ इस वचनसे जानिकै छुपाने तथा मिथ्या कहनेके मध्ये यह  
दंडहै प्रमाद आदिसे छुपाने तथा झूठनि योग ( दावा ) करनेमें सौका दशमा  
भाग कहै गे ॥ ५९ ॥ धनके चाहनेवाले उत्तमर्ण करि राजपुरुषोंसे हुलवाया ग-  
या और प्राद्विवाक करि पूछा गया जब मैं नहीं देनदार हौं ऐसे छुपाय जाय  
तब राजाके अधिकारी ब्राह्मणके आगे तीनिसे कम न होंय ऐसे साक्षियोंसे अर्थी-  
को सावित करना चाहिये ॥ ६० ॥

यादृशा धनिभिः कार्यं व्यवहारेषु साक्षिणः ॥ तादृशान्संग्रह्य  
मि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥ गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रवि  
द्वैशूद्रयोऽनयः ॥ अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

टीका—उत्तमर्ण आदि धनियोंको ऋण लेने आदि व्यवहारेमें जैसे साक्षी  
करने चाहिये उनको मैं कहौंगा और जैसे उनको सत्य बोलना चाहिये उस प्रकार-  
रको भी कहौंगा ॥ ६१ ॥ गृहस्थ पुत्रयुक्त उसी देशके और जातिमें क्षत्रिय वैश्य  
शूद्र होंय ऐसे अर्थीके बतलाये हुए साक्षीके योग्य होते हैं वे निश्चय करि स्त्रीपुत्र  
आदिके विनाशके भयसे और उस देशके बसनेवालेसे विरोधके कारण अन्यथा  
नहीं कहेंगे ऋण लेने आदिसे जो कोई साक्षी नहीं होते हैं आपत्तिमे तौ वाग्दंड  
पारुष्य स्त्रीसंग्रहण आदिमें तौ कहे हुए साक्षियोंसे भिन्न साक्षी होते हैं ॥ ६२ ॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ॥ सर्वधर्मविदोऽलुब्धा  
विपरितास्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ नार्थसंबन्धिर्नोनाप्ता न सहाया न

वैरिणः ॥ न दृष्टदोषाः कर्त्तव्या न व्याध्यार्त्ता न दूषिताः ॥ ६४ ॥

टीका—सब वर्णोंमें आपस कहिये यथार्थ कहनेवाले सब धर्मोंके जाननेवाले और लोभ रहित साक्षी करने चाहिये और इनसे विपरीत न करै ॥ ६३ ॥ ऋण आदि अर्थके संबंधी अर्थात् अधमर्ण आदि और प्राप्त कहिये मित्र और सहायता करने वाले और वैरी और दृष्ट दोष कहिये जिनका कही झूठी गवाही देना जाना गयाहै और रोगी तथा जिनको महापातक आदि दोष लगि रहाहै ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६४ ॥

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशोल्बो ॥ न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः ॥ ६५ ॥ नाध्यधीनो न वर्त्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ॥ न वृद्धो न शिशुर्न को नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

टीका—प्रभुहै इस कारणसे पूछने योग्य न होनेसे राजा साक्षी नहीं करने योग्यहै और कारुक कहिये सूपकार आदि कुशीलव कहिये नट आदि क्योंकि वे अपने कामसे अवकाश नहीं पाते हैं और बहुधा धनके लोभसे साक्षी होते हैं और वेदका पढ़ना तथा अग्निहोत्र आदि कर्ममें लगे रहनेसे वेदपाठीको साक्षी न करै लिङ्गस्थ कहिये ब्रह्मचारी और संगविनिर्गत कहिये संन्यासी ये दोनो भी अपने कर्ममें व्याकुल तथा ब्रह्मके ध्यानमें लगे रहते हैं इससे येभी साक्षी नहीं करनेयोग्यहैं श्रोत्रियके कहनेसे अग्निहोत्र आदिमें लगे हुए ब्राह्मणसे अन्य ब्राह्मणका निषेध नहीं है ॥ ६५ ॥ अध्यधीन कहिये जो बहुतही पराधीन होय ऐसा गर्भदास विहित कर्मके त्यागसे लोकमें निंदित है इस कारण साक्षी नहीं करना चाहिये और दस्यु कहिये चूरकर्म करनेवाला और विकर्मकृत् कहिये निषिद्ध कर्म करनेवाला क्योंकि उनसे राजाके द्वेष आदिका संभवहै और वृद्ध न करना चाहिये क्योंकि बहुधा वृद्धकी बुद्धिमें अंतर पडिजाताहै और बालक न करना चाहिये क्योंकि वह व्यवहारसे बाहरहै और एक न करना चाहिये और अंत्य कहिये चांडाल आदि और विकलेन्द्रिय कहिये जिसकी कान आदि इंद्रियां विगडी होय ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६६ ॥

नात्तो न मत्तो नो न्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ॥ न श्रमात्तो न कामात्तो न कुब्धो नापि तस्करः ॥ ६७ ॥ स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां

सदृशा द्विजाः । शूद्रार्थं सतं ; शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ ६८ ॥

टीका—आर्त्त कहिये बंधुविनाश आदिसे दुखी और मद्य आदिसे मतवारा और भूत आदिके आवेशसे उन्मत्त और भूख प्यास आदिसे पीडित और श्रमार्त्त कहिये मार्गके चलने आदिसे थका हुआ और कामके जो बशमें होय तथा जिसको 'क्रोध' उत्पन्न हुआ होय और चोर ये सब साक्षी न करने चाहिये ॥ ६७ ॥ स्त्रियोंके आपसके ऋण लेने आदि व्यवहारमें स्त्री साक्षिणी होती हैं और द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके सदृश कहिये समान जातिके साक्षी होते हैं ऐसेही शूद्रोंके सज्जन शूद्र साक्षी होते हैं और चांडालोंके चांडाल आदि साक्षी होते हैं और सजातीय साक्षी न होनेपर और जातिकेभी होते हैं ॥ ६८ ॥

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् । अन्तर्वैमन्यं  
पये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥ ६९ ॥ स्त्रियाप्यसंभवे कार्ये बाले  
न स्थविरेण वा ॥ शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भूतकेन वा ७० ॥

टीका—घरके भीतर अथवा वन आदिमें चोरों करि किये हुए उपद्रवमें देहमें चोट लगनेपर अथवा आततायी आदिके किये हुए उपद्रवमें जो कोई मिलजाय वह वादियोंका साक्षी होता है ऋणदान आदिके समान कहे हुए लक्षण करि युक्त साक्षी नहीं होते हैं ॥ ६९ ॥ घरके भीतर आदिमें कहे हुए साक्षी न होनेपर स्त्री बालक वृद्ध शिष्य मित्र सेवक और कर्म करनेवालेभी साक्षी होते हैं ७०

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वैदतां मृषा जाानीयादस्थिरां वाचमु  
त्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥ साहसेषु च सर्वेषु स्तेर्यसंग्रहणेषु च ॥  
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षित साक्षिणः ॥ ७२ ॥

टीका—बालक वृद्ध रोगी और उपद्रवयुक्त मनवाले मत्त उन्मत्त आदिकोंके गवाही देनेमें झूठ बोलनेवालोंकी वाणी स्थिर नहीं होती है इससे उनका अनुमानसे जानै ॥ ७१ ॥ घर जला देने आदि साहसमें और चोरी स्त्रीसंग्रहण और वाग्दण्डपारुष्यमें साक्षियोंकी कही हुई परीक्षा न करनी चाहिये ॥ ७२ ॥

बहुत्वं परिगृणीयात्साक्षिद्वैधे न राधिपः ॥ समेषु तु गुणोत्कृष्टान्  
गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥ समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव  
सिद्ध्यति ॥ तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४ ॥

टीका—साक्षियोंके आपसमें विरुद्ध कहनेपर जिसको बहुतसे कहैं उसको राजा निर्णय प्रमाण करै और जो बराबर होय तौ गुणवानोंका प्रमाण करै गुणवानोंमेंभी जो विरोध पड़े तौ ब्राह्मणोंमें जो क्रियावान उत्तम होय उनको प्रमाण करै ॥ ७३ ॥ सामने देखनेसे और कानोंसे सुननेसेभी साक्षी होताहै सत्य बोलता हुआ साक्षी धर्म तथा अर्थ करि मुक्त नहीं होताहै ॥ ७४ ॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विबुधैर्नार्यसंसदि। अवाङ्मरकर्मभ्येति प्रेत्यं स्वं  
गोचं हीयते ॥ ७५ ॥ यज्जानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन ।  
पृष्टस्तत्रापि तद्व्याध्यादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

टीका—साधुओंकी सभामें देखे हुए और सुनेसे अन्यथा कहता हुआ साक्षी नीचा मुखहो नरकको जाताहै और परलोकमेंभी अन्य कर्मोंसे प्राप्त स्वर्गरूप फलसे हीन होजाताहै ॥ ७५ ॥ तुम इस विषयमें साक्षी हो ऐसे कहकै नहीं किया हुआभी जो कुछ ऋणका लेना आदि देखे अथवा वाक्पारुष्य आदिको सुने वहां साक्षी देखे सुनेके अनुसार कहै ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥ स्त्रीबुद्धे  
रस्थिरत्वाच्च दोषैश्चान्येऽपि ये वृत्ताः ७७ स्वभावेनैव यद्गुणस्त  
द्वाह्यं व्यावहारिकम् ॥ अतो यदन्यद्विबुधैर्धर्मा र्थं तदपार्थक्यम् ७८

टीका—लोभ रहित एकभी साक्षी होता है और अपनी शुद्धताईसे युक्त बहुतभी स्त्रियां बुद्धि स्थिर न होनेके कारण ऋणादान आदिपर्यालोचित व्यवहारमें साक्षिणी नहीं होती हैं और अपर्यालोचित चोरी तथा वाग्दंडपारुष्य आदि व्यवहारमें असंभव होनेपर स्त्रीकोभी साक्षी करना स्नाहिये तथा औरभी जो चोरी आदि दोषों करि युक्तहैं वेभी पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षी नहीं होते हैं ॥ ७७ ॥ जो साक्षी भय आदिके विना स्वभावसे कहैं वह व्यवहारके निर्णयके लिये ग्रहण करना चाहिये और जिसको वे स्वाभाविकसे तथा अन्य किसी कारणसे कहैं वह धर्मके विषयमें निष्प्रयोजनहै उसको न ग्रहण करै ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥ प्राङ्निवाकोऽनुयु  
ज्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥ यद्वयोरनयोर्वैतथ्यं कार्येऽ  
स्मिन् चेष्टितं मिथः ॥ तद्वृत्तं सर्वसंत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ८०

टीका—सभामें आये हुए साक्षियोंसे अर्था प्रत्यर्थीके सामने राजाका अधि-

कारी ब्राह्मण मीठी बातें कहता हुआ आगे कहे हुए प्रकारसे पूँछे ॥ ७९ ॥ इन दोनों अर्थों प्रत्यर्थियोंके आपसके इस काममें जो जानते हो वह सब सत्य कहो तुम इसमें साक्षी है ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानामोति पुष्कलान् ॥ इह चानुत्तमां  
कीर्त्तिं वागेषां ब्रह्मपूजितां ॥ ८१ ॥ साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बद्धयते  
वारुणैर्भृशम् । विवशः शतमार्जातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥ ८२

टीका—साक्षी अपने काममें सत्य कहता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मलोक आदि लोकोंको प्राप्त होता है और इस लोकमें अति उत्कृष्ट ख्यातिको प्राप्त होता है जिसे यह सत्यरूपवाणी ब्रह्माकरि पूजित है ॥ ८१ ॥ साक्षी झूठीवाणी को कहता हुआ वरुणकी पाश अर्थात् सर्परूप रस्सियोंसे बंधा हुआ और जलोदर नाम रोगके पराधीनहों सौ जन्मतक अत्यंत पीडित रहता है तिससे साक्षीको सत्यबोलना चाहिये ॥ ८२ ॥

सत्येन पूर्यते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥ तस्मात्सत्यं हि वर्तव्यं स  
र्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा त  
थात्मनः ॥ मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

टीका—साक्षी सत्य कहनेसे पूर्वजन्ममें भी इकठ्ठे किये हुए पापसे छूटि जाता है और सत्य कहनेसे इसका धर्म बढ़ता है तिससे सवर्णके विषयमें साक्षीको सत्य कहना चाहिये ॥ ८३ ॥ शुभ अशुभ कर्ममें स्थित आत्माही अपना रक्षक है तिससे मनुष्योंके मध्यमें उत्तम साक्षी आत्माको झूठ बोलनेसे मत तिरस्कार कर ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो नैकश्चित्पश्यतीति नः ॥ तांस्तु देवाः प्रप  
श्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥ द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्क  
ग्नियमानिलाः ॥ रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वर्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

टीका—पाप करनेवाले ऐसा जानते हैं कि अधर्म करनेमें हम कोई नहीं देखता है परंतु उनको आगे कह हुए देखते हैं और अपना अंतरात्मा पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥ दुलोक, पृथिवी, जल, हृदयमें स्थित जीव, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, पवन, रात्रि, और दोनों संध्या और धर्म ये सब देहधारियोंके शुभ कर्मको जानते हैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ॥ उदङ्मुखान्प्राङ्मु-

खान्वा पूर्वाह्ने वै शुचिः शुचीन् ॥८७॥ ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्स  
त्यं ब्रूहीति पार्थिवम्। गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वस्तु पातकैः ८८

टीका—प्रतिमा आदिकोसें जो पूर्वको अथवा उत्तरको मुख किये होय आप प्रा-  
द्विवाक शुद्ध होकै पूर्वाह्न काल अर्थात् दुपहरके पहले साक्ष्य (गवाही) पूछै ॥८७॥  
ब्रूहि कहिये कहौ ऐसा शब्द कहिकै ब्राह्मणसे पूछै और सत्य कहौ ऐसा कहिकै  
क्षत्रियसे पूछै और गौ, बीज तथा सुवर्णके चुरानेमें जो पाप होताहै सो तुमको  
झूठ बोलनेमें होगा ऐसे कहिकै वैश्यसे पूछै और जो झूठ बोलोगे तौ जिनको  
आगे कहैगे उन सब पापों करि युक्त होगे ऐसे कहिकै शूद्रसे पूछै ॥ ८८ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृतां लोकान् ये च स्त्रीषालघातिनः। मित्रद्रुहः कृतघ्न  
स्य ते ते<sup>१</sup> स्युर्ब्रुवन्तो मृषा ॥८९॥ जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भ  
द्र त्वया कृतम् ॥ तं ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥९०॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेवालेको तथा स्त्री और बालकके मारनेवालेको औ-  
र मित्रद्रोहीको तथा कृतघ्नीको जो लोक मिलते हैं वे झूठवा गवाही देनेवाले  
को प्राप्त होते है ॥८९॥ हे शुभ आचारवाले जन्मसे लगाकै जो कुछ तुमने सुकृत  
कियाहै सो सब तुम्हारा झूठी गवाही देनेसे कूकुर आदिमें चला जायगा ॥९०॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणमन्यसे ॥ नित्यं स्थितस्ते<sup>२</sup>  
हृदयेषां पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९१॥ यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष  
हृदि स्थितः ॥ तेन चेदविवादस्ते मां गद्गन् मां कुरुन् गर्मः ॥९२॥

टीका—हे भद्र मैं जीवात्मक एकही हौं यह जो तुम आपको मानते हो तौ  
ऐसा मति मानौ क्योंकि पापों और पुण्योंका देखनेवाला मुनि कहिये सर्वज्ञ प-  
रमात्मा सदा तुम्हारे हृदयमें स्थित है ॥ ९१ ॥ सबके संयमनसे यम और दंड-  
धारी हानेसे वैवस्वत और क्रीडा करनेसे देव जो यह तुम्हारे हृदयमें स्थित है  
उसके साथ यथार्थ कहनेसे जो तुम्हारा विवाद न होय जब तुम्हारे मनोगतको  
यह और प्रकारसे जानताहै और तुम और प्रकारसे कहतेहौं तौ अंतर्दामीके साथ  
तुम्हारा विरोध होगा इससे सत्य कहनेहीसे तुम पाप रहित और कृतकृत्यहो पाप  
दूर करनेके लिये गंगा तथा कुरुक्षेत्रको मति जाओ ॥ ९२ ॥

नम्रो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥ अन्धः शत्रुकुलं  
गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥९३॥ अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किं

त्विषी नरकं व्रजेत् ॥ यः प्रश्नं विंशतं ब्रूयात्पृष्ठः सन् धर्मे निश्चये १४

टीका—जो झूठ साक्ष्य देता है वह नंगा तथा मुडिया हो खपरों में भीख मांगने को शत्रु कुल में जाता है ॥ १३ ॥ धर्म के निश्चय के लिये पूछा गया जो पुरुष झूठ बोलता है वह पापी अधोमुख हो बड़े अंधकार में जो नरक है उसमें जाता है ॥ १४ ॥

अन्धो मत्स्यानिवाश्रति स नरः कण्टकैः सह ॥ यो भार्षते रथैर्  
कैल्यमप्रत्यक्षं स भागैतः ॥ १५ ॥ यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्र  
ज्ञो नाभिर्शङ्कते ॥ तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः १६

टीका—सभामें गया हुआ जो पुरुष तत्व अर्थ के ठीक ठीक भाव को न जानि घूसी आदि सुख के लेश से कहता है वह अंधे के समान काटे समेत मछलियों को खाता है सुख की बुद्धि से तो प्रवृत्त होता है परन्तु बड़े दुःख को पाता है ॥ १५ ॥ जिसके कहते हुए सर्वज्ञ अंतर्यामी क्या यह झूठ बोलता है अथवा सत्य ऐसी शंका नहीं करता है किंतु सत्य ही कहता है ऐसे शंका रहित होता है लोक में अति उत्तम सस्से पुरुष देवता नहीं जानते हैं ॥ १६ ॥

यौवतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥ तौ त्वतः सं  
ख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥ १७ ॥ पञ्च पञ्चनृते हन्ति  
दश हन्ति गर्वानृते ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ १८ ॥

टीका—जिस पशु आदिके निमित्त साक्ष्य ( गवाही ) में झूठ कहता हुआ जितने पिता आदि बांधवों को नरक में डालता है गणना से गिनाये हुए उनको हे साधो मुझ से सुनो अथवा जितने बांधवों को मारता है उनके मारने के फल को पाता है उनको सुनो दोनो पक्षों में झूठ बोलने की निंदा हुई ॥ १७ ॥ पशु के मध्ये झूठ बोलने में पांच बांधवों को नरक में डालता है अथवा पांच बांधवों के मारने के फल को पाता है ऐसे गौओं के विषय में दश के और अश्व के मध्ये सौ के और पुरुष के विषय में एक हजार के यह संख्या का गौरव प्रायश्चित्त के गौरव के लिये है ॥ १८ ॥

हन्ति ज्ञातान्ज्ञातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृते हन्ति  
मां स्म भूम्यनृतं वदीः ॥ १९ ॥ अप्सु भूमिव दित्याहुः स्त्रीणां भो  
गे च मैथुने ॥ अञ्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥

टीका—सुवर्ण के लिये झूठ बोलता हुआ पुरुष उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए पुत्रपौत्र आदिकों नरक में डालता है अथवा इनके मारने के फल को पाता है और



भूमिके मध्ये झूठ बोलता हुआ सब प्राणियोंके मारनेके फलको पाताहै ति-  
स्से भूमिके मध्ये झूठ मत बोले यह शिष्यकी शिक्षाका कथनहै ॥ ९९ ॥ वैदूर्य  
आदि मणियोंकी झूठमें भूमिके समान दोषहै यह कहतेहैं तलाव तथा कुआके ले-  
नेयोग्य जलके मध्ये और स्त्रियोंके मैथुन नाम उपभोगमें और अब्ज कहिये जल-  
से उत्पन्न हुए मोती आदिकोंके मध्ये और पाषाणमयी वैदूर्य अदिके मध्ये झू-  
ठमें भूमिके समान दोष कहते हैं ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे॥ यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वं  
मेवाञ्जसा वद ॥ १ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवा  
न् ॥ प्रैष्यान्वाधुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ २ ॥

टीका—झूठ बोलनेमें तुम इन सब दोषोंको देखि जैसा देखा और सुना हो-  
य वैसाही तत्त्वसे कहौ ॥ १ ॥ गौओंकी रक्षासे जीनेवाले और वाणिज्यसे जी-  
ने वाले तथा सूपकार आदि कारु कर्मसे जीनेवाले तथा नटके कामसे और नाच-  
ने गानेसे जीनेवाले और दासकर्मसे जीनेवाले और निषिद्ध जीविका करनेवा-  
ले ब्राह्मणोंसे साक्षीके प्रश्नमें शूद्रके समान पूछे ॥ २ ॥

तद्वदन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः॥ न स्वर्गाच्च्यवते लोका  
दै वीयाचं वदन्ति ताम् ॥ ३ ॥ शूद्रविद्वक्षत्रविप्राणां यत्रतोऽतौ  
भवेद्वधः ॥ तत्र वर्तव्यमनृतं तद्धि सत्यादिशिष्यते ॥ ४ ॥

टीका—साक्ष्यको अन्यथाभी जानता हुआ मनुष्य धर्मसे दया आदि करि  
व्यवहारोंमें अन्यथा कहता हुआ स्वर्गसे नहीं भ्रष्ट होताहै जिस्से यह कारण-  
विशेषसे जो झूठ कहना है उसको मनु आदि देवसंवेधिनी वाणी कहते हैं ॥ ३ ॥  
जहां सत्य कहनेमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रका वध होता होय वहां झूठ  
बोलना चाहिये क्योंकि वह झूठ सत्यसे अधिकहै ॥ ४ ॥

वागदैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरस्ते सरस्वतीम् ॥ अनृतस्यैनसस्तस्य  
कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ ५ ॥ कूष्माण्डैवोपि जुहुयाद्धृतमग्नौ य  
थाविधि ॥ उदित्यृचा वा वारुण्या ऽर्यचेनाब्देवतेन वा ॥ ६ ॥

टीका—वे झूठ बोलनेवाले साक्षी झूठसे उत्पन्न हुए पापकी उलूख शुद्धिको क-  
रते हुए वाणी है देवता जिसका ऐसे चरुसे सरस्वतीका यजन करें ॥ ५ ॥ यजु-  
वेदके यद्देवादेवहेलनं इत्यादि कूष्माण्ड मंत्रहैं उन मंत्रोंसे देवताके निमित्त अग्नि-

में विधिपूर्वक घृतका होम करै और अपने गृहमें कहे हुए परिस्तरण आदि होमके धर्मसे वरुणहै देवता जिसके ऐसी उदुत्तमंवरुणपाशम इस ऋचासे और उदक जिसकी देवता है ऐसी आपोहिष्ठा इस ऋचासे घीका अग्निमें होम करै ॥६॥

त्रिपेक्षादबुवन्सौक्ष्यमृणादिषु नेरोऽगदः । तद्वर्णं प्राप्नुयात्सर्वं दर्शवन्धं च सर्वतः ॥ ७ ॥ यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः । रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥ ८ ॥

टीका—जो रोगरहित साक्षी ऋणदानादि व्यवहारोंमें तीनि पक्षों तक जो गवाही न दे तो उस विवादका सब धन उत्तमर्णको देवै और उस सब ऋणका दशमा भाग राजाकी दंड देवै ॥७॥ जो गवाही दे चुकहै ऐसे साक्षीके जो सात दिनके भीतर रोग आगि लगना, अथवा समीपी पुत्र आदि ज्ञातिके मरणमेसे कोई होय तो मिथ्याका दोष प्रकट होनेके कारण उत्तमर्णका ऋण और राजाका दंड उससे दिलाना चाहिये ॥ ८ ॥

असाक्षिकेषु त्वथेषु मिथो विवदमानयोः ॥ अविन्दस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लभ्येत् ॥ ९ ॥ महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ॥ वसिष्ठश्चापि शपथं शेषैर्वयनेनृपे ॥ ११० ॥

टीका—जिनके साक्षी नहीं हैं ऐसे व्यवहारोंमें आपसमें विवाद करनेवालोंके तत्वको छल आदिके विना नहीं प्राप्त होता हुआ प्राङ्गिवाक जो आगे कहिये उस शपथसे सत्यको जानै ॥९॥ सप्तऋषियोंने और इंद्रादिक देवताओंने संदेहयुक्त कार्योंके निर्णयके लिये शपथ बनाये इसने सौ पुत्र स्वाय लिये ऐसे विश्वामित्र करि दोष लगाये गये वसिष्ठ मुनिने अपनी शुद्धिके लिये पियवननाम राजाके पुत्र सुदामा राजाके आगे शपथ किया यहां शप धातुका करना अर्थ किया है ॥११०॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नेरो बुधः ॥ वृथा हि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेहं च नश्यति ॥ ११ ॥ कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥ १२ ॥

टीका—पंडित छोटेभी काममें वृथा शपथ कहिये सौगंद न करै क्योंकि वृथा शपथ करता हुआ मनुष्य परलोकमें तथा इस लोकमें नरकके मिलने तथा अजसके मिलनेसे नाशको प्राप्त होता है ॥११॥ जिसको बहुत स्त्री हैं वह एक स्त्रीसे ऐसे कहै कि मैं औरको नहीं चाहता हौं तूही मेरी प्यारी है इस भांति अच्छे भोगके लाभके

लिये शपथ करै और विवाहोंमें जैसे मैं और व्याह न करोंगा और गौके लिये घास आदिके ले लेनेमें और अग्निमें होमके लियेई धनके लेनेमें और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अंगीकार किये हुये धन आदिमें वृथा शपथ करनेसे पाप नहीं होताहै १२

सत्येन शर्पयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं  
सर्वैस्तु पातकैः ॥ १३ ॥ अग्निं वाह्यारयेदेनमप्सु चैनं निर्मज्जयेत् ॥  
पुत्रदारस्य वाप्ये न शिरांसि स्पृशयेत्पृथक् ॥ १४ ॥

टीका—ब्राह्मणको सत्य शब्दका उच्चारण करिकै शपथ करावै और क्षत्रिय-  
को वाहन तथा आयुधोंसे अर्थात् मेरे सब चाहन तथा आयुध निष्फल होय ऐ-  
से शपथ करावै और गौ बीज तथा सुवर्ण निष्फल होय ऐसे वैश्यसे और  
मुझको सब पापहोय ऐसे शूद्रसे शपथ करावै ॥ १३ ॥ अग्निके समान पचास  
पलका आठ अंगुलके लोहेके गोलेको शूद्र आदिके दोनो हाथोंमें सात पीपलके  
पत्ते रखके धरावै और पितामह आदि करिकही हुई विधिसे सात पैडतक चलावै  
और जोक आदि करि रहित जलमें इसको गोता दिवावै और पुत्रोंके तथा  
स्त्रीका शिर जुदा जुदा इसको छुवावै ॥ १४ ॥

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ॥ न चातिमृच्छति क्षिप्रं  
संज्ञैर्यः शर्षथे शुचिः ॥ १५ ॥ वत्सस्य ह्यभिज्ञस्तस्य पुरा भ्रात्रा  
पवीयसा ॥ नाग्निर्देदाहं रोमां पितृत्येन जगंतःस्पृशः ॥ १६ ॥

टीका—जिसको प्रकाशमान अग्नि न जलावै और जल जिसको उपरको न  
उछाले और जो बड़ी पीडाको न प्राप्त होय वह शपथमें शुद्ध जानना चाहिये  
॥ १५ ॥ पहलें समयमें वत्सनाम ऋषिको वैमात्र छोटे भाईने यह दोष लगा-  
या कि तू ब्राह्मण नहीं है शूद्रका पुत्र है इसके शपथके लिये अग्निमें घसे हुए  
उस ऋषिके रोमकोभी अग्निने सत्यके कारणसे नहीं जलाया ॥ १६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्निवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ॥ तत्तत्कार्यं निर्व-  
र्तत कृतं चाप्यंकृतं भवेत् ॥ १७ ॥ लोभान्मोहाद्वैश्यान्मैत्रात्क्रोमा-  
त्क्रोधात्तथैव च ॥ अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं विवर्तयमुच्यते ॥ १८ ॥

टीका—जिस जिस व्यवहारमें साक्षियोंने झूठ कहाहै यह निश्चय होजाय न-  
ही पूर हुए उस उस कामको प्राद्विवाक लौटाय देवै और जो दंडकी समाप्ति त-

कभी पहुंचि गया होय उसकीभी फिर परीक्षा करै ॥ १७ ॥ लोभसे और मोह कहिये विपरीत ज्ञानसे और भयसे, स्नेहसे, कामसे क्रोधसै, अज्ञानसे और बाल-भाव कहिये असावधानीसे झूठी गवाही दीजाती है ॥ १८ ॥

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ तस्य दण्डविशेषास्तु  
प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ १९ ॥ लोभात्सहस्रं दण्डयस्तु मोहात्पूर्वं तु  
साहसम् ॥ भयाद्धौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२० ॥

टीका—इन लोभ आदिकोंमेंसे किसी कारणके होनेपर जो साक्षी झूठी गवाही देता है उसके दंड विशेषोंको क्रमसे कहोंगा ॥ १९ ॥ लोभसे झूठी गवाही देनेपर जिनको आगे कहेंगे ऐसे हजार पण दंड देना चाहिये मोहसे प्रथम साहस जो आगे कहा जायगा और भयसे मध्यम साहस जो आगे कहे जायंगे और मैत्रसे चौगुना प्रथम साहस जानिये ॥ १२० ॥

कामादंशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ॥ अज्ञानाद्धे शंते पूर्णे  
बालिश्याच्छतमेवं तु ॥ २१ ॥ एतानाहुः कौटंसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डा  
न्मनीषिभिः ॥ धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ २२ ॥

टीका—स्त्रीसंभोगरूप कामसे झूठी गवाही देते हुए को दशगुणा प्रथम साहस दंड देना चाहिये और क्रोधसे वक्ष्यमाण त्रिगुना मध्यम साहस और अज्ञानसे दोसौ पण और बालिश्य कहिये असावधानीसे एकसौही पण दंडदेना चाहिये ॥ २१ ॥ सत्यरूप धर्मके न लोप होनेके लिये और असत्यरूप अधर्मके निवारणके लिये झूठी गवाही देनेमें पहले मुनिश्वरोंके कहे हुए दंडोंको मनु आदि कहते हैं ॥ २२ ॥

कौटंसाक्ष्यं तु कुर्वाणान्ध्रान्धार्मिको नृपः ॥ प्रवासयेद्दण्डयि  
त्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ २३ ॥ दर्शं स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वा  
यंभुवोऽब्रवीत् ॥ त्रिषु वर्णेषु याँनि स्युरक्षतो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ २४ ॥

टीका—झूठी गवाही देनेमें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनो वर्णोंको धर्मात्मा राजा पहले कहे हुये दंडको देकर अपने देशसे त्रिकांश देवै और ब्राह्मणको तौ धन-दं-देशसे निकाल देवै । हरण्यगः मनुने दंडके दश-स्थान कहे हैं जो क्षत्रिय आदि तीनो वर्णोंमें होते हैं और ब्राह्मण तौ बडे अपराध ( कसूर ) के होनेपर अक्षत शरीर देशसे निकाला जाता है ॥ २४ ॥

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ॥ चक्षुर्नासा च कर्णौ च  
धनं देहस्तैर्वै च ॥ २५ ॥ अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वं  
तः ॥ सारापराधौ चालोर्क्य दण्डं दण्डयेषु पातयेत् ॥ २६ ॥

टीका—लिंग १ उदर २ जीभ ३ हाथ ४ पांव ५ पांचमा अंगुलि ६ नाक ७ कान ८ धन ९ और देह १० ये दशदंडके स्थान कहे हैं इनमेंसे जिस जिस अंगसे अपराध होय तौ अपराधकी लघुता गुरुता देखके उस उस अंगका ताडन छेदन आदि करना चाहिये थोड़े अपराधमें धन दंड और महापातक आदिमें देह दंड कहिये मारना कहा है ॥ २५ ॥ बारंवार इच्छासे अपराध करनेको देखि ग्राम और वन आदि अपराधके स्थान हैं और दिनराति आदि अपराधके काल हैं इनको भलीभांति देखि सार कहिये अपराध करनेवालेका धन शरीर आदिकी सामर्थ्यको और थोड़े अथवा बहुत अपराधको देखि दंडके योग्य पुरुषोंको दंड देवै ॥ २६ ॥

अधर्मदण्डनं लोके यशोग्रं कीर्तिनाशनम् ॥ अस्वर्ग्यं च परत्रा  
पि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ २७ ॥ अदण्ड्यान्दण्डयन्त्राजा दण्ड्यां  
श्चैर्वाप्यदण्डयन् ॥ अयशो महदामोति नरकं चैव गच्छति ॥ २८ ॥

टीका—जीवते हुये ख्यातिको यश कहते हैं और मरे हुएकी ख्यातिको कीर्ति कहते हैं तिससे दोष आदिके जाने बिना दंड देनेसे इस लोकमें यशका नाश होता है और परलोकमें मरे हुएकी कीर्तिका नाश होता है अर्थात् और धर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग का रोकनेवाला है इससे उसका त्याग करै ॥ २७ ॥ जो दंडके योग्य नहीं हैं उनको धनलोभ आदिसे दंड देता हुआ और दंड देनेके योग्य हैं उनको अनुरोध आदिसे नहीं दंड देता हुआ राजा बड़े अयशको पाता है तथा नरकमें भी जाता है ॥ २८ ॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्विदण्डं तदनन्तरम् ॥ तृतीयं धनदण्डं तु  
वर्धदण्डमंतः परम् ॥ २९ ॥ वधेनापि यदा त्वेतान्निर्ग्रहीतुं न श  
क्यात् ॥ तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुजीत चतुष्टयम् ॥ ३० ॥

टीका—तुमने अच्छा नहीं किया फिर ऐसा न करना ऐसे वाणीसे धमकाना वाग्दंड है सो प्रथम अपराधमें गुणवान्को करना चाहिये तिस परभी जो शांति न होय तौ धिक्कार रूप दंड करै अर्थात् तेरे जन्मको धिक्कार है ऐसे कहै तिसपरभी

न मानै तौ तीसरा धनदंड ( जुर्माना ) करै तिसैपरभी निषिद्ध कर्म करै तौ व-  
धदंड अर्थात् त्राडना तथा अंगका काटना आदि करै मारै नहीं ॥ २९ ॥ जब  
अंगच्छेद आदि उलटे दंडसे जो दंडयोग्यको वशमें न करसकै तब इसमें वा-  
गदंड आदि चारौ करै ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥ तां प्ररूप्य सुवर्णानां  
तां प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जालान्तरगतं भानौ यत्सूक्ष्मं दृ-  
श्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ ३२ ॥

टीका—तांबे रूपे और सुवर्ण आदिकी जो पण आदि संज्ञा मोललेने बेच-  
ने आदि लोकके व्यवहारके लिये पृथिवीमें प्रसिद्धहै उनको दूण्ड आदिके लिये  
में संपूर्णतासे कहताहौं ॥ ३१ ॥ झरोखेमें होकर आयै हुए सूर्यके किरणोंमें जो  
सूक्ष्म रज दीखताहै उस रजके परिमाणोमे पहलेको त्रसरेणु कहते हैं ॥ ३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिङ्गैका परिमाणतः ॥ तां राजसर्पपस्ति-  
स्रस्ते त्रयो गौरसर्पपः ॥ ३३ ॥ सर्पपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वे-  
ककृष्णलम् ॥ पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ ३४ ॥

टीका—आठ त्रसरेणुकी एक लिखा होतीहैं उन तीन लिखाओंका एक राज-  
सर्प होताहै उन तीन राजसर्पोंका एक गौरसर्प जानना चाहिये ॥ ३३ ॥  
उन छः गौर सर्पोंका मध्यम अर्थात् न बहुत मोटा न छोटा एक जब होताहै  
तीनजवोंकी एक घोंघची अर्थात् रत्ती होती हैं और उन पांच रत्तियोंका एक  
मासा होताहै उन सोलह मासोंका एक सुवर्ण होताहै ॥ ३४ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ॥ द्वे कृष्णले समधृते विज्ञे-  
यो रौप्यमाषकः ॥ ३५ ॥ ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् ॥  
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ ३६ ॥

टीका—चारि सुवर्णका पल दशपलका एक धरण होताहै  
और घोंघची बराबर : एक रूप्यमाषक-  
जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ उन सोलह रूप्यमाषकोंका एक सौप्यधरण और पु-  
राण राजत कहिये रजत संबंधी होताहै और तांबेके कर्ष भरको कार्षापण तथा

पण जानना चाहिये और कार्षिक शास्त्रके पलका चौथाई भाग जानना चाहिये इसीसे कोशवाले चारि कर्षको पल कहते हैं ॥ ३६ ॥

धर॑णानि द॒श ज्ञेयः॑ शत॒मानस्तु॑ राज॒र्जतः॑ ॥ चतुः॑सौवर्णिको निष्क॒ो  
विज्ञे॑यस्तु प्रमा॒णतः॑ ॥ ३७ ॥ पर्णानां॑ द्वे श॒ते सार्धे॑ प्रथमः साह  
सः स्मृतः॑ ॥ मध्यमः पञ्च॑ विज्ञेयं सहस्रं त्वेव॑ चोत्तमः ॥ ३८ ॥

टीका—दशरौप्य धरणका एक रौप्यशतमान होता है और चारि सुवर्णका एक निष्क परिमाणसे जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ पचास अधिक दोसौ अर्थात् दार्दिसौ पणका मन्वादिकोंने प्रथम साहस कहा है और पांचसो पणका मध्यम साहस जानना चाहिये और हजार पणका उत्तम साहस जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

ऋ॒णे दे॒ये प्रति॑ज्ञाते पञ्च॑कं श॒तम॑र्हति ॥ अप॑ह्वं तद्वि॒गुणं तन्म॑  
नो॒रनु॑शासनम् ॥ ३९ ॥ वसि॑ष्ठविहितां वृद्धिं मृ॒जेद्वि॑त्तवि॒वर्धिनी॑म् ॥  
अ॒शीति॑भागं गृ॒ण्णीया॑न्मा॒सार्द्रा॑र्धुषिकः श॒ते ॥ १४० ॥

टीका—मुझे उत्तमर्णका धन देना है ऐसे सभामें अधमर्णके कहनेपर सैकरा पीछे पांच दंड देने योग्य है और जो सभामें भी ऐसे कहै कि मैं इसका कुछ नहीं देनदार हौ ऐसे मुकर जाय तौ सैकर पीछे दशपण दंड देने चाहिये यह मनुस्मृतिमें दंडका प्रकार है ॥ ३९ ॥ वसिष्ठ कही हुई वृद्धि (व्याज) धनकी बढ़ानेवाली है उसको वृद्धिसे जीविका करनेवाला लावै उसीको दिखाते हैं सौ देनेपर उसका अस्सीमा भाग ले अर्थात् सौ पणपर सवापण प्रतिमहीने वृद्धि लेवै ॥ १४० ॥

द्वि॒कं श॒तं वा॑ गृ॒ण्णीया॑त्स॒तां ध॑र्ममनु॒स्मरन् ॥ द्वि॒कं श॒तं हि॑ गृ॒ण्णा  
नो न॑ भव॒त्यर्थ॑ किं लि॒षी ॥ ४१ ॥ द्वि॒कं त्रि॑कं चतु॒ष्कं च॑ पञ्च॑कं च॑  
श॒तं सम॑म् ॥ मास॑स्य वृद्धिं गृ॒ण्णीया॑द्ग॒र्णाना॑मनु॒पूर्वशः॑ ॥ ४२ ॥

टीका—साधुओंका यह धर्म है ऐसा मानता हुआ दिये हुए सौपणोंपर दो पण प्रत्येक महीनेमें लेवै जिस्से सैकरपर दो लेता हुआ वृद्धिके धन लेनेमें दोषी नहीं होता है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे दो तीन चारि पांच सैकरपर महीनेमें वृद्धि लेवै इस्से अधिक न लेवै (शंका) जो कहौ कि अस्सीमा भाग थोड़ा है और सैकरपर दो बहुत हैं तौ ब्राह्मणके यह थोड़े बहुतका विकल्पकेसे होय इसपर मेधातिथि और गोविंदराजनाम दोनो टीकाकारोंने लिखा है कि जो पहली वृद्धिसे निर्वाह न होय तौ सैकरपर दो लेने चाहिये परंतु हम यह

कहते हैं कि बंधक ( गिरवी ) सहितमें अस्सीमा भाग और बिना बंधकमे सैकरे पर दो लेने चाहिये सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ अशीतिभागो वृद्धिः स्त्रान्मासि-  
मासिसंबंधकै । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुःपंचकमन्यथा ॥ अर्थ ॥ बंधक सहितमें  
महीने अस्सीमा भाग वृद्धि होती है और अन्यथा कहिये बंधक रहितमें वर्णों  
के क्रमसे दो तीनि चारि पांच वृद्धि होती है इति ॥ ४२ ॥

न त्वैर्वाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिर्माभूयात् ॥ न च धेः कालं  
संरोधात्रिं सगोऽस्ति न विक्रयः ॥ ४३ ॥ न भोक्तव्यो बलादां  
धिर्भुजानो वृद्धिमुत्सृजेत् ॥ मूल्येन तो पयेच्च न माधिस्ते नोऽ  
न्यथा भवेत् ॥ ४४ ॥

टीका—भूमि गौ दास आदि बंधक भोगके लिये देनेपर धनके देनमें पहले कही  
हुई वृद्धिको उत्तमर्ण नहीं पाताहै बहुत कालतक रहनेको काल संरोध कहते हैं  
भोग्य अधिके बहुत कालतक रहनेसे मूल धनके दुगुने होजानेपरभी दूसरेको देना  
अथवा बेचना नहीं हो सकताहै मेधातिथि और गोविंदराज कहते हैं कि आधि-  
के बहुत कालतक रहनेपरभी निसर्ग कहिये दूसरेके यहां धरना नहीं होसकता-  
है यहां तो महने धरी हुई भूमि आदिके दूसरेके यहां धरनेके समाचारसे सब  
शिष्टाचारसे विरोध होताहै ॥ ४३ ॥ कपडा गहना आदि रक्षा करने योग्य आ-  
धि नहीं भोगनेयोग्य है जो भोग करै तो उसकी वृद्धिको छोड़दे पहले मूलसे  
इसको संतुष्ट करै अथवा भोगनेसे जो आधि असार होजाय अर्थात् किसी का-  
मकी न रहे तो अच्छी दशाका मूल्य देकर स्वामीको संतुष्ट करै जो ऐसा न-  
करै तो बंधकका चोर होय ॥ ४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालान्त्ययमर्हतः ॥ अवहार्यौ भवेतां तौ  
दीर्घकालमवस्थितौ ॥ ४५ ॥ संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति  
कदाचन ॥ धेनुरुष्टो वह्नश्चो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ ४६ ॥

टीका—आधि कहिये बंधक अर्थात् जो वस्तु गहने धरीजाय और उपनिधि  
कहिये जो भोगनेके लिये प्रीतिसे दीहुई वस्तु ये दोनो निधि उपनिधि बहुत का-  
लतक रहनेपरभी समय उलंघनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् जब उनका स्वामी म्रा-  
गै तभी देनेयोग्यहैं ॥ ४५ ॥ दुही जाता हुई कहिये दूध देनेवाली गौ और स-  
वारी देता हुआ ऊंट तथा घोडा और काढनेके लिये दिया हुआ बैल आदि ये  
प्रीतिसे और करि भोग किये गये स्वामीके कभी नष्ट नहीं होतेहैं ॥ ४६ ॥



यत्किञ्चिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ॥ भुज्यमान परैस्तूष्णीं  
न सं तल्लब्धुर्महति ॥ ४७ ॥ अजडश्चैदपौगण्डो विषये चास्य भु  
ज्यते ॥ भग्नं तद्वचवहारेण भोक्ता तद्व्यमहति ॥ ४८ ॥

टीका—जो कोई धन प्रीति आदिके विना दश वर्षतक दूसरों करि भोग  
जाय और स्वामी देखै और कभी यह न कहै कि मतभोगो तौ स्वामी पाने योग्य-  
नहीं होता है उसका उसमें स्वामीपन दूर होजाता है ॥ ४७ ॥ जिसकी बुद्धि वि-  
कल होय अर्थात् यथावस्थित न होय उसको जड कहते हैं और सोलह वर्षसे  
जिसकी अवस्था अधिक न होय उसको अपौगंड कहते हैं जो धनका स्वामी ज-  
ड तथा पौगंड न होय और उसके सामने उसका धन भोगा जाय तौ स्वामीका  
व्यवहारसे नष्ट होजाता है भोगनेवालेहीका वह धन होजाता है ॥ ४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं श्रोत्रियस्वं  
च न भोगेन प्रणश्यति ॥ ४९ ॥ यः स्वामिनाऽनुज्ञातमधिं भुङ्क्ते  
ऽविचक्षणः ॥ तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः १५० ॥

टीका—आधि कहिये गहने धरी हुई वस्तु और सीमा कहिये ग्राम आदिकी  
मर्यादा बालकका धन निक्षेप कहिये वासनमें रक्खा हुआ विना गिनाया बंद  
किया हुआ धन अर्थात् घरोहड उपनिधि और स्त्री कहिये दासी आदि और रा-  
जा तथा वेदपाठीका धन ये कहे हुए दशवर्षके भोगसे स्वामीके नष्ट नहीं होते  
हैं और इनमें भोगनेवालेका स्वत्व नहीं होता है ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख वृद्धि  
( व्याज ) से दिये हुई वस्तुको स्वामीकी आज्ञाविना छुपाके भोगता है तौ उसको  
उस भोगकी शुद्धिके लिये आधी वृद्धि छोड़देनी चाहिये और बलसे भोगनेमें तौ  
संपूर्ण वृद्धिकाही त्याग कहा है ॥ १५० ॥

कुंसीद्वृद्धिद्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहता ॥ धान्ये सदे लवे वाह्ये  
नातिक्रामति पञ्चताम् ॥ ५१ ॥ कृतानुसारादधिको व्यतिरिक्ता  
न सिद्ध्यति ॥ कुंसीदपथर्माहुस्तं पञ्चकं शतमहति ॥ ५२ ॥

टीका—व्याजपर धनके देनेको कुंसीद कहते हैं उसपर जो एकवार व्याज ले  
लिया जाय जो वह दूनेसे अधिक नहीं होता है मूलसे दूनाही होता है और व्याज  
दिये हुए धान्यमें और सद कहिये वृक्षके फलमें और लव कहिये ऊन आदि  
रोमोंमें और जोतनेयोग्य बैल आदिमें मूल धन धान आदि समेत पंच गुनेसे अ-

अधिक नहीं होता है ॥ ५१ ॥ वर्णों के क्रमसे शास्त्र के अनुसार की हुई दो तीनीकी वृद्धि-से भिन्न विना की हुई अधिक नहीं होती है किंतु की हुई भी वृद्धि वर्णों के क्रमसे दो तीनी सैकरेपर मासमासमें लेनी चाहिये विना की हुई वृद्धिमें भी दूसरा विशेष कहते हैं कि कुत्सितसे जो मार्ग चले उसको कुसीदपथ कहते हैं यह उत्तमर्णजो शूद्रके मध्ये कहे हुए सैकरेपर पांच द्विजातिसे भी लेवै तौ यही कुत्सित पंथा है अर्थात् पहले कहे हुए धर्मसंबंधी वृद्धि करनेवालेसे अपकृष्ट है यह मनुआदि कहते हैं यह विना की हुई वृद्धि उद्धारके विषयमें मागनेसे उपरांत जाननी चाहिये. क्योंकि कात्यायनका वचन है कि प्रीतिसे दिया हुआ जबतक न मागा जाय तबतक नहीं बढ़ता है और जो मागनेपर न दिया जाय तौ सैकरेपर पांच बढ़ें ॥ ५२ ॥

नौतिसांवत्सरीं वृद्धिं न चोदृष्ट्वा पुनर्हरेत् ॥ चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः  
कारिता कायिका च यां ॥ ५३ ॥ ऋणं दातुमर्शतो यः कर्तुमिच्छे  
त्पुनः क्रियाम् ॥ स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ ५४ ॥

टीका—एकमहीना वा दो महीना अथवा तीनी महीना वीतनेपर हमारे व्याजका हिसाब करके एकवारही देना इस नियमसे जो उत्तमर्ण एक वर्षतक व्याज लेवै, और वर्षके वीतनेपर नियम की वृद्धिको न लेवै, और शास्त्रसे नहीं देखी गई तथा कही हुई धर्मसंबंधिनी दो तथा तीनीपण सैकरेसे अधिक न लेवै, अधर्मता दिखानेके लिये यह निषेध है और शास्त्रमें नहीं कही हुई चक्रवृद्धि आदि चारिको न लेवै, उन चारोंका स्वरूप कहते हैं बृहस्पतिः । कायिका कायसंयुक्ता मासग्राह्याचकालिका ॥ वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिना कृता ॥ अर्थ ॥ कायकरि युक्त होय उसको कायिका कहते हैं और जो महीने २ पुर लीजाय उसको कालिका कहते हैं और वृद्धिपर जो वृद्धि ( व्याजपर व्याज ) होती है उसको चक्रवृद्धि कहते हैं उनमें चक्रवृद्धि स्वरूपहीसे निंदित है कालवृद्धि तौ दुगुनेसे अधिक लेनेसे होती है और कायिका बहुत जोतने तथा दुहनेसे होती है और कारिता वह होती है जो उत्तमर्णके दवावसे आपत्तिकालमें ऋणी करि कीजाय ये चारों वृद्धियां शास्त्रमें नहीं हैं इनको न लेवै ॥ ५३ ॥ जो ऋणी धनदेनेकी असामर्थ्यसे फिर लेख्य ( तमस्सुक ) आदि क्रिया करनेकी इच्छा करै वह निर्जित कहिये उक्त मार्ग करि सचाईसे अपने आधीन की हुई वृद्धिको देकर करण जो लेख्य ( तमस्सुक ) है उसको फिर लिखदेवै ॥ ५४ ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ॥ यावती संभवेद्वृद्धिस्ता

वर्ती दातुमर्हति ॥५५॥ चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ॥  
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जो दैवगतिसे वृद्धि और हिरण्यकोभी न दे सकै तो उसको मिलायकै उसीको फिर लिखे जाते हुए कामजपर वृद्धि और हिरण्य आदि मूल और व्याजको चढ़ाय देवै उस समय जितना चक्रवृद्धिका धन होगा वह सब देना पड़ेगा ॥ ५५ ॥ चक्र शब्दसे यहां चक्रवाले छकड़ें आदिके भाड़ा रूप वृद्धि अभिमत है चक्रवृद्धिका आश्रय लेनेवाला उत्तमर्ण देश तथा कालकी व्यवस्थायुक्त होता है जैसे जो काशीतक नोन आदि छकड़से ले जाउगा तो मुझको इतना धन देनेयोग्य होगा यह मूल्यरूप देशकी व्यवस्था हुई और जो महीनेभर तक ले जाउगा तो मुझे इतना देना होगा यह कालकी व्यवस्था हुई ऐसे अंगीकार किये हुए देश तथा कालके नियमको दैवयोगसे नहीं पूरा करता हुआ अर्थात् शकट आदिसे नहीं ले जाता हुआ लाभरूप संपूर्ण फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ॥ स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं  
सा तत्राधिगमं प्रति ॥५७॥ यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेदर्शनायेह मा  
नवः ॥ अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वर्धनादणम् ॥ ५८ ॥

टीका—स्थलके मार्ग तथा जलके मार्गके जानेमें चतुर इतने देशतक तथा इतने कालतक लेजानेपर इतना लेना योग्य है इस भांति देश तथा कालके लाभरूप धनके जाननेवाले बनिया आदि वैसे विषयमें जिस वृद्धिको व्यवस्थापित करै वही वहां व्यवस्था है और वही वहां वृद्धिके धनकी प्राप्तिमें प्रमाण है ॥५७॥ जो मनुष्य जिसके दर्शनका प्रतिभू ( जामिन ) होय अर्थात् धन देनेके समयमें इस ऋणीको दिखा दूंगा ( हाजिर करदेउगा ) और वह उस कालमें उत्तमर्णको न दिखावै तो अपने धनमेंसे उस धनके देनेका यत्न करै ॥ ५८ ॥

प्रातिभावं वृथादानमाक्षिंकं सौरिकं च यत् ॥ दण्डशुल्कार्वशे  
षं च नृपुत्रो दातुमर्हति ॥५९॥ दर्शनप्रातिभावे तु विधिः स्यात्  
त्पूर्वचोदितः ॥ दानप्रतिभुविप्रेते दार्यादानपिदापयेत् ॥ ६० ॥

टीका—प्रतिभूनसे अर्थात् जमानतसे जो धन देनेयोग्य है उसको प्रातिभाव्य कहते हैं औ वृथा दान जो हंसीके निमित्त पंडा आदिके अर्थ देनेकी योग्य-

तासे पिताने अंगीकार किया और आक्षिप्त कहिये जुआके निमित्त तथा, सौरि-  
क कहिये मृग्यके निमित्त और दंडके निमित्त औ शुल्क कहिये महसूल तिसका  
बाकी धन जो पिताको देना है उसको पिताके मरनेपर पुत्र देनेयोग्य नहीं है  
॥ ५९ ॥ प्रातिभाव्य जमानतके धनको पुत्र नहीं देनेयोग्य है वह दर्शन प्रति-  
भू अर्थात् हाजिर जामिनी करनेवाले पिताके देनेयोग्य जानना चाहिये और दे-  
नेकी जमानत करनेवाले पिताके मरनेपर पुत्र आदिकोंसे भी ऋण ढिवावै ॥ ६० ॥

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ॥ पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते प.  
रिप्सेत्केन हेतुना ॥ ६१ ॥ निरादिष्टधनश्चेत् प्रतिभूः स्यादलं  
धनः ॥ स्वर्धनादेव तद्व्यान्निरादिष्टं इति स्थितिः ॥ १६२ ॥

टीका—दान प्रतिभू अर्थात् देनेवाले जामिनसे दूसरा दर्शनप्रतिभू अथवा  
विश्वासप्रतिभूके मरनेपर पीछे धन देनेवाला उत्तमर्ण अपना धन कैसे पावै क्यों  
कि प्रतिभू मर गया है तो यह दर्शनप्रतिभू अथवा प्रत्ययप्रतिभू जो अधमर्ण करि  
निरादिष्ट अर्थात् निःसृष्ट धन होय और प्रतिभूके पास उसके देनेयोग्य धन होय तो  
वह अथवा उसका पुत्र उत्तमर्णकी ऋण देवै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ॥ असंबद्धकृतैर्वै व्य-  
वहारो न सिद्ध्यति ॥ ६३ ॥ सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्या-  
त्प्रतिष्ठिता ॥ बहिर्ध्वं द्वाप्यंते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥ ६४ ॥

टीका—मद्य आदिसे मतवारे और रोग आदिसे उन्मत्त और बालक तथा वृ-  
द्ध करि पिता तथा भाईकी आज्ञाविना किये हुए ऋणका व्यवहार सिद्ध नहीं  
होता है ॥ ६३ ॥ यह मुझको करना है इत्यादिक भाषालेख्य आदिसे स्थिर की ग-  
ई भी होय परन्तु जो शास्त्रके धर्मसे और परंपरासे चले आये हुए व्यवहारसे बा-  
हर कही जाय तो वह सत्य नहीं होती है उसको न मानना चाहिये ॥ ६४ ॥

योगाधमनर्विक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥ यत्र वाप्युपार्थं पश्येत्त-  
त्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ ६५ ॥ ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थं कु-  
तो व्ययः ॥ दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥ ६६ ॥

टीका—योग कहिये छलसे किये हुए बंधक कहिये गिरवी और दान तथा  
प्रतिग्रह किये जाय परन्तु सत्यतासे नहीं और अन्यत्र कहिये धरोहड आदिमें जहां

छल जाना जाय अर्थात् वास्तवमें धरोहड न रक्खी होय वह सब लौटि जाता है ॥६५॥ पहलेसे वंटे हुए अथवा विना वंटे हुए भाई तथा कुटुंबके पालनेके लिये जो धन लेकर ऋणी मरजाय तौ उस ऋणको वंटे हुए और विना वंटे हुए सब अपने धनसे देवै ॥ ६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽर्ध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥ स्वदेशे वा विदे  
शे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥ ६७ ॥ बलादृतं बलाद्धुक्तं बला  
द्यच्चापि लेखितम् ॥ सर्वोच्चलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ ६८ ॥

टीका—स्वामी उसी देशमें होय अथवा दूसरे देशमें होय उसके कुटुंबके ख-  
रचके लिये जो सेवकभी ऋण करै तौ स्वामी उसको वैसाही अंगीकार करै ॥  
॥ ६७ ॥ बलसे दिया हुआ और बलसे भोगी गई भूमि आदि और बलसे लि-  
खाया गया चक्रवृद्धि आदिका पत्र आदि इन सब बलसे किये हुए व्यवहारोंको  
मनुने लौटाने योग्य कहाहै ॥ ६८ ॥

त्रयः परार्थे क्षिप्रान्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥ चत्वारस्तूप  
चीर्यन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ६९ अनादेयं नाददीतं परिक्षी  
णोऽपि पार्थिवः ॥ न चोदेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ७० ॥

टीका—साक्षी प्रतिभू और कुल ये तीनो धर्मार्थ व्यवहारोंमें पराये लिये क्लेश  
—घाते हैं तिस्से इनसे साक्ष्य (गवाही) प्रातिभाव्य (जमानत) और व्यवहारका देख-  
ना नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण उत्तमर्ण बनियां और राजा ये चारि परा-  
ये लिये दानके फलका उत्पन्न करना ऋणके द्रव्यका देना विक्रय और व्यवहा-  
रका देखना इन बातोंको करते हुए धनकी वृद्धिको प्राप्त होते हैं तिस्से ब्राह्मण दे-  
नेवालेकों और धनाढ्य अधमर्णको और बनिया बेचनेवालेको और राजा व्यव-  
हार करनेवालेको बलसे न प्रवृत्त करै ॥ ६९ ॥ राजा क्षीण धन होनेपरभी नहीं  
लेनेयोग्य धनको न लेवै और धनवान् होनेपरभी लेनेयोग्य थोडाभी न छोडै ७० ॥

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ॥ दौर्बल्यं ख्याप्यते  
राज्ञः संप्रेत्येह च नश्यति ॥ ७१ ॥ स्वादानाद्गर्णसंसर्गात्त्वैबलां  
च रक्षणात् ॥ बलं संजायते राज्ञः संप्रेत्येह च वर्धते ॥ ७२ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्यके लेनेसे और शास्त्रमें कहे हुए लेनेयोग्यके न लेनेसे  
पुरवासी राजाका असामर्थ्य स्थापित करते हैं तिस्से मरिके अधर्मसे नरक आ-

दिके भोगसे और इस लोकमें अपयशसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ न्याय्य कहिये उचित धनके लेनेसे और वर्णोंके सजाती शास्त्रोक्त विवाह आदिके संबंधसे अथवा वर्णोंका संसर्ग कहिये वर्णसंकर तिस्से रक्षा करनेसे और दुर्बल प्रजाओंकी बलवानसे रक्षा करनेसे राजाका सामर्थ्य उत्पन्न होता है तिस्से वह इस लोक तथा पुरलोकमें वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥

तस्माद्यमद्वं स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रियो वर्तेत याम्यया वृत्त्या  
जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्या  
ब्रराधिपैः । अचिरात्तं दुरात्मानं वंशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ ७४ ॥

टीका—तिस्से यमके समान राजा क्रोधको वशमें करि जितेन्द्रिय हो अपने भी प्रिय अप्रियको छोड़ि यमकी चेष्टासे सर्वत्र समानरूप वर्ते ॥ ७३ ॥ जो राजा लोभ आदिके व्यामोहसे अधर्मसे व्यवहारदर्शन आदि कार्योंको करता है उस दुष्टचित्तको प्रजा तथा पुरवासियोंकी अप्रीतिसे शीघ्रही शत्रु दंड देते हैं ॥ ७४ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति । प्रजास्तमनुवर्तन्ते  
समुद्रमिव सिन्धवः ॥ ७५ ॥ यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं  
नुपे । स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ७६ ॥

टीका—जो राजा रागद्वेषको छोड़कर धर्मसे कार्योंको देखता है उस राजाको प्रजा ऐसे सेवन करती है जैसे समुद्रको नदियां अर्थात् नदियां जैसे समुद्रसे नहीं लौटती हैं उसीके साथ एकताको प्राप्त होती है प्रजाभी ऐसेही राजाकी अनुगामिनी होती है ॥ ७५ ॥ जो अधमर्ण मैं राजाका प्याराहो इस गर्वसे आपनी इच्छासे धन सावित करनेवाले उत्तमर्णका राजासे निवेदन (लानिश) करता है उसपर राजा ऋणका चौथाई भाग दंडकरै और उसका धन देवावै ॥ ७६ ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधर्माणिकः । समोऽवकृष्टजातिस्तु  
दद्याच्छ्रेयास्तु तच्छ्रेयैः ॥ ७७ ॥ अनेन विधिना राजा मिथो विमद  
तां नृणाम् । साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥ ७८ ॥

टीका—समान जाती अथवा हीन जाति अधमर्ण कहिये ऋणी धनके न होनेपर आपनी जातिके अनुरूप कर्म करनेसेभी बराबर करै अर्थात् उत्तमर्ण अधमर्णपरसे निवृत्त हो धनीके समान आपको करै और जो ऋणी ऊंचा जातिका होय तो उससे कर्म न करावै किंतु वह हौले हौले प्राप्तिके अनुसार उस धनको देवै ॥ ७७ ॥

इस कहे हुए प्रकारसे आपसमें विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीके साक्षी आदिसे निर्णय किये हुए कार्योंको विरोध दूर करिके बराबरी करै ॥ ७८ ॥

कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि । महापक्षे धर्निन्याये निक्षेपं  
निक्षिपेबुधः ॥ ७९ ॥ यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।  
स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथाग्रहः ॥ ८० ॥

टीका—उत्तम कुलमें उत्पन्न होय और सदाचारवान् होय धर्मका ज्ञाता तथा सत्य बोलनेवाला होय और बहुत पुत्र आदि कुटुंबवाला होय और सरल प्रकृतिका होय ऐसे मनुष्यके समीप व्यभिचार न होनेसे धरोहड रखै ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारसे मूढ़ा हुआ अथवा विना मूढ़ा हुआ साक्षियोंके होनेपर अथवा विना साक्षियोंके जिस सुवर्ण आदि धनके जिसके हाथमें रखै वह धन उस रखनेवालेको वैसाही लेना चाहिये जिसे जिस भांति देनाहै उसी भांति लेना उचितहै मुदे हुएभी सुवर्ण आदिकी मुद्राको आपही खोलि रखनेवाला जब कहै कि मेरा यह तौलकर दे तब यह दंड आदिके लिये है ॥ ८० ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेपुर्न प्रयच्छति । स याच्यः प्राड्विवा  
केन तन्निक्षेपुर्न सन्निधौ ॥ ८१ ॥ साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपस  
मन्वितः । अपदेशैश्च सन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥ ८२ ॥

टीका—रक्खा हुआ मेरा सुवर्ण आदि द्रव्य दे ऐसे रखनेवाले करि कहा गया जो पुरुष उसको जब न देवै तब रखनेवालेके सूचित करनेपर प्राड्विवाकको उस रखनेवालेके आगे मागना चाहिये ॥ ८१ ॥ पहली धरोहडमें साक्षी न होनेपर सभाके योग्य अवस्थामें बाल नहीं और स्वरूपवान् और राजाका उपद्रव आदि कहनेवाले ऐसे अपने चार पुरुषोंसे सुवर्ण आदि द्रव्यको रखवाकै उन्हीं राजपुरुषोंको उस धरोहडवालेसे चार पुरुषों करि रक्खी हुई धरोहड प्राड्विवाकको मागनी चाहिये ॥ ८२ ॥

स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् । न तत्र विद्यते किं  
चिद्व्यतिरेकं भिद्युज्यते ॥ ८३ ॥ तेषां न दद्याद्यदि तु तद्विरण्यं  
यथाविधि । उभौ निर्गृह्य दार्प्यः स्यादि तं धर्मस्य धारणा ॥ ८४ ॥

टीका—वह धरोहड लेनेवाला मुदी हुई अथवा खुली हुई जैसी रक्खीथी कडे मुकुट आदिके आकारसे बनी हुईको वैसेही मानले कि सच्ची है लीजिये

तौ पहले रखनेवाले जिसने प्राद्विवाकसे आवेदन (लानिस) किया है उसका कुछ नहीं है यह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ उन चार पुरुषों का रक्खा हुआ सुवर्ण जैसा रक्खा था वैसा न दे तौ दोनो धरोह हैं अर्थात् पहले सूचित करनेवाले की और चार पुरुषों करि रक्खी हुई उसको दवाकै दिवानी चाहिये इस प्रकार की धर्मकी धारणा कहिये निश्चय है ॥ ८४ ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे । नश्यतो विनिपाते  
तार्वनिपाते त्वं नाशिनौ ॥ ८५ ॥ स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्र-  
त्यनन्तरे न संराज्ञानि योक्तव्यो न निक्षेपव्यश्च बन्धुभिः ॥ ८६ ॥

टीका—जो रक्खा जाय वह निक्षेप कहा जाता है और मुहर लगा हुआ विना गिना अथवा बासनमें रक्खा हुआ जो रक्खा जाय उसको उपनिधि कहते हैं इनका ब्राह्मण और संन्यासीकी भांति उपदेशमें भेद है, वे दोनो निक्षेप और उपनिधि रखनेवाले और जिसके समीप रक्खी है उसके जीवते हुए तदनंतर कहिये उसके पुत्र आदिको और उसके अनंतर उसके धनके अधिकारीको निक्षेप धारनेवाला कभी न देवै जिस्से उसके पुत्र आदिको पिताके दिये विना नाश होनेपर वे निक्षेप और उपनिधि नष्ट होते हैं फिर पुत्रादिकोंके अविनाशमें और देनेमें कदाचित् अविनाशी होजाय तिस्से अनर्थके संदेहसे न देने चाहिये ॥ ८५ ॥ मरे हुए रखनेवालेके धनको जिसके समीप रक्खा है वह रक्खे हुए धनको उसके धनके अधिकारी पुत्र आदिको विना मागे आपही जो देता है वह राजा करि और उसके पुत्र आदिको करि ऐसे कहनेयोग्य नहीं है कि तेरे पास और भी रक्खा है ८६

अच्छलेनैव चांन्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् । विचार्य तस्य वा वृत्तं  
साम्प्रैव परिसाधयेत् ॥ ८७ ॥ निक्षेपेष्वेव सर्वेषु विधिः स्यात्परि-  
साधने । समुद्रे नानुयात्किञ्चिद्विदितस्मात्संहरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—उसके समीप और धन होनेकी शंका रूप वाणीके कहे विनाही प्रीति पूर्वक निश्चय करै और शीघ्र शपथ आदिके देनेसे न निश्चय करै उस निक्षेप-धारीके शील आदिको देखि यह धर्मात्मा है ऐसा जानिके साम नाम उपायसे निश्चय करै ॥ ८७ ॥ नहीं मानी हुई सब धरोहोंके साबित करनेमें यह पहले कही हुई विधि होती है और मुदी आदिमें निक्षेपका धारण करनेवाला जो दूसरी बार बंद करनेसे उसमेसे कुछ न लेवै तौ उसमेंभी उसको कुछ दूषण नहीं लगता है ॥ ८८ ॥

चौरैर्हृतं जलेनोर्ध्वमग्निना दग्धमेव वा ॥ न दद्याद्विदितस्मात्संन



संहरति किंचन ॥ ८९ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेपारमेव च ॥ स  
वैरुपायैरनिच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १९० ॥

टीका—चोरों करि चुराय गये जल करि बहाकै दूसरे देशमे पहुंचाया गये  
अग्नि करि जलाया गये निक्षेप आदिको निक्षेप धारण करनेवाला न देवै जो आप  
उसमेंसे कुछ न लेवै ॥ ८९ ॥ धरोहडके छुपानेवालेको और विना रक्खे मागनेवाले-  
को राजा सामआदि सब उपायोंसे तथा वेदमें कहे हुए सौगंदोसे निश्चय करै १९०

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥ तावुंभौ चौरवच्छां  
स्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥ १९१ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दा  
पयेदमम् ॥ तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १९२ ॥

टीका—जो रक्खी हुई धरोहडको न देवै और विना रक्खे मागै वे दोनो  
सोना मोती आदिकी बड़ी धरोहडमें चोरके समान दंड देनेयोग्य हैं ॥ १९१ ॥  
धरोहडके छुपानेवालेको तथा विना रक्खे मागनेवालेको रक्खे हुये धनके बराबर  
दंड करै (शंका) जो कहौ कि पहले श्लोकमेंभी यही कहाहै तौ पुनरुक्ति हुई  
सो नहीं है क्योंकि बडे अपराधके होनेपर ब्राह्मणको छोडि दूसरी जातिको चो-  
रके समान दंड दे इसप्रकार पहले श्लोकसे शरीरका दंड प्राप्त होनेपर उसकी नि-  
वृत्तिके लिये यह कहाहै और दापयेत् कहिये दिवावै इस्से धन दंडका नियम  
होनेसे इस्से पहले श्लोककी व्यर्थता नहीं हुई इसको प्रथम अपराध विषयक हो-  
नेसे पहले कहे हुएके अभ्यासमें चोरके लिये कहे हुए उत्तम साहस आदि धन  
दंडका बोधक होनेसे मोहर आदि चिन्ह करकै रक्खे हुए धनको उपनिधि कह-  
ते हैं उसके हरनेवालेको राजा कहे हुए दंडको देवै ॥ १९२ ॥

उपदाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ॥ संसहायः स हन्तव्यः प्रं  
काशं वि विधैर्वधैः ॥ १९३ ॥ निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलं  
सन्निधौ ॥ तावानेवं स वि ज्ञेयो विवृण्वन्दममहति ॥ १९४ ॥

टीका—राजा तेरे ऊपर क्रोधितहै उस्से मैं तुझे वचाऊंगा तू मूझे धन दे ऐ-  
से बूढ कहिकै जो पराये धनको लेताहै वह छलसे धन लेनेवाले सहायकों समे-  
त बहुतसे मनुष्योंके सामने हाथ पांव तथा शिर काटने आदि नाना प्रकारके  
बधके उपायोंसे राजा करि मारनेयोग्य है ॥ १९३ ॥ जो सुवर्ण आदि जितना जिस  
करकै निक्षेप किया गया उस परिमाण आदिमें अंतर पडनेसे साक्षियोंके बचनसे

उतनाही जानना चाहिये अंतर करता हुआभी कहेके अनुसार दंड देने योग्य है ९४

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥ मिथ एव प्रदातव्यो  
यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ ९५ ॥ निक्षिप्तस्य धनस्यैव प्रीत्योर्पनि  
हितस्य च ॥ राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्यासधारणम् ॥ ९६ ॥

टीका—एकांतमें जिसने धरोहड़ दी और एकांतहीमें लेनेवालोंनेली वह ध-  
रोहड़ एकांतहीमें फिर देनेयोग्य है लौटा कर देनेमें साक्षियोंकी अपेक्षा नहीं है  
जिसे जिस भांति देना है उसी भांति लौटना है धरोहड़ लेनेवालेके लिये यह नि-  
यमकी विधि है ॥ ९५ ॥ मुंदे हुए अथवा खुले हुए उपनिधिरूप धरोहड़के धन-  
को तथा कुछ थोड़े काल भोगनेके लिये दिये हुएको इस कहे हुए प्रकारसे रक्खे  
हुए धनके धारण करनेवाले पुरुषको पीडा विना दिये राजा निर्णय करे ॥ ९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ॥ न तं नयेत्  
साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ ९७ ॥ अवहायो भवेच्चैव सान्वयः  
षट्शतं दमम् ॥ निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरं किल्बिषम् ९८ ॥

टीका—जो वस्तुका स्वामी नहीं है और स्वामीकी आज्ञा विना पराये द्र-  
व्यको वेंचता है वास्तवमें वह चोर है और आपको चोर नहीं मानता है उसका  
साक्षी न करे और न कहीं उसका प्रमाण माने ॥ ९७ ॥ यह पराये द्रव्यका  
वेंचनेवाला जो स्वामीका भाई आदि संबंधी होय तौ छसौ पण दंड देनेयोग्य है  
और जो स्वामीका संबंधी न होय और स्वामीके संबंधी पुत्र आदिसे धन  
दान विक्रय आदि होय तौ वह चोरके पापको प्राप्त होता है और चोरके  
समान दंड करने योग्य है ॥ ९८ ॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा । अकृतः सं तु वि  
ज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ ९९ ॥ संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्ये  
तागमः क्वचित् । आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः २००

टीका—स्वामीके विना जो दिया गया और जो वेंचा गया अथवा मोल  
लिया गया उसको वि कियाही व्यवहारमें जैसी मर्यादा है वह वैसा  
नहीं किया गया होता है ॥ ९९ ॥ जिस वस्तुमें भोगना तौ है और मोल लेने  
आदिका लेख नहीं है वहां पहले पुरुषके आगे लेखही प्रमाण है भोग नहीं यह  
शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २०० ॥

विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद्द्वितीयात्कुलसन्निधौ । क्रयेण संविशुद्धं हि  
न्यायतो लभते धनम् ॥ १ ॥ अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशो  
धित्वः । अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नास्तिको लभते धनम् ॥ २ ॥

टीका—जो द्रव्यविक्रयकहिये बेचनेसे व्यवहारियोंके समूहके आगे मोल दे-  
कर जिस्से लेताहै वह न्यायसे शुद्धद्रव्यको पाताहै ॥ १ ॥ जो मूलस्वामी बेचने-  
से अथवा परदेशमें जाने आदिसे व्यवहार न कर सकै और प्रकाशित क्रयसे य-  
ह निश्चितहै तौ दंडके योग्य नहीं है मोल लेनेवाला राजा करि छोडा जाताहै  
और नष्ट धनका स्वामी विना स्वामीके बेचे हुए द्रव्यको मोल लेनेवालेके हाथ-  
सँ पाताहै इस विषयमें मोल लेनेवालेको आधा मोल देकर स्वामीको अपना  
धन लेना चाहिये यहां व्यवहारसे दोनोंका आधा धन मारा जाताहै ॥ २ ॥

नान्यदन्येन समष्टिरूपं विक्रयमर्हति । न चासारं न च न्यूनं न  
दूरेण तिरोहितम् ॥ ३ ॥ अन्यां चेदृशयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदी-  
यते । उभे ते एकंशुल्केन बहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ ४ ॥

टीका—केसरी आदि द्रव्योंमें कुसुम आदि मिलाकै न बेचना चाहिये और  
असारको सार कहिकै न बेचै और तराजु आदिमें कमतीं न तौलै और पीठि पीछे  
न बेचै और प्रीतिसे रखे हुये द्रव्यको न बेचै विना स्वामीके विक्रयके समान  
होनेसे विना स्वामीके बेचनेहीका दंड होताहै ॥ ३ ॥ मोलसे देनेयोग्य कन्याको  
मोलके समय निर्दोष सुंदर दिखाकै जो वरको दोष सहित कुरूपा दीजाय तौ दो-  
नो कन्याओंको वर उस एकही मोलसे व्याहि लेवै यह मनुने कहाहै मोलका  
द्रव्य लेकर कन्याका दान करना बेचनाही है इससे इसको द्रव्यके बेचने मो-  
लनेके साथ कहाहै ॥ ४ ॥

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना । पूर्वं दोषानभि-  
ख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥ ५ ॥ ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म  
परिहापयेत् । तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽंशः संह कर्तृभिः ॥ ६ ॥

टीका—उन्मत्ताके कोठिनीके और मैथुन संसर्गवालीके उन्माद आदि दोषों-  
को ब्राह्मण आदि विवाहोंसे पहले वरको सूचन करकै देने वाला दंडयोग्य नहीं  
होताहै और विना कहे दंडयोग्य होताहै ॥ ५ ॥ अब संभूय समुत्थानको कहतेहै  
यज्ञमें वरण किया हुआ ऋत्विक् जो थोडासा कर्म करिकै रोग आदिसे कर्मको

छोड़दे तौ उसको और ऋत्विजोंसे विचार करिकै उसके कियेके अनुसार दक्षिणा का अंश ( हिस्सा ) देना चाहिये ॥ ६ ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् । कृत्स्नमेव लभेतांशम्  
न्येनैव च कारयेत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्ग  
दक्षिणाः ॥ सर्व एव तां औददीत भजेरन्सर्वे एव वा ॥ ८ ॥

टीका—माध्यंदिनि यज्ञ आदिमें दक्षिणाके समय दक्षिणाओंके देनेपर रोग आ-  
दिसे कर्मको छोड़ता हुआ नट स्वटीसे नहीं तौ वह संपूर्ण दक्षिणाके भागको पात्र  
और बाकी कर्मको औरसे करवावे ॥ ७ ॥ जिस आधान आदि कर्ममें अंग अंग  
प्रति जिसके संबंधसे सुनी हुई जो दक्षिणा होती हैं वही उनको ले अथवा केह-  
ल उसी उसी भागको सब बांटकै ले लेवै ॥ ८ ॥

रथं हरेत् वाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ॥ होता वापि हरेदश्वमु  
द्राता चाप्यनः क्रये ॥ ९ ॥ सर्वेषामर्थिनो मुख्यास्तर्द्धेनार्थिनोऽपरे ॥  
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥ १० ॥

टीका—यहां सिद्धांत कहते हैं किन्ही शाखावालोंके आधानमें अध्वर्युको रथ  
देना चाहिये यह कहा है और ब्रह्माको वेगवान् घोड़ा और होताकोभी घोड़ा औ-  
र उद्राताके लिये सोमके मोलमें सोमका ले चलनेवाला छकड़ा इस व्यवस्थाकी  
सामर्थ्यसे जो दक्षिणा जिसके संबंधसे सुनी जाती है वही उसको ग्रहण करै ॥  
॥ ९ ॥ दक्षिणाका विभाग कहते हैं ॥ उसको सौसे दीक्षायुक्त करता है यह सुना  
जाता है वहां सब सोलह ऋत्विजोंके मध्यमें जे चारि ऋत्विज अर्थात् होता  
अध्वर्यु ब्रह्मा और उद्राता ये सब दक्षिणाके आधे भागके पानेवाले हैं और अर-  
तालीस गौके पानेवाले होते हैं इसीसे कात्यायनने बारहबारह आद्योंको कहिये  
पहलोके लिये इस भांति प्रत्येकको बारह गोदान कहे हैं यद्यपि सौके आधे पचा-  
स होते हैं तिसपरभी यहां न्यून आधा लेनेसे ये आधे वाले कहे जाते हैं और स-  
मीपतासे मैत्रावरुण प्रतिस्तोता ब्राह्मण अच्छसी प्रस्तोता ये मुख्य ऋत्विक्की  
पाई हुई दक्षिणाका आधा लेनेसे अर्द्धी अर्थात् आधे भागके पानेवाले कहे जा-  
ते हैं और तीसरे अछावाक् नेष्टा अग्नीध्र प्रतिहर्ता ये मुख्य ऋत्विक्की दक्षिणा-  
का तीसरा भाग पाते हैं और चौथाईवाले उन्नेता पोता सुब्रह्मण्य ये मुख्य ऋ-  
त्विक्की पाई हुई दक्षिणाका चौथा भाग पाते हैं यह तौ छः छः दूसरोंसे और  
चार चार तीसरीसे और तीनि तीनि चौथोंसे ऐसे सूत्रमें लिखते हुए कात्या-  
यनने स्फुट किया है ॥ १० ॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः॥ अनेन विधियोगेन कं  
तव्यांशप्रकल्पना ॥ ११ ॥ धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते  
धनम् ॥ पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ १२ ॥

टीका—मिल करि घरके बनाने आदि अपने कर्मोंको लोकमें स्थपति (राज)  
सूत्रकार (बढ़ई) आदि मनुष्योंसे करवानेवालोंका इस यज्ञ दक्षिणा वि-  
धानके आश्रयसे विशेष ज्ञान (कारागरी) और व्यापार कहिये कामकी अपे-  
क्षासे भागकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अब दत्तानपकर्म कहि दियेका  
निषेधकरदेना कहते हैं ॥ जिसने यज्ञ आदि कर्मके लिये किसी मागनेवालोंको  
धन दिया अथवा देनेकी प्रतिज्ञा की होय पीछे वह इस धनको यज्ञके लिये  
न लगावै तब यह दिया हुआभी धन ले लेना चाहिये और प्रतिज्ञा किया  
हुआ न देना चाहिये ॥ १२ ॥

यदि संसाधयेत्तत्तु दैर्घ्यो भेन वा पुनः॥ राज्ञा दौप्यः सुवर्णं स्या  
तस्य स्तेर्यस्य निष्कृतिः॥ १३ ॥ दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदन  
पक्रिया ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ १४ ॥

टीका—जो उस दिये हुये धनको लेनेवाला लोभसे अथवा अहंकारसे न देवै औ-  
र प्रतिज्ञा किये हुएको बलसे ले तौ उस चोरीके पापकी शुद्धिके लिये राजाको  
सुवर्ण प्रमाण दंड देनेयोग्य होता है ॥ १३ ॥ धर्मसे रहित यह दिये हुएका न देना  
तत्त्वसे कहा इसके उपरांत भृतिका अर्थात् नौकरीका न देना आदि कहेंगा ॥ १४ ॥

भृतोऽनौतौ न कुर्याद्यो दैर्घ्यात्कर्म यथोदितम् ॥ स दण्डेचः कृष्ण  
लान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् १५ ॥ अर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्य  
थाभाषितमादितः ॥ स दौ धस्यापि कालस्य तल्लभेतेवे वेतनम् १६

टीका—नौकरीपर रक्खा हुआ जो मनुष्य रोगके विना अहंकारसे कहे हुए  
कामको न करै तौ उसपर कर्मके अनुरूप आठरत्नी सोना दंडकरना चाहिये  
और नौकरीका धनभी न देना चाहिये ॥ १५ ॥ जब रोग आदिकी पीडासे का-  
म न करै आराम होकै पहले कहेके समान काम देवै तौ वह बहुत दिनोंकाभी  
वेतन (तनखाह) पावै ॥ १६ ॥

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ॥ न तस्य वेतनं दे

यैर्मल्पोनस्यापि कर्मणः ॥१७॥ एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादान  
कर्मणः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥ १८ ॥

टीका—जो काम जैसा कहा गया उसको पीड़ित होनेपर दूसरेसे न करावै  
अथवा स्वस्थ रहनेपर आप न करें और न करावै. तौ उसको उस किये हुए का-  
मके शेषकाभी वेतन ( तनक्खाह ) न देना चाहिये ॥ १७ ॥ वेतनादान कर्म-  
की यह सब व्यवस्था कहीं इसके उपरांत संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंके दंड आ-  
दिकी व्यवस्था कहेंगा ॥ १८ ॥

यो ग्रामदेशसंधानां कृत्वा सत्येन संविदेम् ॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं  
राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥१९॥ निर्गृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ।  
चतुःसुवर्णान् षण्णिष्काञ्छतमानं च राजतम् ॥ २० ॥

टीका—ग्राम और देश शब्दोंसे उनके वसनेवाले लक्षित होते हैं संघ कहिये  
चनियों आदिका समूह हम इस कर्मको करेंगे और इसको न करेंगे इस प्रका-  
रके संकेत (इशारा) को सत्य आदिकी सौगंदसे निश्चित करिकै उसको जो मनु-  
ष्य लोभ आदिसे उल्लंघन करै उसको राजा देशसे निकाल देवै ॥ १९ ॥ इस सं-  
विद्व्यतिक्रम काटि अर्थात् प्रतिज्ञा उल्लंघन करनेवालेको रोककर उसपर चारि-  
सुवर्ण छः निष्क प्रत्येक चारिसुवर्ण प्रमाण और चांदीके सौ मान और तीनसो  
बीस रत्नी परिमाण ये तीनों प्रकारके दंड है इनमेंसे विषय कहिये कार्यके भारी-  
पन और हलके पनकी अपेक्षासे सब इकट्ठे अथवा एक एक दंड राजा करै २०

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धर्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ग्रामजातिसमूहेषु स  
मयव्यभिचारिणाम् ॥ २१ ॥ क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्व्यस्येहानु  
शयो भवेत् ॥ सोऽन्तर्दशाहं त्तिद्वयं दद्याच्चै वाददीतं च ॥ २२ ॥

टीका—ग्राम कहिये ब्राह्मण आदिके जाति समूहमें संविद्व्यतिक्रम करनेवा-  
लोंपर इस धर्मप्रधान विधिको दंडकी राजा करै ॥ २१ ॥ नाश न होनेवाली स्थि-  
र मोलकी भूमि वा तांबेके पट्टा आदिको मोल लेकर अथवा बेचकर लोकमें जि-  
सको पछतावा होय कि मैंने अच्छा नही तोल लिया वह उस मोल लियेको द-  
शादिनके भीतर लौटादे अथवा बेचे हुएको लौटा लेवै ॥ २२ ॥

परिणं तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ॥ आददानो ददच्चै व

राज्ञी दण्डं चः शतानि षट् ॥२३॥ यस्तु दोषवर्ती कन्यामनाख्याय  
प्रयच्छति ॥ तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवति पणान् ॥२४॥

टीका—दश दिनके उपरांत मोल ली हुई भूमि आदिको न छोड़ें और बे-  
ची हुईको मोल लेनेवालेसे बल करि न दिलवावें वेंचे हुएको बलसे लेता हुआ  
और मोल लियेको छोड़ता हुआ राजा करि सौ पण दंड करने योग्य है ॥२३॥  
नोन्मत्ताया इत्यादि जो पहिले कहा है दंडविशेषके लिये यहां कहते हैं उन्माद  
आदि दोषोंको न कहकर दोषयुक्त कन्याको जो वरके लिये देता है उसपर राजा  
आप आदरसे छयातवे पण दंड करे पछतावेके प्रसंगसे यह कन्याके मध्ये कहा २४

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्वेषेण मानवः ॥ स शतं प्राप्नुयादण्डं  
तस्या दोषमदर्शयन् ॥२५॥ पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्र-  
तिष्ठिताः ॥ नाकन्यासु कचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥२६॥

टीका—यह कन्या नहीं है क्षतयोनि है ऐसे जो मनुष्य द्वेषसे कहै वह उसके  
दोषको न प्रकट कर सके तो सौपण प्रमाण राजके दंडको प्राप्त होय ॥२५॥ अ-  
र्थमणदेवंकन्या अग्रिमयक्षत इत्यादिमनुष्योंकी विवाहके मंत्रकन्या शब्दके श्रव-  
णसे कन्याओंमें व्यवस्थित है अकन्याके विषयमें भिन्नार्थ होनेसे शास्त्रमें कही  
नहीं धर्मविवाहकी सिद्धिके लिये व्यवस्थित है इसीसे कहते हैं कि विवाहके  
मंत्रोंसे सत्कारकी गई भी वे क्षतयोनिस्त्रीयां धर्मविवाह आदि की क्रिया जि-  
नकी दूर हुई है ऐसी होती हैं इसका अर्थ यह है कि यह धर्मविवाह नहीं है यह  
क्षतयोनिका विवाहके मंत्रोंसे होम आदिका निषेध करनेवाला नहीं है या गर्भि-  
णी संस्क्रियते और बोधः कन्यासमुद्भवम् यह आगे मनुजीनेही क्षतयोनिकाभी  
विवाह संस्कार कहा है और देवलने तो गांधर्वविवाहोंमें कहा है कि पुनर्विवाहको  
विधिः अर्थात् यह पुनर्विवाहकी विधि है तथा कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैस्समयेनाग्निसा-  
क्षिक इति ॥ अर्थ ॥ तीनवर्णोंको समय पाके अग्निसाक्षी देकर करना चाहिये  
गांधर्व विवाहोंमें होम मंत्र आदिकी विधि कहीं है और गांधर्व तो उपगमन  
पूर्वकभी होता है उसका क्षत्रियोंमें धर्म्यपन मनुने कहा है इस कारण सामान्य  
विशेषके न्यायसे यह इतर विषय कहै क्षतयोजिके विवाहको अधर्म्य कहिये  
धर्मसे बाहर कहा ॥ २६ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥ तेषां निष्ठा तु विज्ञेया

विद्विद्भिः संतमे पदे ॥ २७ ॥ यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशं  
यो भवेत्तमर्तमेनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २८ ॥

टीका—विवाहके मंत्र निश्चय भार्यात्व कहिये स्त्रीपनके कारणहैं क्योंकि शास्त्रके अनुसार प्रयोग किये गये उन मंत्रोंसे भार्यात्व सिद्ध होताहै उन मंत्रोंसे सखा सप्तपदीभवं इस मंत्रसे कन्याको सातमें पांवके रखनेपर भार्यात्वकी सिद्धिकी शास्त्रके जानेवालोंको समाप्ति जाननी चाहिये और सातमा पांव रखनेके पहले भार्यात्वकी सिद्धि नहीं है पश्चात्ताप होनेपर छोड़दैं पीछे नहीं ॥ २७ ॥ केवल खरीदने बेचनेहीमें नहीं किंतु अन्यत्र भी संविद्वेत्तनादि कामोंमें जिसको पश्चात्ताप होय वह इस दशदिनकी विधिसे राजा धर्मयुक्त मार्गमें चलवै ॥ २८ ॥

पशुषु स्वामिनां चैव पांलानां च व्यतिक्रमे । विवादं संप्रवक्ष्यामि ।  
यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २९ ॥ दिवा वर्त्तव्यता पांले रात्रौ स्वामिनि  
तद्गृहे । योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पांलो वर्त्तव्यतामिर्यात् ॥ ३० ॥

टीका—गौ आदि पशुओंमें स्वामीका और चरानेवालेके व्यतिक्रम होनेपर विवाद कहिये झगड़ेको धर्मके तत्त्वसे यथार्थ कहौंगा ॥ २९ ॥ दिनमें पशु पालनेवालेको सौपे हुए पशुओंसे जो खेती आदिमें जो कुछ उपद्रव होजाय तौ पालनेवालेकी बुराई है और रातिमें चरवाहके लौटाय देनेसे स्वामीके घरमें बंधे हुए पशुओंसे जो कोई निकल कर कुछ उपद्रव करै तौ स्वामीका दोष है और जो दिनराति चरानेवालेके पास रहते होय तौ उसीकी बुराई होगी ॥ ३० ॥

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्यादर्शतो वराम् । गोस्वाम्यनुमते भृत्यः  
सां स्यात्पांलेऽभृते भृतिः ॥ ३१ ॥ नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं  
विषमे मृतम् । हीनं पुरुषकारेण प्रदेद्यात्पांल एव तु ॥ ३२ ॥

टीका—जो गोपाल कहिये अहीर केवल दूधपर नौकर होय भोजन आदिसे कुछ काम नहीं वह स्वामीकी आज्ञासे दश गौओंमेंसे श्रेष्ठ एक गौकी अपनी नौकरीके मध्ये दुहि लेवै यह भोजन आदि रहित गौ पालनेवालेकी नौकरी हुई अर्थात् एक गौका दूध देनेसे दस गौओंको पालें ॥ ३१ ॥ नष्ट कहिये दृष्टिसे बाहर हुएको और कीड़ों करि नाश किये हुएको और कुत्तों करि खाए हुएको और गदिले आदिमें गिरिकर मरे हुएको जो पालने वालेका कोई मनुष्य न होय तौ मरे और भागे हुए गौ आदि पशुको पालनेवालाही स्वामीको देवै ॥ ३२ ॥



विधृष्य तु हतं चौरैर्न पालो दातुर्महति । यदि देशे च काले च  
स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥ ३३ ॥ कर्णौ चर्म च वालाश्च वस्ति  
स्नायुं च रोचनाम् । पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—जो थोड़ीही दूर लेजानेके पीछेही पालनेवाला अपने प्रभुके, स्वामी-  
से कहि देवैतौ ढोल आदिसे शब्द करिके चोरों करि हरे गये पशुको पालनेवाला  
स्वामीको न देवै विधृष्य कहिये ढोल आदि वजायके इसके कहनेसे चोरोंकी बहु-  
तायत और प्रबलताजानी जाती है ॥ ३३ ॥ पशुओंके आपसे मरनेपर पालने-  
वाला कान चाम पंछ वाल नाभिके नीचेका भाग नसैं और रोचना स्वामियोंको  
देवैं और भी मुख्य चिन्ह सींग खुर आदि दिखावै ॥ ३४ ॥

अजाविके तुरुद्धे वृकैः पाले त्वनदयति । यां प्रसह्य वृको हन्या  
त्पाले तत्किंल्विषं भवेत् ॥ ३५ ॥ तासां चेद्वरुद्धानां चरतीनां  
मिथो वने । यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किंल्विषी ॥ ३६ ॥

टीका—भेड़बकरिओंको भेड़ियोंके घेरनेपर पालनेवाले न आवैं तौ जिस एक  
भेड़ अथवा बकरीको वनमें भेड़िया मारै वह पालनेवालेका दोष होता है ॥ ३५ ॥  
पालनेवाले करि रोकी हुई और वनमें इकट्ठी होकै चरती हुई भेड़ बकरि-  
योमेंसे जो कोई भेड़िया कही उछल कर गुप्त हो जिस किसी भेड़ वा बकरीको  
मारै वहां पालकको दोष नहीं होताहै ॥ ३६ ॥

धनुःशतं परीहारी ग्रामस्य स्यात्समन्ततः । शम्यापातास्त्रयो  
वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ ३७ ॥ तत्रापरीवृतं धान्यं विहिंस्युः  
पशवो यदि । न तत्र प्रणयेदण्डं नृपातिः पशुरक्षिणाम् ॥ ३८ ॥

टीका—चारि हाथका एक धनुष्य होताहै शम्या लाठीको कहते हैं उसका  
पात गिरना ग्रामके समीप सब दिशाओंमें चार सौ हाथ अथवा तीन लाठीकी  
नापतक पशुओंके चरनेके लिये अन्न देने आदिसे रोकवेका त्याग करनेयोग्यहै  
और फिरि नगरके समीप यह तिगुणा करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उस त्यागके स्था-  
नमें जो कोई आवृत्ति अर्थात् खाई आदिसे घेरिके धान्यको वोवै और उसको  
जो पशु खाजाय तौ वहां राजा पशुपालोको दंड न देवै ॥ ३८ ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ॥ छिद्रं च वारयेत्सर्वं

श्वसूकरमुखातुगम् ॥३९॥ पृथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा  
पुनः ॥ संपालः शतदण्डाहो विपालांश्चरयेत्पशून् ॥ २४० ॥

टीका—उस परिहारके स्थानमें खेतके चारो ओर काटे आदिकोंसे ऐसी ऊंची वृत्ति बनावै कि जिसको बाह्यसे ऊंट न देखिसकै और उसमें जो कुत्ता वा शूकरके मुखके जानेके योग्य छिद्र होय उन सबोंको बंद कर देवै ॥ ३९ ॥ मार्गके समीप अथवा ग्रामके समीप अथवा कंटक आदिसे घेरे हुए परिहार ( बचावमें ) स्थित खेतको पालसमेत पशुपाल करि नही रोके हुए द्वार आदिसे कैसे हू धसिकै खाय तौ सौपण दंड देना चाहिये पशुके दंडका असंभवहै तिससे पालहीको दंड देना चाहिये और पालके विनाही खानेको प्रवृत्त पशुओंको खेत रखानेवाला हांकि देवै ॥ २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः संपादं पणमहंति ॥ सर्वत्र तु संदो देयः क्षेत्रि  
कस्येति धारणा ॥४१॥ अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशून्स्त  
था ॥ सपालान्वा विपालान्वा न दण्डयान्मनुरब्रवीत् ॥ ४२ ॥

टीका—मार्ग और ग्रामके खेतोंसे अन्य खेतोंको खाता हुआ पशु सवापण दंडके योग्यहै यहां भी पालनेवालाही दंड देना योग्यहै सब खेतोंमें पशुके खाये हुएका फल क्षेत्रके स्वामीके लिये पाल अथवा पशुका स्वामी अपराधके अनुसार देवै यह निश्चय है ॥४१॥ दशदिनके भीतरकी व्याई हुई गौ तथा चक्र शूल से अंकित छोडा हुआ बैल और देवता संबंधी पशु चाहै पालसहित होय चाहै पाल रहित होय खेतखाते होय तौ मनुने उनको अदंड्य कहाहै छोडे हुए बैलोंको गौओंके गर्भके लिये गोकुलमें पाल रखते हैं इसलिये पालका संबंधहै ॥ ४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ॥ ततोऽर्धदण्डो भू  
त्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥४३॥ एतद्रिधानमतिष्ठेद्धार्मिकः  
पृथिवीपतिः । स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमेऽ४४॥

टीका—खेत जोतनेवालेका निज बैल जो खेतखाय जाय अथवा वोनेके समय न वोया जाय इन अपराधोंके होनेपर जिस राजाके भागकी हानि उससे होय उससे दशगुणा दंड उसपर होना चाहिये और जो खेतवालेके विना जाने उसके नौकरोंसे उक्त अपराध होजाय तौ खेतवालेही पर दश गुनेका आधा दंड होना चाहिये ॥४३॥ स्वामीके और पालोंके रक्षाके अपराधसे पशुओंके खेत खा

नेरूप व्यतिक्रम होनेपर धर्म प्रधान राजा यह पहले कहा हुआ काम करे ॥४४॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः । ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां  
सुप्रकांशेषु सेतुषु ॥ ४५ ॥ सीमांवृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थ  
किंशुकान् । शाल्मलीन्सालतालांश्चक्षीरिणश्चैव पार्दपान् ॥ ४६ ॥

टीका—दो ग्रामोंकी सीमाके मध्ये झगडा उत्पन्न होनेपर ज्येष्ठके महीनेमें सूर्यके तापसे तृणोंके सूखि जानेसे सीमाके चिन्होंके प्रकट होनेपर राजा सीमाका निश्चय करे ॥ ४५ ॥ बड़ पीपल ढाक सेमल शाल ताल और दूधवाने वृक्ष को बहुत कालतक रहनेके कारण सीमाके चिन्हके लिये लगावे ॥ ४६ ॥

गुल्मान्वेषूँश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च । शरान्कुब्जकमु  
ल्मांश्च तथा सीमां न नश्यति ॥ ४७ ॥ तडांगान्युदपानानि वाप्यः  
प्रस्त्रवणानि च । सिमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ ४८ ॥

टीका—गुल्मोंको जिनमें शाखा नहीं निकलती हैं और वासोंको और बहुत कांटे तथा थोड़े कांटे आदिके भेदसे नानाप्रकारके सीमा वृक्षोंको और लताओं को लगावे और स्थल कहिये ऊंचेबनाये हुए भूमिके भागोंको और शरपत्तोंको और छोटे गुल्मोंको सीमाके चिन्ह करै ऐसा करनेपर सीमा नष्ट नहीं होती है ॥ ४७ ॥ तलाव कुवा बावडी जलनिकलनेके मार्ग देवताओंके मंदिर शिवालय आदिको दो ग्रामोंकी संधिके स्थानमें बनवावे सीमाके निर्णयके लिये लोकमें प्रसिद्ध करिकै बनवाये हुए इन तलाव आदिकोंमें जलपीनेवालेभी सुननेकी परंपरासे बहुत कालतक साक्षी रहते हैं ॥ ४८ ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् । सीमाज्ञाने नृणां  
वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ ४९ ॥ अश्मनोऽस्थीनि गोवालां  
स्तृषान्भूर्स्मृ कपालिकाः । करीषमिष्टकाङ्गाराञ्छर्करा वालुका  
स्तथा ॥ ५० ॥ यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्धर्मिर्न भक्षयेत् । तानि  
संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥ ५१ ॥

टीका—इस लोकमें सीमा निर्णयके मध्ये सदा मनुष्योंको भ्रमसे सीमाका ज्ञान होताहै इस बातको देखि कहे हुएसे भिन्न गूढ़ जिनको आगे कहेंगे ऐसे सीमाके चिन्होंको करावे ॥ ४९ ॥ पत्थर हड्डी गौके बाल धानकी भूसी कपाल करस ईंट

अंगारे ठीकरियां बालू तथा औरभी इसी प्रकारकी वस्तु काला अंजन विनौला आदि जिनकी बहुत दिनोंमेंभी भूमि अपने रूपमें नमिला लेवै उनको ग्रामकी संधियोंमें सीमाके मध्यमें ढालकर घट्टोंमें भरकै सीमाओके अंतमें रखिदेवै इस बृहस्पतिके वचनसे बड़े पत्थरोंको छोड़कै घट्टोंमें भरकै गुप्त भूमिमें गाडि देवै ५०।५१.

एतैलिङ्गेन<sup>१२</sup> येत्सीमां राजा विवदमानयोः ।

पूर्वभुत्तया च सततमुदकस्यागमेन च ॥५२॥

टीका—झगडा करनेवाले ग्रामोंकी सीमाका पहले कहे हुए इन चिन्होंसे राजा निर्णय करै और बसनेवालोंकी सीमाका अविच्छिन्न कहिये बराबर चले आये भोग ( कब्जे ) से निर्णय होताहै तीनि पुरुष आदिके भोगसे नही क्योंकि तस्याधिः सीमा यह पर्थदासहै और दो ग्रामोंके बीचमें स्थित नदी आदिके प्रवाहसे इसपार उसपारके ग्रामोंकी सीमाका निश्चय करै ॥ ५२ ॥

यदि संज्ञाय एव स्यालिङ्गानामपि दर्शने । साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥५३॥ ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीं प्रि साक्षिणः ॥ प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥ ५४ ॥

टीका—जो गुप्त और प्रकट चिन्होंके देखनेसेभी निर्णय न होय अर्थात् कि-सीने छुपे हुए कोयले भूसी आदिके ये घड़े लेकर दूसरे स्थानमें गाडि दिये हैं और यह वह सीमाका वृक्ष नहीं है वह नष्ट हो गया इत्यादि संदेह जो होय तौ साक्षियोंसे सीमा विवादका निर्णय होवै ॥ ५३ ॥ ग्रामके मनुष्योंके समूहमेंसे दोनों ग्रामके नियत किये हुए मनुष्यों और वादी प्रतिवादियोंके सामने सीमाके मध्ये सीमाके चिन्होंमें संदेह होनेपरुं साक्षियोंसे चिन्ह पूछने चाहिये ॥ ५४ ॥

ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीं प्रि निश्चयम् । निर्वध्नीयात्तथा सीमां सर्वास्तांश्चैव नमतेः ५५ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः । सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥५६॥

टी०—पूछे गये वे सब साक्षी सीमाके मध्ये जिस भांति निर्णय करैं उसी प्रकारसे न भूलनेके लिये सीमाको पत्रमें लिखै और उन सब साक्षियोंके नाम लिखै ॥ ५५ ॥ लाल फूलोंकी मालाको धारण किये हुए और लालही वस्त्रोंको पहिरे हुए और माथेपर मट्टी ककरोंको रखकै जो हमारा सुकृतहै वह निष्फल होय ऐसे अपने सुकृतों करि शाप दिये गये वे शक्तिके अनुसार सीमाका निर्णय करैं ॥ ५६ ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूर्यन्ते सत्यसाक्षिणः । विपरीतं नयन्तस्तु  
दांप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ ५७ ॥ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः  
सामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥ ५८ ॥

टीका—सत्यहै प्रधान जिनके ऐसे वे साक्षी शास्त्रमें कहे हुए विधानसे निर्णय करते हुए पापरहित होते हैं और झूठसे निश्चय करते हुए प्रत्येक सौपण दंड देनेयोग्य होते हैं ॥ ५७ ॥ दोग्रामोंकी सीमाके विवादमें साक्षी न होनेपर चारो औरोंके निकट बसनेवाले चारि औरके चारि ग्राम साक्षियोंके धर्मसे राजाके आगे सीमाका निर्णय करें ॥ ५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीमां साक्षिणाम् ॥ इमानप्यनुयुं  
ज्जीत पुरुषान्वर्नगोचरान् ॥ ५९ ॥ व्याधाच्छाकुनिकान्गोपांक्ते  
वर्तान्मूलखानकान् ॥ व्यालग्रहानुच्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ६०

टीका—साक्षि धर्मसे राजाके सामने और पासके चारि ग्रामोंके बसने वाले विश्वासयुक्त और ग्राम बसनेके समयमें लगाके पुरखोंके क्रमसे उसग्रामके रहने वाले ऐसे सीमाके साक्षियोंके न होनेपर जो आगे कहे जायगे ऐसे निकट वर्तमान बनके फिरनेवाले मनुष्योंसे पूछे ॥ ५९ ॥ वहेलियोंसे अहीरोंसे धीवरोंसे कंजरांसे सांप पकड़नेवालोंसे शिलोछ वृत्तिवालोंसे तथा औरभी फल फूल ईंधनके लिये बनके व्यवहारियोंसे पूछे ये तौ अपने प्रयोजनके लिये उस ग्रामसे सदा बनको जाते हुए उस ग्रामकी सीमाके जाननेवाले होते हैं ॥ ६० ॥

ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥ तत्तथा स्थापयेद्वा  
जा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृह  
स्य च ॥ सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ ६२ ॥

टीका—पूछे गये वे व्याध आदि सीमारूप ग्रामकी संधियोंमें जिस प्रकारसे चिन्ह कहे उसी प्रकारसे राजा दोनो ग्रामोंकी सीमाको स्थापित करे ॥ ६१ ॥ एक ग्राममेंभी खेत कुआ तलाव बाग और घरोंकी सीमाके झगड़ेमें और पासके ग्रामोंके बसनेवाले साक्षियोंके प्रमाणसेही मर्यादाके चिन्होंका निश्चय जानना चाहिये व्याध आदिकोंके प्रमाणसे नहीं ॥ ६२ ॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवेदतां नृणाम् ॥ सर्वे पृथक्पृथग्दं

ण्डं च राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥ ६३ ॥ गृहं तडागमौरामं क्षेत्रं वा भी  
षया हरन् ॥ शतानि पञ्च दण्डयः स्यादज्ञानाद्विशतो धर्मः ॥ ६४ ॥

टीका—सीमाके चिन्होंके लिये झगड़नेवाले मनुष्योंके और पास देशके वस-  
नेवाले जो झट्ट कहैं तौ वे सब प्रत्येक राजा करि मध्यम साहसका दण्ड देनेयो-  
ग्य हैं ऐंसेही जो और पासके नहीं हैं उनकों पहले कहा हुआ दोसौ पण दण्ड दे-  
ना चाहिये ॥ ६३ ॥ घर तलाव बाग खेत इनमेंसे किसीको मारना बांधना आ-  
दि भय दिखा दवा करि ले लेवै तौ पांचसौ दंड करनेयोग्य होय और जो अप-  
नेकेभ्रमसे ले ले तौ उसपर दोसौ दंड किया जाय ॥ ६४ ॥

सीमायामविषयायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥ प्रादिशूद्रूमिमितेषामुप  
कारादि<sup>१</sup> ति स्थितिः ॥ ६५ ॥ एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमावि  
निर्णये ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ ६६ ॥

टीका—चिन्ह तथा साक्षी आदिके न होनेसे सीमाका प्रमाण न हो सकनेपर  
धर्मज्ञ राजा पक्षपात रहित हो दो ग्रामोंके बीचमें स्थित झगड़की भूमिको जि-  
न ग्रामके वसनेवालोंका अधिक उपकार होता होय उसके विना निर्वाह न होता  
होय उन्हीके देवै यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ६५ ॥ यह सीमाके निश्चयको धर्म संपू-  
र्ण कहा इसके उपरांत वाक्पारुष्य कहौंगा दंडपारुष्यसे पहले वाक्पारुष्य  
होती है इससे पहले कही ॥ ६६ ॥

शतं ब्राह्मणमाकुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥ वैश्योऽप्यर्धशतं द्रे<sup>१</sup>  
वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ ६७ ॥ पञ्चांशद्राह्मणो दण्डयः क्षत्रियस्या  
भिंशंसने ॥ वैश्ये स्यादर्थपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ ६८ ॥

टीका—यह चोर है ऐसे ब्राह्मणके आक्षेपरूप वचन कहिकै क्षत्रिय सौपण  
दंडके योग्य होता है ऐसे डेढ सौ अथवा दोसौ कार्यका हलकापन तथा भारीप-  
नकी अपेक्षासे वैश्य शूद्रभी ऐसेही ब्राह्मणकी बुराई करनेसे ताड़नादि रूप वध-  
के योग्य होता है ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण जो पहले कहा हुआ आक्षेप क्षत्रियका करै तौ  
पचास पण दंडके योग्य है और वैश्य तथा शूद्रका जो कहा हुआ आक्षेप करै तौ  
ब्राह्मण पच्चीस और बारह पण क्रमसे दंड करने योग्य होय ॥ ६८ ॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥ वादेष्ववचनीयेषु तदेव

द्विगुणं भवेत् ॥६९॥ एकजातिद्विजातीस्तु वाचा दारुणया क्षिपे  
न् ॥ जिह्वायाः प्राग्मुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हिंसः ॥२७०॥

टीका—द्विजातियोंकी बराबरकी जातिमें कहे हुए आक्षेपके होनेपर बारह पण दंडहै और नहीं कहनेयोग्य बुरे वचनोंमें तथा भाई बहिन आदिकी गाली देनेमें वही पहले कहे हुए सौपणका दूना अर्थात् दोसौ पण दंड होताहै ॥६९॥ शूद्र द्विजातियोंको पातक लगानेवाली वाणीसे गाली देकर जीभ काटनेके योग्य होताहै जिस्से पाद नाम निरुष्ट अंगसे उत्पन्नहै ॥ २७० ॥

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ॥ निक्षेप्योऽयमयः शङ्कु  
ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥७१॥ धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्व  
तः ॥ तप्तमासेचयेत्तैलं वत्के श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७२ ॥

टीका—अभिद्रोह आक्रोशको कहते हैं ब्राह्मण आदिकोंका, जैसे अरे यज्ञदत्त तू ब्राह्मणोंमें नीचहै इत्यादिक आक्रोशसे नाम तथा जातिके ग्रहण करनेवालेके मुखमें अग्निसे तपी हुआ दशअंगुलकी लोहेकी कील डालनेयोग्य है ॥ ७१ ॥ कैसे हू धर्मके लेशको जानकै तुमको यह धर्म करना चाहिये ऐसे अहंकारसे ब्राह्मणको उपदेश करने वाले शूद्रके मुखमें और कानोंमें जलता हुआ तेल रजा डलवावै ॥ ७२ ॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शरीरेमेव च ॥ विन्त्येन ब्रुवन्दर्पादा  
प्यः स्याद्विशतं दर्मम् ॥७३॥ कर्णं वाप्यर्थवा खञ्जमन्यं वापि त  
थाविधम् ॥ तन्त्येनापि ब्रुवन् दीप्योर्दण्डं कर्षापणावरम् ॥७४॥

टीका—दंडकी लघुतासे यह समान जानि विषय कहै शूद्र करि किये हुए द्विजातिके आक्षेप विषयक नहीं है । तुमने यह नहीं सुनाहै तुम इस देशमें नहीं उत्पन्न हुए हो तुझारी यह जाति नहीं है और तुझारे शरीरका संस्कार यज्ञोपवीत आदिकर्म नहीं किया गयाहै ऐसे अहंकारसे मिथ्या कहता हुआ दोसौ पण दंड देनेयोग्य होताहै ॥ ७३ ॥ कानेको पंगेओ तथा औरभी ऐसे हाथ आदि अंग हीनको सत्यबी काने आदि शब्दसे कहता हुआ बहुतही थोडा अर्थात् एक कार्षापण दंडके योग्य होताहै ॥ ७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ॥ आक्षारयच्छतं दाप्यः

पन्थानं चाददुहुरोः ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो  
विज्ञानता ॥ ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेवं मध्यमः ॥ ७६ ॥

टीका—माता पिता स्त्री भाई पुत्र गुरु इनको पातक आदि लगानेवाले और गुरुको न मार्ग देनेवालेपर सौ पण दंड करना चाहिये ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियों करि आपसमें जा जातिसे पतित होनेयोग्य पातक लगानेपर दंड शास्त्रके जाननेवाले राजा करि दंड करनेयोग्य है दंडहीको विशेष करि कहते हैं क्षत्रिय को पातक लगानेवाले ब्राह्मणपर प्रथम साहस और ब्राह्मणको पातक लगानेवाले क्षत्रियपर मध्यम साहस दंड करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विदूशूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥ छेदवर्जं प्रणयनं दण्डं  
स्येति विनिश्चयः ॥ ७७ ॥ एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य  
तत्त्वतः ॥ अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ ७८ ॥

टीका—वैश्य तथा शूद्रोंकी जातिमें आपसमें जातिसे पतित होनेके योग्य पातक लगानेपर ब्राह्मण क्षत्रियके समान शूद्रको पातक लगानेवाले वैश्यपर प्रथम साहस और वैश्यको पातक लगानेवाले शूद्रपर मध्यम साहस ऐसे जीभ काटनेके विना तथा योग्य दंड करना चाहिये वह शास्त्रका निश्चय है ॥ ७७ ॥ यह पीछे कही हुई वाक्पारुष्यके दंडकी विधि यथावत् कहिये ठीक ठीक कही अब इसके उपरान्त ताड़न आदि दंड पारुष्यके निर्णयको कहोंगा ॥ ७८ ॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेष्टैर्मन्त्यजः ॥ छेत्तव्यं तत्तदेवांस्यं तं  
न्मनोरनुशासनम् ॥ ७९ ॥ पाणिमुर्धन्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति  
ति ॥ पादेन प्रहरन्कोपात्पादं च्छेदनमर्हति ॥ ८० ॥

टीका—अंत्यज शूद्र जिस किसी हाथ पांव आदि अंगसे साक्षात् अथवा छुपिके द्विजातिपर प्रहार करे वही इसका अंग काटना चाहिये यह मनुका उपदेश है मनुका ग्रहण आदरके लिये है ॥ ७९ ॥ मारनेके लिये हाथको अथवा दंड को उठाके हाथ काटनेको प्राप्त होता है और कुपित हो लातसे मारती हुआ पांचके काटनेरूप दंडको प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

संहासनमभिप्रेप्सुस्तृष्टस्यापकृष्टजः ॥ कट्या कृताङ्गो निर्वास्यः  
स्फिचं वास्यावकृतयेत् ॥ ८१ ॥ अविनिष्टीवतो दर्पाद्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ॥ अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ ८२ ॥



टीका—ब्राह्मणके आसनपर बैठा हुआ शूद्र कटिमें तपाये हुए लोहसे चिन्ह करिके देशसे निकालने योग्य है अथवा जैसे यह मरै नहीं ऐसे इसके स्फिच अर्थात् कटिके मांसपिंडका कटवाय देवै ॥ ८१ ॥ गर्वसे कफको थूक करि ब्राह्मणका अपमान करनेवाले शूद्रके राजा दोनो ओठ कटवाय देवै और मूत्र डालनेसे अपमान करनेवालेका लिंग कटवाय देवै और पादनेसे अपमान करनेवालेकी गुदाको कटवाय देवै ॥ ८२ ॥

केशेषु गृण्हतो हस्तौ छेदयेद्विचारयन् ॥ पादयोर्दाढिकायां च  
ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ ८३ ॥ त्वग्भेदकः शूलं दण्डचो लोहितस्य  
च दर्शकः ॥ मांसभेत्ता तुर्षणिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्त्रिभेदकः ॥ ८४ ॥

टीका—अहंकारसे ब्राह्मणके बाल पकड़नेवाले शूद्रके इसको पीडाहोगी अथवा न होगी इसका विचार न करता हुआ राजा दोनो हाथोंको कटवाय देव और मारनेके लिये पांव ढाढी गरदन और अंडकोशोंके पकड़नेवालेके दोनोही हाथोंको कटवाय देवै ॥ ८३ ॥ जो समान जातिकी त्वचा मात्रका भेद न करै तौ सौ पण दंड करनेयोग्य है और रक्त निकालनेवालाभी सौपण दंडके योग्य है और मांसका भेद न करनेवाला छः निष्क दंड करनेयोग्य है और हाडका भेदन करनेवाला तौ देशसे निकालने योग्य है ॥ ८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ॥ तथातथा दमः कायौ  
हिंसायामि ति धारणा ॥ ८५ ॥ मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय  
प्रेतते सति ॥ यथायथा महदुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥ ८६ ॥

टीका—वृक्ष आदि सब उद्भिदोंका उपभोग जिस जिस प्रकारसे फल पुष्प पत्र आदिसे उत्तम मध्यम अधम रूपसे होता है वैसेही हिंसामेंभी उत्तम साहस आदि दंड करना चाहिये यह निश्चय है ॥ ८५ ॥ मनुष्योंके तथा पशुओंके पीडा उत्पन्न करानेके लिये जो प्रहार करनेपर जैसी जैसी पीडाकी अधिकता होय वैसा वैसा दंड अधिक करै ऐसे मर्मस्थान आदिमें त्वचाका भेद आदि करनेपर त्वचाका भेदन करनेवाला सौपण दंड करने योग्य है दुःख विशेषकी अपेक्षासे इस कहे हुए दंडसे अधिकभी दंड करने योग्य है ॥ ८६ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥ समुत्थानव्ययं दाप्यः  
सर्वदण्डमथापि वा ॥ ८७ ॥ द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽ

ज्ञानतोऽपि वा ॥ सं तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ८८

टीका—हाथ पांव आदि अंगोंकी और व्रण ( घाव ) शौणित कहिये रुधिरकी पीडा होनेपर समुत्थान व्यय कहिये जितने समय करि पहली दृशाका प्राप्तिरूप समुत्थान होय अर्थात् अच्छा होके पहलासा हो जा उस कालमें पथ्य औषध आदिसे जितना खरच होय वह उसे दिवांना चाहिये जो उस खरचको पीडाका उत्पन्न करानेवाला न देना चाहै तो जो उसपर उत्थान व्ययहै और दंडहै उसीको दंडभावसे राजा दिवावै ॥ ८७ ॥ जिनका विशेष दंड नहीं कहाहै ऐसी कडे और तांबेके कड़ाह आदि वस्तुओंमें जो जिसकी जानकर अथवा विना जाने बिगाडै उसका दूसरी वस्तु आदिसे संतोष करवै और नाश किये हुए द्रव्यकी बराबर राजाको दंड दैवै ॥ ८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ॥ मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ ८९ ॥ यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ॥ दंशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

टीका—चमड़ेकी वर्त्तन आदिमें और चर्म काठ मट्टी आदिके बने हुए अन्यके वासनोके नाश करनेपर उनके मोलसे पांच गुणा दंड राजाको देना चाहिये और स्वामीकाभी संतोष करानेही योग्यहै ॥ ८९ ॥ रथ आदि यान कहिये सवारीका और उसके चलानेवाले सारथीका तथा उसके स्वामीका जिसका वह यानहै उनके नाथ कटिजाना आदि दश कारण दंडको उल्लंघन करि वर्त्तमानहैं अर्थात् इन निमित्तोंके होनेपर प्राणियोंके मारनेमें और द्रव्यके नाश होनेमें यानके स्वामी आदिकोंको दंड नहीं होताहै यह मतु आदि कहते हैं और इनसे भिन्न कारणोंमें दंड होताहै ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥ अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ २९१ ॥ छेदनेचैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ॥ आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥ २९२ ॥

टीका—बैलोंकी नाथके कटि जानेपर जुआके टूट जानेपर अथवा भूमिके ऊची नीची होनेसे तिरछा जानेपर और यानकी धुरीके टूटनेपर तथा पहियाके टूटनेपर और चमड़ेके बंधनोंके टूटि जानेपर और जोतोंके तथा पगहियोंके टूट जानेपर और सारथी आदि करि किये हुए हटिजाओ हटिजाओ ऐसे ऊचा श-

वृद्धके होनेपर जो यानसे प्राणीकी हिंसा तथा द्रव्य आदिका नाश होजाय तौ सारथी आदिको दंड नहीं है यह मनुजी कहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

यत्रार्पकवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ॥ तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो  
हिंसायां द्विशतं दर्मम् ॥ ९३ ॥ प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डम्  
हति ॥ युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम् ॥ ९४ ॥

टीका—जहां सारथीके कुशल न होनेसे रथ इधर उधर मार्गको छोड़िके चले और उससे हिंसा होनेपर बिना सिखे हुए सारथी रखनेके कारण स्वामीपर दोसौ पण दंड करना चाहिये ॥ ९३ ॥ जो सारथी कुशल होय तौ सारथीही कहे हुए दोसौ पण दंडके योग्यहै स्वामी नहीं और सारथी जो कुशल न होय तौ उसमें सारथीके स्वामीके सिवाय औरभी यानमें बैठे हुए मनुष्य अकुशल सारथीके यानमें चढ़नेके कारण प्रत्येक सौसौ पण दंडके योग्यहै ॥ ९४ ॥

सं चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥ प्रमापयेत्प्राणभृतस्तं  
त्र दण्डोऽविचारितः ॥ ९५ ॥ मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवर्तिकल्बि  
षं भवेत् ॥ प्राणभृत्सु महत्स्वर्थं गोर्गजोऽह्वयादिषु ॥ ९६ ॥

टीका—जो वह सारथी सामनेसे आती हुई बहुत सी गौओं करि अथवा दूसरे रथ करि रोका हुआ अपने रथके चलनेकी असावधानीसे पीछेको न हटा सके और सकड़े मार्गमें अपने रथके घोड़ोंको हांकता हुआ चले और जो घोड़ोंसे अथवा रथसे अथवा रथके अंग पहिया आदिकोंसे प्राणियोंको मारे तौ वहांभी विचारा हुआ दंड करना चाहिये ॥ ९५ ॥ सारथीकी असावधानीके कारण रथ आदि यानसे मनुष्यको मर जानेपर शीघ्रही चोरका दंड उत्तम साहस होता है और गौ गज आदि बड़े प्राणियोंके मारनेपर उत्तम साहसका आधा पांचसौ पण दंड होता है ॥ ९६ ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दर्मः ॥ पशूनां भवेद्दण्डः  
शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ ९७ ॥ गर्दभाज्जाविकानां तु दण्डः स्यापञ्चमा  
षिकः ॥ मापकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरस्निपातने ॥ ९८ ॥

टीका—जिनकी जाति विशेष कही है उनसे अन्य वनमें विचरनेवाले छोटे पशुओंके मारनेमें और किशोर आदि पक्षियोंके मारनेमें दोसौ परम दंड होता है और कर्कश आदि शुभ मृगोंके तथा और शुक हंस सारस आदि पक्षियोंके मारने

पर पांच सौ पण दंड होता है ॥ ९७ ॥ गधा बकरा और भेड़के मारनेमें पांच रूपके प्राप्ति प्रमाण दंड होता है यहां सोनेके मासेका ग्रहण नहीं है क्योंकि आगे आगे लघु कहिये हलके दंडका कथन है और कुत्ता तथा सुअरके मारनेमें फिर एक रूपका मासा दंड होता है ॥ ९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेक्ष्यो भ्राता च सोदरः ॥ प्राप्तापराधास्तौ  
ड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥ ९९ ॥ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमा  
ङ्गे कथंचन ॥ अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्रातः स्याच्चौरः किल्बिषम् ३००

टीका—स्त्री पुत्र दास शिष्य और सगाभाई इनमें जो कोई अपराध करे तौ रस्सीसे अथवा बहुत छोटी हलकी बांसकी लकड़ीसे ताड़न करनेयोग्य होते हैं ॥ ९९ ॥ रस्सी आदिसेमी देहके पृष्ठ भागमें अर्थात् पीठिमें ताड़ना करने योग्य है शिरमें कभी नहीं कहे हुए प्रकारसे अन्यथा करनेमें बागदंड धनदंड ( जुर्माना ) रूप चौरदंडको प्राप्त होय ॥ ३०० ॥

एषोखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥ स्तेनस्यातः प्रव  
क्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ १ ॥ परमं यत्नैर्मातिष्ठेत्स्तेनानां  
निग्रहे नृपः ॥ स्तेनानां निग्रहादस्य यशो रोगं च वर्धते ॥ २ ॥

टीका—यह दंड पारुष्यका निर्णय संपूर्णतासे कहा इसके उपरान्त चौर दंड-  
के निर्णयका विधान कहोंगा ॥ १ ॥ चोरोंके दंड देनेमें राजा बड़ा भारी यत्न  
करे जिस्से चोरोंको दंड देनेसे राजाकी ख्याति होती है और उपद्रवरहित हो-  
नेसे देशभी बढता है ॥ २ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥ सत्रं हि वर्धते  
तस्य सदैव अभयदक्षिणम् ॥ ३ ॥ सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति  
रक्षतः ॥ अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ ४ ॥

टीका—चोरोंके दंड देनेसे जो राजा साधुओंको अभय देता है वही सबोंका  
पूज्य और प्रशंसायोग्य होता है और उसका गवायन आदि सत्र कहिये यज्ञ वि-  
शेष जिसकी चोरोंका दंड देनारूप अभयही दक्षिणा है वह सदा बढाता है और  
निश्चित समय और नियत है दक्षिणा जिसकी ऐसा होता है यह तौ अभय दक्षिणा  
युक्त सब कालमें होता है ॥ ३ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले राजाका बनिया आ-  
दिसे तथा श्रोत्रिय आदिसे धर्मका छठा भाग होता है और नहीं रक्षा करनेवाले

की अधर्ममेंसे छठा भाग होताहै तिस्से राजा यज्ञ करिके चोरोंके दंड देनेसे सबोंकी रक्षा करे ॥ ४ ॥

यद्धीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति । तस्य षड्भागभागां सस्य  
र्भवति रक्षणात् ॥ ५ ॥ रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वर्ध्यांश्च घात-  
यन् ॥ यजतेऽर्हरह्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ६ ॥

टीका—जो कोई जप यज्ञ दान देवताका पूजन आदि करता है उसके छठे भागको राजा भलीभांति पालन करनेसे प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ राजा शास्त्रके अनुसार दंड देनेरूप धर्मसे पालन करता हुआ और चौर आदिकोंको दंड देता हुआ प्रतिदिन लक्ष गौ हैं दक्षिणा जिसकी ऐसे यज्ञसे यजन करताहै अर्थात् उनसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥ प्रतिभागं च दण्डं  
च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥ ७ ॥ अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहा-  
रिणम् ॥ तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ८ ॥

टीका—रक्षा न करता हुआ जो राजा बलि कहिये धान्य आदिका छठा भाग आदि और कर कहिये ग्राम तथा पुरके वासियोंसे प्रतिमहीने भादों और पूस आदि महीनोंके नियमसे लेनेयोग्य अथवा शुल्क कहिये जलके मार्गसे अथवा स्थलके मार्गसे वाणिज्य करनेवालोंसे नियत चौकी आदि स्थानोंमें द्रव्यके अनुसार लेनेयोग्य जो दान (महसूल) के नामसे प्रसिद्धहै और प्रतिभाग कहिये फल फूल शाक और तृण आदि भेंट जो प्रतिदिन लेनेयोग्यहै और दंड कहिये और व्यवहार आदिमें दंड लेताहै वह मुरिके शीघ्रही नरकको जाताहै ॥ ७ ॥ जो राजा रक्षा नहीं करताहै और बलिरूप धान्य आदिके छठे भागके लेताहै उसको सब लोगोंके समस्त पापोंके लेनेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् । अरक्षितारमतारं नृपं  
विद्यादधोगतिम् ॥ ९ ॥ अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रय-  
त्नतः ॥ निरोर्धनेन बन्धेन विविधेन बन्धेन च ॥ ३१० ॥

टीका—शास्त्रकी मर्यादाके न माननेवालेको और परलोकको न मानकर अनुचित दंड आदिसे धन लेकर बड़े हुएको औ रक्षा न करनेवालेको और कर तथा बलि आदिके खानेवाले राजाको नरकगामी जानै ॥ ९ ॥ अधर्मी चोर आ-

दिको अपराधकी अपेक्षासे तीन उपायों करि यत्नसे दंड देवै उनको कहते हैं जेहलखानेमें डाल देनेसे और वेरी आदिके बंधनोंसे और ताडना तथा हाथ पांव आदिके काटने आदि नानाप्रकारके मारनेसे ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ॥ द्विजांतय ईवेज्याभिः  
पूर्यन्ते संततं नृपाः ॥ ११ ॥ क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यं  
णां नृणाम् ॥ बालवृद्धानुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ १२ ॥

टीका—पापियोंके दंड देनेसे और साधुओंकी रक्षा करनेसे महायज्ञ आदिकोंसे ब्राह्मणोंके समान सबकाल राजा पवित्र होते हैं तिससे अधर्मियोंको दंड दे और साधुओंपर अनुग्रह करै ॥ ११ ॥ कार्यवाले अर्थात् प्रत्यर्थियोंके आक्षेपसे कहे हुए वचनोंको और बालक वृद्ध तथा रोगियोंके आक्षेपको आगे जो कहा जायगा ऐसे अपने उपकारकी इच्छा करनेवाला प्रभु सह लेवै ॥ १२ ॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यात्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥ यस्तैश्चर्यान् क्षमते  
नरकं तेन गच्छति ॥ १३ ॥ राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ॥  
आचक्षणेन तस्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥ १४ ॥ स्कन्धे  
नादाय मूसलं लंगुडं वापि खादिरम् ॥ शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णमायसं दण्डमेव वा ॥ १५ ॥

टीका—दुःखितों करि आक्षेप किया गया जो सह लेताहै वह उस्से स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होताहै और जो दर्पसे नहीं सहताहै वह उस्से नरकमें जाताहै ॥ १३ ॥ यद्यपि सुवर्णस्तेयकृद्विप्र इत्यादिसे प्रायश्चित्त प्रकरणमें कहैमे तिसपरभी सुवर्णके चुरानेवाले प्रति इसको राजदंडरूपता, दिखानेके लिये दंड प्रकरणमें पढा ब्राह्मणके सुवर्णके चुरानेवाले और बाल खोले हुए वेगसे जाते हुए मैने ब्राह्मणका सुवर्ण चुराया है ऐसे चोरीको कहते हुए पुरुषको खैरका मूसलनाम आयुध अथवा दोनो औरसे पैना दंड अथवा लोहेकी शक्तिको कंधेपर रखकै राजाके समीप जाना चाहिये तिस पीछे ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला मैं हौं तिससे इस मूसल आदिसे मुझे मारो ऐसे राजासे कहना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षार्द्रा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ॥

अंशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किं लिखम् ॥ १६ ॥

टीका—एकवार मूसल आदि मारनेसे प्राण जाते रहैं अथवा मरेके समान

हुए जीवतेको छोड़ि देनेसे वह चोर उस पापसे छूटि जाताहै और जो राजा क-  
रुणा आदिसे उस चोरको न मारे तौ चोरके पापको होताहै ॥ १६ ॥

अन्नादे भूणहा माष्टि पत्यू भार्यापचारिणी ॥ गुंरौ शिष्यश्च या  
ज्यश्च स्ते नो राजनि किल्बिषम् १७ राजनिधूतदण्डास्तु कृत्वा  
पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमार्यान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा १८

टीका—जो ब्रह्महत्या करनेवालेके अन्न खानेवालेमें उसका पाप आयजाता-  
है और ऋण जो गर्भहै उसकी हत्या करनेवालेका अन्न जो खाताहै उसको पा-  
प होताहै यह यहाँ कहा गया परंतु ब्रह्महत्याके पाप नष्ट नहीं होताहै और  
व्यभिचार करनेवाली स्त्रीके जार पतिको क्षमा करनेवाले पतिको पाप लगताहै  
और शिष्य संध्या तथा अग्निहोत्रादि न करनेसे उत्पन्न पापको सहनेवाले गु-  
रूमें स्थापित करताहै और विधिको उल्लंघन करनेवाला यजमान क्षमा करनेवा-  
ले याज्ञिकमें अपने पापको डारताहै और चोर उपेक्षा करनेवाले राजाको अप-  
ना पाप देताहै तिससे राजाको चोर दंड देनेयोग्यहै ॥ १७ ॥ सुवर्णकी चोरी आ-  
दिक पापोंको करिकै पीछे राजाओं करि दंड दिये गये मनुष्य रोकनेवाले पा-  
पके न होनेसे पहले किये हुए पुण्यके द्वारा सुकृती मनुष्योंके समान स्वर्गको  
जाते हैं ऐसे प्रायश्चित्तके समान दंडकोभी पापोंसे शुद्ध करनेका कारण कहाहै १८

यस्तु रज्जुं घटं कूपार्द्धरेद्रिद्याच्च र्यः प्रपांम् ॥ स दण्डं प्राप्नुयान्मांषं  
तं च तस्मिन्समाहरेत् ॥ १९ ॥ धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽ-  
भ्यधिकं वधः ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं द्राप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ २० ॥

टीका—कुआके समीप पानी भरनेके लिये रक्खे हुए रस्सी और घडेमेंसे  
जो रस्सी अथवा घडेको चुरावै और जो पानी पिलानेके घरको फोड़ै उसपर  
सुवर्णका एक मासा दंड होना चाहिये और वह उस रस्सी आदिकों कुएपर र-  
क्खे ॥ १९ ॥ दोसो पलका एक द्रोण होताहै और बीस द्रोणका एक कुंभ हो-  
ताहै ऐसे दश कुंभोंसे अधिक धान्य चुरानेवालेका वध कहाहै वह तौ स्वामीकी  
गुणवत्ताकी अपेक्षासे ताड़न अंगोंका काटना और मारना रूप जानना चाहिये  
और शेषमें फिर एक कुंभसे लगाकै दश कुंभतकके चुरानेमें चुराए हुए ग्यारह  
रुणा दंड दिवाना चाहिये और चुराया हुआ धान्य स्वामीको दिवावै ॥ २० ॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥ सुवर्णरजतादीनामु-

तैमानां च वार्षसाम् ॥ २१ ॥ पञ्चाशतस्त्वभ्याधिके हस्तच्छेद-  
नामिष्यते ॥ शेषे त्वेकादशगुणं मूल्यादण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

टीका—जैसे धान्यमें वध कहा है वैसेही तुलासे प्रमाण करनेयोग्य सुवर्ण र-  
जत आदिकोंके और उत्कृष्ट कहिये बढिके रेशमी कपड़े आदिकोंके सौपलसे अ-  
धिक चुरानेमें वध करनाही चाहिये ॥ २१ ॥ पहले कहे हुए पचाससे सौ तक  
चुरानेपर मनु आदिकोंने हाथ काटना कहा है और शेषमें एक पलसे लगाकै प-  
चास पल तक चुरानेमें चुराये हुए धनसे ग्याहर शुणा दंड देना चाहिये ॥ २२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः । मुख्यानां चैव रत्नानां  
हरणे वधमर्हति ॥ २३ ॥ महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥  
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

टीका—बड़े कुलमें उत्पन्न मनुष्योंके और विशेष करि स्त्रियोंके और हीरा  
चैदूर्य आदि श्रेष्ठ मणियोंके चुरानेमें वधकेयोग्य होता है ॥ २३ ॥ हाथी घोडा  
गौ भैंस आदि बड़े पशुओंके तथा खड्ग आदि शस्त्रोंके और कल्याण घृत आदि  
औषधीके चुरानेवालेको दुर्भिक्ष आदि रूप समय और प्रयोजनको भले बुरे का-  
ममें लगा हुआ समझि राजा ताडन अंगच्छेदन और वधरूप दंड करे ॥ २४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरीकायाश्च भेदने ॥

पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ २५ ॥

टीका—ब्राह्मणकी गौओंके चुरानेमें और लादनेके लिये बांझ गौके नाथनेमें और  
भेड बकरी आदि पशुओंके चुरानेमें हाड़ीही आधा पांव कटि देना चाहिये ॥ २५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥ दध्नः क्षीरस्य  
तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ २६ ॥ वेणुवैदलभाण्डानां  
लवणानां तैले च ॥ मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥  
॥ २७ ॥ मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥ मांसस्य  
मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ २८ ॥ अन्येषां चैव मादीनां मद्या  
नामोदनस्य च ॥ पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्विगुणो दमः ॥ २९ ॥

टीका—सूत कपास और किण्व कहिये मुराबीज गोवर गुड दही दूध मठा



पानी तृण ॥ और वेणु वैदल कहिये पतले वांसोंके टुकड़ोंसे बने हुए जल भरनेके पात्र आदिकोंको और सब प्रकारके नोन और मिट्टीके बने हुए बासनोके चुरानेमें मिट्टीके तथा भस्मके चुरानेमें ॥ मछलीयों और पक्षियोंके तैल तथा घीके मांसके मधु ( शहत ) के और जो कुछ मृगचर्म गेंडके सींग आदिके ऐसेही औरभी असारसी मनसिल आदिके और बारह प्रकारके मद्योंका और भातको छोडकर पुआ लड्डू आदि पकवानोंको चुरानेमें चुराई हुई वस्तुके मॉलसे दूना दंड करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥

अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥

टीका—फूलोंके और खेतमें लगे हुए हरे धान्योंके और गुल्मलता तथा वृक्षोंके और शुद्ध न किये हुए अन्य धान्योंके जो एक समर्थ पुरुषका भार रहैं उनके चुरानेमें देशकाल आदिकी अपेक्षासे सुवर्णकी अथवा रूपेकी पांच रत्ती प्रमाण दंड होता है ॥ ३३० ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ निरन्वये शतं दण्डः  
सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३१ ॥ स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म  
यत्कृतम् ॥ निरन्वयं भवेत्स्तेयं हत्वापन्हूयते च यत् ॥ ३२ ॥

टीका—साफ किये हुए धान्योंके और शाक मूल तथा फल आदिके चुरानेपर अन्वय द्रव्यके स्वामीके संबंधको कहते हैं जिसमें एक गाममें बसने आदिका कुछभी संबंध नहीं है वहां सौ पण दंड करना चाहिये और जहां संबंध है वहां पचासपल दंड करना चाहिये खलिहानमें पड़े हुए धान्योंके चुरानेमें यह दंड है वहां साफ किये जाते हैं और घरमें स्थित धान्योंके चुरानेमें पहले कहा हुआ ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो धान्यका ले लेना आदि कर्म द्रव्यके स्वामीके सामने बलसे हरलिया जाता है वह साहस होता है सहवलको कहते हैं उससे जो होय उसको साहस कहते हैं इस्से इसमें चोरीका दंड न करना चाहिये इस लिये इसका चोरीके प्रकरणमें पाठ है और जो स्वामीके पीठि पीछे लिया जात है वह चोरी होती है और जो लेकर छपाया जाता है वहभी चोरीही है ३२

यस्त्वेतान्युपकृतानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥ तस्माद्यं दण्डयेद्रा  
जो यश्चाग्निं चोरयेद्दहात् ॥ ३३ ॥ येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु

र्विचेष्टते ॥ तत्तद्वै हरे तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३४ ॥

टीका—जो मनुष्य संस्कार की हुई इन सूत आदि द्रव्योंको उपभोगके लिये चुरावै और जो तीनो अग्नियोंको अग्निके घरसे चुरावै उसपर राजा प्रथम साहस का दंड करै और अग्निके स्वामीको अग्निके आधानकी हानि दिवावै ॥ ३३ ॥ जिस जिस हाथपांव आदि अंगसे संधि फोडने आदि जिस प्रकारसे चोर मनुष्यों में विरुद्ध धन लेने आदिकी चेष्टा करै उसी अंगका राजा उस प्रसंगके दूरी करनेके लिये कटवावै ॥ ३४ ॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नौदण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ३५ कौर्षापणं भवेदण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ॥ तत्र राजा भवेदण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३६

टीका—पिता आचार्य मित्र भाई माता स्त्री पुत्र और पुरोहित इनमेंसे कोई अपने धर्ममें न स्थित रहै वह क्या राजाके दंड देनेयोग्य नहीं है अर्थात् दंड देनेही योग्य है ॥ ३५ ॥ जिस अपराधमें राजासे व्यतिरिक्त सामान्य जन एक कौर्षापण दंडके योग्य होय उस अपराधमें राजा हजारपण दंडके योग्य होता है यह निश्चय है अपने दंडको राजा जलमें डाले देवै अथवा ब्राह्मणोंको देनेदेवै दंडके वरुण स्वामी हैं यह आगे कहा है ॥ ३६ ॥

अष्टौपाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥ षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ॥ द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तदोषगुणविद्धि सः ३८

टीका—जिस चोरीमें जो दंड कहा है वह दंड चोरी गुणदोष जाननेवाले शूद्रपर आठ गुणा करनेयोग्य है और चोरीके गुणदोष जाननेवाले वैश्यपर सोलह गुणा ऐसेही क्षत्रियपर बत्तीस गुणा और गुणदोष जाननेवाले ब्राह्मणपर चौंसठि गुणा अथवा सौ गुणा अथवा एकसौ अठ्ठाईस गुणा गुणकी अधिकताकी अपेक्षा यह ब्राह्मणहीपर होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वर्ण्यं तैथैव च ॥ तृणं च गोभ्यो आसार्थं मंस्तेयं मंनुरब्रवीत् ॥ ३९ ॥ योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ॥ यज्जनाध्यापनेनापियथा स्तेनस्तथैव सः ॥ ४० ॥

टीका—लता और वनस्पतियोंके फूलोंको अपनेके समान ग्रहण करै और विना रक्षा किये हुए वानस्पत्य आदिकोंके मूल फलको और होमकी अग्निके लिये काष्ठको और गौके खानेके लिये दूधके लेनेको मनु चोरी नहीं कहते हैं तिससे इसमें दंड नहीं है और न अधर्म है ॥ ३९ ॥ अदत्तादायी जो चोर है तिसके हाथसे जो ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रतिग्रहसे पराये धनको जानिके लेनेकी इच्छा करै वह चोरकी तुल्य जानना चाहिये इसीसे चोरके समान दंड देने योग्य है ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविशू द्वे च मूलके ॥ आददानः परंक्षेत्रा  
न्नं दण्डं दातुमर्हति ॥ ४१ ॥ असंधितानां संधाता संधितानां च  
मोक्षकः ॥ दासांश्चरथहर्ता च प्रार्तः स्याच्चोरकिल्बिषम् ॥ ४२ ॥

टीका—मार्गका खरच जिसका चुकि गया है ऐसा बटोही ब्राह्मण दो ईश्वरों और दो मूलियोंको पराये खेतसे लेता हुआ दंड देनेके योग्य नहीं होता है ४१ ॥ नहीं बंधे हुए पराये घोड़ा आदिकोंका बांधनेवाला और अवशाला आदिमें बंधे हुए ओंका खोलनेवाला और दास रथ घोड़ा इनका चुरानेवाला चोरके दंडको पावे वह दंड तौ भारी हलके अपराधके अनुसार मारण अंगच्छेदन और धनका ले लेना आदि जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥ यज्ञोऽस्मिन्प्राप्नु-  
याल्लोके प्रेत्यं चानुत्तमं सुखम् ॥ ४३ ॥ ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेत्सुर्यश-  
श्चाक्षयमव्ययम् ॥ नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ४४

टीका—इस कही हुई विधिसे चोरोंका प्रबंध करता हुआ राजा इसलोकमें बड़ी ख्याति और परलोकमें उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ सबके अधिपति होनेरूप पदके प्राप्त होनेकी और अविनाशी तथा अक्षय यशके प्राप्त होनेकी इच्छा करता हुआ राजा बलसे घरके जलानेवाले और धनके लेनेवाले मनुष्यकी क्षणमात्रभी उपेक्षा न करे तत्काल दंड देवै ॥ ४४ ॥

वान्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसितः ॥ साहसस्य नरः कंता  
विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ४५ ॥ साहसे वर्तमानं तु योर्मर्षयति  
पार्थिवः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ४६ ॥

टीका—वाक्पारुष्य करनेवालेसे चोरसे तथा दंडपारुष्य करनेवाले मनुष्यसे साहस करनेवाला मनुष्य अतिशय करि पाप करनेवाला जानना चाहिये ॥४५॥ जो राजा साहस कर्ते हुए मनुष्यको सहती है अर्थात् क्षमा करती है वह पाप करनेवालोंकी उपेक्षा करनेसे अधर्मकी दृष्टिसे नाशको प्राप्त होता है और देशकी अपकार करनेसे मनुष्योंके द्वेषको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्रा धनान्गमात् ॥ संमुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥४७॥ शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मोऽयत्रोपरुध्यते ॥ द्विजातानां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥४८॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ॥ स्त्रीविप्रभ्युपपत्तौ च निघ्नं न्धर्मेण न दुष्यति ॥ ४९ ॥

टीका—मित्रके कहनेसे अथवा बहुतसे धनकी प्राप्तिसे सब जीवोंके दुखदेनेवाले साहसी मनुष्योंको राजा न छोड़े ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण आदि तीन वर्णोंको उसकालमें खड्ग आदि शस्त्र धारण करने चाहिये जिस समय वर्ण और आश्रमी साहस करनेवालोंसे धर्म न करने पावें तथा तीनो वर्णवालोंको राजारहित देशमें पराई सेना आने आदि कालमें उत्पन्न हुए स्त्री संगर आदिके प्राप्त होनेपर और अपनी रक्षाके लिये और दक्षिणा धन गौ आदिके हरनेके कारण संग्राममें और स्त्री तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त और गति न होनेके कारण धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारता हुआ दोषभागी नहीं होता है दूसरेके मारनेमें भी यहां साहसका दंड नहीं करनेयोग्य है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥

आततायिनमार्यान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

टीका—गुरु बालक वृद्ध और बहुश्रुत ब्राह्मण इनमेंसे जो विद्यावृत्त आदिसे उत्कृष्टभी कोई मारनेके लिये आता होय और भागने आदिसेभी अपना बचाव न होसकता होय तो विना विचारके मारे ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥५१॥ परदाराभिर्गणेषु प्रवृत्तान्महोपतिः ॥ उद्धे जनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ५२ ॥

टीका—मनुष्योंके सामने अथवा एकान्तमें मारनेके लिये उद्यत आततायीके

मारनेमें मारनेवालेको कुछ अधर्म दंड तथा प्रायश्चित्त त्राम दोष नहीं लगता है कारण यह है कि मारनेवालेमें स्थित मन्यु अर्थात् क्रोधके अभिमानकी देवता हन्यमानमें स्थितहो क्रोधको लौटाय देती है और साहसमें अपराधके गौरवकी अपेक्षासे मारण अंगच्छेदन और घनग्रहण आदि दंड करने चाहिये ॥ ५१ ॥ अब स्त्रीसंग्रहण कहते हैं ॥ पराई स्त्रियोंके भोगमें प्रवृत्त मनुष्योंके समूहको त्राक ओठ काटने आदि दंडोंसे चिन्हयुक्त करिकै राजा अपने देशसे निकाल देवे ॥ ५२ ॥

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ॥ येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ५३ ॥ परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः ॥ पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्रामुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ५४ ॥

टीका—पराईस्त्रियोंमें गमन करनेसे उत्पन्न हुआ वर्णसंकर होता है जिस वर्णसंकर करि शुद्ध पत्नीयुक्त यजमान न होने कारण अग्निमें डाली हुई अहुति अच्छी भांति सूर्यको प्राप्त होती है इसका अभाव होनेपर वृद्धिनाम जगत्के मूलका नाश करनेवाला अधर्म जगत्के नाशके लिये होता है ॥ ५३ ॥ तिसको पहले परस्त्रीगमन आदिका दोष लगी चुका है वह पुरुष किसीकी स्त्रीसे एकांतमें बात करै तो प्रथम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ५४ ॥

यस्त्वनक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥ न दोषं प्रामुयात्किं चित्रं हि तस्य व्यतिक्रमः ॥ ५५ ॥ परस्त्रियं यो भिर्वदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ॥ नदीनां वापि संभेदे संसंग्रहणमामुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जिसको पहले परस्त्री आदिका दोष नहीं लगा है वह जो किसी कारण मनुष्योंके आगेभी बात करै तो वह दंड्यत्व आदि अर्थात् दंड देने योग्य दोषोंको न प्राप्त होय जिसे उसका कुछ अपराध नहीं है ॥ ५५ ॥ तीर्थ अरण्य वन आदिके कहनेसे शून्यस्थान जानना चाहिये । जो पुरुष पानी भरनेके घाटमें और अरण्य कहिये ग्रामसे बाहर लता गुल्मोंसे भरे हुए सूने देशमें और वन कहिये बहुत वृक्षोंसे भरे हुए स्थानमें और नदियोंके संगममें निर्दोषभी होनेपर किसी कारणसेभी बात करै वह हजार पण रूपसंग्रहण दंड जो आगे कहेंगे उसको पावे ॥ ५६ ॥

उपचारक्रिया कैलिः स्पर्शां भूषणवाससाम् ॥ सहस्रद्वीपानं चैव संवे संस्रहणं स्मृतम् ॥ ५७ ॥ स्त्रियं स्पृशेददे शो यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्त्या ॥ परस्परस्यानुमते सर्वसंग्रहणं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

टीका—उपचारक्रिया कहिये माला सुगंध तथा चंदन आदि अनुलेपनका भेजना और केलि कहिये हंसना आलिंगन करना आदि और अलंकार भूषण आदिकोंका स्पर्श करना और खट्टापर बैठना इन सबोंको मनु आदिने संग्रहण कहा है ॥५७॥ जो छूनेको अनुचित स्तन जघन आदि स्थानोंमें स्त्रीको छुवै अथवा उस स्त्रीकरके वृषण आदि स्थानमें छुआ गया सहि लैवै तो आपसमें अंगीकाररूप सब मनु आदिकोने संग्रहण कहा है ॥ ५८ ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥ चतुर्णामपि वर्णानां दा-  
रा रक्ष्यतमाः सदा ॥ ५९ ॥ भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारव-  
स्तथा ॥ संभार्षणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ६० ॥

टीका—दंडकी आधिकतासे यहां अब्राह्मण कहनेसे शूद्र जानना चाहिये नही इच्छा करती हुई ब्राह्मणीमें उत्तम संग्रहण करनेसे शूद्र वधदंडको प्राप्त होता है और चारो ब्राह्मण आदि वर्णोंके धन पुत्र आदिकोमेंसे अधिकतासे स्त्री सदा रक्षा करनेयोग्य है उससे उस प्रसंगके दूरि होनेके लिये उत्कृष्ट संग्रहणसे भी सब वर्णों करि स्त्रिया रक्षा करनेयोग्य हैं ॥ ५९ ॥ भिक्षासे जीनेवाले स्तुति पढ़नेवाले यज्ञकी दीक्षावाले और सूपकार कहिये रसोई करनेवाले आदि तथा भिक्षा आदि अपने कामके लिये गृहस्थोंकी स्त्रियोंके साथ विना रोक ठोकके संभाषण करै इस भांति इनको संग्रहण दोष नही होता है ॥ ६० ॥

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥ निषिद्धो भार्षमाण-  
स्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ६१ ॥ नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीवि-  
षु ॥ सज्जयन्ति हि ते नारीनि गूढाश्चारयन्ति च ॥ ६२ ॥

टीका—स्वामी करि मने किया हुआ स्त्रियोंके साथ बात न करै और जो मने किया हुआ बात करै तो राजा करि सोलह सुवर्णके दंड योग्य होता है ॥ ६१ ॥ पराई स्त्रीसे बात न करै यह बोलनेका निषेध नट और गवैया आदिकों स्त्रियोंमें नही है क्योंकि भार्या और पुत्र अपना तनु है यह कहा है अर्थात् भार्याही अस्माहै इस्से वे जीविका करते हैं धन लाभके लिये उसके जारसे कुछ नही कहते हैं उनमें और नट आदिकोंसे व्यतिरिक्तोंमें जो स्त्रियां हैं उनमेंभी यह निषेधकी विधि नही है जिस्से चारण आत्मोपजीवीभी हैं वे परपुरुषोंको लायके उनसे अपनी भार्याओंका आलिंगन कराते हैं और आप आये हुए परपुरुषों

कियी हुईसे गमन करता हुआ लिंगरहित करने योग्य है और रक्षितासे तौ गमन करता हुआ शरीर तथा धनसेहीन करनेयोग्यहै ॥ ७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्सर्वत्सरनिरोधतः ॥ सहस्रं क्षत्रियो दण्डचो मौण्डचं मूत्रेण चार्हति ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणी यद्यगुप्तां तु गच्छे तां वैश्यमार्थिवौ । वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ७६

टीका—वैश्यको गुप्ता ब्राह्मणीमें गमन करनेपर एक वर्षतक बंधनमें रखकर पीछे सर्वस्व ग्रहणरूप दंड करना चाहिये अर्थात् उसका सब धन आदि छीनले और क्षत्रियामें गमन करनेपर तौ वैश्यस्य क्षत्रियायां यह आगे कहेंगे और क्षत्रियको गुप्ताब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे हजार पण दंड देना चाहिये और गधेके मूत्रसे इसका मुंडन कराना चाहिये ॥ ७५ ॥ जो अरक्षिता ब्राह्मणीसे वैश्य तथा क्षत्रिय गमन करै तौ वैश्यपर पाचसौ दंड करै और क्षत्रियपर हजार करै वैश्यपर यह पांचसौका दंड शूद्राके भ्रम आदिसे निर्गुण जाति मात्रसे जीविका करनेवाली ब्राह्मणीके मध्ये जानना चाहिये और उससे अन्यब्राह्मणीके गमनमें तौ वैश्यकोभी हजारही दंड कहाहै ॥ ७६ ॥

उभावरिपि तु तावेव ब्राह्मण्यागुप्तया सह । विभुतौ शूद्रवदण्डचौ दग्धव्यौ वा कंटाग्निना ॥ ७६ ॥ सहस्रं ब्राह्मणो दण्डचो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् ॥ शतानि पञ्च दण्डचैः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ७८

टीका—वे दोनोभी क्षत्रिय वैश्य अरक्षिता ब्राह्मणीके साथ मैथुन करनेसे शूद्रके समान सर्वस्व दंड करनेयोग्यहैं अथवा चटाईमें लपेट कर जलानेयोग्यहैं उनमें वैश्यको तौ लालकुशोकी चटाईमें और क्षत्रियको शरपतेके पत्तामें लपेटकर जलावै यह वसिष्ठका कहा हुआ विशेष ग्रहण करना चाहिये पहले हजार क्षत्रियपर दंड करना चाहिये और वैश्यपर सर्वस्व दंड करना चाहिये यह कहाहै तिस्से यह प्राणान्तिक दंड गुणवत् ब्राह्मणीके गमन करनेमें जानना चाहिये ॥ ७७ ॥ रक्षिता ब्राह्मणीमे बलसे गमन करनेवाले ब्राह्मणपर हजार पण दंड होवै और इच्छा करनेवालीसे एकवार मैथुन करनेमें पाचसौ दंड करनेयोग्य होताहै ७८

मौण्डचं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते । इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥ ७९ ॥ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् । राश्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ८०

टीका—ब्राह्मणको वध दंडके स्थानमें शिरका मुड़वा देना दंडहै यह शास्त्र-  
ने कहाहै और क्षत्रिय आदिकोका तौ कहे हुए मारनेसे दंड होताहै ॥ ७९ ॥ स-  
ब पाप करनेवालेभी ब्राह्मणको कभी न मारै अपितु सर्वस्व समेत अक्षत शरीर-  
को देशसे निकाल देवै ॥ ३८० ॥

नै ब्राह्मणवधाद्भूयानर्धमो विद्यते भुवि । तस्मादस्य वधं राजा मन-  
सापि न चिन्तयेत् ॥ ८१ ॥ वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो  
व्रजेत् । यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥ ८२ ॥

टीका—ब्राह्मणके वधसे और बडा अधर्म पृथिवीमें नहीं है तिससे राजा सब  
पाप करनेवाले ब्राह्मणके वधको मनसे भी न विचारे ॥ ८१ ॥ जो रक्षिता क्षत्रि-  
यामें वैश्य गमन करै और क्षत्रिय जो रक्षिता वैश्यामें गमन करै तौ उन दोनों-  
को अरक्षिता ब्राह्मणीमें गमन करनेसे जो दंड कहे हैं जैसे वैश्यपर पांचसौ करै  
और क्षत्रियपर हजार ये दोनोंही दंड वैश्य तथा क्षत्रियको होते हैं यह तौ वैश्य-  
का रक्षित क्षत्रियाके गमनमें पांचसौ दंड लघु होवेसे गुणवान वैश्य और निर्गुण  
जाति मात्रसे जीविका करनेवाली क्षत्रियाका शूद्राके भ्रम आदिसे गमन विषयक  
जानना चाहिये और क्षत्रियको रक्षित वैश्यामें ज्ञानसे हजार दंड योग्यही है ॥ ८२ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ॥ शूद्रायां क्षत्रियं  
विशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ८३ ॥ क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये  
पञ्चशतं दमः । मूत्रेण मौण्डचमिच्छेत् क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥ ८४ ॥

टीका—रक्षित क्षत्रिय वैश्यामें गमन करता हुआ ब्राह्मण सहस्र दंड देनेयो-  
ग्य है और रक्षिता शूद्रामें गमन करनेसे क्षत्रिय वैश्य सहस्रही दंडके योग्य होते हैं  
॥ ८३ ॥ अरक्षिता क्षत्रियाके गमनमें वैश्यपर पांचसौ दंड होताहै और क्षत्रिय-  
को अरक्षिता क्षत्रियाके गमन करनेमें गधेके मूत्रसे मुंडन और पांचसौ रूपये  
दंड होना चाहिये ॥ ८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ॥ शतानि पञ्च दण्डचः  
स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥ ८५ ॥ ग्रस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्य  
स्त्रीगो न दुष्टवाक् न सार्हसिकदण्डघ्नो न राजा शक्रेलोकभाक् ८६

टीका—अरक्षिता क्षत्रिया वैश्या अथवा शूद्रामें गमन करता हुआ ब्राह्मण पां-  
चसौ दंडके योग्य होताहै और अंत्यज कहिये चांडाल उसकी स्त्रीसे गमन क-



रता हुआ हजार दंडके योग्य होता है ॥ ८९ ॥ जिस राजाके राज्य भरमें चोर तथा पराई स्त्रीसे गमन करनेवाला और कडुई बात कहनेवाला और घरों का जलाना आदि साहस करनेवाला तथा दंडपारुष्य करनेवाला नहीं है वह राजा स्वर्गपुरको जाता है ॥ ८६ ॥

एतेषां निर्ग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥ साम्राज्यकृत्संजात्येषु  
लोके चैव यज्ञस्करः ॥ ८७ ॥ ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं च  
त्विक्त्यजेद्यदि ॥ शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतंशतम् ॥ ८८ ॥

टीका—अपने देशमें इन स्तेन आदि पांचका दंड देनेवाला और समान जातिके राजाओंमें राजाका साम्राज्य करनेवाला इस लोकमें यज्ञ करनेवाला होता है ॥ ८७ ॥ जो यजमान कर्म करनेमें समर्थ और अतिपातक आदि दोषोंसे रहित यजन करानेवालेको अथवा ऋत्विक् जी दुष्ट नहीं ऐसे यजमानको छोड़ै तो उन दोनोंपर सौ सौ दंड करना चाहिये यह दंडके प्रसंगसे कहा ॥ ८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥ त्यजन्नपतितानेतां  
न राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ८९ ॥ आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विव  
दतां मिथः ॥ न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन् हितमात्मनः ॥ ३९० ॥

टीका—माता, पिता स्त्री और पुत्र ये सेवा तथा पोषण आदि न करनेसे त्यागने योग्य नहीं हैं तिससे पातक आदि दोषोंसे बिना इनको त्यागता हुआ एक एकके त्यागमें राजा करि छसौ पण दंड करनेयोग्य होता है ॥ ८९ ॥ द्विजातियोंके गृहस्थ आश्रमोंके कार्यमें यह शास्त्रार्थ है यह शास्त्रार्थ नहीं है ऐसे-आपसके विवादोंका अपना हित करनेकी इच्छा करनेवाला राजा यह शास्त्रार्थ है ऐसे सहसा विशेष कर न कहै ॥ ३९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ सात्त्वेन प्रशमय्यादौ  
स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ९१ ॥ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विशं  
तिद्विजे ॥ अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ९२ ॥

टीका—जो जैसी पूजाके योग्य है उसका वैसेही पूजन करि और ब्राह्मणोंके साथ पहले प्रीतिसे कोप रहित करिकै तिस पीछे इनका जो निज धर्म है उसको चित्तवै ॥ ९१ ॥ सदा घरमें रहनेवाला प्रातिवेश्य कहाता है और अंतरसे बसनेवाला अनुवेश्य जिस उत्सवमें बीस अन्य ब्राह्मणभोजन कराये जाय उसमें भो-

जनके योग्य प्रातिवेश्य. अनुवेश्य ब्राह्मणोंको न भोजन कराता हुआ ब्राह्मण एक रूपेका मासा दंड करने योग्य है ॥ ९२ ॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिर्कृत्येष्वभोजयन् ॥ तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैवं मौषकम् ॥ ९३ ॥ अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थं विरश्च यः ॥ श्रोत्रियेषूपकुर्वश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥ ९४ ॥

टीका—विद्या और आचारयुक्त तथा नाना प्रकारके गुणों करि युक्तको विवाह आदि विभवेके कार्योंमें प्रतिवेश्य अनुवेश्योंको नहीं भोजन कराते हुएको उस अन्नके न भोजन करनेवालेके लिये दूना दंड दिवाना चाहिये और एक सुवर्णका मासा राजाको दंड देवै ॥ ९३ ॥ अंधा बहिरा पंगा सत्तारि-वर्षकी अवस्थाका और श्रोत्रिय और धनधान्यसे उपकार करनेवाला ये किसी करिके और जिसका कोशक्षीण होगयाहै ऐसे राजा करके अपना लेनेयोग्य भी कर लेनेयोग्य नहीं है ॥ ९४ ॥

श्रोत्रियं व्याधितात्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ॥ महाकुलीनमप्यौ च राजा संपूजयेत्सदा ॥ ९५ ॥ शालमलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्ने जैकः शनैः ॥ न च वासांसि वासोभिर्निहरेन्न च वासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विद्या तथा आचारयुक्त ब्राह्मणको रोगीको पुत्रकमिोग आदिसे दु-स्तीको बालकको वृद्धको दरिद्रीको बड़े कुलमें उत्पन्नको और उत्तम चरित्रवा-लोंको राजा दान मान और हितके करनेसे सदा पूजन करै ॥ ९५ ॥ सेमल आदि वृक्षके चिकने पट्टेपर धोबी हौले हौले कपड़े धोवै और पराये वृक्षोंमें औरके वस्त्र न मिलावै तथा औरके वस्त्र औरके पहिरनेको न देवै जो ऐसा करै तो यह दंडयोग्य होय ॥ ९६ ॥

तंतुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ॥ अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दर्भम् ॥ ९७ ॥ शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यवि चक्षणाः ॥ कुर्युरर्थं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥ ९८ ॥

टीका—कोली कपडा बुननेके लिये दसपल सूत लेकर माडी आदि लगनेके कारण ग्यारह पल कपडा देवै और जो इस्से कम दे तो राजाको वारह पण दंड दे और स्वामीको राजी करै ॥ ९७ ॥ स्थल तथा जलके मार्गसे व्यवहार करने वालोंसे राजाके लेनेयोग्य भागको शुल्क कहते हैं उनके नियत करनेमें चतुर और

सर्व वेचनेयोग्य वस्तुओंके सार असारके जाननेवाले वे वेचनेकी वस्तुओंमें जितना धन जिसका मोल अनुरूपण करै उस नफेके धनसे वीसवां भाग राजा लेवै ९८॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ॥ तानिनिर्हरतो लो  
भात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥ ९९ ॥ शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्र  
यी ॥ मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमर्त्ययम् ॥ १०० ॥

टीका—राजाके संबंधसे जो वेचनेकी वस्तु प्रसिद्ध हैं जैसे राजाके कामके उ-  
सी देशमें उत्पन्न हुए हाथी घोड़ा आदि तथा जो मने की हुई वस्तु हैं जैसे दुर्भे-  
क्षमें अन्न दूसरे देशमें न लेजाना उनको लोभसे दूसरे देशमें लेजानेवाले बनिया-  
का राजा सर्वस्व ले लेवै ॥ ९९ ॥ शुल्क (महसूल) बचानेके लिये जो मार्ग  
छोड़कर चलताहै अथवा अकाल कहिये रात्रि आदिमें लेता वेचताहै और शुल्क  
घटानेके लिये वेचनेकी वस्तुकी गिनाती कम बताताहै वह राजाके देने योग्य  
हुपाये हुषका आठगुण दंड देवै ॥ १०० ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ॥ विचार्य सर्वपण्यानां  
कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ १ ॥ पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ॥  
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घं संस्थापनं नृपः ॥ २ ॥

टीका—कितनी दूरसे आयाहै और दूसरे देशकी वस्तुका आगम कितनी  
दूरिपहुचाया जाताहै और अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुका निकलना किस समय  
तक रहा कितना मोल मिलता है और इसमें नफा कितनाहै और कर्म कर-  
नेवाले नौकर आदिकोंके भोजन वस्त्र आदिमें कितना खर्च हुआ इस भांति  
विचार करिकै जैसे मोल लेनेवालो और वेचनेवालेको पीडा न होय ऐसे सब  
वस्तुओंका क्रय विक्रय करावै ॥ १ ॥ विकनेकी वस्तुओंका आना जाना नियत  
नहीं है इस्से अस्थिर मोलकी वस्तुओंकी पांच रात्रि वीतनेपर और स्थिर मोलकी  
वस्तुओंकी पक्ष वीतनेपर अर्धोति जाननेवाले बनियोंके सामने राजा आप्त पुरु-  
षोंके साथ व्यवस्था करै ॥ २ ॥

तुल्यमानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मां  
सेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ३ ॥ पैणं यानं तरे दाप्य पौरुषोऽर्धपणं  
तरे ॥ पादं पशुश्च यो पिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४ ॥

टीका—तुल्य मान कहिये सुवर्ण आदिके परिमाणके लिये जो किया जाताहै

और प्रतिमान प्रस्थ द्रोण आदि अपना निरूपित जैसे होय छः छः महीमे वीतनेपर सम्ये पुरुषोंके साथ फिर उसकी परिक्षा करै ॥ ६ ॥ भाण्डपूर्वाणियानानि यह आगे कहेंगे तिस्से खाली छकडा आदि यानपर एक पण लेना चाहिये और पुरुषके ले चलने योग्य भारपर आधापण और गौ आदि पशुपर चौथाई पण और भार-रहित मनुष्यपर पणका आठवा भाग उतराई लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

भाण्डपूर्णाणि यानानि तौर्यं दार्प्यानि सारतः॥ रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छेदाः ॥ ५ ॥ दीर्घाध्वनि यथादेशं यथा कालं तरो भवेत् । नदीतीरेषु तर्दिद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ६ ॥

टीका—वेचनेयोग्य द्रव्यसे भरे हुए छकडे आदिपर द्रव्यके उत्कर्षकी अपेक्षासे उतराई देनी चाहिये और खाली गोनि कंडोल आदिपर कुछ थोड़ी उतराई देनी चाहिये और दरिद्रियोंसे आधेसेभी कम दिवानी चाहिये ॥ ५ ॥ पहले नदीके वारपार उतरनेके लिये कहाहै अब नदीके मार्गसे जानेयोग्य दूरिके मार्गमें प्रबल-वेग तथा स्थिर जलयुक्त नदी आदि देश और ग्रीष्म वर्षा आदि कालकी अपेक्षासे उतराईका मोल कल्पना करने योग्य यह नदीके किनारोंमें जानना चाहिये समुद्रमें तौ जहाजका चलना पवनके आधीन होनेसे अपनी आधीनता न होनेपर अधिक उतराईके द्रव्यका सूचित करनेवालाहै इसमें नदीकी भांति योजन आदि नहीं है इससे वहां उचितही उतराई लेनी चाहिये ॥ ६ ॥

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः । ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैवं न दार्प्यास्तारिकं तरे ॥ ७ ॥ यन्त्रावि किञ्चिदाशानां विशीर्येतापराधतः । तदाशैरेवं दार्तव्यं समंगम्य स्वतोऽर्शतः ॥ ८ ॥

टीका—दो महीनोके उपरंतकी गर्भिणी स्त्री तथा संन्यासी मुनि वानप्रस्थ ब्राह्मण और ब्रह्मचारि येषां उतरनेमें उतराईका मूल्य न देवै ॥ ७ ॥ नावमें चढने वालोंकी नौकाकेबुढ़ोंके दोप्रसे हानि होजाय तौ गयी हुवा धन नाववालेही मिलकर हिस्सेसे देवै ॥ ८ ॥

एष नौयार्यनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥ दार्शापराधतस्तौये दैविके नास्ति निर्ग्रहः ॥ ९ ॥ वाणिज्यं कारयेद्देश्यं कुसीदं कृषिमेव च ॥ पशूनां रक्षणं चैवं दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥

टीका—मल्लाहोंके दोषसे जो पानीमें नष्ट होजाय उसको मल्लाह देवै यह पहले मनुका कहा हुआ दंड दैवी उपद्रवमें नहीं है यह विधान करनेके लिये नौका ओसे जानेवालोंका यह व्यवहार कहा दैवसे उत्पन्न हुई आंधी आदिसे नावके टूटने करि धन आदिका नाश होनेपर मल्लाहोंको दंड नहीं है ॥ १ ॥ वैश्यसे वाणिज्य व्याजकी जीविका सेती पशुओंका पालना ये कर्म करावै और शूद्रोंसे राजा द्विजातियोंकी दास्य कहिये सेवा करावै ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्त्तिता विभूत्या दानृशस्येन स्वा  
नि कर्माणि कारयन् ॥ ११ ॥ दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृ  
तान्द्विजान् ॥ अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्डयः शतानि षट् १२

टीका—ब्राह्मण पीडित क्षत्रिय वैश्योंसे करुणा करिके अपनी रक्षा तथा खेती आदि कामोंको करावै और भोजन वस्त्र आदिसे उनका पोषण करै और जो धनाढ्य ब्राह्मण आये हुए उन दोनोंको न रक्खे तौ राजा करि दंड करनेयोग्यहै यह प्रकरणकी सामर्थ्यसे जानाजाताहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत किये हुए द्विजातियोंसे उनकी इच्छाके विना प्रभुता करि लोभसे पांय धोना आदि दम्तोंका काम कराताहै उसपर छसौ पण दंड करना चाहिये ॥ १२ ॥

शूद्रं तु कार्श्येदास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ॥ दास्ययायैव हि मृष्टोऽसौ  
ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ १३ ॥ न स्वामिना निमृष्टोऽपि शूद्रो दास्या  
द्विमुच्यते ॥ निमृगजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ १४ ॥

टीका—भोजन आदिसे पाले हुए अथवा न पाले हुए शूद्रसे दासका काम करावै जिस्से यह ब्राह्मणके दासभावहीके लिये प्रजापति करि बनाया गयाहै ॥ १३ ॥ स्वामी करि त्याग किया गयाभी शूद्र दासभावसे नहीं छूटता है जिस्से दास्य शूद्रका सहज कहिये साथ उत्पन्नहै कौन उस शूद्रत्व जातिके दास्यतो दूर कर सकताहै अर्थात् कोई नहीं जो ऐसा न होय तौ जो आगे कही जागी ऐसी दास्य करनेकी गणनाही व्यर्थ होजाय ॥ १४ ॥

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ ॥ पैत्रिको दण्डदासश्च सं  
सैते दास्योनयः ॥ १५ ॥ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवार्धनाः स्मृ  
ताः ॥ यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ १६ ॥

टीका—संग्राममें स्वामीसे जीता भोजनके लोभसे आया हुआ भक्त दास तथा अपनी दासीसे उत्पन्न और मोलसे लिया हुआ और दूसरे करि दिया हुआ तथा पिता आदिके क्रमसे जो चला आता है और दण्ड आदिके धनकी शुद्धिके लिये जिसने दासपन अंगीकार किया है ये सात संग्राममें स्वामीसे जीते आदि दासपनके करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ भार्या पुत्र तथा दास ये तीनि मनु आदिकों करि अधन कहे गये हैं कारण यह है कि जिस धनको वे जोरते हैं वह धन जिसके वे भार्या आदि हैं उसका होता है यह तौ भार्या आदिकी पराधीनता दिखानेके लिये है क्योंकि आगे अध्याग्नि आदि छ प्रकार स्त्रीधन कहा जायगा १६ ॥

विस्मयं ब्राह्मणः शूद्रां द्रव्योपादानमाचरेत् ॥ न हि तस्यास्ति किं  
अस्त्विह भर्तृहोयधनो हि सः १७ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्मा  
णि कारयेत् ॥ तौ हि च्युतौ स्वर्कर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् १८

टीका—निस्संदेह ब्राह्मण शूद्रसे धन ग्रहण करै जिसे उसका कुछभी स्वत्व (हक) नहीं है कारण यह है कि इसका धन स्वामीके लेने योग्य है ऐसे आपत्तिमें ब्राह्मण बलसेभी इसका धन लेता हुआ राजा करि दंड देनेयोग्य नहीं है इस लिये यह कहा जाता है ॥ १७ ॥ वैश्यको खेती आदि और शूद्रको द्विजातिकी सेवा आदि कर्म राजा यत्नसे करावै कारण यह है कि वे अपनी जातिके कर्मसे च्युत हो अशास्त्रीय जोड़े हुए धनके मद आदिसे जगत्को व्याकुल न कर देवें १८

अहन्यहन्यंवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ॥ आयव्ययौ च नियतं  
वार्करान्कोशमेवं च ॥ १९ ॥ एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समा  
पयन् ॥ व्यपोह्य किर्ल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ४२० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

टीका—राजा प्रारंभ किये हुए कार्योंकी सिद्धिको प्रतिदिन उनके अधिकारियोंके द्वारा देखै ऐसेही हाथी घोड़ोंको कि आज क्या आया और क्या गया और सोना चांदीके उत्पत्तिस्थानोंको और कोशागार (खजाने) को देखै व्यवहारके देखनेमें असमर्थभी राजा अपने धर्मोंको न छोड़े यह दिखानेके लिये कहेका फिरि कथन है ॥ १९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इन सब ऋणादान आदि व्यवहारोंको तत्त्वसे निर्णय करि पूरा करता हुआ राजा सब पापोंको छोड़कर स्वर्ग आदिकी प्राप्तिरूप उत्कृष्ट गतिको प्राप्त होता है ॥ ४२० ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## अथ नवमोऽध्यायः

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्तमानि तिष्ठतोः॥संयोगे विप्रयोगे च  
धर्मोन्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥१॥ अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः  
स्वैर्दिवानिशम्॥विषयेषु च सर्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वंशे॥२॥

टीका—नत्वापित्रोः पदद्वंद्वं ध्यात्वा शंकरमव्ययम्॥ अष्टमाध्यायविधृतिः केशवेन म  
थोच्यते ॥ १ ॥ धर्मके लिये हित और आपसमें कभी चलनेवाला नहीं ऐसे मा-  
र्गमें स्थित और संयुक्त अथवा वियुक्त और परंपरासे चले आनेके कारणसे नि-  
त्य ऐसे पुरुष तथा पत्नीके धर्मोंको कहौंगा; स्त्रीपुरुषके आपसके धर्ममें व्यति-  
क्रम होनेपर दोमेंसे एक करि सूचित किये गये राजाको दंडसेभी अपने धर्मकी  
व्यवस्था स्थापन करनी चाहिये इस्से व्यवहारमें इसका कथन है ॥ १ ॥ अपने  
भर्ता आदिकों करि स्त्रियां सदा वंशमें रखने योग्य हैं निषिद्ध नहीं ऐसे रूप रस  
आदि विषयोंमें प्रसंग करती हुई अपने वंश करने योग्य हैं ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारं भर्ता रक्षति यौवने॥ रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न  
स्त्री स्वार्तन्त्र्यमर्हति ॥३॥ कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानु  
पयन्पतिः ॥ मृते भर्तार पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षितो ॥ ४ ॥

टीका—विवाहसे पहले स्त्रीकी पिता रक्षा करता है पीछे पीछे तरुण अवस्था  
में भर्ता रक्षा करता है उसके अभावमें पुत्र तिस्से स्त्री किसी अवस्थामें स्वतंत्र न  
होय और जिसके पतिपुत्र नहीं हैं उसकी पिता आदिभी रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥  
प्रदानके कालमें नहीं देता हुआ पिता निंदा योग्य होता है ऋतुके पहले  
प्रदान काल गौतमने कहा है और पति ऋतु कालमें पत्नीसे नहीं गमन कर्ता  
हुआ निंदायोग्य होता है और पतिके मरनेपर माताकी न रक्षा करनेवाला  
पुत्र निंदायोग्य होता है ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥ द्वयोर्हि कुलं  
योः शोर्कमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥ इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो ध  
र्ममुत्तमम् ॥ यतन्ते रक्षितुं भार्या भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

टीका—दुःशीलताके करनेवाले थोड़ेभी कुसंगसे स्त्री विशेष करि रक्षा क-  
रने योग्य हैं और बहुतका तौ क्या कहना है, और उनकी उपेक्षा करनेसे पिता  
भर्ताके दोनो कुलोंको संताप कराती है ॥ ५ ॥ सब ब्राह्मण आदि वर्णोंके भा-

या रक्षण धर्मको आगेके श्लोकमें कही हुई रीतिसे सब धर्मोंसे उत्तम जानते हुए अंधे पंगे आदिभी भार्याकी रक्षा करनेका यत्न करें ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥ स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥ पतिर्भार्या संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥ जायां यास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

टीका—जिस्से यत्नपूर्वक भार्याकी रक्षा करनेमें असंकीर्ण विशेष करि शुद्ध संततिके उत्पन्न करनेसे आपनी संततिकी तथा शिष्टसमाचारको और पिता पितामह आदिके वंशको और आपको विशुद्ध संताति है कारण जिसका ऐसे और्ध्वदेहिक कर्मोंके लाभसे अपने धर्मकी भी रक्षा करता है तिस्से स्त्रियोंकी रक्षा करनेका यत्न करे ७ पति शुक्ररूपसे भार्यामें प्रवेश करिकै गर्भभावकी प्राप्त हो उस भार्यामें पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है । तथा च श्रुतिः आत्मा वै पुत्रनामासि इति ॥ जायाका वही जायात्व है जिस्से इसमें पति फिर उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ॥ तस्मात्प्रजाविशुद्धयर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ॥ एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्तां परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

टीका—शास्त्रसे विहित होय अथवा निषिद्ध होय जैसे पतिका स्त्री सेवन करती है वैसे शास्त्रोक्त पुरुषका सेवन करनेसे उत्कृष्ट और निकष्ट पुरुषके सेवनसे निरुष्ट पुत्रको उत्पन्न करती है तिस्से संततिकी शुद्धिके लिये पत्नीकी यत्नसे रक्षा करे ॥ ९ ॥ कोई बलसे रोकने आदिसेभी स्त्रीकी रक्षा करनेको नहीं समर्थ है वहांभी व्यभिचार होता है किंतु इन कहे हुए रक्षा करनेके उपायोंके योगसे रक्षा करनेको समर्थ है ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चै नान्ये चैव नियोजयेत् । शौचे धर्मेऽन्नपतत्यां च पारिणाह्यस्य वक्षणे ॥ ११ ॥ अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैरासक्तारिभिः ॥ आत्मानमात्मना यास्तु रक्षयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

टीका—धनके संग्रहण करने तथा खर्च करनेमें द्रव्य तथा शरीरके शुद्ध करनेमें और पतिकी सेवामें और अन्नके सिद्ध करने अर्थात् रसोईके बनानेमें और घरकी सामग्री शय्या आसन कुंड कढाह आदिके देखनेमें इसको लगावे ॥ ११ ॥ आप्त तथा आज्ञाकारी पुरुषों करि घरमें रोकी हुईभी रक्षित नहीं होती है जो दुः



इशीलतासे अपनी रक्षा नहीं करती है और जो धर्मज्ञतासे आप अपनी रक्षा करती है वेही सुरक्षित होती हैं इसीसे धर्म अधर्मका फल स्वर्ग नरककी प्राप्तिके उपदेशसे उनका संयम करना योग्य है ॥ १२ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽर्दनम् ॥ स्वप्रोऽन्यगेहवासश्च  
नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥ नैतां रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि सं  
स्थितिः ॥ सुरूपं वा विरूपं वा पुमानि त्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

टीका—धैय पीना असत्पुरुषोंका संसर्ग पतिसे वियोग भ्रमण करना कुसम-  
यमें सोना पराये घरमें रहना ये छः स्त्रीके व्यभिचार दोषके उत्पन्न करनेवाले हैं  
तिस्से ये इनसे रक्षा करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ ये सुंदर रूपका विचार नहीं करती है  
और न इनका यौवन आदि अवस्थामें आदर होता है किंतु सुरूप होय अथवा  
कुरूप होय पुरुष है यही मानिके उसको भोगती है ॥ १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः । रक्षिता यत्नतोऽपीह  
भर्तृष्वेतां विकुर्वते ॥ १५ ॥ एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिर्न  
सर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

टीका—पुरुषके दर्शननसे संभोग आदिकी इच्छा होनेके कारण और चित्त-  
की स्थिरता न होनेसे और स्वभावसे स्नेह रहित होनेके कारण यत्नसेभी रक्षा  
की गई ये व्यभिचारके आश्रयसे भर्ताओंमें विकार युक्त होजाती है ॥ १५ ॥  
ऐसे दो श्लोकोंमें कहे हुए इनके स्वभावको हिरण्यगर्भकी सृष्टिके समय उत्पन्न  
जानि पुरुष इनकी रक्षाके लिये उत्कृष्ट यत्न करे ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनर्जवम् । द्रोहभावं कुंचर्या च स्त्री  
भ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो  
व्यवस्थितः । निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः १८

टीका—शय्या आसन अलंकार करनेका स्वभाव काम क्रोध कुटिलता परा-  
ई हिंसा कुत्सित आचार ये सब मनुने सृष्टिकी आदिमें स्त्रियोंके लिये बनाये  
तिस्से यत्नसे ये रक्षा करने योग्य हैं ॥ १७ ॥ स्त्रियोंकी जातकर्म आदि क्रिया मं-  
त्रोंसे न होती है यह शास्त्रकी मर्यादा है तिस्से मंत्र सहित संस्कार न होने कार-  
ण इनके अंतःकरण पापरहित नहीं होते हैं इन्द्रियां प्रमाण हैं और धर्ममें प्रमाण-  
ऐसी श्रुति सृष्टि रहित होनेसे धर्मज्ञ नहीं होती है और अमंत्र कहिये पापके दू-

रिकरनेवाले मंत्रोकरि रहित होनेके कारण पाप होनेपर भी उसके दूरि करनेको नहीं समर्थ होती हैं अथुभैं यह शास्त्रकी मर्यादा है तिस्से यत्ने रक्षा करने योग्यहै यह तात्पर्य है ॥ १८ ॥

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निर्गमेष्वपि । स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं  
तांसां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥ यन्मे माता प्रलुब्धे विचरन्त्यप  
तिव्रता । तन्मे रेतःपिता वृक्तमि त्यस्यैतन्निर्दर्शनम् ॥ २० ॥

टीका—व्यभिचारशील होना यह स्त्रियोंका स्वभावहै यह कहा उसमें श्रुति-  
के प्रमाण लिखते हैं ॥ बहुतेसे श्रुतियोंके वाक्य जैसे नचैतद्विशोब्राह्मणाः सोऽब्रा  
ह्मणावा इत्यादिक निगमोमें स्त्रियोंकी स्वालक्षण्य कहिये व्यभिचार शीलताके  
जाननेके लिये पढ़ी हैं उनमेंसे जो निष्कृतिरूप अर्थात् व्यभिचारके प्रायश्चित्तभू-  
तहैं उन श्रुतियोंको सुनिये ॥ १९ ॥ कोई पुत्र अपनी माताके मानसिक व्यभिचा-  
रको जानिकै कहताहै कि मन वाणी काय और कर्मसे पतिसे भिन्न पुरुष  
की इच्छा नहीं करती है वह पतिव्रताहै उस्से अन्य अपतिव्रता होती है मेरी  
माता अपतिव्रता हो पराये घरोंमें जाती हुई जो परपुरुषपर लोभयुक्त हुई उस  
परपुरुषके संकल्पसे दुष्ट माताको रजोरूप वीर्यको मेरा पिता शोधन करो इस प्र-  
कृत स्त्रीकी व्यभिचार शीलताके मध्ये इतिकरणहै अंत जिनका ऐसे मंत्रके ती-  
निपाद सूचकहै यह मंत्र चातुर्मास्य आदिमें काम देताहै ॥ २० ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसां । तस्यैष व्यभिचार  
स्य निहवः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥ यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत  
यथा विधि । तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निर्भंगा ॥ २२ ॥

टीका—यह मंत्र मानसी व्यभिचारका प्रायश्चित्तरूपहै सो दिखाते हैं ॥ जो  
स्त्री पति जिसको नहीं चाहता ऐसे दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेको मनसेभी  
नहीं चाहती है उसके चित्तके चलामान होनेका यह प्रायश्चित्तका मुख्य मंत्रहै  
भलीभांतिसे शोधनेवाले मनु आदिने कहाहै माता शब्दका श्रवणहै तिस्से यह पु-  
त्रहीका मुख्य प्रायश्चित्तरूप मंत्रहै माताका नहीं ॥ २१ ॥ स्त्री विवाह आदिकी-  
विधिसे जैसे भले बुरे पतिसे संयुक्त होती है उसके गुण उस भर्ताके समान हो-  
जाते हैं जैसे समुद्रमें मिलकर मीठे जलकी नदी सारी जलकी होजाताहै ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारङ्गमन्दर्पालेन ज

गार्माभ्यर्हणीयंताम् ॥२३॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्र  
सूतयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥

टीका—इस उत्कर्षमें दृष्टांत देते हैं ॥ जैसे निरुष्टयोनि अक्षमाला नाम वसिष्ठ  
के साथ व्याही गई और चटकानाम मंदपालनाम ऋषिको व्याही गई ये दोनों  
पूज्यताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ ये तथा औरभी निरुष्टसे उत्पन्न सत्यवती आदि  
स्त्रियां अपने २ पतिके गुणोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुई ॥ २४ ॥

एषोर्दिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥ प्रेत्येह च सुखोद  
कांन्प्रजार्धर्माग्निबोधत ॥२५॥ प्रजनार्थं महोभागाः पूजार्हा गृह  
दीप्तयः ॥ स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विज्ञेयोऽस्ति कश्चन ॥२६॥

टीका—यह सदा शुभस्त्रीपुरुषोंके विषयक लोकाचार कहा अब इस लोक  
तथा परलोकमें आगेको सुखके कारण ऐसे क्या क्षेत्रीका संतान है अथवा बीजी  
का इत्यादि प्रजाके धर्मोंको सुनिये ॥ २५॥ यद्यपि इनकी रक्षाके लिये दोष क-  
हे है तिसपरभी उपाय होसकनेके कारण दोषका अभाव है ये स्त्रियां बड़े उपका-  
ररूप गर्भके उत्पन्न करनेके लिये बहुतसे कल्याणके पात्र हैं तिससे वस्त्र अलंकार  
आदिके देनेसे बड़े मानके योग्य और अपने घरकी शोभा करनेवाली हैं स्त्री औ-  
र श्री घरोंमें तुल्यरूप हैं इनमें कुछ विशेष नहीं हैं जैसे श्रीके विना घर शोभित  
नहीं होता है ऐसेही स्त्रीके विनाभी शोभा नहीं पाता है ॥२६॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥ प्रत्यहं लोकयात्रा  
याः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥२७॥ अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा  
रैर्विरुत्तमा ॥ दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥२८॥

टीका—संतानका उत्पन्न करना और उत्पन्न हुएका पालना और प्रतिदिन  
आतिथि मित्र आदिका भोजन आदि लोकमें व्यवहारकी प्रत्यक्ष भार्याही कारण  
है ॥ २७ ॥ संततिका उत्पन्न करना कहभी चुके परन्तु पूजाकी योग्यता सूचित  
करनेके लिये फिर कहा है अग्निहोत्र आदि धर्मके कार्य सेवा और उत्कृष्ट प्रीति  
तथा संतानके उत्पन्न करने आदिसे पितरोंका और अपना स्वर्गका निवास ये  
सब कार्य स्त्रीके आधीन है ॥ २८ ॥

पतिं या न अभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकानांप्रति  
सद्भिः सांन्धीति चोच्यते २९ व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्रीलोके प्राप्ते

तिं निन्द्यताम् ॥ मृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगेऽथ पीडयते ॥ ३० ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी तथा देहसे संयत हो मन वाणी तथा देहसे व्यभिचारको नहीं प्राप्त होती है वह पतिके साथ अर्जुन किये हुये स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती है और इस लोकमें सज्जनों करि साध्वी कही जाती है ॥ २९ ॥ दूसरे पुरुषके योगसे लोकमें निंदाको और दूसरे जन्ममें स्यारीकी योनिको पाती है और क्षयीरोग आदिसे पीडित होती है स्त्री धर्म कहभी चुके परन्तु ये दोनों श्लोक उत्तम संतानके निमित्त हैं इस कारण बहुत प्रयोजनके जानि फिर पढ़े ०

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥ विश्वं जन्ममिमं पुण्यं  
मुपन्यासं निबोधताम् ॥ ३१ ॥ भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिर्द्वैधं तु भर्त  
रि ॥ औदुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

टीका—पुत्रके मध्ये शिष्ट मनु आदिकोंने और पहले उत्पन्न हुए महर्षियोंने यह कहा है अब सर्व जनोंका हितकारी आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ३१ ॥ भर्त्ताका पुत्र होता है यह मुनि मानते हैं भर्त्तामें दो प्रकारकी श्रुति है कोई विना व्याहृति उत्पन्न करनेवाले भर्त्ताको उस पुत्रसे पुत्रवाला कहते हैं और अन्य तौ नहीं भी उत्पन्न करनेवाले व्याहृतिवाले भर्त्ताको दूसरे करि उत्पन्न किये हुए पुत्र करि पुत्रि कहते हैं ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥ क्षेत्रबीजसमाधौ  
गात्संभवं सर्वदेहिनाम् ३३ ॥ विशिष्टं कुत्रचिद्वीजं स्त्रीयो निस्त्वे  
व कुत्रचित् ॥ उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशंस्यते ॥ ३४ ॥

टीका—धान आदिके उत्पत्तिके स्थानको क्षेत्र कहते हैं उसके तुल्य स्त्री मुनियों करि कही गई है और पुरुष धान आदिके बीजके तुल्य कहा गया है यद्यपि रेत बीज है परन्तु उसका आधार होनेसे पुरुष बीज कहा जाता है क्षेत्र और बीजके योगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है इस भांति दोनोंको विशिष्ट कारण होनेसे यह कहना योग्य है ॥ ३३ ॥ क्या जिसका क्षेत्र है उसका अपत्य है अथवा जिसका बीज है इसपर कहते हैं ॥ कहीं बीज प्रधान है जे अनियुक्तमें उत्पन्न हुआ है इस न्यायसे बीजी चंद्रमाके बुध उत्पन्न हुआ तैसेही व्यासऋष्यशृंग आदि बीजवालोहीके पुत्र हुए कहीं क्षेत्रकी मुख्यता है जैसे यस्तल्पजः प्रमीतस्य यह कहा है इसीसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र क्षत्रियोंमें ब्राह्मण करि उत्पन्न किये गयेभी धृतरा-

ए आदिक क्षेत्रिय क्षेत्रवालेहोके पुत्र हुए और जहां बीज और योनि दोनोंकी समताहै वहां व्याहनेवालाही उत्पन्न करनेवालाहै उसकी अच्छी संतति होतीहै ३४

बीजस्य चैवं योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥ सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥ यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कौलोपपादि ते ॥ तादृशो हति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥

टीका—वहाँ बीजकी प्राधान्यकी अपेक्षासे कहते है ॥ बीज और क्षेत्रमें बीजप्रधान कहा जाताहै जिस्से संपूर्ण पंचभूतोंसे बने हुए ओकी उत्पत्ती बीजमें स्थित वर्ण रूपके चिन्होंहीसे उपलक्षित दिखाई देती है ॥ ३५ ॥ जिस जातिकी धान आदि बीज ग्रीष्म आदि कालमें जोतने आदि करि संस्कार किये हुए खेतमें बोया जाताहै उसकी जातिहीका वह बीज अपने वर्ण आदिकों करि उपलक्षित उस खेतमें उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती यो निरुच्यते ॥ न च योनिं गुणा न्काश्चिद्बीजं पुण्यति पुष्टिषु ॥ ३७ ॥ भूमावप्येकैकदारे कौलोत्ता नि कृषीवलैः ॥ नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

टीका—इस भाँति अन्वयके प्रकार बीजकी प्राधान्यता दिखाकै अब व्यतिरेक मुखसे दिखानेको कहते हैं ॥ निश्चय यही भूमी भूतोंसे बने हुए वृक्ष गुल्मलता आदिकी नित्य योनि कहिये क्षेत्ररूप कारण सब लोगों करि कही जाती है और भूमिनाम योनिके किन्ही मटरूप आदि स्वरूप धर्मोंको बीज अपने विकार अंकुर शाखा आदिकी अवस्थाओंमें नही भजताहै तिस्से योनिके गुणोंके न वर्तमान होनेसे क्षेत्रकी प्रधानता नही ॥ ३७ ॥ भूमिमें एकही क्यारिमें किसानोकरि समयमें बोये गये धान मूंग आदि बीजके स्वभावसे नानारूप उत्पन्न होते हैं और भूमिके एक होनेसे एकरूप नही होते है ॥ ३८ ॥

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिलो माषास्तथा यवाः ॥ यथाबीजं प्ररोहं न्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥ अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ॥ उप्यते यद्धि यद्धि जं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

टीका—व्रीहि कहिये साठी धान और शालि कहिये कलम धान आदि और मूंग तिल उडद तथा जव बीजके स्वभावको नही छोडकर नाना रूप उत्पन्न होते

है॥३९॥धान बोयेसे मूंग आदि उत्पन्न होय यह संभव नहीं होता है॥जिस्से जो जो बीज बोया जाता है सोई उगता है ऐसे बीजके गुणोंके अनुवर्त्तन कहिये साथ रहने से और क्षेत्रके धर्म न रहनेसे धान आदिमें और मनुष्योंमेंभी बीजकी मुख्यता है४०

तत्प्राज्ञेन विनतिन ज्ञानविज्ञानवेदिना ॥ आयुष्कामेन वर्तव्यं न जातुं पर्ययोषिति॥४१॥अत्र गार्था वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ॥ यथा बीजं न वर्तव्यं पुंसां परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

टीका—अब क्षेत्रकी प्राधान्यता कहते हैं॥ वह बीज स्वाभाविक बुद्धिवाले और पिता आदि करि सिखाये और वेद तथा उसके अंगोंके मानने वाले आयुकी इच्छा करनेवालेको पराई स्त्रीमें कभी न बोना चाहिये ॥४१॥ बीते हुए कालके जाननेवाले इस आर्यमें वायुकी कही हुई गाथा अर्थात् छंद विशेष करि युक्त वाक्योंको कहते हैं जैसे परपुरुष करि परस्त्रीमें बीज न बोना चाहिये यह ॥४२॥

नश्यतीर्षुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्धयतः ॥ तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥४३॥ पृथोरपीमां पृथिवीं भार्या पूर्वविदो विदुः ॥ स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥ ४४ ॥

टीका—जैसे और करि वेधे हुए करसायल मृगके उसी छेदमें वेधने वाले दूसरेका फेंका हुआ बाण निष्फल होता है पहले मारनेवाले करि मारे जानेके कारण उसीको मृगका लाभ होजाता है ऐसे परस्त्रीमें बोया गया बीज शीघ्रही निष्फल होता है क्योंकि गर्भ ग्रहणके पीछे क्षेत्रीको अपत्य मिलता है ॥ ४३ ॥ इस पृथिवीको पहले पृथुराजा करि ग्रहण करनेसे अनेक राजोंका संबंध होनेपरभी पृथुकी भार्या पहले भूतकालके जाननेवाले जानते हैं और स्थाणु जो दूढ़ आदि हैं उनकोदकर जो खेत करता है उसीका वह क्षेत्र कहते हैं ऐसेही मृग आदिमें जिसने पहले शर आदि चलाया है उसीका वह मृग कहते हैं ऐसे पहले परिग्रह करनेवालेकी स्वामिता होनेसे व्याहनेवालेहीकी संतान होती है उत्पन्न करनेवालेकी नहीं ॥ ४४ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्यात्मा प्रजेति ह । विप्रैः प्राहुस्तथा च तं द्यो भर्ता सां स्मृताङ्गना ॥४५॥ न निष्कयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते । एवं धर्म विज्ञानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ४६ ॥

टीका—पुरुष एकही नहीं होता है किंतु भार्या अपना देह और अपत्य कहिये संतान इन सबों समेत पुरुष होता है यह वेदके जानने वाले ब्राह्मण कहते हैं जो भर्त्ता है वही भार्या कही गई है उसमें उत्पन्न किया हुआ अपत्य भर्त्ताहीका होता है ॥ ४९ ॥ निष्क्रय वेचना और विसर्ग दान दोनों बातोंसे स्त्री भर्त्ताके भार्यापनसे नहीं छूटती है ऐसे पहले प्रजापतिके कहे हुए नित्य धर्मको हम मानते हैं इस भाँति मोल आदिसेभी पराई स्त्रीको अपने आधीन करिके उसका उत्पन्न किया हुआ पुत्र आदि संतान क्षेत्रवालेहीका होता है बीजवालेका नहीं ॥ ४६ ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह ददानीति त्री  
ण्येतानि सर्तां सकृत् ॥ ४७ ॥ यथा गोऽश्वोऽष्टदासीषु महिष्यजा  
विकामु च । नोत्पादकः प्रजाभागी तथैव न्याङ्गनास्वर्पि ॥ ४८ ॥

टीका—पिता आदिके धनमें भाईयोंका धर्मसे किया हुआ विभाग एकही बार होता है फिर अन्यथा नहीं किया जाता है तैसेही पिता आदि करि कन्या एकहीवार किसीको दी गई फिर दूसरेको नहीं दी जाती है ऐसेही और करी पहले और को दी हुई होनेपर पीछे पिता आदि करि प्राप्त हुई भी उसमें उत्पन्न किया हुआ पुत्र बीजवालेका नहीं होता है इस लिये यह कहा है तैसेही कन्या से भिन्नभी आदि द्रव्यमें एकहीवार देता हों यह कहता है न कि दूसरेको देता हों यह ये तीनि बातें सज्जनोंकी एकवार होती ॥ ४७ ॥ जैसे पराई गौ घोड़ी जँटिनी दासी भैंस बकरी भेड़ इनमें अपने बैल आदिको छोड़ बछड़े आदिका उत्पन्न करनेवाला उसको नहीं पाता है तैसेही पराई स्त्रियोंमें उत्पन्न करनेवाला संतानको नहीं पाता है ॥ ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परिक्षेत्रप्रवापिणः । ते वै ससूर्यस्य जातस्य  
न लभन्ते फलं कंचित् ॥ ४९ ॥ यदन्यगोषु वृषभो वर्त्सानां जनं  
येच्छेत्तम् । गोमिनामेवं ते वर्त्सा मोघं संकन्दितमर्षभम् ॥ ५० ॥

टीका—जे क्षेत्रके स्वामी नहीं है ऐसे बीजके स्वामी पराये खेतमें बीज बोते हैं वे उसमें उत्पन्न हुए धान्य आदिके फलको किसी देशमें नहीं पाते हैं यह दृष्टांत है ॥ ४९ ॥ जो औरकी गौओंमें बैल सौभी बछड़े उत्पन्न करै तौ वे सब बछड़े स्त्री जो गौ है उसके स्वामीके होते हैं न कि बैलके स्वामीके और बैलका जो वीर्य सींचना है वह बैलके स्वामीका निष्फलही होता है जैसे गोऽश्वोष्ट्र इस श्लोकसे

उत्पन्न करनेवाला प्रज्जाका पानेवाला नहीं होता है इसमें यह दृष्टांत कह है ॥ ५० ॥

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परिक्षेत्रप्रवपिणः ॥ कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजं लभते फलम् ॥ ५१ ॥ फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा । प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्यो निर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

टीका—जैसे गौ आदिके गर्भोंमें वैसेही स्त्रीकी संतानमें स्वामीपनसे रहित होते हुए पराई भार्यामें जो बीज बोते है वे क्षेत्रके स्वामियोंहीका संतानरूप प्रयोजन करते है और बीजका सीचने वाला संतानरूप फलको नहीं पाता है ॥ ५१ ॥ जो इसमें जो संतान उत्पन्न होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा इस भांति जहां नियम नहीं किया गया है वहां निस्संदेह कही हुई रीतसे खेतवालेका संतान है बीजसे क्षेत्र बलवान है ॥ ५२ ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ॥ तस्यैह भागिनौ दृष्टौ बीजं क्षेत्रिकं एव च ॥ ५३ ॥ ओषवाताहतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वत्सं लभते फलम् ॥ ५४ ॥

टीका—जो इसमें संतान होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा ऐसे कह कर वह क्षेत्र स्वामी करि बीज बोनेके लिये जो बीजवालेको दिया जात है उस संतानके लोकमें बीजवाला और खेतवाला दोनों स्वामी पानेवाले देखे गये हैं ॥ ५३ ॥ जलके वेग तथा पवन करि दूसरेके खेतसे लाया गया बीज जिसके खेतमें उत्पन्न होता है वह बीज उस खेतके स्वामीहीका होता है जिसने बीज बोया है वह उसके फलको नहीं पाता है ऐसे अपनी भार्याके धर्मसे पत्तई भार्याके गमनमें मेरा यह पुत्र होगा ऐसा जाननेपर क्षेत्रवालेहीका पुत्र है यह देखाया गया है ॥ ५४ ॥

एष धर्मो गवांश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च । विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥ एतद्भिः सारफलगुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममार्पदि ॥ ५६ ॥

टीका—गौ घोड़ी दासी ऊंटनी बकरी और भेड़ इनकी संततिमेंभी यही व्यवस्था जाननी चाहिये जो क्षेत्रका स्वामीही गौ आदिकी संततिका स्वामी है बैल आदिका स्वामी नहीं और नियम करनेपर तो दोनों संततिके स्वामी होते



है ॥ ५९ ॥ यह बीज तथा योनिंकी प्रधानता और अप्रधानता तुमसे कही इस पीछे स्त्रियोंके संतान न होनेमें जो करना चाहिये सो कहोंगा ॥ ५६ ॥

भ्रातृज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यर्जस्य सा । यवीयसस्तु यां भा  
या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ ५७ ॥ ज्येष्ठो यवीयसो भार्या यवीया  
न्याग्रजस्त्रियम् ॥ पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥

टीका—जेठे भाईकी स्त्री छोटे भाईकी गुरु पत्नी होती है और छोटे भाईकी स्त्री बड़े भाईकी पुत्रवधू मुनियोंने कही है ॥ ५७ ॥ जेठा और छोटा दोनों भाई आपसमें वह उसकी और वह उसकी भार्यामें गमन करिके संतानका अभाव न होनेपर नियुक्त भी पतित होते हैं ॥ ५८ ॥

देवराट्वा संपिण्डाट्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥ प्रजेप्सिताधिगन्तव्या  
संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥ विधवायां नियुक्तस्तु धृताक्तो वाग्यतो  
निशि ॥ एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥ ६० ॥

टीका—संतानके न होनेमें पति आदि गुरुओं करि आज्ञा दी गई स्त्री देवर अथवा अन्य संपिण्डसे अच्छे प्रकारसे जो आगे कहा जायगा ऐसे घृताक्त आदि नियमवाले पुरुषके गमनसे वांछित प्रजा उत्पन्न करावै वांछित कहनेसे कार्यके अयोग्य पुत्र उत्पन्न होनेसे फिर गमन पाया जाता है ॥ ५९ ॥ विधवामें इस कहनेसे जाना गया कि संतान उत्पन्न करनेयोग्य पतिके न होनेपर यह है इस्से पतिके जीवते हुएभी अयोग्य पति आदि गुरुओं करि आज्ञा दिया हुआ धीसे सब कत्तिरसे लेप करि मौन हो रात्रिमें एकपुत्र उत्पन्न करै दूसरा नहीं ॥ ६० ॥

द्वितीयमेकं प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः । अनिवृत्तं नियोगार्थं पश्य  
न्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥ विधवायां नियोगार्थे निर्वृते तु यथा  
विधि । गुरुवर्चं स्नुषावर्चं वर्तेयतां परस्परम् ॥ ६२ ॥

टीका—नियोगसे पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले अन्य आचार्य अ-पुत्र एकपुत्र समानहै यह शिष्टोंके कहनेसे प्राप्त नियोगके प्रयोजनको मानते हुए स्त्रियोंमें दूसरे पुत्रका उत्पन्न करना धर्मसे मानते हैं ॥ ६१ ॥ विधवा आदिमें नि-योगका प्रयोजन गर्भाधान शास्त्रकी रीतिसे संपन्न होनेपर जेठा भाई और छोटे भाईकी स्त्री आपसमें गुरुके समान और पुत्रवधूके समान व्यवहार करै ॥ ६२ ॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तयतां तु कर्मतः॥ तावुभौपतिं तौ  
स्यौतां स्नुषांगगुरुतल्पगौ ६३. नान्यस्मिन्विधवा नारी नि योक्त  
व्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन् हि नियुजाना धर्म हन्युः सनातनम् ६४

टीका—आपसकी भार्याओंमें नियुक्त जेठे और छोटे भाई दोनों घृत आदि के विधानको छोड़ि जो अपनी इच्छासे वतैं तौ स्नुषागामी और गुरुदारगामी दोनों पतित होजाय ॥ ६३ ॥ इस भांति नियोग कहिके दूषण देनेको कहते हैं ॥ ब्राह्मण आदिकों करि विधवा स्त्री भर्त्तासे अन्यदेवर आदिमें नहीं नियोग कराने योग्यहै जिस्से स्त्रीको अन्यमें नियोग कराते हुए वे स्त्रियोंका अनादि सिद्ध एक पतिभावके धर्मको नाश करते हैं ॥ ६४ ॥

नोद्राहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥ न विवाहविधावु  
क्तं विधवावेदनं पुनः॥६५॥ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विग  
हितः॥ मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशसति ॥६६॥

टीका—अर्यमणनुदेवं इत्यादिक विवाहके मंत्रोंमें किसी शास्त्रमें नियोग नहीं कहाहै और न कहीं विवाहके विधान करनेवाले शास्त्रोंमें दूसरे पुरुषके साथ विवाह कहाहै ॥ ६६ ॥ जिस्से यह पशु संबंधी मनुष्योंकाभी व्यवहार विद्वानों करि निंदितहै जो यह अधर्मी वेणनामराजाके राज्यके समय करनेयोग्य कहा गया इसीसे वेणसे लगाकर प्रवृत्त यह नियोग आदि मानहै इसलिये निंदा किया जाताहै ॥ ६६ ॥

सं महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा॥ वर्णानां संकरं चक्रे कामो  
पहतचेतनः॥६७॥ ततः प्रभृति यो मोहार्त्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्॥  
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥६८॥

टीका—वह वेण पहले समयमें संपूर्ण पृथ्वीका पालन करता भया इसीसे राजर्षियोंमें श्रेष्ठहै धर्मात्मापनसे नहीं, कामसे उपहत कहिये नष्टहै बुद्धि जिसकी ऐसे वेणने भाईकी भार्यामें गमन करनारूप वर्णसंकर चलाया ॥ ६७ ॥ वेणके समयसे लगाकै जो जिसका पति मरिगयाहै ऐसी स्त्रीमें शास्त्रका अर्थ न जान संतानके लिये देवर आदिमें नियुक्त करताहै सज्जन उसकी निश्चय करि निंदा करते है यह तौ अपना कहा हुआ नियोगका निषेध कलियुगके लिये है ॥६८॥

यस्या प्रियेतं कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥ तामनेन विधा-  
नेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥ यथाविध्यधिगम्येनां शुक्लवस्त्रां  
शुचिव्रताम् ॥ मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृद्व्रतावृतौ ॥ ७० ॥

टीका—नियोगके प्रकरणसे कन्यागत विशेष कहते हैं ॥ जिस कन्याका वाणीसे दान करनेपर भर्ता मरिजाय उसको इस आगे कहहेहुए विधानसे भर्ताका सगा भाईव्याहि लेवै ॥ ६९ ॥ वह देवर विवाहकी विधिसे इसको अंगीकार करि-  
श्वेत वस्त्रोंको धारण करनेवाली और काय तथा मनकी शुद्धतासे शोभायमान उस स्त्रीमें गर्भधारण होने तक एकांतमें ऋतुऋतुमें एकवार गमन करै ऐसे कन्या-  
के नियोग प्रकारसे और विवाहके न ग्रहण करनेसे गमनके उपदेशसे जिसके लिये वाग्दत्ता उसी वह संताति होती है ॥ ७० ॥

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ॥ दत्त्वा पुनः प्रयच्छ-  
न्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ ७१ ॥ विधिवत्प्रतिगृह्णापि त्यजेत्कन्यां  
विगर्हिताम् ॥ व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥ ७२ ॥

टीका—किसीके लिये वाणीसे कन्याको देकर उसके मरनेपर दानके गुण-  
दोषका ज्ञाननेवाला पुरुष उसको दूसरेके लिये दान न करै जिस्से एकके लिये देकर दूसरेको देता हुआ पुरुषानृत दोषको प्राप्त होताहै साप्तपदी करणके अर्थात् सात्मावरोके न होनेसे भार्यापनके सिद्ध न होनेके कारणसे फिर दानकी शंका होनेपर यह वचन कहाहै ॥ ७१ ॥ अङ्गिरेवद्विजाग्र्याणां इत्यादि विधिसे ग्रहण करिकैभी वैधव्य आदि युक्त रोगिणी और जिसको योनिके क्षत होनेका दोष लगाहै और जो अधिक तथा हीन अंगोंकी छपाके व्याही गई ऐसी और भावरै पडनेसे पहले जानी गई कन्याको त्याग करै उसके त्यागनेमें दोष नहीं है इस लिये यह कहाहै त्यागके लिये नहीं ॥ ७२ ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ॥ तस्य तद्विषयं कु-  
र्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥ ७३ ॥ विधाय वृत्तिं भार्यायां प्रवर्सेत्का-  
र्यवान्नरः ॥ अवृत्तिर्कर्मिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥

टीका—जो दोष युक्त कन्याके दोषोंके विना कहे दान करताहै उस दुना-  
त्मा कन्या देनेवालेके दानको लौटा देनेसे व्यर्थ करै यहभी त्यागमें दोष न हो-

नेके लिये कहा है ॥ ७३ ॥ काम पडनेपर मनुष्य पत्नीके अन्न वस्त्रका प्रबंध करि दूसरे देशको जाय क्योंकि भोजनादिक न होनेसे पीडित शीलवालीभी स्त्री-दूसरे पुरुषके मेलको प्राप्त होजायगी ॥ ७४ ॥

विधाय प्रोषिते वृत्ति जीवेन्नियममास्थिता ॥ प्रोषिते त्वविधायै  
व जीवेच्छिल्पैरगहितैः ७५ प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ  
नरः समाः ॥ विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रैस्तु वत्सरान् ७६ ॥

टीका—भोजन वस्त्र अदि देकर पतिके परदेश जानेपर देहका अलंकार करने तथा परायें घरमें जानेसे रहित हो जीवै और भोजन वस्त्र न देकर जानेपर सूतके कातने आदि अनिदित कामोंसे जीविका करै ॥ ७५ ॥ गुरुकी आज्ञाके करने आदि धर्मकार्यके लिये परदेशमें गया पति पत्नीको आठवर्षतक रहि देख-नेयोग्य है तिसके उपरांत पतिके समीप जाय सोई वसिष्ठने कहा है कि परदेशी-की स्त्री आठ वर्षतक स्थित रहै उपरांत पतिके पास जाय और विद्याके लिये परदेशमें गया हुआ पति छवर्ष तक राह देखने योग्य है और अपनी विद्या आ-दिसे यशके लिये परदेशमें गया हुआभी छवर्ष और दूसरी भार्यासे भोग आ-दि करनेके लिये गया हुआ तीनवर्ष तक राह देखने योग्य है ॥ ७६ ॥

सर्वत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्ती योषितं पतिः ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरत्वेनां  
दायं हृत्वा न संवसेत् ॥ ७७ ॥ अतिक्रामेत्प्रमत्तं यां मत्तं रोगात्तमेव  
वा ॥ सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥ ७८ ॥

टीका—पतिसे द्वेष करती हुई स्त्रीको एकवर्ष तक देखै तिसके उपरांतभी द्वेष माननेवालीको अपने दिये हुए अलंकार आदि धनको लेकर उससे गमन न करै भोजन वस्त्र तो देना होगा ॥ ७७ ॥ जो स्त्री जुआ आदि प्रमाद वालीको अथवा मद उत्पन्न करनेवाली वस्तुके पीने आदिसे मतवारीको अथवा सेवा आ-दि न करनेसे जो तिरस्कार करै उसके अलंकार शय्या आदि लेकर तीन महीने तक गमन नकरै ॥ ७८ ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोणिणम् ॥ न त्यागोऽस्ति द्विषं  
न्त्याश्च न च दायोपवर्तनम् ॥ ७९ ॥ मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूलं  
च यो भवेत् ॥ व्याधिता वांधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थघ्नी च सर्वदा ८० ॥

टीका—उन्मत्त कहिये वात आदि दोषके क्षोभसे जो प्रकृतिमें नहीं स्थितकी और पतितकी और ग्यारहें अध्यायमें जो कहा जायगा ऐसे नपुंसककी और बी-जरहितकी और कोढ़ आदि पापरोग करि युक्त पतिकी सेवा न करनेवाली स्त्री-का त्याग नहीं है और उसका धन लेना चाहिये ॥७९॥ निषिद्ध मद्यपान करने वाली और निषिद्ध आचारवाली और पतिसेप्रतिकूल चलनेवाली और कुष्ठ आदि रोग करि युक्त और भृत्य आदिकी ताडना करनेवाली और सदा बहुत खर्च करनेवाली जो स्त्री होय तौ उसके रहनेपरभी दूसरा विवाह करना चाहिये ॥८०॥

वन्ध्याष्टमेऽर्धिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥ एकदशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥८१॥ रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥ सा नुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नोवर्मान्या चैकहचित् ॥८२॥

टीका—पहले ऋतुधर्मसे लगाकै जिसके आठ वर्षतक संतति न होय तौ आठमें वर्ष दूसरा विवाह करना चाहिये और जिसके संतान मरजाते होंय उसके रहते दशमें वर्ष और स्त्रीसंततिवालीके ग्यारहें वर्ष और अप्रिय बोलनेवालीके तौ शीघ्रही अन्य विवाह करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगिणी होनेपरभी पतिके अनुकूल होय और शीलवाली होय उसकी आज्ञा लेकर दूसरा विवाह करना चाहिये कभी यह अपमान करनेयोग्य नहीं है ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेदुषिता गृहात् ॥ सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥८३॥ प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ॥ प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कुण्डलानि पट्टं

टीका—जो स्त्री दूसरा विवाह करनेपर कुपित हो घरसे निकलै वह उसी दिन रस्सी आदिसे बांधिकर रखनेयोग्य है और कोप दूर होने तक पिता आदिके समीप छोड़नेयोग्य है ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रिय आदिकी स्त्री भर्ता आदिके मने करनेपरभी विवाह आदि उत्सवोंमेंभी निषिद्ध मद्यको पीवै अथवा नाच आदिमें स्थित जनोके समूहमें जाय वह छ रत्ती सुवर्ण व्यवहारके प्रकरणसे राजा दंड करने योग्य है ॥ ८४ ॥

यदि स्वाश्रयापराश्रयं विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥ तांसां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वैश्वं च ॥८५॥ भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकायं च नैत्यकम् ॥ स्वां चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ॥८६॥

टीका—जो द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपनी जातिकी तथा दूसरी जातिकी स्त्रियोंको व्याहैं तौ उनका द्विजातिके क्रमसे वाणीका सत्कार और दायविभागकी उत्कर्षताके लिये वस्त्र अलंकार आदिके देनेसे, जेठपनकी पूजा और घरभी प्रधान होय अर्थात् सवातें ब्राह्मणीकी अधिक होय उससे कम क्षत्रियाकी उससे कम वैश्याकी यही क्रम सब वर्णोंमें जानिये ॥ ८५ ॥ भर्त्ताके देहकी परिचर्या कहिये टहल और अन्न देना आदि धर्मका काम तथा भिक्षाका देना अभ्यागतोंको परोसना और होमकी द्रव्योंका देना आदि प्रतिदिनका कर्म द्विजातियोंके सजातिहीकी स्त्री करै दूसरी जातिकी कभी न करै ॥ ८६ ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोर्हत्सजात्या स्थितयान्यया ॥ यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टतैर्वै संः ॥ ८७ ॥ उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सद्धं शाय च ॥ अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥

टीका—जो अपनी जातिकी स्त्रीके निकट होनेपर देहकी सेवा आदि कर्मोंको अन्य जातिकी स्त्रीसे मूर्खताके कारण कराताहै वह जैसे ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न ब्राह्मण चाण्डाल होता है वैसही पूर्व ऋषियों करि देखा गयहै ॥ ८७ ॥ कुल तथा आचार आदिसे उत्कृष्ट और सुंदर रूपयुक्त और समान जातिके वरको विवाह समयके अयोग्यभी आठवर्षकी कन्या व्याहि देवे इस प्रकारसे धर्म नहीं हीन होताहै उस कालसे पहलेभी कन्याको ब्राह्म विवाहकी विधिसे देवै ॥ ८८ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्देहकन्यतुमत्यपि न च वै न प्रयच्छेत्तुं गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यतुमती सती ॥ ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्धिन्देत सद्धं पतिम् ॥ ९० ॥

टीका—उत्पन्नहै ऋतुधर्म जिसके ऐसी कन्या मरणपर्यंत पिताके घरमें रहै सो अच्छा परंतु विद्या और गुणों करि रहितको पिता आदि कभी न देवै ॥ ८९ ॥ पिता आदि करि गुणवान् वरको नहीं दी गई कन्या ऋतुमती होनेपर तीन वर्ष राह देखै फिरि तीन वर्षके उपरांत अधिक गुणयुक्त वर न मिलनेपर समान जाति गुणवाले वरको आपन वरै ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥ नैनः किञ्चिद्वामो त्रि न च यं साधिगच्छति ॥ ९१ ॥ अलंकारं न ददात् पितृयं कन्या स्वयंवरा ॥ मार्तृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥ ९२ ॥

टीका—पिता आदि करि नहीं दी गई कुमारी जो कहे हुए विवाहके कालमें भर्त्ताकों आपही वरै तो वह कुछभी पापको नहीं प्राप्त होती है और न उसका पति पापको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ आप पतिको वरनेवाली कन्या वरके अंगीकार करनेके पहले पिता मता तथा भाईके दिये हुए अलंकार उन्हीको दे दे और जो न दे तो चोर होय ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतमतीं हरन् । संहि स्वाभ्या-  
दतिक्रमेद्वर्तूनां प्रतिरोधेनात् ॥ ९३ ॥ त्रिंशद्वर्षोवहेत्कन्यां हृद्यां  
द्वादशवार्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति संत्वरः ॥ ९४ ॥

टीका—ऋतुमती कन्याका व्याहनेवाला पिताको कन्याका मूल्य न देवै कारण यह है कि पिता ऋतुका कार्य संततिके रोकनेसे कन्याके स्वामीपनसे हीन होजाता है ॥ ९३ ॥ तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी मनोहर कन्याके साथ व्याह करे अथवा चौबिस वर्षका आठ वर्षकी को व्याहै और शीघ्रता करनेवाला गृहस्थ धर्ममें दुख पाता है यह योग्यकाल दिखानेके लिये कहा है कुछ नियमके लिये नहीं ॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिभार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः । तां सार्धं विभृया-  
न्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥ प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संता-  
नार्थं च मानवाः । तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या संहोदितः ९६

टीका—भगोऽर्यमासवितापुरंधिर्मह्यत्वादुर्गहपत्यायदेवा इत्यादि मंत्रके सूचित करनेसे जो देवताओं करि दीई भार्या है उसको पति प्राप्त होता है अपनी इच्छासे नहीं उस पतिव्रताको देवताओंका प्रिय करता हुआ द्वेषयुक्त होनेपरभी भोजन वस्त्र आदिसे सदा पालन करने योग्य है ॥ ९५ ॥ जिस्से गर्भग्रहण करनेके लिये स्त्री उत्पन्न की गई हैं और गर्भ आधान करनेके लिये मनुष्य तिस्से गर्भ उत्पन्न करनेके समान इन दोनोंका अग्निका आधान आदिभी धर्मपत्नीके साथ साधारण कहा है क्षौमेवसानावग्रीनादधीयातां इत्यादि वेदमें विहित है तिस्से भार्या-विभृयात् पहले कहे हुएका शेष है ॥ ९६ ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां प्रियेत यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या  
यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७ ॥ आददति न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरै

दर्दत् ॥ शुल्कं हि गृण्हन्कुरुते छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

टीका—कन्याका शुल्क तौ दे दिग्रा होय परन्तु विवाह न हुआ होय उस समय शुल्क देनेवाला वर मरजाय तौ पिता आदि करि यह कन्या देवरको देने योग्य है जौ वह स्त्री अंगीकार करै तौ ॥ ९७ ॥ शास्त्रका न जाननेवाला शूद्रभी कन्याको देता हुआ शुल्कको न लेवै फिरि शास्त्र पढ़े हुए द्विजातिका तौ क्या कहना है जिस्से शुल्कको लेता हुआ मनुष्य गुप्त कन्याका विक्रय करता है ॥ ९८ ॥

एतत्तु नै परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः । यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥ ९९ ॥ नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु । शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥

टीका—इसको पहले शिष्ट लोगोने कभी नहीं किया न और वर्त्तमान कालके करते हैं जो और की कन्याको अंगीकार करिके फिरि औरको देवें यह जिसका शुल्क ले लिया है उस कन्याके मध्ये कहा है ॥ ९९ ॥ पहले कल्पोंमेंभी यह हुआ यह हमने कभी नहीं सुना है कि जो शुल्कनाम मोलसे किसी सज्जनने गुप्त कन्याका विक्रय किया होय ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः । एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १ ॥ तथो नित्यं यतेर्यातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ । यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥ २ ॥

टीका—भार्या और पतिके मरनेतक धर्म अर्थ और काममें परस्पर व्यभिचार न होय यह संक्षेपसे स्त्री पुरुषका उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये ॥ १ ॥ जिन्होंने विवाह किया है ऐसे स्त्रीपुरुष सदा ऐसा यत्न करै जैसे धर्म अर्थ और काममें परस्पर वियुक्त होनेपरभी व्यभिचार युक्त न होय ॥ २ ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः । आर्पणपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं पितुंश्च मातुश्च संमेत्य भ्रातरः संमम् । भजेरन्यैर्तृकं रिक्थमनीशैस्ते हि जीवतोः ॥ ४ ॥

टीका—भार्या और पतिका परस्पर अनुराग युक्त यह धर्म तुमसे कहा और संतानके न होनेमें संततिकी प्राप्ति कही अब दाय जो पिता आदिका धन है उस



के विभागकी व्यवस्था सुनिये ॥ ३ ॥ भाई मिलिके पिताके मरनेके उपरांत पिताके धनको और माताके मरनेके पीछे माताके धनको बराबर करके बांटे लेवै और माता पिताके जीवते हुए उनके धनके स्वामी नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पितॄयं धनमशेषतः ॥ शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ॥ पितृणामनृणश्चैव सं तस्मात्सर्वमहति ॥ ६ ॥

टीका—जो ज्येष्ठ धर्मात्मा होय तो पिताके संपूर्ण धनको वही लेवै और छोटे उससे पिताके समान भोजन-वस्त्र पावै और ऐसे सब साथही रहैं ॥ ५ ॥ उत्पन्न होनेहीसे संस्कार रहित भी जेठे पुत्रसे मनुष्य पुत्रवान् होताहै और पितरोंके ऋणसे छूटि जाताहै इससे ज्येष्ठही सब धनके योग्यहै यह पहलेका शेषहै ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥ स एव धर्मजः पुत्रः का मजानितरान्विदुः ॥ ७ ॥ पितेव पालयेत्पुत्रा ज्येष्ठो भ्रातृन्यवीर्यसः ॥ पुत्रवर्षापि वतैरज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ ८ ॥

टीका—जिसके उत्पन्न होनेपर ऋणका शोधन और जिसके उत्पन्न होनेसे अमृतत्वको प्राप्त होताहै वही पिताका धर्मके कारणसे उत्पन्न पुत्र होताहै और औरोंको तो काममात्रके कारणसे उत्पन्न मुनीश्वर जानते हैं तिससे वही सब धनको ग्रहण करै ॥ ७ ॥ विभाग न होनेमें जेठा भाई छोटे भाइयोंको भोजन वस्त्र आदिसे पिताके समान पाल करै और छोटे भाई पुत्रोंके समान जेठे भाईमें धर्मसे वतै ॥ ८ ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ॥ ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिर्गर्हितः ॥ ९ ॥ यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेवसः ॥ अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्संपूज्यस्तु बंधुवत् ॥ १० ॥

टीका—जिसका विभाग नहीं हुआहै ऐसा जेठा जो धर्मात्मा होय तो छोटे भी उसके अनुगामी होनेसे धार्मिक होनेके कारण जेठा कुलको बढ़ाताहै और जो अधर्मी होय तो छोटेकोभी उसके अनुगामी होनेके कारणसे जेठा कुलका नाश कर देताहै लोकमें गुणवान् ज्येष्ठ अतिपूज्यहै ॥ ९ ॥ जो जेठा छोटे भाइयोंमें पिताके समानवर्तताहै वह पिताके समान और माताके सम्मान आनिध होता

है और जो ऐसे नहीं वर्त्तत है वह मामा आदि वैधुओंके समान पूजने योग्य है १०

एवं सहै वैसेयुवां पृथग्वां धर्मकौम्यया ॥ पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्मा  
द्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥ ११ ॥ ज्येष्ठस्य विश उद्धारः सर्वद्रव्याञ्च यद्गर  
म् ॥ ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु तृतीयसः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे विना ढंटे हुए भाई एकसाथ रहैं अथवा धर्मकी कामनासे जुड़े  
जुड़े पंचयज्ञ करनेसे उनका धर्म बढ़ता है तिससे तिससे विभाग ( बांट ) करना  
धर्महीके लिये है ॥ ११ ॥ साझेके साधारण धनसे बीसवां भाग निकाल कर  
जेठको देवैं और घरकी सब वस्तुओंमें जो उत्तम होय वहभी जेठको देवैं और  
मध्यम कहिये मझलेको चालीसवां भाग दे और छोटेको अस्सीमा भाग देकर  
सब बराबर वाटि लेवैं ॥ १२ ॥

ज्येष्ठश्चैवं कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ॥ येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठा  
भ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ १३ ॥ सर्वेषां धनजातानामाददीता  
ग्र्यमग्रजः ॥ यश्च सातिर्शयं किञ्चिद्दशतंश्चाभुयाद्वरम् ॥ १४ ॥

टीका—जेठा तथा छोटा पहले श्लोकमें कहे हुए १०।१४०।८०। भागोंको  
लेवैं और जेठ तथा छोटेसे भिन्न जो मध्यमहैं उनके बीचकी छुटाई बडाईकी अपे  
क्षाको नहीं करिके सब भझलोंमें प्रत्येकको कहाहुवा चालीसवां भाग देना चाहिये  
मझलोंमें छुटाई बडाईकी अपेक्षासे विभागकी विषमता दूर करनेके लिये यह  
कहा है ॥ १३ ॥ धनके सब प्रकारोंमें जो श्रेष्ठ धन होय उसको ज्येष्ठ लेवैं और  
दश गौ आदि पशुओंमेंसे श्रेष्ठ एकज्येष्ठ लेवैं यह वहांके लिये है जहां जेठा गुण-  
वान होय और अन्य सब निर्गुणी हों ॥ १४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥ यत्किञ्चिदेव देयं तु  
ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ १५ ॥ एवं समुद्धृतोद्दारे समानं शान्प्रकल्पये  
त् ॥ उद्दारेऽनुद्धृते त्रिषामिदं स्यादंशकल्पना ॥ १६ ॥

टीका—सब समान गुण होनेमें कहते हैं दशमेंसे श्रेष्ठको ज्येष्ठ पावै यह जो  
उद्धार कहा है सो यह पढ़ने आदि कर्म करनेवाले भाइयोंमें जेठका नहीं है तिस-  
पद्मी यत्किंचित पूजा बढ़ानेवाला द्रव्य जेठको देना चाहिये ऐसे बराबर गुण-  
वालोंमें उद्धारक निषेध देखा गया है इस कारण पहलेमें गुणोंकी अधिकताकी

अपेक्षासे उद्धारकी विषमता जाननी चाहिये ॥ १५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे जिससे वीसमा भाग निकाल लिया गया है ऐसे धनमेंसे सब भाइयोंके बराबर भाग करै वीसमा भाग आदिमें तौ फिरि नही निकाली हुई भागकी कल्पना आगे कही हुई होती है ॥ १६ ॥

एकाधिकं हरेज्येष्ठः पुत्रोऽप्यर्धं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयां  
स इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥ स्वेभ्योऽश्वेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्र  
द्वुभ्रीतरः पृथक् स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतितोऽस्युरदित्संवः १८

टीका—एक अधिक अंश अर्थात् दो भागोंको जेठा पुत्र ग्रहण करै और अधिक अर्द्ध अर्थात् डेढ़ भाग जेठेसे छोटा ग्रहण करै और छोटे फिरि एक एक भाग ग्रहण करै यह धर्म व्यवस्थित है यह ज्येष्ठ और उससे छोटीकी गुणवान होनेकी अपेक्षासे और छोटोंके निर्गुण होनेमें जानना चाहिये कारण यह है कि जेठेका और उससे छोटोंका अधिका देखा जाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारो भाई अपनी जातिकी अपेक्षा स्वेभ्यश्चतुरोऽश्वान् हरेयुः विप्र इत्यादिसे आगे कहे हुए भागोंमेंसे अपने अपने भागसे चौथा भाग जुदा जुदा भाग कन्याओं के लिये और विना व्याही बहिनीको जो जिसकी सगी बहिनी होय उसीको संस्कारके लिये देवै इस भांति सब देवै जो सगी न होय तौ दूसरी मातासे उत्पन्न ऊंचे नीचों करि संस्कार करनेही योग्य हैं जो बहिनोंके संस्कारके लिये चौथा भाग देना चाहै तौ पतित होय ॥ १८ ॥

अजाविकं सैकं शफं न जातु विषमं भजेत् ॥ अजाविकं तु विषमं  
ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ १९ ॥ यवीया ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेदिति ॥ समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥

टीका—घोडा आदि एक शफ कहिये एक खुरके कहे जाते हैं एक शफ समेत बकरी भेड़ आदिके बांठनेके समय बराबर करके बांटे और जिसका विभाग न हो सकता होय उसको न बांटे वह तौ जेठेहीका होता है उसकी बराबर दूसरी वस्तु देनेसे बराबरी करके अथवा बेंचके उसके मोलको न बांटे ॥ १९ ॥ छोटा जो जेठे भाईकी स्त्रीमें नियोगसे पुत्र उत्पन्न करै तौ उस चाचाके साथ उस क्षेत्रजका बराबरी विभाग होता है पिताके समान उद्धार समेत नही होता है यह भागकी व्यवस्था नियत है जो नियोगसे नही उत्पन्न है उसका अनांशित्व कहिये

भाग न पाना आगे कहैगै यद्यपि समेत्यभ्रातरस्समम् यह कहा है तिसपरंभी इसी सूचनसे जिसका पिता मरिगयाहै ऐसे पौत्रकाभी पितामह कहिये दादके धनमें पिताके समान विभागहै यह प्राया जाताहै ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोर्पेयते । पितां प्रधानं प्रजने तस्मा  
द्धर्मेण तं भजेत् ॥ २१ ॥ पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च  
पूर्वजः ॥ कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ २२ ॥

टीका—जेठे भाईका क्षेत्रज पुत्रभी पिताके समान उद्धार समेत भाग पानेके योग्यहै इस शंकाको दूरि करि पहिले कहे हुएहीको दृढ कुरते है अप्रधान क्षेत्रज पुत्र प्रधान क्षेत्रवाले पिताका धर्मसे उद्धार समेत विभागके लेनेसे संबंधयुक्त नही होताहै क्षेत्रीभी पिताके क्षेत्रके द्वारा पुत्रके उत्पन्न करनेमें प्रधान होयहै तिससे पहिले कहे हुएही धर्मसे विभागकी व्यवस्थारूप चाचाके साथ उस क्षेत्रजका विभाग करै यह पहिलेहीके शेषहै ॥ २१ ॥ जो पहिले व्याही हुईमें छोटा पुत्र उत्पन्न होय और पीछे व्याही हुईमें जेठा होय तौ वहां कैसा विभाग होय यह जो संदेह होय तौ क्या माताके विवाहके क्रमसे पुत्रका जेठापन अथवा अपने जन्मके क्रमसे तब ॥ २२ ॥

एकं वर्षभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ॥ ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तंदू-  
नानां स्वमातृतः ॥ २३ ॥ ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरैर्दृषभपो-  
डशाः ॥ ततः स्वमातृतः शेषां भजेरन्निति धारणा ॥ २४ ॥

टीका—पहलीमें उत्पन्न हुआ छोटाभी एक बैल उद्धार लेवै तिस प्रीछे उस अश्व बैलसे और जे अश्व बैल होय तब उस जेठीसे उत्पन्न पुत्रसे माताके कारण कम ऐसे छोटाको प्रत्येक एक एक बैल होते हैं माताके विवाहके क्रमसे जेठापन होताहै ॥ २३ ॥ पहिले व्याही हुई स्त्रीमें जो जो उत्पन्न हुआ वह जन्मसेभी भाइयोंसे जेठा वह सोलह बैलसमेत पंद्रह गौओंको लेवै तिस पीछे जो और बहु-तसी माताओंसे उत्पन्न वे पुत्र अपनी माताके व्याहके जेठेपनकी अपेक्षा वांकी गौओंको वाटि लेवै यह निश्चयहै ॥ २४ ॥

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति  
जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥ २५ ॥ जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्या-  
स्वोपि स्मृतम् ॥ यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ २६ ॥

टीका—समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंको जानिमें स्थित विशेष न होनेपर माताके क्रमसे जेठापन ऋषियों करि नही कहा जाताहै किंतु जन्महीके क्रमसे इसीसे छोटीसेभी उत्पन्न पहले कहा हुआही बीसमे भाग द्वांश आदिकों ग्रहण करै-ऐसे माताके जेठे पनके विहित तथा निषिद्ध होनेसे सोलहके लेने और न लेनेकाभी विकल्प हुआ वह तौ भाइयोंके गुणवान् तथा निर्गुण होनेके कारण लघुतासे व्यवस्थित हुआ ॥ २५ ॥ स्वब्रह्मण्यनाम मंत्र ज्योतिष्टोममें इंद्रके खुलानेके लिये पढा जाताहै वह प्रथम पुत्र करि पिताका उद्देश करिके आन्धान किया जाता है अमुकका पिता यज्ञ करताहै ऐसा ऋषियोंने कहाहै और गर्भमें एकही साथ जिनका निषेक हुआ है ऐसे यम कहिये जोडियोंकी जन्मके क्रमसे ज्येष्ठता कही गई है ॥ २६ ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥ यदपत्यं भवे-  
दस्यां तन्मम स्यात्स्वर्धाकरम् ॥ २७ ॥ अनेन तु विधानेन पुंरा-  
जंकेऽथ पुत्रिकाः। विवृद्धयर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥ २८ ॥

टीका—जिसके पुत्र नहीं है वह जो इसमें अपत्य उत्पन्न होय सो मेरा श्राद्ध आदि और्ध्वदेहिक कर्मोंका करनेवाला होय ऐसे कन्यादानके समयमें जमाई के साथ निर्यमरूप विधानसे कन्याको पुत्रिका करै ॥ २७ ॥ पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले दक्ष प्रजापति अपना वंश बढ़ानेके लिये इस कहे हुए विधानसे सब बेटियोंको पहले आप पुत्रिका करते भये ॥ २८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सोमाय राज्ञे सत्कृत्य  
प्रीतात्मा संसर्वशतिम् ॥ २९ ॥ यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण  
दुहिता समा ॥ तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् १३० ॥

टीका—होनेवाले पुत्रिकापुत्रके लाभसे प्रसन्न दक्षप्रजापतिने अलंकार आदिसे सत्कार करिके दशपुत्रिका धर्मको दी तेरह कश्यपको सत्ताईस द्विजोंके तथा औषधियोंके राजा चंद्रमाको दी ॥ २९ ॥ आत्माका स्थानी पुत्रहै और उसीके अंगोंसे उत्पन्न होनेके कारण पुत्रके समान कन्याहै इसीसे पिताके आत्मस्वरूप उस कन्याके विद्यमान होनेपर पुत्ररहित मरे हुए पिताका धन पुत्रिकाले भिन्न दूसरा कैसे लेवे ॥ १३० ॥

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ॥ दौ हित्र एव च हरे १३१ ॥

दपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ ३१ ॥ दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य  
पितुर्हरेत् ॥ स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ ३२ ॥

टीका—माताका जो धन है वह उसके मरनेपर कुमारीका भागहै उसमें पुत्रों का भाग नहीं है कुमारी कहनेसे विना व्याही जाननी चाहिये और पुत्ररहित मरे हुए नानाका धन दौहित्र अर्थात् पुत्रिकापुत्र ही सब लेवै ॥ ३१ ॥ दौहित्र अर्थात् पुत्रिकापुत्र ही अन्यपुत्ररहित पिताका संपूर्ण धन लेवै और वही पिता और नानाके लिये दो पिंड देवे ॥ ३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥ तयोर्हि मातापितृ  
रौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ ३३ ॥ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रो  
ऽनुजायते ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥ ३४

टीका—पुत्र तथा दौहित्रमें लोकमें तथा धर्मके काममें कुछ विशेष नहीं है कारण यह है कि दोनोंके माता पिता उसके देहसे उत्पन्नहैं यह पहलेहीका अनुवादहै ॥ ३३ ॥ पुत्रिका करनेपर जो करनेवालेके पीछे पुत्र उत्पन्न होय तो उनके विभाग कालमें समान विभाग होय पुत्रिकाको उद्धार न देना चाहिये जिसे जेठी होनेपरभी उसका जेठापन उद्धारके समयमें नहीं आदर करनेयोग्यहै ॥ ३४ ॥

अपुत्रायां भूतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥ धनं तत्पुत्रिकाभर्ता  
हरेत्तैवाविचारयन् ॥ ३५ ॥ अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सह  
शात्सुतम् ॥ पौत्रे मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ ३६ ॥

टीका—पुत्ररहित पुत्रिकाके कैसे हूँ मरनेपर उसके धनको उसका पतिही विना विचारके ग्रहण करै पुत्रिकाकी पुत्रकी समतासे पुत्र तथा पुत्रीरहित मृत-पुत्र पिताके धन ग्रहणकी प्रसक्ति होनेपर उसके निवारणके लिये यह वचन है ॥ ३५ ॥ पुत्रिका की हुई अथवा न की हुई समान जातिके पतिसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै उस दौहित्र करि पौत्रका काम करनेसे मातामहपौत्री है और वह इसको पिंड देवै और उसके धनको लेवै ॥ ३६ ॥

पुत्रेण लोकाज्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥ अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्र  
धस्याप्नोति विष्टपम् ॥ ३७ ॥ पुत्राप्नोतैकाद्यस्मात्त्रायते पितरं  
सुतः ॥ तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ ३८ ॥

टीका—उत्पन्न हुए पुत्रसे स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होताहै और पौत्रसे बहुत काल तक उन्हीमें रहताहै तिस पीछे पुत्रके पौत्रसे आदित्यलोकको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ जिस्से पुंनाम नरकसे सुत पिताकी रक्षा करताहै उस रक्षा करनेसे आपही ब्रह्माने पुत्र यह कहाहै ॥ ३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥ दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रै न सं  
तारयति पौत्रवत् ॥ ३९ ॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिका  
सुतः ॥ द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ १४० ॥

टीका—पौत्र तथा दौहित्र इन दोनोंमें लोकमें कुछ विशेष नहीं है जिस्से दौहित्रभी नानाको परलोकमें पौत्रके समान निस्तार करताहै ॥ ३९ ॥ पुत्रिकापुत्र पहले माताको पिंड दे और दूसरा माताके पिता कहिये नानाको और तीसरा माताके पितामह अर्थात् परनानाको देवै ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दंत्रिमः ॥ सर्वै ररेतै व तद्रिक्थं सं  
प्राप्तोऽयं न्यगोत्रतः ॥ ४१ ॥ गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेदंत्रिमः क्वचि  
त् ॥ गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददंतः स्वधा ॥ ४२ ॥

टीका—जिसका दत्तक अर्थात् गोदलिया हुआ पुत्र सब गुणोंसे संपन्न होय और दूसरे गोत्रसेभी आया होय वह औरस कहिये निजपुत्रके होनेपरभी पिताके धनका भाग पावै ॥ ४१ ॥ दत्तक अपने पिताके गोत्र तथा धनको कभी नहीं पाताहै पिंड तो गोत्र तथा रिक्थ हिस्सेका अनुगामी होताहै जिसके गोत्र और रिक्थको भजताहै कहिये प्राप्त होताहै उसीको वह पिंड देताहै तिससे पुत्र देनेवाले जनकके उस पुत्रकारि करनेयोग्य स्वधा कहिये पिंड श्राद्ध आदि निवृत्त होजाते हैं ॥ ४२ ॥

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ॥ उभौ तौ नाहं तो भा  
गं जारजातककामजौ ॥ ४३ ॥ नियुक्तार्यामपि पुमान्नार्या जातोऽवि  
धात्रतः ॥ नैवाहः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सं ॥ ४४ ॥

टीका—जो गुरु आदिके नियोग विना उत्पन्नहै और जो सपुत्रामें नियोगसेभी देवर आदि करि कामसे उत्पन्न किया गयाहै वे दोनों क्रमसे जारसे कामकी इच्छासे उत्पन्नहैं धनके भागयोग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ नियुक्ताभी स्त्रीमें घृत-

लेप आदि नियोगकी, विधिके बिना उत्पन्न हुआ पुत्र-क्षेत्रवाले पिताका धन पानेयोग्य नहीं हैं जिसे यह पतिव्रत करि उत्पन्न किया गया है जे नियुक्त विधि-के बिना पुत्र उत्पन्न करते हैं वे पतिव्रत होते हैं ॥ ४४ ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ॥ क्षेत्रिकस्य तु तद्दीर्घं  
धर्मतः प्रसंवर्धनः ॥ ४५ ॥ धनं यो विभूयाद्भ्रातृमृतस्य स्त्रियमेव  
च ॥ सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ ४६ ॥

टीका—नियुक्तामें उत्पन्न हुआ क्षेत्रज पुत्र औरसके समान लैवै जिसे उस-का कारण भूतबीज क्षेत्रके स्वामीका है और संतानभी धर्मसे उसीके लिये है ॥ ४५ ॥ जो मरे हुए भाईके जो रक्षा करनेमें असमर्थ पकरि दिये हुए स्थावर-जंगम धनकी रक्षा करै और उसकाभी पोषण करै, वह नियोग धर्मसे उसमें भाईका पुत्र उत्पन्न करैके उस अपत्यको वह धनदे देवै ॥ ४६ ॥

यां नियुक्तान्यतः पुत्रं देवरादौर्ष्यवाभ्याम् ॥ तं कामजमरिक्थीयं  
वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ ४७ ॥ एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैक्योनिषु  
बह्वीषु चैकं जातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका—गुरु आदि करि आज्ञा दी गई जो स्त्री देवरसे अथवा अन्यसे कहि ये असापिंडसे पुत्रको उत्पन्न करै वह पुत्र जो कामज होय तौ उस वृथा उत्पन्न हुये को भाग न पानेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ४७ ॥ समान जातिकी स्त्रियों-में एक पतिसे उत्पन्न पुत्रोंकी यह विभागविधि जाननी चाहिये अब नाना जा-तिकी बहुतसी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंका विभाग सुनिये ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥ तासां पुत्रेषु जातेषु वि-  
भागेऽयं विधिः स्मृतः ॥ ४९ ॥ कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च  
वेष्टमर्चः ॥ विप्रस्यौद्धारिकं दयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ ५० ॥

टीका—ब्राह्मणके क्रमसे जो ब्राह्मणी आदि चारि स्त्रियां होंय तौ उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर यह आगे कही हुई विभागकी विधि मनु आदिकोंने कही है ॥ ४९ ॥ खेत करनेवाला बैल और घोडा आदि सवारी अंगुठी आदि गहना और घर प्र-धान जितने भाग है उनमेंसे एक प्रधानभूत अंश ब्राह्मणीपुत्रके उद्धारके लिये देना चाहिये और बाक़ी आगे कही हुई रीतिसे बांटे लेने चाहिये ॥ ५० ॥



त्र्यंशं दद्याद्धरेद्विप्रो द्वांशं शौ क्षत्रियासुतः । वैश्याजः सार्धमेवांशं-  
मं शं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५१ ॥ सर्वे वा रिक्थजातं तद्दर्शधा परि-  
कल्प्य च । धर्म्य विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणीका पुत्र धनमेंसे तीन भाग लेवै दो क्षत्रियाका पुत्र षडेक वै-  
श्याका और एक अंश शूद्राका पुत्र ऐसे जहां ब्राह्मणी और क्षत्रियाको पुत्र दो-  
ही हैं तहां पांच भाग किये हुए धनमेंसे तीन भाग ब्राह्मणीपुत्रके और दो क्ष-  
त्रियापुत्रके इसी रीतिसे ब्राह्मणी और वैश्या पुत्र आदिमें और दो तथा बहुत  
पुत्रोंमें यही कल्पना करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ अथवा सब धनका प्रकार जिसमें  
से उद्धार नहीं निकलाहै उसके दशभाग करिके विभागके धर्मका जाननेवाला  
धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसा विभाग आगे कही हुई विधिसे करै ॥ ५२ ॥

चतुरोऽंशान् हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः । वैश्यापुत्रो हरेद्व्यं-  
शमं शं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५३ ॥ यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यस-  
त्पुत्रोऽपि वा भवेत् । नाधिकं दशमाद्व्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ५४

टीका—चारि भाग ब्राह्मण लेवै तीन भाग क्षत्रियाका पुत्र और दो वैश्याका  
पुत्र और एक शूद्रासे उत्पन्न ऐसे ब्राह्मणी और क्षत्रियाके पुत्र होनेपर धनके  
सात भाग करिके उनमेंसे चारि भाग ब्राह्मणके तीन क्षत्रियापुत्रके ऐसेही ब्रा-  
ह्मणी वैश्यापुत्र आदिकोंमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें कल्पना करनी चाहिये  
॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मणके द्विजाति की सब स्त्रियोंमें पुत्र होय अथवा न होय  
तिसपरभी शूद्रापुत्रके लिये अनंतर जो अधिकारी होय वह दशमभागसे  
अधिक धर्मसे न देवै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् । यद्वार्स्यं पितौ  
दद्यात्तदेवांस्यं धनं भवेत् ॥ ५५ ॥ समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा  
द्विजन्मनाम् । उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ ५६ ॥

टीका—शूद्राका पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके धनका पानेवाला नहीं होताहै  
किंतु जो धन इसको पिता देवै वही उसका होताहै ॥ ५५ ॥ द्विजातियोंके समा-  
न जातिकी स्त्रियोंमें जे पुत्र उत्पन्नहैं वे सब जेठेको उद्धार देकर बाकीके बराबर  
विभाग करिके जेठेके साथ और सब बाँटि लेवें ॥ ५६ ॥

शूद्रस्य तु सर्वैर्नान्यां भार्या विधीयते। तस्यां जाताः संमांशाः  
स्युर्यदि पुत्रं शतं भवेत् ॥ ५७ ॥ पुत्रान् द्वादश यानां नृणां  
स्वायम्भुवो मनुः। तेषां षड् बन्धुदायादाः षड्दायाद्वान्धवाः ५८ ॥

टीका—शूद्रके समानजातिही स्त्री कही गई हैं ऊची नीची नहीं उससे उत्पन्न हुए जो सौभी पुत्र होय तौ उनका बराबरही भाग होय किसीको उद्धार न देना चाहिये ॥ ५७ ॥ जिन द्वादश पुत्रोंको स्वायंभूमनुने कहा है उनमेंसे पहिले छः बांधव और गोत्रदायादभी हैं तिस्से बांधव होनेके कारण सपिंड तथा समानोदकोंका पिंड तथा जलदान आदि करते हैं और समीपी न होनेसे गोत्रका भाग लेते हैं और पिछले ६ गोत्र तथा धनके लेनेवाले नहीं होते हैं और बांधव तौ होते हैं तिस्से बंधु कार्य जलदान आदि करते हैं ॥ ५८ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैवं दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च  
दायादा बान्धवाश्च षट् ॥ ५९ ॥ कानीनश्च सहोदश्च क्रीतः पौन  
र्भवस्तथा ॥ स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षड्दायाद्वान्धवाः ॥ ६० ॥

टीका—औरस १ क्षेत्रज २ दत्तक ३ कृत्रिम ४ गूढोत्पन्न ५ और अपविद्ध ६ ये भागपानेवाले और बांधव होते हैं ॥ ५९ ॥ कानीन १ सहोद २ क्रीत ३ पौनर्भव ४ स्वयंदत्त ५ और शौद्र ६ ये छः गोत्र तथा धनके पानेवाले नहीं होते हैं और बांधव तौ होते हैं ॥ ६० ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतैरञ्जलम् ॥ तादृशं फलमाप्नोति  
कुपुत्रैः संतैरस्तमः ॥ ६१ ॥ यद्येकं रिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ  
सुतौ ॥ यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्वृत्तीत नेत रः ॥ ६२ ॥

टीका—औरसके साथ क्षेत्रज आदि पढ़े हैं इस्से तुल्यताकी शंका होनेपर उसके दूर करनेके लिये कहते हैं ॥ फूस आदि तृणोंसे बनी हुई बुरी उडप आदि एक भांतिकी नावसे जलको उतरता हुआ जिस भांतिके फलको पाता है वैसीही क्षेत्रज आदि कुपुत्रोंसे परलोकमें कठिनातासे पार होने योग्य दुःखको पाता है इस्से यह दिखाया गया कि मुख्य औरस पुत्रके समान क्षेत्रज आदि पुत्रोंकी संपूर्ण कार्य करनेमें योग्यता नहीं होती हैं ॥ ६१ ॥ पुत्ररहित करि पराये क्षेत्रमें नियोगसे उत्पन्न किया हुआ पुत्र उभयोरप्यसौरिक्थी पिंडदाता च धर्मतः अर्थात् यह दोनोंका धर्मसे भाग लेनेवाला और पिंड देनेवाला है इस याज्ञवल्क्यके

वचनको मध्ये जब क्षेत्रज पिताके क्षेत्रजके पीछे और पुत्र होय तब वे औरस और क्षेत्रज यद्यपि एक पिताके रिक्थके योग्य होय तिसपरभी जो जिसके पिताको धन होय उसीको वह लेवै क्षेत्रज क्षेत्रवाले पिताका नहीं पावै ॥ ६२ ॥

एक औरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥ शेषाणामानृशं स्यार्थं  
प्रदद्यात् पुंजीवनम् ॥ ६३ ॥ पृष्टं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृका-  
र्द्धनात् ॥ औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वां ॥ ६४ ॥

टीका—पहले रोग आदिसे और सपुत्रके न होनेमें क्षेत्रज आदि पुत्रोंके कर लेनेपर पीछे औषध आदिसे रोग निवृत्त होनेसे जो औरस उत्पन्न होय तिसपर यह कहते हैं कि औरसही एक पुत्र पिताके धनका स्वामी है और क्षेत्रजको छोड़िके जो बाकी रहे उनको भोजन वस्त्र देवै ॥ ६३ ॥ पिताके धनका विभाग करता हुआ और सपुत्र क्षेत्रजको उसका छठा अथवा पांचवा भाग देवै निर्गुण सगुणकी अपेक्षासे यह छ पांचका विकल्पहै ॥ ६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भोगिनौ ॥ दशपिरे तु क्रमशो  
गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ ६५ ॥ स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पां-  
दयेद्धि यम् ॥ तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ ६६ ॥

टीका—औरस तथा क्षेत्रज पुत्र कहे हुए प्रकारसे पिताका धन लेनेवाले होते हैं और फिर दत्तक आदि दश पुत्र गोत्र भागी होते हैं और पूर्वाभावेपरः इस क्रमसे धनकेभी भाग पानेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ कन्याकी अवस्थामें जिसका विवाह संस्कार हुआ है ऐसी अपनी स्त्रीमें जिसको आप उत्पन्न करै उस पुत्रको औरस मुख्य जानै सज्जातीया स्त्रीमें आप उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस जानना चाहिये ॥ ६६ ॥

यस्तर्लपजः प्रमीतस्य क्लोबस्य व्याधितस्य वा ॥ स्वधर्मेण नियु-  
क्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ६७ माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः  
पुत्रमापादि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दन्निमः सुतः ॥ ६८ ॥

टीका—जो मरे हुएकी अथवा नपुंसककी अथवा संतति रोकनेवाले रोग करि युक्तकी भार्यामें घृत लगाने आदि नियोगके धर्मसे गुरु करि नियुक्तमें उत्पन्न हुए पुत्रको मनु आदि क्षेत्रज कहते हैं ॥ ६७ ॥ माता तथा पिता आपसकी

संमतिसे लेनेवालेकी समान जातिको जिस पुत्रको उसीकी पुत्र न होनेरूप आपत्तिमें भय आदिके विना प्रसन्नतासे जल ले संकल्प करिके देवै वह दत्तम पुत्र जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ॥ पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं संवि-  
ज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ ६९ ॥ उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायित कस्य  
सः ॥ स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ ७० ॥

टीका—माता पिता पिताके परलोकके करने न करनेके गुण दोषके जानने-  
वाले और माता पिताकी सेवा आदि पुत्रके गुणों करि युक्त जिस समान जा-  
तिके पुत्रको पुत्र करते हैं उसको कृत्रिम पुत्र जानिये ॥ ६९ ॥ जिसके घरमें  
स्थित भार्यासे जो पुत्र उत्पन्न होय वह सजातिकाहै यह ज्ञान होनेपरभी किस  
पुरुषके यह पुरुषसे यह उत्पन्नहै यह न जानना जाय तौ वह घरमें गुप्त उत्पन्न  
हुआ उसका पुत्र होताहै जिसकी भार्यामें उत्पन्न होय ॥ ७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ॥ यं पुत्रं परिगृहीयाद-  
पविद्धः सं उच्यते ॥ ७१ ॥ पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनये-  
द्रहः ॥ तं कानीनं वं देष्माम्ना वोढुः कन्यासमुद्रवम् ॥ ७२ ॥

टीका—माता पिता करि त्यागकिया गया होय अथवा उनमेंसे एकके मरने-  
पर अथवा अन्य करि त्याग किये हुए पुत्रको जो अंगीकार करता है उसका  
वह अपविद्धनाम पुत्र कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ पिताके घर कन्या जिस पुत्रको लु-  
पा हुआ उत्पन्न करै उस कन्याके व्याहनेवालेके पुत्रको नामसे कानीन कहै ७२

यो गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ॥ वोढुः संगर्भो  
भवति सहोढ इति चोच्यते ७३ क्रीणीयार्थस्त्वपत्यार्थं मातापित्रो  
र्यमन्ति कात् ॥ स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ७४

टीका—जो गर्भिणी ज्ञातगर्भा अथवा अज्ञातगर्भा व्याही जाय उसमें उ-  
त्पन्न हुआ वह गर्भ व्याहनेवालेका पुत्र होताहै और सहोढ कहा जाताहै ॥ ७३ ॥  
जो पुत्रके लिये माता पिताके समीपसे जिसको मोल लेवै वह क्रीतक उसका पुत्र  
होताहै मोल लेनेवालेके गुणोंके समान होय अथवा हीन होय वहां जातिसे समान  
ता असमानता नहीहै सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः अर्थात् समाज जातिके

पुत्रोंमें मैत्रे यह विधि कही है यह याज्ञवल्क्यने सबही पुत्रोंको सजातीय कहाहै तिससे मानवशास्त्रमें भी क्रीतके सिवाय सब पुत्र सजातीय जानने चाहिये ॥७४॥

यां पत्न्या वा पौरित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥ उत्पादयेत्पुन  
भूत्वां स पौनर्भव उच्यते ॥७५॥ सा चेदक्षतयोनिः स्याद्भूतप्रत्या  
गतापि दा ॥ पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ ७६ ॥

टीका—भर्त्ता करि छोडी गई अथवा जिसका भर्त्ता मरिगया ऐसी जो स्त्री दूसरेकी फिर भार्या होकर जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव पुत्र होताहै ॥ ७५ ॥ जो अक्षत योनि वह स्त्री दूसरेका आश्रय ले तौ उस पौनर्भव भर्त्ताके साथ फिर विवाहनाम संस्कारके योग्यहै अथवा कौमार पतिको छोडि औरका आश्रय लेकर फिर उसीके पास लौट कर आवै तौ उस कुमार भर्त्ताके साथ फिर विवाह नाम संस्कारके योग्य है ॥ ७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ॥ आत्मानं स्पर्श-  
येद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु सं स्मृतः ॥ ७७ ॥ यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां  
कामादुत्पादयेत्सुतम् ॥ स पारयन्नेवं श्वस्तस्मात्पारश्वः स्मृतः ७८

टीका—जिसके माता पिता मरि गये होय वह अथवा छोडनेके योग्य कार-  
रणके बिना द्वेष आदिसे उन करि छोडा गया जिसको अपना आत्मा देताहै व-  
ह उसका स्वयंदत्तनाम पुत्र मनु आदिकोंने कहाहै ॥ ७७ ॥ विनास्वेषविधिः स्मृ-  
तः अर्थात् विवाहिताओंमें यह विधि कही है इस याज्ञवल्क्यके वचनसे व्याहीही  
हुई शूद्रांमें ब्राह्मण कामसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह जीवते हुएही मरेके समा-  
नहै यद्यपि यह पिताके उपकार लिये श्राद्ध आदि करताहै तिसपरभी संपूर्णका  
उपकारक न होनेके कारण मरेके तुल्य कहाहै ॥ ७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥ सोऽनुज्ञातो  
हरे दशमि ति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ७९ ॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेताने-  
कादश यथोदितान् पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ८०

टीका—ध्वजाहतादिक कहे है लक्षण जिसके ऐसी दासीमें अथवा दासकी  
दासीमें जो शूद्रका पुत्र होताहै वह पिताकी आज्ञासे व्याही हुईके पुत्रोंकी बरा-  
बर भाग पानेवाला होताहै अर्थात् तुल्यभाग पाताहै यह शास्त्रकी व्यवस्थाहै ७९

इन क्षेत्रज आदि उक्त ग्यारह पुत्रोंको पुत्रके उत्पन्न करनेकी विधिका और और-रस पुत्र करि करनेयोग्य श्राद्ध आदिका लोप न होय इस लिये मुनिगोंने पुत्रके प्रतिनिधि कहिये स्थानी कहते हैं ॥ १८० ॥

यं एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ॥ यस्य ते बीजतो  
जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ ८१ ॥ आतृणामेकजातानामेक-  
श्चेत्पुत्रवान् भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ८२

टीका—जो ये क्षेत्रज-आदि अन्यके बीजसे उत्पन्न पुत्र और सपुत्रके प्रसंग-से कहे व जिसके बीजसे उत्पन्न हैं उसीके पुत्र होते हैं क्षेत्रवालेके नहीं और स-पुत्रके होनेपर तथा पुत्रिकाके होनेपर वे न करने चाहिये इसलिये यह कहा है ॥ ८१ ॥ एक माता पितासे उत्पन्न बहुतसे भाइयोंमें जो एक पुत्रवाला होय और अन्य पुत्ररहित होय तौ उस एक पुत्रसे सब भाइयोंको मनु पुत्रसहित कहते हैं तिस पीछे तौ उसके होनेपर और पुत्रप्रतिनिधि न करने चाहिये वही पिंडका देनेवाला और भाग लेनेवाला होता है इस्से यह कहा गया ॥ ८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण  
प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ ८३ ॥ श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान् रिक्थ  
महति ॥ बहवश्चेत्तु संदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ ८४ ॥

टीका—एकहै पति जिनका ऐसी सब स्त्रियोंमें जो एक पुत्रवती होय तौ उस एक पुत्रसे मनुने उन सबोंको पुत्रयुक्त कहा है तिस्से सौतिके पुत्र होनेपर स्त्रीको और दत्तक आदि पुत्र न करने चाहिये इस लिये यह कहा है ॥ ८३ ॥ औरसे आदि पुत्रोंमें पहला पहला श्रेष्ठ है और वही भाग पानेवाला है सचान्यान्विध्यात् इस विष्णुके वचनसे औरस आदि पुत्रोंमें पहले पहलेके न होनेमें अगिला अगिला रिक्थके योग्य है पहलेके होनेमें दूसरेका पाल वही करै ऐसे पुत्रत्व सिद्ध होनेपर शूद्रापुत्रका बारह पुत्रोंमें पाठ क्षेत्रज आदिकोंके होनेपर धनकी अयोग्यता दिसानेके लिये होनेसे सार्थक है अन्यथातौ क्षत्रिया वैश्या पुत्रके समान और सत्व होनेसे क्षेत्रज आदिकोंके होनेपरभी धनको पावै और जो समानरूप बहुतसे पौनर्भव आदि पुत्र होंय तौ सबही वांछि करि धनको लेंवें ॥ ८४ ॥

न आतरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥ पिता हरेदपुत्रस्य

रिक्थं भ्रातर एव च ॥८५॥ त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ॥ चतुर्थः संप्रदातैर्षा पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८६ ॥

टीका—न सगे भाई न पिता किंतु औरसके न होनेमें क्षेत्रज आदि गौण पुत्र पिताका धन लेनेवाले होते हैं यह इस्से कहा जाता है औरसका तौ एक एवौस्सः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः अर्थात् एकही औरसपुत्र पिताके धनका स्वामी है इसीसे सिद्ध है और जिसके मुख्य गौण दोनो प्रकारके पुत्र नहीं हैं और पत्नी तथा दुहिताभी मही हैं उसके धनको पिता पावै और उनकी माताके भी न होनेपर भाई पावै यह आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ ८५ ॥ अब क्षेत्रज आदिकोंका भी पुत्ररहित पितामह आदिके धनमेंभी अधिकार दिखानेको कहते हैं ॥ पिता आदि तीनिका जलदान करना चाहिये और उन्ही तीनिके लिये पिंड देना चाहिये और चौथा पिंडोदकका देनेवाला है पाचमेंका यहां संबंध नहीं है तिससे पुत्ररहित पितामह आदिके धनमे गौण पुत्रोंका अधिकार योग्य है और सपुत्र पौत्रोंका तौ पुत्रेण लोकान् जयति इसीसे पितामहके धनमे भागी होना कहा है ॥ ८६ ॥

अनन्तरः सपिण्डार्थस्तस्य तस्य धनं भवेत् ॥ अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥८७॥ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणारिक्थभागिनः ॥ त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ८८

टीका—सपिण्डोंके मध्यमें जो बहुत समीपी सपिण्डस्त्री अथवा पुरुष होय उसका मरे हुए मनुष्यका धन होता है इसके उपरान्त सपिण्डकी संतान न होनेपर समानोदक आचार्य तथा शिष्य ये क्रमसे धनको लेवै ॥ ८७ ॥ इन सबोंके न होनेमें तीनो वेदोंके पढनेवाले बाहरी भीतरी शौच करि युक्त जितेंद्रिय ब्राह्मण धनके लेनेवाले होते हैं और वेही पिंड देनेवाले होते हैं ऐसा होनेपर मरे हुए धनीके श्राद्ध आदि धर्मकी हानि नहीं होती है ॥ ८८ ॥

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥ इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ८९ ॥ संस्थितस्यानपत्यस्य संगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ॥ तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तस्मिन्प्रतिपादयेत् १९०

टीका—ब्राह्मणका धन राजाको कभी न लेना चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है कि उक्त लक्षण ब्राह्मणके न होनेपर ब्राह्मण मात्रको देना चाहिये और क्षत्रि-

य आदिकोंका धन कहे हुए धन लेनेवालोंके न होनेपर राजा लेवै ॥ ८९ ॥ पुत्र रहित मरे हुएकी स्त्री पुरुषके मरुओंसे आज्ञा ले नियोगधर्मसे पुत्रको उत्पन्न करै विस मरे हुएका जो धन होय वह उस पुत्रको देवै ॥ १९० ॥

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ॥ तयो र्यद्यस्य पित्र्य स्यात्तत्सं गृह्णीत नेतरः ॥ १९१ ॥ जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ॥ भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सर्वाभयः ॥ १९२ ॥

टीका—दोसे उत्पन्न जो पुत्र स्त्रीके समीप स्थित धनमें विवाद करै तौ जो जिसके पिताका धन होय वह उसका पावै और पितासे उत्पन्न दूसरेके पिताका न पावै ॥ १९१ ॥ माताके मरनेपर सगे भाई तथा बिना व्याही हुई वहिनै माताके धनको वरावर बांटे लेवै और व्याही हुई तौ धनके अनुरूप सम्मान पाती हैं ॥ १९२ ॥

यास्तांसां स्युर्दुहितरस्तां सामपि यथार्हतः ॥ मातामह्या धनार्त्तिकं-  
श्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ १९३ ॥ अन्वग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च  
प्रीतिकर्मणि ॥ भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ १९४ ॥

टीका—उन बेटीयोंकी जो बिना व्याही बेटियां हैं उनके लिये भी नानीके धनसे जैसे उनका सत्कार होय वैसे प्रीतिसे कुछ देना चाहिये ॥ १९३ ॥ विवाहके समय अग्निके समीप जो पिता आदि करि दिया गया होय उसको अध्याग्नि कहते हैं और जो पिताके घरसे पतिके घर लेजानेके सम मिलै उसको अध्यावाहनिक कहते हैं और जो प्रीतिनिमित्तक कर्ममें भर्ता आदि करि दिया गया होय तथा भाई और पिताने जो और समयमें दिया होय इस भांति छः प्रकारका स्त्रीधन कहा गया है ॥ १९४ ॥

अन्वाधेयं च यदत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥ पत्यौ जीवति वृत्त्या-  
याः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥ १९५ ॥ ब्राह्मदैवार्थगान्धर्वप्राजापत्येषु  
यद्रसु ॥ अप्रजायामतीतायां भर्तुरेवैवदिष्यते ॥ १९६ ॥

टीका—विवाहके उपरान्त पतिके कुलसे अथवा पिताके कुलसे जो स्त्रीको मिला और जो पतिने प्रसन्न होके दिया वह और जो अध्याग्नि आदि पहले श्लोकमें कहा है वह भर्ताके जीवते मरी हुई स्त्रीका सब धन उसके पुत्रोंका होता है ॥ १९५ ॥ जिनके ब्रह्मण कह चुके हैं ऐसे ब्राह्मण आदि पांच विवाहोंमें जो स्त्री सं-



बंधी धनहै वह पुत्ररहित उस स्त्रीके मरनेपर भर्ताहीका मनु आदिने कहाहै॥९६॥

यत्स्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ॥ अप्रजायामतीता  
यां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ ९७ ॥ स्त्रियां तु यद्धवेदितं पित्रा दत्तं  
कथंचन ॥ ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ ९८ ॥

टीका—जो उक्त लक्षण आसुर राक्षस और पैशाच विवाहोमें छप्रकारकाभी जो स्त्रीका धन है वह उस पुत्र रहितके मरनेपर माता पिताका होताहै ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणकी नाना जातिकी स्त्रियोंमें जो क्षत्रिया आदि स्त्री पुत्रपति रहित मरजाय तौ उसका पिताका दिया हुआ धन सजाति विजाति सौतिके कन्या पुत्रोंके होनेपरभी ब्राह्मणी सौतिकी कन्या लेवै उसके न होनेमें उसके पुत्रका वह धन होताहै ॥ ९८ ॥

न निहारं स्त्रियः कुयुःकुटुम्बाद्बहुमध्यगात् । स्वकादपि च  
वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनौज्ञया ॥ ९९ ॥ पत्यौ जीवन्ति यः स्त्रीभिर-  
लंकारो धृतो भवेत् । न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥ २

टीका—भाई आदि बहुत साधारण कुटुंबके धनसे भार्या आदि स्त्रियोंको रत्न अलंकार आदिके लिये धनका संग्रह न करना चाहिये और पतिकी आज्ञा विना पतिके धनसेभी न करना चाहिये तिससे यह स्त्रीधन नहीं है ॥ ९९ ॥ पतिके जीवते हुए जो अलंकार पतिकी सम्मतिसे स्त्रियों करि धारण किया जाय उसके मरनेपर विभागके समय पुत्र आदि उसको न वांटे वांट करनेसे पापी होते है ॥ २००

अनंशौ क्लीवपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये  
च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ १ ॥ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनी-  
षिणा । ग्रासाच्छादनमपत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २ ॥

टीका—नपुंसक पतित जन्मांध बहिरा उन्मत्त जड मूंगा और जे कुणि पंगा आदि जिनकी इंद्रियां विगडी हैं वे पिता आदिके धनके पानेवाले नहीं होते हैं केवल अन्न वस्त्रके भागी होते है ॥ १ ॥ शास्त्रका ज्ञाता धन लेनेवाला सब इन नपुंसक आदिकोंके लिये जीवनेतक अपनी शक्तिसे भोजन वस्त्र देवै जो न दे तौ पापी होय ॥ २ ॥

यद्यर्थता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनांकथंचन । तेषामुत्पन्नतन्वना-

मंपत्यं दीयमर्हति ॥ ३ ॥ यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति । भोगो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ ४ ॥

टीका—जो कैसे हू इनकी विवाहकी इच्छा होय तौ क्लीबके क्षेत्रज्ञ पुत्र उत्पन्न होनेपर उन उत्पन्न हुए अपत्योंका अपत्य धनका भागी होताहै ॥ ३ ॥ पिताके मरनेपर भाइयोंके साथ नहीं बंटा हुआ जेठा अपने पौरुषसे जों कुछ धन पावै उस धनमेंसे विद्याका अभ्यास करनेवाले छोटे भाइयोंका भाग होता है औरका नहीं ॥ ४ ॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहितश्चैर्द्धनं भवत् । संमस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य ईति धारणा ॥ ५ ॥ विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् । मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ ६ ॥

टीका—विद्याहीन सब भाइयोंके खेती कृषिज आदि व्यापारसे जो धन उत्पन्न होय अपने जोड़े हुये धनमें उसमें पिताके धनको छोड़िके बराबर बांट होय उद्धार न निकाला जाय यह निश्चयहै ॥ ५ ॥ विद्या मैत्री और विवाहसे जोड़ा हुआ और माधुपर्किक कहिये मधुपर्क देनेके समय पूज्यतासे जो मिला होय वह उसीका होता है ॥ ६ ॥

भ्रातृणां यस्तु ने हेतु धनं शक्तः स्वकर्मणा । सं निर्भ्राज्यः स्वकादंशार्त्तिकश्चिद्धत्वापजीवनम् ॥ ७ ॥ अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रेमेण यदुपाजितम् । स्वयमीहितलब्धं तन्नाकांभो दातुमर्हति ॥ ८ ॥

टीका—राजाके साथ जाने आदि कर्मसे धनके संचय करनेमें समर्थ जो भाइयोंके साधारण धनको नहीं चाहताहै वह अपने भागमेंसे कुछ थोड़ासा देकर भाइयों करि जुदा करने योग्यहै इस्से उसके पुत्र कालांतरमें उस धनमें विवाद नहीं करि सकते हैं ७ पिताके धनको स्वर्च न करिके जो खेति आदि क्लेशसे संचय करै तौ उस अपनी चेष्टासे प्राप्त धन इच्छाके विना भाइयोंको नहीं देने योग्यहै ८.

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाभुयात् ॥ न तत्पुत्रैर्भजत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ ९ ॥ विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्धुनयदि ॥ संमस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥

टीका—पिता करि असमर्थ होनेके कारण उपेक्षा करनेसे नहीं प्राप्त हुए पि-

ताँके धनको जो पुत्र अपनी सामर्थ्यसे ले तौ उस अपने संचित धनका इच्छाके विना पुत्रोंसाथ न विभाग करै ॥ ९ ॥ पहले उद्धार समेत अथवा विना उद्धारके बंटे हुए भाई धनको इकठा करि साथ रहके जीविका करते हुए जो फिरि बाँट करै तौ वहाँ बराबर बाट करना चाहिये जेठको उद्धार न देना चाहिये ॥ २१० ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ॥ प्रियेतान्यतरो वा  
पि तस्य भागो न लुप्यते ॥ ११ ॥ सोदर्या विभजेरस्तं समेत्य सहि  
ताः समम् ॥ भ्रातरो ये च संमृष्टा भगिन्यश्च सर्वाभयः ॥ १२ ॥

टीका—जिन भाईयोंमें कोई विभागके समय संन्यास आदि करि अपने भागसे हीन होजाय अथवा मरजाय तौ उसका भाग लुप्त नहीं होताहै ॥ ११ ॥ सगे भाई मिलि करि और सगी वहिनै इकठे रहते होंय तौ उस भागको बराबरि करि बाँटि लेवैं सगों और सौतेलोंमेंसे जो मिलाये हुए धनके कारण योगक्षेमको बाँटि लेवैं न सबसगे न सौतेले यह तौ पुत्र पत्नी और माता पिताके न होनेमें जानना चाहिये ॥ १२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिर्कुर्वीत लोभाद्धातृन्यवीयसः ॥ सोऽज्येष्ठः स्याद  
भागश्च नियन्तव्यश्च राज्ञेभिः ॥ १३ ॥ सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति  
भ्रातरो धनम् ॥ नर्चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १४ ॥

टीका—जो जेठा भाई लोभसे छोटे भाइयोंको धोखा दे वह जेठे भाईकी पूजासे रहित और उद्धार सहित भागसे रहित हो राजाके दंडयोग्य होय ॥ १३ ॥ नहीं पतितभी जे भाई जुवां तथा वेश्याकी सेवा आदि कुकर्मोंमें लगे हुए वे धन पानेके योग्य नहीं हैं और छोटीके विना दिये जेठा साधारण धनसे अपने लिये मुख्य धन न करै ॥ १४ ॥

भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥ न पुत्रभागं विषमं पि  
ता दद्यात्कथंचन ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पितृभ्यमेव हरेद्धनं  
म् ॥ संमृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत सतैः सह ॥ २१६ ॥

टीका—पिताके साथ स्थित विना बंटे हुए भाइयोंका जो साथ धनसंचय करनेके लिये उत्थान होय तौ बाटनेके समय किसी पुत्रको पिता अधिक न देवै ॥ १५ ॥ जब जीवते हुए पिता करि पुत्रोंका इच्छासे विभाग क्रिया गम्य होय

तब विभागके उपरान्त उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके मरनेपर पिताहीके धनको लेवे और जिन्होंने वटे हुए पिताके साथ फिर धनको मिलाया होय उनके साथ वह पिताके मरनेपर विभाग करे ॥ १६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवौमुयात् ॥ मातर्यपि च वृत्तायां  
पितुमाता हरेद्धनम् ॥ १७ ॥ ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथा  
विधि ॥ पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित्सर्वं समंतां नयेत् ॥ १८ ॥

टीका—अपत्य रहित पुत्रका धन माता ग्रहण करे और माताके मरनेपर पत्नी पिताके भाई और उनके पुत्रोंके होनेपर पिताकी माता अर्थात् दादी धनको लेवे ॥ १७ ॥ पिता आदि करि लिये हुए सब ऋणमें तथा धनमें शास्त्रके अनुसार विभाग होनेपर जो कुछ पिताका ऋण धन विभागके समय विना जाना निकले वह सब बराबर करके वांटना चाहिये शोधन करनेयोग्य न लेना चाहिये और न जेठेको उद्धार देना चाहिये ॥ १८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृत्तान्नमुदकं स्त्रियः । योगक्षेमं प्रचारं च न विभां-  
ज्यं प्रचक्षते ॥ १९ ॥ अयमुक्तो विभागोर्वः पुत्राणां च क्रिया-  
विधिः । क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्म निबोधित ॥ २० ॥

टीका—वस्त्र वाहन और आभरण साझेके समयमें जो जित करि भोगा गया वह उसीका है वांटने योग्य नहीं हैं यह तौ अतिन्यून तथा अधिकमूल्यविषयक नहीं है और जो बहु मूल्य आभरण आदि है वह तौ वांटनेही योग्य है और कृतान्न कहिये भात सत्तु आदि सो नहीं वांटने योग्य हैं उदक कहिये कुवा आदिमें स्थित जल सर्वो करि भोगने योग्य है वांटने योग्य नहीं है और स्त्रियां कहिये दासी आदि जिनका बराबर भाग नहीं होता है वे नहीं वांटने योग्य हैं किंतु बराबर काम करवाने योग्य हैं और योगक्षेम कहिये मंत्री पुरोहित आदि और प्रचार कहिये गौ आदिके प्रचारका मार्ग इन सबको मनु आदि अविभाज्य कहिये नहीं वांटने योग्य कहते हैं ॥ १९ ॥ यह क्षेत्रज आदि पुत्रोंका दायभाग अर्थात् क्रमसे विभाग करनेका प्रकार तुमसे कहा अब द्यूत कहिये जुवाकी व्यवस्था सुनिये २०

द्यूतं समाह्वयं चैवं राजा राष्ट्रान्निवारयेत् । राज्यान्तकरणावेतौ  
द्वौ दोषौ पृथिवीक्षितात्मा ॥ २१ ॥ प्रकाशमेतत्तार्क्ष्यं यद्देवंस-  
माह्वयौ । तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२ ॥

टीका—जिनके लक्षण आगे कहेंगे ऐसे द्यूत और समाह्वय कहिये प्राणि द्यूत इनको राजा अपने देशसे दूर करै जिस्से ये दोनो दोष राजाके राज्यके विनाश करनेवाले है ॥ २१ ॥ ये दोनो द्यूत और समाह्वय प्रत्यक्ष चोरी है तिस्से इनके निवारणमें राजा नित्य यत्न करता रहै ॥ २२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तैल्लोके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियते यस्तु सं विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २३ ॥ द्यूतं समाह्वयं चैवं यः कुर्यात्कारयेत वा । तान्सर्वान्धातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २४ ॥

टीका—फांसा और शलाका आदि प्राण रहित वस्तुओंसे जो किया जाता है उसको लोकमें द्यूत कहते हैं और जो प्राणी कहिये मेढा मुरगा आदिसे दाव लगाके किया जाता है उसको समाह्वय जानिये लोकमें प्रसिद्ध इन दोनोंके लक्षणोंका कहना त्यागके लिये हैं ॥ २३ ॥ द्यूत और समाह्वयको जो करे और जो अधिष्ठाता होके करावे उन दोनोंके अपराधकी अपेक्षासे राजा दण्ड काटना आदि वध करे और यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणोंके चिन्ह धारण करनेवाले शूद्रोंको मारे ॥ २४ ॥

कितवान्कुशीलवान्कूरान्पार्षण्डस्थांश्च मानवान् । विकर्मस्था-  
ञ्शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वसयेत्पुरात् २५ एते राष्ट्रैर्वर्तमानाराज्ञः  
प्रच्छन्नतस्काः । विकर्मक्रियया नित्यं बांधन्ते भद्रिकाः प्रजाः २६

टीका—द्यूत आदिके सेवन करनेवालोंको नाचनेवालोंको गानेवालोंको और बेदसे द्वेष करनेवालोंको और श्रुतिस्मृतिसे वाहरी व्रतधारण करनेवालोंको और आपत्तिके विना पराये कर्मसे जीविका करनेवालोंको और मद्यबनानेवालोंको राजा शीघ्रही अपने देशसे निकाल देवै २५ ये कितव आदि छुपे हुए चोर राजाके देशमें बसते हुए नित्य छलनेकी क्रियासे सज्जनोंको पीडा देते हैं ॥ २६ ॥

द्यूतमेतैत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् । तस्माद्द्यूतं न सेवेत ही-  
स्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २७ ॥ प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत  
योनैः । तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २८ ॥

टीका—अभी यह नहीं किंतु पहले कल्पमेंभी यह द्यूत अतिशय करि वैर करनेवाला देखा गयाहै इससे बुद्धिमान् इसीके लियेभी उसका सेवन न करे ॥ २७ ॥ जो मनुष्य उस द्यूतका गुप्त अथवा प्रकट सेवन करता है उसको जैसी राजाकी इच्छा होय वेसा दंड होय ॥ २८ ॥

क्षत्रविद्भूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् । आनृण्यं कर्मणा गं  
च्छेद्भिप्रो दद्याच्छनैः॥२९॥ स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां  
च रोगिणाम् । शिष्याविदलरज्ज्वाद्यैर्विद्वर्थापतिर्दमम्॥२३०॥

टीका—अब हारे हुएओंके धन न होनेपर यह कहते हैं ॥ क्षत्रिय वैश्य और  
शूद्रजातिमें उत्पन्न पुरुषके धन न होनेसे धन देनेको न समर्थ होय तौ उससे उस-  
के योग्य कर्म करवाके धनका सोधन करै और ब्राह्मण तौ जैसा मिलता जाय  
वैसा क्रमसे देता जाय कर्म करवानेयोग्य नहीं है ॥२९॥ स्त्री बालक वृद्ध उन्मत्त  
दरिद्री और रोगियोंको शिष्या वांसका खंड और रस्सी आदि करि बांध-  
ने आदिसे राजा दण्ड करै ॥ २३० ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्याणाम् ॥ धनोष्मणां प  
च्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः॥३१॥ कूटशासनकर्तृश्च प्रकृती  
नां च दूर्षकान्॥स्त्रीबालब्राह्मणैश्च हन्याद्विद्वसेविनस्तथा॥३२॥

टीका—जे व्यवहार आदिके देखने अर्थात् निर्णय करनेमें राजां करि नियत  
किये हुए उत्क्रोच धन कहिये घूसि लेनेसे तथा तेजीसे बिगड कर अर्थ आदिके  
कामको बिगाडै राजा उनका धन आदि सर्वस्व छीन लेवै ॥ ३१ ॥ छलसे  
राजाकी आज्ञा (हुक्म) लिखनेवालोंको और स्त्री बालक तथा ब्राह्मणके  
मारनेवालोंको और शत्रुकी सेवा करनेवालोंको राजा मार डालै ॥ ३२ ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र कर्चनं यद्वेत् ॥ कृतं तद्धर्मतो विद्यो  
न्न तद्भूयो निर्वर्तयेत्॥३३॥ अमात्याः प्राद्विवाको वा यत्कुर्वुः का  
र्यमन्यथा ॥ तत्सर्वं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत्॥३४॥

टीका—जहां ऋणदान आदि व्यवहारमें जिस कार्यका शास्त्रकी व्यवस्थासे  
निर्णय होगया होय और कहे हुए दण्ड तक जो पहुंचि गया होय उस किये  
हुएको अंगीकार करै फिरि न लौटावै यह विनाकारण कि हुंकी व्यवस्थाहै इ-  
स्से कारणसे किये हुंको तौ लौटावै ॥ ३३ ॥ राजाके मंत्री अथवा प्राद्विवाक  
व्यवहारके देखनेमें नियत किये हुए जो भली भांति निर्णय न करै तौ राजा  
आप करै और उनपर हजार पण दंड करै यह तौ घूसिका धन न लेनेमें कहा-  
है उसको तौ पहले कह चुके हैं ॥ ३४ ॥

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एते सर्वे पृथक् ज्ञेया  
महापातकिनो नराः ॥ ३५ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्व  
ताम् ॥ शरीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—ब्रह्महा कहिये ब्राह्मणका मारनेवाला मद्यका पीनेवाला अर्थात् पैष्टीका पीनेवाला द्विजाति और पैष्टी माध्वी तथा गौडीका पीनेवाला ब्राह्मण और ब्राह्मणका सुवर्ण चुरानेवाला तस्कर और गुरुकी स्त्रीसे गमन करने वाला ये सब प्रत्येक महापातकी जाननेयोग्य हैं ॥ ३५ ॥ प्रायश्चित्त करनेवाले इन चारो महा पातकियोंको शरीरसंबंधी और धनके ले लेनेसे धनसंबंधी अपराधके अनुसार धर्मयुक्त आगे कहे हुए दंडको करै ॥ ३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुरार्ध्वजः ॥ स्तेये च श्वर्षदं का  
यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ ३७ ॥ असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपा  
ठ्याविवाहिनः ॥ चरैर्युः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ३८ ॥

टीका—नांकर्याराज्ञाललाटेस्युः अर्थात् राजा करि ललाटमें नअंकनकरने योग्य हैं यह आगे कहा है इससे ललाटही अंकनका स्थान जाना जाता है वहां गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेके ललाटमें तपे हुए लोहसे जीवने तक रहनेवाले भगकी आकृति गुरुकी पत्नीसे गमनका चिन्ह करै ऐसेही मदिरापान करनेपर पीनेवालेके लंबा सुरार्ध्वजके आकार चिन्ह करै और सोना चुरानेपर चुरानेवालेके माथेमें कुत्तेके पैरका और ब्राह्मणकी हत्या करनेवालेके कबंध पुरुषका अर्थात् विना शिरके पुरुषका चिन्ह करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इनको अन्न आदि न भोजन करावै और न इनको यजन करावै और न इनको पढावै और इनके साथ कन्यादान अदि संबंध न करना चाहिये ये तौ निर्द्धन होनेसे याचन आदि दीनतायुक्त और सब श्रौत आदि कर्मोंसे रहित पृथिवीमें भ्रमण करै ॥ ३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दया निर्नम-  
स्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ प्रायश्चित्तं कुर्वाणाः सर्ववर्णा  
यथोदितम् ॥ नांकर्याराज्ञां ललाटेस्युर्दीप्यास्तू तमसांहसम् २४०

टीका—ज्ञातिके मनुष्यों करि तथा माया आदि संबंधियों करि ये अंक किये हुए पुरुष छोडनेयोग्य हैं इनके ऊपर दया न करनी चाहिये और न ये नम-

स्कार करनेयोग्यहैं ग्रह मनुकी आज्ञाहै ॥ ३९ ॥ शास्त्रमें कहे हुए प्रायश्चित्तके करनेकाले ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण लछाटमें नहीं अंक करनेयोग्य हैं किंतु उत्तम साहस दंड करने योग्यहैं ॥ २४० ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैवै कार्यो मध्यमसाहसः॥विवांस्यो वा भवेद्राष्ट्रा-  
त्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥ ४१ ॥ इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्य-  
कामतः ॥ सर्वस्वहारमहन्ति कायतस्तु प्रवासनम् ॥ ४२ ॥

टीका—इतरे कृतवन्तस्तु इस आगेके श्लोकमें कहा हुआ अकामतः यह यहां-  
भी योजना करनी चाहिये तिस्से अकामसे किये हुए इन् अपराधोंमें गुणवान्  
ब्राह्मणको मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये और पहले कहा हुआ उत्तम साहस  
निर्गुणीके लिये जानना चाहिये. और कामसे इन अपराधोंमें धनधाम्य आदि  
सामग्री समेत ब्राह्मण देशसे निकालनेयोग्य है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणसे अन्य क्षत्रिय  
आदि इन पापोंको विना इच्छाके करै तौ सर्वस्व हरनेके योग्य है और इच्छा-  
से इनके इन अपराधोंमें प्रवास कहिये वधके योग्यहैं ॥ ४२ ॥

नाददीर्तं नृपैः साधुमहापातकिनो धनम् ॥ आददानस्तु तल्लो-  
भात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ ४३ ॥ अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायो-  
पपादयेत् ॥ श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥

टीका—धार्मिक राजा दण्डरूप इन महापातकियोंके धनको न लेवै और  
लोभसे लेता हुआ महापातक दोषका संसर्ग होताहै ॥ ४३ ॥ फिर वह दण्ड-  
का धन कहां जाय इस लिये कहते हैं ॥ उस दण्डके धनको नदी आदिके जलमें  
डालकर वरुणको देवै अथवा शास्त्र तथा उत्तम चरित्रयुक्त ब्राह्मणको देवै ॥ ४४ ॥

इंशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥

इंशः सर्वस्य जर्गतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ४५ ॥

टीका—महा पातकीके दण्डके धनके स्वामी वरुणहैं जिस्से दंडधारी होनेके  
कारण राजाओंकेभी स्वामी हैं तैसेही सब वेदोंका पढ़नेवाला ब्राह्मण सब जग-  
तका प्रभुहै इससे प्रभुत्वसे वे दोनो दंडके धनके योग्यहैं ॥ ४५ ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्ध्यो धनो गमम् ॥ तत्र कालेन जायन्ते मा-  
नवा दीर्घजीविनः ॥ ४६ ॥ निष्पद्यन्ते च संस्रयानि यथोक्तानि विशां



पृथक् ॥ बालांश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥ ४७ ॥

टीका—जिस देशमें राजा महापातकीके धनको नहीं लेता है वहां पशुपूर्ण कालसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं और दीर्घ आयुके होते हैं और वैश्योंके जैसे धान आदि शस्य बोये जाते हैं वैसेही पृथक् पृथक् उत्पन्न होते हैं और अकालमें बालक नहीं मरते हैं और अंगभंग कोई प्राणी नहीं उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणान्वाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ॥

हंन्याच्चैर्वैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ ४८ ॥

टीका—शरीरकी पीडा और धन लेने आदिसे ब्राह्मणको इच्छासे बाधा देनेवाले शूद्रको हाथ काटने आदि दुःख देनेवाले वधके उपायोंसे राजा मारे ४८

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥ अर्धमो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनिर्यच्छतः ॥ ४९ ॥ उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवद मौनयोः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

टीका—शास्त्रसे अवध्यके मारनेमें जितना अधर्म होता है उतनाही मारनेयोग्यके छोड़नेमेंभी शास्त्रके अनुसार दंड देते हुए राजाका धर्म होता है तिस्से उसको करे ॥ ४९ ॥ ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें परस्पर विवाद करनेवाले अर्थों प्रत्यर्थाका यह कार्यनिर्णय विस्तारसे कहा ॥ ५० ॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ॥ देशानलब्धांल्लिप्से तं लब्धांश्च परिपालयेत् ॥ ५१ ॥ सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ॥ कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

टीका—इस कहे हुए प्रकारसे धर्मयुक्त व्यवहारोंका निर्णय करता हुआ राजा प्रजाकी प्रीतिसे नहीं पाये हुए देशोंके लेनेकी इच्छा करे और पाये हुए देशोंकी भली भांतिसे रक्षा करे ॥ ५१ ॥ जांगल सम्यसंपन्न इस कही हुई रीतिसे जो भली भांति आश्रित देश है उसमें सातमें अध्यायमें कहे हुए प्रकारसे किला बनाकर चोर साहसिक आदि कंटकोंके दूर करनेमें सदा बड़ा यत्न करे ॥ ५२ ॥

रक्षणोदार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥ नरेन्द्रास्त्रिदिवं या न्ति प्रजापालनतत्पराः ॥ ५३ ॥ अशौसस्तस्करान्यस्तु बलिं गृ

ण्हांति पार्थिवः ॥ तस्य प्रभुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ ५४ ॥

टीका—जिसे साधु आचरणवालोंकी रक्षा करने और चोर आदिकोंको दंड देनेसे प्रजाके पालनेमें उद्योग युक्त राजा स्वर्गको जाते हैं तिससे कंटको के उखाड़नेमें यत्न करै ॥ ५३ ॥ जैसे फिरि राजा चोर आदिकोंको न दूर करता हुआ छटा भाग आदि कहे हुए करको लेता है उसपर देशकी वसनेवाले मनुष्य क्रोधित होते हैं और दूसरे कर्मोंसे प्राप्त हुई भी उसकी स्वर्गकी गति इस पापसे रुकि जाती है ॥ ५४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलश्रितम् ॥ तस्य तद्वर्धते नित्यं  
सिच्यमान इव द्रुमः ॥ ५५ ॥ द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्याप  
हारकान् ॥ प्रकाशांश्च प्रकाशांश्च चारचक्षुर्मही पतिः ॥ ५६ ॥

टीका—जिस राजाके बाहुबलके आश्रयसे देश चोर आदिकोंके भयसे रहित होता है उसका वह देश नित्य ऐसे वृद्धिको प्राप्त होता है जैसे जलके सींचनेसे वृक्ष ॥ ५५ ॥ चार कहिये दूतही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा दूतोंहीके द्वारा प्रकट तथा गुप्त दो भांतिके पराये धनके लेनेवालोंको जानै ॥ ५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥

प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनादविकारदयः ॥ ५७ ॥

टीका—उन चोर आदिकोंमेंसे जो तराजु वांट आदिके घाटि होनेसे सुवर्ण आदि बेचनेकी वस्तुके बेचने वाले पराये धनको लेते हैं वे खुले ठगनेवाले चोर हैं और सेंधिके फोड़ने आदिसे तथा वनके रहनेवाले जे लूटिसे पराये धनको लेते हैं वे गुप्त चोर हैं ॥ ५७ ॥

उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितर्वास्तथा ॥ मङ्गलादेशवृत्ता  
श्च भद्राश्चक्षणिकैः सह ॥ ५८ ॥ असम्यक्कारिणश्च वमहामात्रा  
श्चिकित्सकाः ॥ शिल्पोपचारियुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ ५९ ॥  
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशालोककण्टकान् ॥ निमूढचारिणश्च  
न्याननार्यानीर्यालिङ्गिनः ॥ ६० ॥

टीका—धूसि लेनेवाले जे कार्यों जे मुकद्दमेवाले हैं उनसे धन लेकर अयोग्य कार्य करते हैं और औपधिक जे भय दिखाके छलते हैं और वंचक जे सुवर्ण

आदि द्रव्यको लेकर घटकी द्रव्य ढालकर छलते हैं और रक्तव जे धूत तथा प्राणिधूतसे खेलते हैं और जे धन पुत्र लाभ आदि मंगलोंकी ममताको कहकर जीविका करते है वे मंगलादेशवृत्तहैं और जे कल्याण करनेवाले आचारोंसे पापोको छुपकै धन लेते है वे भद्रहैं और जे हाथोंकी रेखा आदिके देखनेसे शुभअशुभ फल कहिकै जीविका करते हैं वे ईक्षणिक हैं और जे हाथीकी शिक्षासे जीवते हैं वे महामात्रहैं और जे चिकित्सासे जीविका करते है वे चिकित्सकहैं महामात्र और चिकित्सक ये नो असम्यक्कारी अर्थात् अच्छा काम करनेवाले नहींहैं और शिल्पोपचारयुक्त कहिये जे चित्रके लिखने आदि उपायसे जीवते हैं नियुक्त किये गये ये भी शिल्पका उत्साह दिला करि धनको ले लेते हैं और पराय स्त्री कहिये केश्याभी दूसरेके दश करनेमे चतुर होती हैं इत्यादि खुले हुए लोकके छलने वालोंको राजा चारोंके द्वारा जानै तथा और भी गुप्त रूपसे विचूरनेवाले शूद्र आदिकोंको जो ब्राह्मण आदिकोंका वेष धारण करते हैं उनको धन हरनेवाले जानै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ २६० ॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गुदैस्तत्कर्मकारिभिः॥ चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्सह्यैर्विश्रमानयेत् ॥ ६१ ॥ तेषां दोषानभिर्याप्य स्वस्वे कर्मणि तत्त्वतः॥ कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः॥ ६२ ॥

टीका—उन कहे हुए वंचकोंको गुप्तरूप सभाके मनुष्योंकि द्वारा तथा उस कामके करनेवाले सम्य मनुष्योंके द्वारा जैसे बनियोंकी चोरीको बनियोंके द्वारा इत्यादिक पुरुषोंकरि तथा इनसे भिन्न सातमें अध्यायमें कहे हुये कापटिक आदि आदि अनेक स्थानोंमें स्थित चारोंके द्वारा जानि उत्सादन करिकै अपने वशमें करै ॥ ६१ ॥ उन प्रकट तथा गुप्त तत्कारोंके अपने कर्म चोरी आदिमें संधि फोडने आदि पारमार्थिक दोषोंको लोकमें उनसे कहवाय उनके समीपके धन तथा शरीर आदिके सामर्थ्यकी अपेक्षासे तथा अपराधकी अपेक्षासे उनपर राजा दंड करै ॥ ६२ ॥

न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।

स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृते चरतां क्षितौ ॥ ६३ ॥

टीका—जिस कारणसे चोरोंका और विनीत वेषसे पृथिवीतलमें विचरनेवाले पाप करनेकी बुद्धिवाले मनुष्योंका दंडदेनेके विना पाप क्रियामें नियम नहीं हो सकताहै इससे इनको दंड दैवै ॥ ६३ ॥

सभाप्रपापू पशालवेशमद्यन्नविक्रयाः । चतुष्पंथाश्चैत्यवृक्षाः स-  
म्राजाः श्रेष्ठगणानि च ६४ ॥ जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेश-  
नानि च । शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥ ६५ ॥  
एवंविधानृपो देशान्गुलमैः स्थावरजङ्गमैः । तस्करप्रतिषेधार्थं  
चौरैश्चाप्यनुचारयेत् ॥ ६६ ॥

टीका—सभा अर्थात् ग्राम नगर आदिमें नियत जनोके समूहका स्थान तथा  
ग्याऊ और पूषोंकी शाला जहां पूआ विकते हैं वेश्याका स्थान, और मद्यके त-  
था अन्नके विकनेका स्थान, चौराहे, तथा मासद्ध वृक्षोंके मूल और जनसमूहके  
स्थान, पुराही फुलवाडी, वन, कारीगरोंके घर कहिये कारुखाने, शून्यघर, आम  
आदिके बाग, और बनाये हुए वन, ऐसे स्थानोंको राजा स्थावर जंगम कहिये  
एक स्थानमें ठहरी हुई और चलती हुई पयादोंकी सेनाको तथा अन्य दूतोंको  
चोरोंके निवारणके लिये भेजे बहुधा ऐसे स्थानोंमें अन्नपान तथा स्त्री संभोग  
आदि के दूढनेके लिये चोर बसते है ॥ ६४ ॥ ६५ ६६ ॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैवं निपुणैः  
पूर्वतस्करैः ॥ ६७ ॥ भक्ष्यभोज्यांपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।  
शौर्यकर्मपदेशैश्च कुर्युस्तेषां समांगमम् ॥ ६८ ॥

टीका—उनकी सहायता करनेवाले और उनके चरित्रोंके समान चरित्र करनेवाले  
और संधि फोडने आदि कामोंके जाननेवाले चोरों की मायामें निपुण दूतरूप पहले  
चोरोंसे अन्य चोरोंको जानै और उनके दूरि करनेका प्रबंध करै ६७ दूत हुए वे  
पहले चोर और चोरोंसे ऐसे कहैं कि आइये हमारे घर चलिये वहां लड्डू खीर  
आदि खावै ऐसे भक्ष्य भोज्यके वहानेसे और हमारे देशमें एक ब्राह्मण है वह चाही  
हुई अर्थसिद्धिको जानताहै उसको देखैं ऐसे ब्राह्मणोंके दर्शनोंसे और कोई अके-  
लाही बहुतोंके साथ युद्ध करेगा उसको देखैं इस भांति शौर्य कर्मके वहानेसे उन  
चोरोंसे राजाके दंड धारण करनेवाले पुरुषसे मेल करैं और उनकी प्रकडवा देवै ६८

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहितार्थं ये । तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्स-  
मित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ ६९ ॥ न होढेन विना चौरं घातयेद्दार्मिकं  
नृपः । सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ ७० ॥

टीका—जे चोर वहाँ प्रक्षय भोज्य आदिमें पकड़े जानेकी शंकासे न आवें और जे मूल कहिये राजकरि नियुक्त पुराने चोरोंके समूहमें सावधान हो उन-  
के साथ संगति न करै उनको उन्ही पुराने चोरोंके द्वारा जानि उनमें मिले हु-  
ए मित्र पिता आदि और जाति स्वजन समेत बलसे पकड़ कर मारै ॥ ६९ ॥  
धर्मात्मा राजा चुराई हुए द्रव्यके सेंधि फोड़ने आदिको उपकरण कुदाली आ-  
दिके बिना चोरपनका निश्चय बिना किये न मारै किंतु चुराई हुई द्रव्यसे और  
चोरीकीसामग्रीसे चोरपनका निश्चय करि बिना विचारके मारै ॥ ७० ॥

ग्रामेष्वपि चेये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः। भाण्डार्थकाशदाश्चै  
वसंवास्तानपि घातयेत् ७१ राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव  
चोदितान्। अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिवं द्रुतम् ७२

टीका—ग्राम आदिकोंमेंभी जे कोई चोरोंका चोरपन जानिकै भोजन देते  
हैं और चोरीके उपयोगी भांड आदिके रखनेको स्थान देते हैं उनकोभी अपरा-  
धी जानि राजा मरवावै ॥ ७१ ॥ जे देशोंमें रक्षाके लिये रखे गये हैं और जे  
समीपके समीप बसनेवाले क्रूर न होकर चोरीके उपदेश करनेसे मध्यस्थ होय उ-  
नको चोरके समान शीघ्र दंड देवै ॥ ७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवर्नः। दण्डितैर्व तमप्योषेत्स्व-  
काद्रमार्द्धि विच्युतम् ॥ ७३ ॥ ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभि-  
दर्शने। शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥ ७४ ॥

टीका—यजन कराना तथा दान लेने आदिसे दूसरेके यज्ञ आदि धर्मको उ-  
त्पन्न करि जो जीवताहै वह धर्मजीवी ब्राह्मण जो धर्मकी मर्यादासे बाहर हो-  
जाय तौ अपने धर्मसे भ्रष्ट हुए उसकोभी राजा दंडसे पीडा देवै ॥ ७३ ॥ चोर  
आदि करि ग्रामके लूटने और जलको बांध तोड़नेपर और स्वतंत्र उत्पन्न धा-  
न्यको नाश करने तथा मार्गमें चोरके देखनेपर—उनके समीपके जे अपने  
शक्तिके अनुसार रक्षा न करै उनको राजा शय्या और गौ आदि पशुओं समे-  
त देशसे निकाल देवै ॥ ७४ ॥

राज्ञः कोपापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥ घातयेद्विर्विधैर्द-  
ण्डैररिणां चोपजापकान् ७५ संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्व-  
न्ति तस्कराः। तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ७६

टीका—राजाके भंडारसे धनके चुरानेवालोंको तथा राजाकी आज्ञाके न माननेवालोंको और शत्रुओंका राजासे वैर बढ़वानेवालोंको अपराधके अनुसार हाथ पांव जीभ काटने आदि नाना प्रकारके दंडोंसे मरवावै ॥ ७९. ॥ जे चोर रातिमें सेंधि फोड़कर पराये धनको चुराते हैं राजा उनके दोने हाथ कांटिके उनको सूझीपर चढ़ावै ॥ ७६ ॥

अङ्गुली ग्रंथिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ॥ द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥ ७७ ॥ अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ॥ संनिधातृंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ ७८ ॥

टीका—वस्त्रके किनारे आदिमें बंधे हुए सुवर्णको जो गांठि खोलकै चुराता है वह ग्रंथिभेदके अर्थात् गंठिकट होतहै उसके पहले द्रव्य लेनेमें अंगुली कहिये अंगूठा और तर्जनी कटावादे और दूसरी बार लेनेमें हाथ पांव दोनो कटवा दे और तीसरी बार लेनेमें वधके योग्य होते हैं ॥ ७७ ॥ ग्रंथिभेदको कहिये गंठिकटोंको जानिकै आगि भोजन और शस्त्र रखनेके लिये स्थान देनेवालोंको तथा चोरीका धन रखनेवालोंको राजा चोरके समान दंड देवै ॥ ७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ॥ यद्वापि प्रतिसंस्कर्त्यादाप्यस्तूतमसाहसम् ॥ ७९ ॥ कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ॥ हस्त्यश्वरथहत्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ ८० ॥

टीका—जो स्नान आदिसे मनुष्योंके उपकार करनेवाले तलावको बांध आदिके तोड़नेसे बिगाड़ें उनको जलमें डूबवाकै अथवा और प्रकारसे मारै अथवा जो तडागका फिरि संस्कार करै उसको उत्तम साहस रूप हजार पण दंड देवै ॥ ७९ ॥ राजाके कोठार और धन तथा शस्त्रोंके घरके फोड़नेवालोंको और बहुत धनके खरचसे बननेयोग्य देवालय आदिके फोड़नेवालोंको और हाथी घोडा तथा रथ चुरानेवालोंको शीघ्रही मारै ॥ ८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥ आंगमं वाप्यपांभिर्द्योत्सिदाप्यः पूर्वसाहसम् ॥ ८१ ॥ समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्तुर्वमेध्यमनापदि ॥ सद्रौ कार्पापणौ दद्यादमेध्यं चांशुशोधयेत् ॥ ८२ ॥

टीका—जो फिरि प्रजाके लिये पहले किसीकारे बनाये हुए तलावके जल

ही ले ले-तलावके सब जलके नाश करनेमें पहले कहा हुआ वध दंड करना योग्य है और जो बांध बांधि करि जलके मार्गका नाश करता है उसपर प्रथम साहस दंड करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगी न होनेपर राजभार्गमे विष्टां करै वह दो कार्षापण दंड देवै और अपवित्रको शीघ्रही दूरि करै ॥ ८२ ॥

• आपद्रुतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ॥ परिभार्षणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥ ८३ ॥ चित्तिकसकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दर्मः ॥ अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ ८४ ॥

टीका—रोगी वृद्ध गर्भिणी और बालक ये दंड देनेयोग्य नहीं हैं किंतु उनसे ऐसे कहना चाहिये कि तुमने यह क्या किया और अपवित्र शुद्ध कराने-योग्य हैं यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८३ ॥ सब कायशल्यभिषज अर्थात् चौराफारी करनेवाले वैद्य जो दुष्ट चिकित्सा करै तो उनको दंड देना चाहिये वहां गौ घोडा आदिकी दुष्ट चिकित्सामें प्रथम साहस दंड है और मनुष्यमें तो मध्यम साहस दंड योग्य है ॥ ८४ ॥

• संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥ प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ ८५ ॥ अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदेन तथो ॥ मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ ८६ ॥

टीका—संक्रम कहिये जलके ऊपर जानेके लिये काष्ठ अथवा शिलाआदिसे बने हुए छोटे पुलको और ध्वज कहिये चिन्ह राजद्वार आदिमें और यष्टि पुष्करिणी आदिमें और प्रतिमा कहिये छोटी मट्टी आदिकी बनी हुई इन सबोंके नाश करनेवालेपर पांचसौ पण दंड करै और उस बिगाडे हुएको फिर नया बनावै ॥ ८५ ॥ शुद्ध वस्तुओंमें कम दासकी वस्तु मिलाकर दूषित करनेमें और नहीं तोड़नेयोग्य माणिक्य आदि मणियोंके तोड़नेमें और वेधनेयोग्य मोती आदि कोंके कुंठौर वेधनेमें प्रथम साहस दंड करना चाहिये और सबोंमें पराई वस्तुके नाश करनेमें दूसरी वस्तु आदिके देनेसे स्वामीका संतोष करना चाहिये ॥ ८६ ॥

• समौहि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ॥ समानुयादमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ ८७ ॥ बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ॥ दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पार्षकारिणः ॥ ८८ ॥

प्रार्कारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ॥ द्वा राणां चैव भे  
त्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ८९ ॥

टीका—बराबर मोल देनेवालोंके साथ बढकी तथा घटकी वस्तु देनेसे जो विषमव्यवहार करता है और बराबर मोलकी वस्तुको दे करि जो किसीकी बहुत मोलकी किसीकी थोड़े मोलकी इस भांति विषम मोलको लेता है वह अनुबंध विशेषकी अपेक्षासे प्रथम साहस अथवा मध्यम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ८७ ॥ बंधनगृह (जेलखाने) सब मनुष्योंके देखने योग्य राजा मार्गके समीप बनावे जहां बेड़ी आदि बंधनोंसे बंधे हुए भूखप्यासे दुखी और जिनके नख ढाढी मूछ आदि बाल बढे हुए दुबले पाप करनेवालोंको और पाप करनेवाले पाप न करनेके लिये देखें और राजा घर तथा शहरके पर कोटेके फोडनेवालेको और उन्हीकी खाईके घूरनेवालेको और उनके द्वारोंके तैडनेवालेको शीघ्रही देशसे निकाल देवे ॥ ८८ ॥ ८९

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ॥

मूलकर्मणि चानात्ते कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

टीका—अभिचार होम आदि शास्त्रमें कहे हुए मारनेके उपायोंमें और जड खोदना पैरोकी धूलि लेने आदि लौकिक मारनेके उपायोंके करनेपर जो मरनेका फल न होय तौ दोसो पण दंड करना चाहिये और जो मरजाय तौ मनुष्यके मारनेका दंड करै ऐसे माता पिता स्त्री आदिसे भिन्न झूठी बातोंसे मोहित करि घन लेने आदिके लिये बस करनेमें और कृत्या कहिये नाना प्रकारके उच्चाटन आदिके करनेमें दोसौ पण दंड करना चाहिये ॥ २९० ॥

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ॥ मर्यादाभेदकश्चैव विक्रे  
तं प्राप्नुयाद्रधम् ॥ ९१ ॥ सर्वकण्टकर्पापिष्टं हेमकारं तु पार्थिवः ॥  
प्रवर्तमानमन्याये छेदयेत्तु वृक्षः क्षुरैः ॥ ९२ ॥

टीका—अबीज कहिये जलसे नहीं उगनेयोग्य धान आदिको उगनेके योग्य कहिकै जो बेचै अथवा घटिकी वस्तुको बहुतसी बढिकी वस्तुमें मिलिकै यह सब बढिकी है ऐसे कहिकै जो बेचै और जो ग्राम नगर आदिंकी सीमाका नाश करै वह नाक हाथ पांव कान काटिकै बघके योग्य है ॥ ९१ ॥ सब कंटको में बहुतही पापी तौलमें छल करनेवाले और कसमे बदलकर घटिकी धातु मिलायके सोने आदिकी चोरि करनेवाले छुनारकी सब देहको छुरोंसे कटवायके खंड खंड करायदे ॥ ९२ ॥



सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च  
राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥ स्वांम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं क्रोशेद  
ण्डौ सुहृत्तथा ॥ सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जोतीजाती हुई भूमिकी हलकुदाली आदिके चुरानेमें और सङ्ग आदि शस्त्रोंके तथा कल्याणघृत आदि औषधके चुरानेपर उपयोगकालसे दूसरे कालकी अपेक्षासे और प्रयोजनकी अपेक्षासे राजा दण्ड करै ॥ ९३ ॥ स्वामी कहिये राजा और अमात्य कहिये मंत्री आदि और पुर कहिये राजाका किया हुआ दुर्ग वसनेका नगर, और राष्ट्र कहिये देश, और कोश कहिये धनका समूह, और दण्ड कहिये हाथी रथ पयादे, और सातमें अध्यायमें कहे हुए तीनि प्रकारके मित्र, ये सप्त-प्रकृति कहिये. अंगहै इस्से यह राजा सप्तांग कहा जाताहै ॥ ९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं  
जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ ९५ ॥ सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य  
त्रिदण्डवत् ॥ अन्योन्यगुणवैशेष्यान् किञ्चिदतिरिच्यते ॥ ९६ ॥

टीका—क्रमसे कहे हुए राज्यके इन सात अंगोंमें अगले २ की अपेक्षा पिछले २ को मारि जानै जैसे मित्रके व्यसनसे अपने बल कहिये सेनाका व्यसन भारि है क्योंकि संपन्न सेनाही की मित्रके अनुग्रहमें सामर्थ्य है ऐसेही सेनासे कोश भारीहै क्योंकि कोशके नाशमें सेनाकाभी नाश होताहै और कोशसे राष्ट्र भारीहै क्योंकि राष्ट्रके नाशमें कोशकी उत्पत्ति कहांसै होय और ऐसे राष्ट्र दुर्गका नाश क्योंकि घास ईधन और रसादिसे भरे हुए दुर्गहीसे राज्यकी रक्षा होती है और दुर्गसे मंत्री भारी है क्योंकि प्रधान मंत्रीके नाशमें सब अंग विगडा जाते हैं और मंत्रीसेभी आत्मा भारी है क्योंकि सब आत्माहीके लिये है तिस्से अगलेकी अपेक्षासे पिछलेकी यत्नसे रक्षा करै ॥ ९५ ॥ त्रिदंडीके त्रिदंडके समान बंधे हुए इस कहे हुए राज्यके सातो अंगोंमें आपसमें विलक्षण उपकरण होनेके कारण कोईभी अंग अधिक नहीं होताहै यद्यपि पहले श्लोकमें पूर्वपूर्व अंगकी अधिकता कही तिसपरभी इन अंगोंमेंसे अन्य अंगका अपकार अन्य अंग नहीं कर सकताहै तिस्से आगे २ के अंगकी अपेक्षा करनी योग्यहै इस लिये यह अधिकताका निषेधहै यहां प्रसिद्ध यतीका त्रिदंडही दृष्टांतहै जैसे वह चार अंगुलके गौके वालोके लपेटनेसे आपसमें बंधे होते हैं और उनमेंसे त्रिदंड धारण शास्त्रार्थमें कोई दंड अधिक नहीं होता है ॥ ९६ ॥

तेषुतेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यतोयेन यत्साध्यते कार्यं तत्त-  
स्मिन्क्षेत्रे धृमुच्यते ॥ ९७ ॥ चारेणोत्साहयोगेन क्रियैव च कर्म-  
णाम् ॥ स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ ९८ ॥

टीका—जिस्से उन २ करने योग्य कार्योंमें वह वह अंग अधिकता युक्त होताहै  
क्योंकि उसका कार्य दूसरा नहीं करसकताहै ऐसे तौ जिस अंगसे जो काम हो-  
ताहै उसमें वही प्रधान कहा जाताहै तिस्से आपसमें जो गुणोंकी अधिकता आदि  
कही सो इस्से प्रकट की गई ॥ ९७ ॥ सातमें अंध्याग्रमें कहे हुए कापटिक आ-  
दिसे सेनाके उत्साहके योगसे और हस्तिबंध तथा वणिकूपथ आदिके करनेसे  
उत्पन्न हुई अपनी और शत्रुकी शक्तिको राजा सदा जानै ॥ ९८ ॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसंनानि तथैव च ॥ आरभेत ततः कार्यं  
संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ ९९ ॥ आरभेतैव कर्माणि श्रान्तःश्रान्तः  
पुनः पुनः ॥ कर्माण्यारम्भमाणं हि पुरुषं श्रीं निषेवते ॥ ३०० ॥

टीका—पीडन कहिये मारक आदि अपने तथा पराये चक्रमें उत्पन्न काम  
क्रोधसे उत्पन्न दुःखोको और उनके भारीपन तथा हलकेपनको विचारिके सं-  
धिविग्रह आदि कार्यका आरंभ करै ॥ ९९ ॥ राजा अपने राज्यकी वृद्धि और  
शत्रुकी हानि करनेवाले कर्मोंको जो बड़ी कठिनाईसे भी किये गये होय उन  
किये हुएभी कार्योंका आरंभ करिके आप खेदयुक्त होनेपरभी उनका वारंवार फि-  
रिभी आरंभ करै कारण यह है कि कर्मोंके आरंभ करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी  
बहुतही सेवन करती है ॥ ३०० ॥

कृतं त्रेतायुगं चैवं द्वापारं कलिरैव च ॥ राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि रा-  
जा हि युगमुच्यते ॥ १ ॥ कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रद्वार्यं यु-  
गम् ॥ कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ २ ॥

टीका—सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग ये राजाहीके चेष्टित विशेषहैं उन्हीं  
से सत्य आदि विशेषोंकी प्रवृत्ति होती है तिस्से राजाही कृत आदि युग कहा  
जाताहै ॥ १ ॥ कैसा चेष्टित कृतआदि युगहै इसपर कहते हैं अज्ञान और आ-  
लस्य आदिसे जब राजा उद्योग रहित होताहै तब कलियुग है और जानते हु-  
एभी नहीं करताहै तब द्वापर और जब कर्म करनेमें अवास्थित होताहै तब त्रेता और

फिरि जबु शास्त्रके अनुसार कभीको करता हुआ विचरताहै तब सतयुगहै तिस्से राजाको कर्म करनेमें तत्पर होना चाहिये वहां यह तात्पर्य है . वास्तविक कृत आदिका भेटना नहीं है ॥ २ ॥

इन्द्रस्याकैस्य वार्योश्च यमस्य वरुस्यस्य च ॥ चन्द्रस्याग्नेःपृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥३॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ॥ तथाभिर्वर्षेत्स्वं राष्ट्रं कैमैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ४ ॥

टीका—इंद्र सूर्य वायु यम वरुण चंद्र अग्नि और पृथिवीके वीर्यके अनुरूप चरित राजा करै और राजा . कंटकोंके उखाड़नेसे प्रताप अनुराग करिके युक्त होताहै ॥ ३ ॥ कैसे इंद्र आदिका चरित करै इसपर कहते है ॥ ऋतु संवत्सर और पक्षका आश्रय लेकर यह कहा जाताहै ॥ जैसे श्रावण आदि चारि महीने शस्य आदिकी सिद्धिके लिये इंद्र वरसताहै ऐसे इंद्रके चरितको करता हुआ राजा अपने देशमें आये हुए साधुओंको वांछित अर्थोंसे पूर्ण करै ॥ ४ ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥ तथा हं रेत्करं राश्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तर्त ॥ ५ ॥ प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ॥ तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ६ ॥

टीका—जैसे सूर्य अगहन आदि आठ महीने किरणोंसे थोड़ा २ रस थोड़े तापसे ग्रहण करते है ऐसेही राजा शास्त्रमें कहे हुए करोंको पीडाके विना देशसे ग्रहण करै जिस्से यह सूर्यका व्रतहै ॥ ५ ॥ जैसे प्राणनाम पवन सब जीवोंमें भीतर प्रवेश करिके विचरता है, ऐसेही चारके द्वारा अपने पराई राज्यमंडलमें चिकीर्षित अर्थ जाननेके लिये भीतर प्रवेश करना चाहिये जिस्से यह पवनका चरितहै ॥ ६ ॥

यथा यमः प्रियद्रेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ७ ॥ वरुणेन यथा पार्श्वेर्द्ध एवाभिदृश्यते ॥ तथा पर्पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥ ८ ॥

टीका—यद्यपि यमके शत्रु मित्र नहीं है तिसपरभी उसके निंदक और पूजकोंका शत्रु मित्र कथनहै ॥ जैसे यम शत्रु मित्रके मरनेके समय तुल्यके समान दंड देताहै ऐसेही राजाको भी अपराधके समय रागद्वेषको छोड़कर प्रजा शासन

करनेयोग्यहैं जिस्से यह यमका व्रतहै ॥ ७ ॥ जो वरुणकी रस्सियोंसे बांधनेको इष्टहै वह जैसे पशोंसे बंधाही हुआ दीखताहै वैसेही पापकरनेवाले जबतक न कुछ करसके तबतक शासन करे जिस्से यह इसका वरुणका व्रतहै ॥ ८ ॥

परिपूर्ण यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः॥ तथा प्रकृतयो यस्मि  
न्स चान्द्रव्रतिको नृपः॥ ९ ॥ प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पाप  
कर्मसु ॥ दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्रेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

टीका—जैसे चंद्रमाके देखनेसे मनुष्य हर्षित होते है ऐसेही मंत्रीआदि जिसके देखनेसे संतोषको प्राप्त होय वह चंद्राचारि राजाहै ॥ ९ ॥ पाप करने वालोंको दंड देनेमें सदा प्रचंड होय और प्रतिकूल मंत्रियोंका मारनेवाला होय यह इसका अग्निसंबंधी व्रत कहा गयाहै ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि  
विभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ११ ॥ एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतं  
न्द्रितः ॥ स्तेनान् राजा निर्गृण्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥ १२

टीका—जैसे पृथिवी सब बड़े छोटे स्थावर जंगम ऊंचे नीचेका समान करि-  
के धारण करती है ऐसेही विद्वान् धनवान् गुणवान् जीवोंको तथा इनसे भिन्न  
दीन अनाथ आदि सब जीवोंको रक्षा करने और धन देने आदिसे सामान्यता  
करि धारण करने वाले राजाका पृथिवीसंबंधी व्रत होताहै ॥ ११ ॥ इन कहे हु-  
ए उपायोंसे और अपनी बुद्धिसे उत्पन्न हुए बिना कहे हुएओंसे राजा आलस्य  
रहित हो अपने देशमें जो चोर बसते होय और पराये देशके बसनेवाले अपने  
देशमें आके चोरि करते होय उन दोनों प्रकारके चोरोंको फकड़े ॥ १२ ॥

परामर्ष्यार्पदं प्राप्तो ब्राह्मणार्त्न प्रकोपयेत् ॥ ते ह्ये न कुपिता ह  
न्युः सद्यः सर्वलवाहनम् ॥ १३ ॥ यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरेभ्यश्च  
महोदधिः ॥ क्षयी चाप्यपितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥ १४

टीका—कोशके क्षीण होने आदिसे बड़ी आपत्तिको प्राप्तभी राजा ब्राह्मणों-  
को क्रोधित न करे जिस्से क्रोधित हुए वे सेनावाहन समेत इसको शीघ्रही शाप  
तथा अभिचारसे मारिगे ॥ १३ ॥ जिन ब्राह्मणों करि अभिशापसे अग्नि सर्वभक्षी  
किया गया और समुंद्र नदी पिनियोग्यहै जल जिसका ऐसा किया गया और चं-

द्रमा क्षीप्रता युक्त किया गया पीछे पूर्ण किया गया उनको कुपित करिकै कौन नाशको न-प्राप्त होय ॥ १४ ॥

लोकान्नन्यान्मृजेयुर्ये लोकपालाश्च कोऽपिताः ॥ देवान्कुर्युरदेवां  
श्च कः क्षिण्वंस्तान्समृन्धुयात् ॥ १५ ॥ यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लो  
का देवाश्च सर्वदा ॥ ब्रह्मैव धनं येषां को हि स्यात्तान् जिजोविषुः

टीका—जे स्वर्ग आदि लोकोंको तथा लोकपालोंको दूसरे उत्पन्न कर सक-  
ते हैं औ देवताओंको शापसे मनुष्य आदि करते हैं उनको पीडा देकर कौन स-  
मृद्धिको प्राप्त होय ॥ १५ ॥ जिन यजन याजन करनेवाले ब्राह्मणोंका आश्रय  
ले करि अग्निमे छोड़ी हुई आहुति इस न्यायसे पृथिवी आदि लोक और देवता  
स्थितिको प्राप्त होते हैं और वेदही जिनके अभ्युदयका साधन होनेसे और या-  
जन अध्यापन आदिसे जिनके धनका उपायहै उनको जीवनेकी इच्छा करता  
हुआ कौन मारै ॥ १६ ॥

अविद्वान्श्च विद्वान्श्च ब्राह्मणोऽदेवतं महत् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च य  
थाग्निं देवतं महत् ॥ १७ ॥ श्मशानेष्वपि तेजस्वी पांवको नैर्वदु  
ष्यति ॥ दूर्यमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ १८ ॥

टीका—जो ऐसेहै तो विद्वान् ब्राह्मणका सेवन करै इसपर कहते हैं ॥ जैसे  
आहित और अनाहित अग्निबड़ी देवताहै ऐसेही मूर्ख तथा विद्वान् ब्राह्मण उत्कृ  
ष्ट देवता है ॥ १७ ॥ जैसे बड़ा तेजस्वी अग्नि श्मशानमें मुर्दोंके जलानेपरभी न-  
ही दूषित होताहै किंतु फिरभी यज्ञोंमें होम किया गया बढ़ताहै ॥ १८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥ सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परं  
मं देवतं हि तत् ॥ १९ ॥ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः  
ब्रह्मैव संनिर्यन्त स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ २० ॥

टीका—ऐसे ब्राह्मण यद्यपि संपूर्ण कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होताहै तिसपरभी  
सब भान्नि पूज्यहै कारण यह है कि वे उत्कृष्ट अर्थात् सबसे बड़े देवताहैं ॥ १९ ॥  
ब्राह्मणोंको सब भान्ती पीडा देनेवाले क्षत्रियोंको शाप अभिचार आदिसे ब्राह्मणही  
दंड देनेवाले हैं जिह्से क्षत्रिय ब्राह्मणसे हुआहै क्योंकि ब्रह्मकी वाहोसे उत्पन्नहै २०

अथोऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रयं तेजं

स्वासु यो निषु शाम्यति ॥२१॥ नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म  
वर्धते ॥ ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चासुत्रं वर्धते ॥ २२ ॥

टीका—जल ब्राह्मण और पशुपाणसे अग्नि क्षत्रिय और शस्त्र उत्पन्न हुए उनका वेज सर्वत्र जलाना तिरस्कारकरना और काटना रूप कर्म करता है अपने करण जल ब्राह्मण और पाषाणमें दाहना तिरस्कार और छेदन रूप-कार्य नहीं करता है ॥ २१ ॥ शांति पुष्टता और व्यवहार देखना आदि धर्म न होनेसे ब्राह्मण रहित क्षत्रिय नहीं बढ़ता है ऐसेही क्षत्रिय रहित ब्राह्मण भी नहीं-बढ़ता है क्योंकि रक्षा विना यज्ञ आदि कर्म नहीं होसकते हैं क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपसमें संबंध रखतेही हैं इस लोक तथा परलोकमें धर्म अर्थ काम तथा मोक्षकी प्राप्तिसे वृद्धिको प्राप्त होता है दंडके प्रकरणमें तो यह ब्राह्मणकी स्तुति है-अपराधी भी ब्राह्मणोंके लघु दंडके प्रयोगमें नियमके लिये है ॥ २२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥ पुत्रे राज्यं समामृज्य  
कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ २३ ॥ एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ॥  
हितेषु चैवं लोकस्य सर्वान् मृत्यान्नियोजयेत् ॥ २४ ॥

टीका—जब अनिष्टके देखनेसे अथवा चिकित्साके योग्य नहीं ऐसे रोगसे जब आसन्नमृत्यु होय तब महा पातकीके धनसे भिन्न विनियोग किये हुए सेवाकी सब दंडका धन ब्राह्मणोंको देकर पुत्रको राज्य सौंपि निकटमृत्यु पुरुष अधिक फलके पानेके लिये संग्राममें प्राण छोड़े संग्रामका संभव न होय तो अनशन कहिये न खाने आदिसे भी छोड़े ॥ २३ ॥ ऐसे तीन अध्यायोंमें कहे हुए राजधर्मोंसे व्यवहार करता हुआ राजा सदा यज्ञसे मृत्योंको प्रजाके हितोंमें लगाने ॥ २४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिर्भूक्तो राज्ञः सनातनः ॥ इमं कर्मविधिं विद्या  
क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥ २५ ॥ वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दार  
परिग्रहम् ॥ वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैवं रक्षणे ॥ २६ ॥

टीका—परंपरासे चले आनेसे नित्य यह राजाके कर्मकी विधि सब कही अब वैश्य शूद्रोंके क्रमसे जो आगे कहा जायगा ऐसा कर्मका अनुष्ठान जानै ॥ २५ ॥ किया गया है यज्ञोपवीत तक संस्कार जिसका ऐसा वैश्य विवाह आदिकों करि-  
कै जो आगे कही जायगी ऐसी जीविकामें खेती आदि कामके लिये पशुओंके पालनेमें सदा लगा रहै ॥ २६ ॥

प्रजापतिर्ह वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥ ब्राह्मणाय च राज्ञे च  
सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ २७ ॥ न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षयं पशू  
निति ॥ वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ २८ ॥

टीका—जिस्से ब्रह्माने पशुओंको उत्पन्न करिकै रक्षाके लिये वैश्यको दिये प्र-  
संगसे यह कहाँहै इस्से वैश्य करि पशुरक्षा करनेयोग्यहै यह पहलेका अनुवादहै  
और संपूर्ण प्रजाको उत्पन्न करिकै ब्राह्मणके लिये और राजाके लिये रक्षाके नि-  
मित्त दी यह प्रसंगसे कहा ॥ २७ ॥ पशुओंकी रक्षा न करौं यह इच्छा वैश्यको  
कभी न करनी चाहिये इस्से खेती आदि जीविकाके होनेपरभी वैश्यको पशुओं-  
की रक्षा अवश्य करनी चाहिये वैश्यको पशुकी रक्षा करने पर दूसरेसे पशुकी  
रक्षा न करवानी चाहिये ॥ २८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥ गर्न्धानां च रसा  
नां च विद्यादुर्धवलाबलम् ॥ २९ ॥ बीजानामुत्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदो  
षगुणस्य च ॥ मानयोगं च जीनीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३ ॥

टीका—मणि मोती मूगा लोह वस्त्र और कपूर आदि गंधोका और नोन आदि  
रसोंका उत्तमप्रमध्यमोंका देशकालकी अपेक्षासे मोलका बढ़ना घटना वैश्य जानै २९  
सब बीजोंके बोनेकी विधिका जाननेवाला होय अर्थात् यह बीज इस कालमें बोया  
हुआ ऊंगता है इसमें नही इस भांति वैसेही यह ऊपरहै और यह धान्यका देने-  
वाला है इत्यादि खेतके गुण दोषका जाननेवाला होय और प्रस्थ द्रोण आदि  
मानके तथा तुलाके सब उपायोंको तत्त्वसे जानै जिसमें दूसरा न ठगै ॥ ३३ ॥

सारसारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥ लभालाभं च  
पर्ण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ३१ भृत्यानां च भृतिं विद्याद्वापांश्च  
विविधान् नृणाम् ॥ द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३२ ॥

टीका—यह बढ़काहै यह घटकाहै इस भांति एक जातिकेभी द्रव्योंका विशेष  
जानै ऐसेही पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंकाभी अर्थात् कहां क्या थोडा मोलहै क्या-  
बहुत मोल है इत्यादिक देशके गुण दोष जानै और वेचनेकी वस्तुओंकाभी कि  
इतने कालमें इतना घट होगा अथवा नफा होगा यह जानै तथा इस देशमें और  
इस कालमें तृण जल जव आदिसे पशु बढ़ते हैं और इस्से क्षीण होते हैं इसको  
भी जानै ॥ ३१ ॥ गौओंके पालनेवालेको यह और भैसोंके पालनेवालेको यह

देना चाहिये इस भाँति देशकालके अनुरूप धेन जानै और गौड दक्षिणी आदि मनुष्योंकी नाना प्रकारकी भाषा बेंचनेके लिये जानै वैसेही यह वस्तु ऐसे रक्खी जाती है इसके साथ बहुत कालतक रहती है इसको जानै तैसेही यह वस्तु इस देशमें और इस कालमें इतनेमें बेची जाती है इसकोभी जानै ॥ ३२ ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमे-  
वं प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ॥  
शुश्रूषेवं तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३४ ॥

टीका—धर्मसे दोष सैकरे आदि कहे हुए प्रकारसे धनकी वृद्धिमें बड़ा यत्न करे और सुवर्ण आदि दानकी अपेक्षा प्राणियोंको अन्नही देवे ॥ ३३ ॥ शूद्रका तो वेदके जाननेवाले और अपने धर्मके करनेसे, यशकरि युक्त - गृहस्थ ब्राह्मणोंकी जो सेवा है वही उत्कृष्ट स्वर्ग आदि कल्याणकारक धर्म है ॥ ३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ॥ ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्ट-  
ष्टां जातिमश्नुते ॥ ३५ ॥ एषोऽनार्पदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः  
शुभः ॥ आपद्यपि हि यंस्तेषां क्रमस्तन्निबोधत ॥ ३६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

टीका—बाहरी और भीतरी शौच करि युक्त और अपनी जातिकी अपेक्षा-से ऊँचे द्विजातिकी सेवा करनेवाला मधुर बोलनेवाला अहंकार रहित और सु-ख्यता करि ब्राह्मणका आश्रय लेनेवाला और ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वै-श्यका आश्रय लेनेवाला शूद्रभी अपनी जातिसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होता है ३५ आपत्ति रहित समयमें चारो वर्णोंके कर्मकी शुभविधिरूप यह धर्म कहा और आपत्तिमें जो उनका धर्म है उसको संकीर्ण मुननेके उपरांत क्रमसे सुनिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टानुयामिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## अथ दशमोऽध्यायः ।

अधी यीरस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मण-  
स्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वैत्यु-  
पायान्यथाविधि ॥ प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैवं तथा भवेत् ॥ २ ॥



मो नृणाम् ॥ वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे अनुलोमोंको कहिके प्रतिलोमोंको कहते हैं ॥ क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें जातिसे सूननाम पुत्र होता है और वैश्यसे यथाक्रम क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें मागध और वैदेहनाम पुत्र होते हैं इनकी वृत्तियाँ मनुही करि कही जायगी ॥ ११ शूद्रसे वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें क्रमसे अयोगव क्षत्ता और मनुष्योंमें अध-म चांडाल ये वर्णसंकर होते हैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ॥ क्षन्तुवैदेहकौ तद्वं  
त्प्रतिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥ पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणो  
क्ता द्विजन्मनाम् ॥ ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

टीका—एकांतरभी वर्णमें ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ और क्षत्रियसे शूद्रकी कन्यामें उग्र ये दोनो अनुलोमतासे जैसे स्पर्श आदिके योग्य हैं तैसेही एकांतरमें प्रतिलोम उत्पन्न होनेपरभी शूद्रसे क्षत्रियामें क्षत्ता वैश्यसे ब्राह्मणीमें वैदेह ये दो-नोभी स्पर्शके योग्य जानने योग्यहैं एकांतर उत्पन्नोके स्पर्श आदिकी आज्ञासे अनंतर उत्पन्न सूरत मागध और आयोगवका स्पर्श आदिका योग्यत्व सिद्ध होता है इससे चांडालही एक प्रतिलोमज स्पर्श आदिमें निषेध किया जाता है ॥ १३ ॥ जे द्विजातियोंके अनंतर एकांतर और जातिकी स्त्रियोंमें अनुलोमतासे उत्पन्न पहले कहे गये पुत्र उणको हीन जातिकी माताके दोषसे माताकी जातिसे व्यप-देश्य कहिये कहनेयोग्य कहते हैं माता पितासे भिन्न संकीर्ण होनेपरभी माताका-व्यपदेश कहना माताकी जातिके संस्कार आदि धर्मकी प्राप्तिके लिये है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ॥ आभीरोऽम्बष्ठकन्या  
यामायोगव्यां तु धिग्वणः ॥ १५ ॥ आयोगवश्च क्षत्ता च चाण्डाल  
श्चार्धमो नृणाम् ॥ प्रतिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रियः ॥ १६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न उग्र कन्या होती है उसमें ब्राह्मणसे आवृतनाम पुत्र होता है और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न अंबष्ठनाम कन्या ब्राह्मणसे आभीरनाम कन्या पुत्र उत्पन्न होता है शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगवनाम कन्यामें ब्राह्मणसे धिग्वणनाम पुत्र होता है ॥ १५ ॥ आयोगव क्षत्ता और चांडाल ये मनुष्योंमें अधमहैं ये तीनों व्युत्क्रम कहिये उलटेपनमे वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणी स्त्रियोंमें पुत्रके कार्यसे रहित तीनों शूद्रसे उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एवं तु ॥ प्रतीपमेते जायन्ते पं  
रेण्यपसंदास्त्रियः ॥ १७ ॥ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति  
पुक्कसः ॥ शूद्राजातो निषाद्यां तु संवै कुकुटकः स्मृतः ॥ १८ ॥

टीका—क्षत्रिया और ब्राह्मणीसे मागध और वैदेह और क्षत्रियसे ब्राह्मणीसे  
सूत इस प्रकार अतिलोभतासे औरभी तीनि पुत्र कार्यसे रहित उत्पन्न होते हैं  
॥ १७ ॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न जातिसे पुक्कस होता है और निषादीमें शूद्रसे  
जो उत्पन्न हुआ वह कुकुटक नाम कहा गया ॥ १८ ॥

क्षत्रुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥ वैदेहकेन त्वम्बं  
ष्ट्यामुत्पन्नी वेण उच्यते ॥ १९ ॥ द्विजातयः सवर्णासु जन्मयन्त्य  
व्रतास्तु यान्तात्सर्ववित्रीपरिभ्रष्टान्वात्यानि ति विनिर्दिशेत् २०

टीका—शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र क्षत्ता होता है और क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न  
पुत्री उग्रा होती है उस क्षत्तासे उग्रामें उत्पन्न पुत्र श्वपाक कहा जाता है और वै-  
देहकसे तौ अवंष्टीमें और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न कन्यामें वेण कहा जाता है ॥  
॥ १९ ॥ द्विजाति सवर्णा स्त्रियोंमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं वे जो यज्ञोपवीत  
कर्मसे हीन होते हैं तौ उन यज्ञोपवीत न किये हुएओंको व्रात्य इस नामसे कहै  
अत ऊर्ध्व त्रयोप्येते यहभी कहा हुआ व्रात्यका लक्षण है यहभी अतिलोभज पुत्रके समा-  
न अयोग्य पुत्रत्व दिखानेके लिये इस संकीर्ण प्रकरणमें अनुवाद किया गया २०

व्रात्याक्षुर्जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ॥ आवन्त्यवाटधा-  
नौ च पुष्पधः शैख एवं च ॥ २१ ॥ झल्लो मल्लश्च राजन्याद्रात्या-  
निच्छिविरेवं च ॥ नटश्च करणश्चैवं खसो द्रविड एवं च ॥ २२ ॥

टीका—व्रात्य ब्राह्मणसे सवर्णा ब्राह्मणीमें पापस्वभाव भूर्जकंटकनाम उत्प-  
न्न होता है तैसेही आवन्त्य; वाटधान, पुष्पध, और शैख, उत्पन्न होते हैं एकही  
के ये देशभेदसे प्रसिद्धनाम हैं ॥ २१ ॥ व्रात्य क्षत्रियसे सवर्णामें झल्ल, मल्ल, निच्छि-  
वि, नट, करण, खस, और द्रविड, नाम उत्पन्न होते हैं येभी एकहीके नाम हैं ॥ २२ ॥

वैश्याक्षुर्जायते व्रात्यात्सुर्धन्वाचार्य एवं च । कार्ष्णश्च विजन्मा  
च मैत्रः सात्वत एवं च ॥ २३ ॥ व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेद-  
नेन च । स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

टीका—ब्राह्म वैश्यसें सवर्णा स्त्रीमें सुधन्वा, आचार्य, कारुण, विजन्म, मैत्र, सात्वत, नाम होते हैं एभी एकहीके नामहै ॥ २३ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर स्त्रीगमन करनेसे और विवाहके योग्य नहीं ऐसी सगोत्र आदिके विवाहसे और उपनयन रूप अपने कर्मके लागसे वर्णसंकर नाम होताहै इससे इस प्रकार-णमें ब्राह्मणोंका कहना योग्यहै ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमौ नुलोमजाः । अन्योन्यव्यतिष-  
क्ताश्चैतां प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥ सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्चै  
नराधमः । मागधः क्षत्रजातिश्चै तथाऽयोगवैवै च ॥ २६ ॥

टीका—जे संकीर्णयोनि हैं और प्रतिलोमोंसे आपसमें संबंध होनेसे उत्पन्न होते हैं उनको विशेष करि कहोंगा ॥ २५ ॥ जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे सूत, वैदेहक, और मनुष्योंमें अधम चाण्डाल, मागध, क्षत्र जातिमें तथा आयोगव ॥ २६

एते षट् सप्तै शान्वर्णा जैनयन्ति स्वयोनिषु । मातृजात्यां प्रसूयन्ते  
प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥ यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्यै  
जायंते । आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तर्था बाह्येष्वपि क्रमात् ॥ २८ ॥

टीका—ये पहले कहे हुए छः प्रतिलोमज अपनी योनियोंमें पुत्रकी उत्पत्ति कर ते हैं जैसे शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगव कहाताहै आयोगवीही माताकी जाति वैश्यामें और प्रवर कहिये श्रेष्ठ क्षत्रिया ब्राह्मणी योनियोंमें और चकारसे अपकृष्ट कहिये हीनभी शूद्रजातिमें सर्वत्र सप्त वर्णोंको उत्पन्न करते हैं पिताकी अपेक्षा सृष्टशता नहीं है किंतु माताकी जातिसे, क्योंकि चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोहीमें पितासे अधिक निंदित पुत्रकी उत्पत्ति आगे कही जायगी ॥ २७ ॥ जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्र इव तीन वर्णोंमेंसे क्षत्रिय वैश्य दो वर्णोंके गमनमें ब्राह्मणकी अनुलोमतासे द्विज उत्पन्न होताहै और सजातीयोंमें तौ द्विज उत्पन्न होताहै ऐसे बाह्योंमेंभी वैश्य और क्षत्रियसे क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रोंमें उत्कर्षका अपक्रम होताहै शूद्रसे उत्पन्न प्रतिलोमकी अपेक्षासे द्विज आदिकोंसे उत्पन्न प्रतिलोमकी प्रशस्नताके लिये यह कहाहै ॥ २८ ॥

ते चापि बाह्यान्सुबहुंस्ततोऽप्यधिकं दूषितान् । परस्परस्य दारे-  
षु जनयन्ति विर्गहितान् ॥ २९ ॥ यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं  
प्रसूयते ॥ तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

टीका—वे तौ अयोगव आदिक छः परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें बहुत अनुलो-  
मतामेंभी अधिक दुष्ट और सत्क्रियासे बहिर्भूत पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे  
आयोगव क्षतजातमें अपनासे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै वैसेही क्षताभी आ-  
योगवीमें आपसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै ऐसेही औरभी प्रतिलोमजोमें दे-  
खना चाहिये ॥ २९ ॥ जैसे ब्राह्मणीमें शूद्र अपकृष्ट चांडालनाम प्राणीको उत्प-  
न्न करताहै, ऐसेही बाह्यचांडाल आदि चारो वर्णोंमें चांडाल आदिकोंसेभी नीच  
पुत्र उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमाना, बाह्या बाह्यतरान्पुनः॥हीना हीनान्प्रसूयन्ते॥  
वर्णान्पञ्चदशैव तु॥३१॥ प्रसाधनोपचारज्ञमंदासं दासंजीवनम्॥  
सैरिन्ध्रं बाणुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

टीका—प्रतिकूल वर्तमान प्रतिलोमज होते हैं और द्विजोंके प्रतिलोमसे उत्प-  
न्नोंसे निकृष्ट होनेके कारण बाह्य शूद्रसे उत्पन्न आयोगव क्षत चांडाल ये तीनि पह-  
ले श्लोकसे अनुवृत्ति किये जानेपर चातुर्वर्ण्यमें और स्वजातिमें ये छः सदृशान् यहां  
सजातिमें उत्पन्नभी पितासे गार्हित होनेका कथन होनेसे अपनी अपनी अपेक्षासे ब्रा-  
ह्मन्तरोंको प्रत्येक पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे आयोगव चारो वर्णोंकी  
स्त्रियोंमें और आयोगवीमें आपसे निकृष्ट पांच पुत्रोंको उत्पन्न करताहै ऐसे क्षत चां-  
डालभी प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ऐसे बाह्य तीनि पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न  
करते हैं तैसे अनुलोमजोंसे हीन वैश्य क्षत्रियसे उत्पन्न मागध वैदेह सूत अपनी  
अपेक्षासे हीन पहलेके समान चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोंमें और सजातिमें प्रत्येक पांच  
पुत्रोंको उत्पन्न करते हुए हीनभी तीनि पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं इस भां-  
ति ये तीस होते हैं अथवा बाह्य शब्द और हीन शब्द छः प्रतिलोमजोहीको कहताहै  
यहां बाह्य चांडाल क्षत्र आयोगव वैदेह मागध सूत छः यथोत्तर कहिये आगे आगे  
का उत्कर्ष होनेसे प्रतिलोमतासे स्त्रियोंमें वर्तमान बाह्यांतर पंचदशही पुत्रोंको उ-  
त्पन्न करते हैं सो जैसे चांडाल क्षत्र आदि पांच स्त्रियोंमें क्षता आयोगवी आदि  
चारिमें और अयोगव वैदेह आदि तीनिमें वैदेह मागधी सूतीमें और मागध सू-  
तीमें सूत तौ प्रतिलोम न होनेसे प्रतिलोमतासे उत्पन्न करताही है ऐसे ये प्रति-  
लोमतासे पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करताहैं औ पुनः शब्दके कहनेसे हीन सूत  
आदि चांडाल तक छः यथोत्तर कहिये आगे आगे अपकर्ष कहिये कम होनेसे और  
आनुलोम्यसेभी प्रतिलोमकी कही हुई रीतिसे अपनी अपेक्षा हीन पंद्रहही पुत्रों-  
को उत्पन्न करते हैं इस भांति ये तीस होते हैं ॥ ३१ ॥ केश चरण आदि प्रसाध-

न कहिये शोभित करना उसके उपचारके जाननेवाले और अदास् कहिये उच्छिष्ट खाने आदि दासके कर्मसे रहित और देहके दाबने आदि दासकर्मसे जीवेवाले और पाशमें बाधनेसे मृग आदिके वधना न दूसरी वृत्तिके जीनेवाले जिसका सैरिधनामहै ऐसेको मुखबाहूरुपज्जानां इस श्लोकमें जो आगे कहा जायगा ऐसा कस्यु आयोगव स्त्रीकी जातिमें और शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्नास्त्रीमें उत्पन्न करताहै इसका वह मृग आदि मारना देव पितृ और औषधके लिये जानना चाहिये ३२

मैत्रेयकं तु वै देहो माधूकं संप्रसूयते॥नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टा  
ताडोऽरुणोदये ॥३३॥ निर्षादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविन  
म् ॥ कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

टीका—वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न वैदेह आयोगवीमें मैत्रेयनाम मीठा बोलने-  
वाले पुत्रको उत्पन्न करताहै जो प्रातःकाल घंटा बजाकर जीविकाके लिये राजा  
आदिकोंकी स्तुति करताहै ॥३३॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पहले कहा हुआ नि-  
षाद आयोगवीमें जिसका दूसरा नाम दाश ऐसे नौकाके व्यवहारसे जीविका  
करने वाले मार्गवनाम पुत्रको उत्पन्न करताहै जिसको आर्यावर्त्त देशके रहनेवाले  
कैवर्त्तनामसे कहते हैं ॥ ३४ ॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हिताग्राशनासु च ॥ भवन्त्यायोगवीष्वेते  
जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥ कारावरो निर्षादास्तु चर्मकारः  
प्रसूयते ॥ वैदेहीकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥

टीका—सौरिध्र, मैत्रेय, मार्गव, हीन जाति ये तीनो मृतकके वस्त्र पहिरनेवा-  
ली, कूर, उच्छिष्ट खानेवाली आयोगवियोंमें पिताके भेदसे भिन्न पुत्र होते हैं ॥३५॥  
निषादसे वैदेहीमें उत्पन्न हुआ कारावर चर्मका काटनेवाला उत्पन्न होताहै औश-  
नसमें कारावरोका चर्मका काटनाही जीविका कही है और वैदेहक सौरिध्र्य भेद  
नामग्रामके बाहर बसनेवाले है ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वंक्सारव्यवहारवान् । आहिण्डको नि  
र्षादेन वैदेह्यामेव जायते ॥३७॥ चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यस-  
नवृत्तिमान् ॥ मुक्कस्यां जायते पापः सदा संज्ञनगर्हितः ॥ ३८ ॥

टीका—वैदेहीमें चांडालसे पाण्डुसपाक, नाम बांसोंके व्यवहारसे जीविका

करनेवाला उत्पन्न होता है और निषादसे वैदेहीमें आहिंडक नाम पुत्र होता है इसकी सौ बंधनके स्थानोंमें बाहरी रक्षा करनेसे आहिंडकोंकी वृत्ति औशनसमें कही है माता पिताके समान होनेपर भी कारावर और आहिंडककी जीविकाके भेदसे व्यपदेशका भेद है ॥ ३७ ॥ निषादसे शूद्रा में उत्पन्न पुष्कसीमें चांडालसे उत्पन्न सोपाक नाम पापात्मा सदा साधुओं करि निंदित मारणके योग्य अपराधका मूल मारनेयोग्यका राजाकी आज्ञासे मारना जिसकी जीविका है ऐसा उत्पन्न होता है ॥ ३८

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यार्वसायिनम् ॥ शर्मज्ञानगोचरं सूनू-  
ते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥ ३९ ॥ संकरे जातं यस्त्वेताः पितृमातृप्र-  
दर्शिताः ॥ प्रच्छन्ना वा भ्रकांशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥ ४० ॥

टीका—निषादी चांडालसे अन्त्यावसायी नाम चांडाल आदिकोंसे भी अत्यंत दुष्ट श्मशानमें बसनेवाले उसीकी जीविका करनेवालेको उत्पन्न करती है ॥ ३९ ॥ वर्णसंकरोंके मध्ये ये जातियाँ इसकी यह माता और यह पिता और इस जातिका हुआ इस भांति पिता माताके कहिकर दिखाई तेसेही गूढ़ अथवा प्रकट उनकी जातिके कहे हुए कर्मोंके करनेसे जाननेयोग्य हैं ॥ ४० ॥

संजातिजानन्तरजाः षड्मुता द्विर्जधर्मिणः ॥ शूद्राणां तु सधर्मा-  
णः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ ४१ ॥ तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छं-  
न्ति युगेयुगे ॥ उत्कर्ष चापकर्ष च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

टीका—द्विजातियोंकी समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न तैसेही अनुलोमसे उत्पन्न जैसे ब्राह्मणसे क्षत्रिया और वैश्यामें और क्षत्रियसे वैश्यामें ऐसे छः पुत्र द्विजधर्मी यज्ञोपवीत करनेयोग्य हैं और द्विजातिसे उत्पन्न भी सूनू आदि प्रतिलोमज होते हैं वे शूद्रधर्मी है इनका यज्ञोपवीत नहीं होता है ॥ ४१ ॥ सजातिसे उत्पन्न और अनंतर जातिसे उत्पन्न तपके प्रभावसे विद्वामित्रके समान और बीजके प्रभावसे ऋष्यशृंग आदिके सम्मन सतयुग त्रेता आदि युगोंमें मनुष्योंके मध्यमें जातिके उत्कर्ष कहिये उन्नतिको प्राप्त होते हैं और आगे कहे हुए कारणसे अपकर्ष कहिये हीनताको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ॥ वृषलत्वं गता स्त्री-  
के ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥ पौण्ड्रकाश्चैद्रविडाः काम्बोजा य-

वर्णाः शूकाः ॥ पारदापलहवाश्चीना किराता दंडदाः शूशाः ॥४४॥

टीका—ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय आदि जातें यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोप-  
से और ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रायश्चित्त आदिके न होनेके कारण हो-  
लै होलै लोकमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ पौंड्रक, औंड्र, द्रविड, कांबोज,  
जवन, शक, पारद, अपलहव, चीन, किरात, दंड, सश, ये सब क्रियाके लो-  
पसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

मुखंवाहूरुपज्ञानां यां लोके जातयो बहिः ॥ म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः  
सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥४५॥ ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंस-  
जाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेवं कर्मभिः ॥४६॥

टीका—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंकी जो जातें हैं वे क्रियाके लोप आदिसे  
बाह्य होगई और म्लेच्छभाषाके अथवा आर्यभाषाके बोलनेवाले वे सब दस्यु  
कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥ जे द्विजोंकी अनुलोमतासे उत्पन्न हैं ये छः अपसद कहे  
गये हैं उनकाभी पितासे नीचताके कारण अपसद शब्द करि पहले कहनेसे जा-  
नना चाहिये और जे अपध्वंसज प्रतिलोमज हैं वेभी द्विजातिके उपकार कही आ-  
गे कहे हुए निन्दित कामोंसे जीवें ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वसाराथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ॥ वैदेहकानां स्त्रीकार्यं  
मागधानां वणिज्यथः ॥४७॥ मत्स्यघातो निर्षादानां तष्टिस्त्वा-  
योगवस्य च ॥ मेदांघ्रिचुम्बुमदूनामारण्यपशुर्हिसनम् ॥ ४८ ॥

टीका—सूतोंको जीविकाके लिये घोड़ोंका सिखाना जोतना आदि सारथीका  
कर्म है और अंबष्ठोंका रोगशांति आदि चिकित्सा, और वैदेहकोंका अंतःपुरकी  
रक्षा करना और मागधोंका स्थलमार्गसे वाणिज्य करना कर्म हैं ॥ ४७ ॥ कहे  
हुए निर्षादोंका मछली मारना और अयोगवका काष्ठ छीलना और मेद अंघ्रि चुं-  
चु, तथा मद्गु, ओंका जंगली पशुओंका मारना चुंचु और मद्गु, वैदेहक और बंदी-  
की स्त्रियोंमें ब्राह्मणसे उत्पन्न बौधायन करि कहे हुए जानने चाहिये क्षत्रियसे  
शूद्रामें उत्पन्न बंकीकी स्त्री उसी उक्तिसे ग्रहण करनेयोग्य है ॥ ४८ ॥

क्षत्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ॥ धिग्वणानां चर्मकार्यं  
वेणानां भाण्डवादनम् ॥४९॥ चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलैर्लूषवनेषु  
च ॥ वंसेयुरेते विज्ञाना वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥

टीका—क्षत्र आदिकोंका बिलमें बसनेवाले गोह आदिका मारना और बांधना और धिगवणोंका चर्मका बनाना और वेचना और वेणोका कांस्य मुख आदि बाघ भांडोका बजाना ॥ ४९ ॥ ग्राम आदिके समीपप्रसिद्ध वृक्ष चैत्यद्वयहै उसके नीचे और श्मशान पर्वत तथा वनके समीप ये प्रकाशक अपने कर्मोंसे जीविका करते हुए वास करें ॥ ५० ॥

चण्डालंश्चंपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥ अपपात्राश्चैर्कर्तव्या धनमेषां श्वर्गदभम् ॥ ५१ ॥ वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥ कर्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥

टीका—चाण्डाल तथा श्वपंचोंका निवास ग्रामके बाहर होय और ये पात्र रहित कर्तव्य हैं और जिस लोह आदिके पात्रमें उन्होंने भोजन किया होय वह पात्र संस्कार करिके भी नहीं ग्रहण करनेयोग्य है और इनका धन कुत्तेगधेहैं बैल आदि नहीं और कपड़े तो इनके मृतकके वस्त्रहैं और फूटे सरवाआदि मट्टीके पात्रमें भोजन और लोहेके कूड़े आदि इनका गहनहै और सदा भ्रमण करना इनका कामहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥ व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥ अन्नमेषां पराधीनं द्रव्यं स्याद्विभ्रं भाजने ॥ रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

टीका—धर्म करनेके समय चाण्डाल और श्वपाकोंके साथ दर्शन आदि व्यवहार न करें और उनका तो ऋण देना धनलेना आदि व्यवहार तथा विवाह समान जातिवालोंके साथ आपसमें होय ॥ ५३ ॥ इनका अन्न पराये आधीन करना चाहिये साक्षात् इनको न देवै किंतु फूटे पात्रमें नौकरोसें दिवावै और वे तो रात्रिके समय ग्राम तथा नगरमें न घूमें ॥ ५४ ॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ॥ अंबान्धवं चैव शवं निःहरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥ वध्यंश्च हन्युः संततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ॥ वध्यवासांसि गृहीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

टीका—दिनके समय ग्राम नगर आदिमें खरीदने बेचने आदि कामके लिये राजाकी आज्ञासे चिन्ह करि अंकितहो विचरें और जिसका कोई स्वामी नहीं



है ऐसे मृतकको ग्रामसे लेजाय यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ५५ ॥ मारनेयोग्योंको शास्त्रकी आज्ञासे शूली आदिपर चढ़ाने करि सदा राजाकी आज्ञासे मारि और उनके कपड़े गहने आदि ले लें ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कर्म-  
भिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥ अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निर्ष्क्रि-  
यात्मता । पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

टीका—वर्णसे रहित संकरसे उत्पन्न मनुष्यको जिसको लोग वैसा नहीं जानते हैं इसीसे आर्यके समान और वास्तवमें आर्य नहीं ऐसेको जातिके अनुरूप निन्दित चेष्टाओंसे जो आगे कही जायगी निश्चय करै ॥ ५७ ॥ निष्ठुर होना कठोर बोलना हिंसा करना और शास्त्रमें कहे हुएका न करना संकर जातिके मनुष्यको लोकमें प्रकट कर देते हैं ॥ ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ॥ न कथंचन दुय्योनिः  
प्रकृतिं स्वां जियच्छति ५९ ॥ कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्या  
द्योनिःसंकरः ॥ संश्रयत्येवं तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥

टीका—यह संकरसे उत्पन्न दुष्ट योनि पिताके दुष्ट स्वभावको सेवन करता है वा माताके अथवा दोनोंके यह अपने कारणको कभी नहीं छुपी सकता है ५९ वडकुलमें उत्पन्न हुएभी जिस पुरुषका गुप्त योनि संकर होता है वह मनुष्य थोड़े बहुत पिताके स्वभावका सेवन करताही है ॥ ६० ॥

यत्र त्वेते परिवृंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ॥ राष्ट्रिकैः संहतं द्राष्टुं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणार्थं गैवार्थं वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ॥ स्त्रीवाह्यभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

टीका—जिस देशमें वर्णोंके बिगाड़नेवाले ये वर्णसंकर होते हैं वह देश वहाँ के निवासियों समेत शीघ्र नाशको प्राप्त होता है तिससे राजाको वर्ण संकर दूर करनेयोग्य है ॥ ६१ ॥ गौ ब्राह्मण स्त्री बाह्यक इनमेंसे किसीकी रक्षाके लिये प्राण न्याय तौ प्रतिलोमसे उत्पन्नोंका स्वर्गकी प्राप्तिका कारण है ॥ ६२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं साम्प्रसिकं धर्मं

चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥ शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्  
तप्त्रजायते ॥ अश्रेयाश्श्रेयसी जातिं गच्छन्त्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥

टीका—हिंसाका त्याग, यथार्थ कहना, अन्यायसे पराये धनका न लेना, मृत्ति-  
का जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना, इस भांति चारोवर्णों करि करने-  
योग्य धर्म मनुने कहा है प्रकरणकी. सामर्थ्यसे संकीर्णोंका भी यही धर्म जानने यो-  
ग्य है ॥ ६३ अब तुल्य सवर्णी स्त्रियोंमें यह जो कहा लक्षण है जिसके विनाभी-  
ब्राह्मणत्व आदि दिखानेको कहते हैं ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पारशवनाम वर्ण  
उत्पन्न होता है इस सामर्थ्यसे स्त्री रूप होता है वह स्त्री जो ब्राह्मणको व्याही हुई  
कन्याहीको उत्पन्न करै वह कन्याभी अन्य ब्राह्मण करि व्याही हुई हो बेटीही-  
को जनै वह बेटीभी ओरको व्याही जाय ऐसेही सातमें जन्ममें वह पारशवनाम  
वर्ण बीजकी प्रधानतामें ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है अर्थात् सातमें जन्ममें ब्रा-  
ह्मण होजाता है ॥ ६४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ॥ क्षत्रियाज्जातिमेवं  
तु विद्याद्वैश्यात्तथैव चैव अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणस्तु यदृच्छ-  
या ॥ ब्राह्मण्यामप्यनार्याच्च श्रेयस्त्वं केति चेद्वेत् ॥ ६५ ॥

टीका—ऐसे पहले कही हुई रीतिसे शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त होता है और ब्रा-  
ह्मण शूद्रताको प्राप्त होता है ब्राह्मण यहां ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पारशव जान-  
ना चाहिये वह जो पुरुष केवल शूद्राके व्याहसे और पुत्रहीको उत्पन्न करै वह  
भी ऐसे सातमें जन्मको प्राप्त केवल शूद्रताको बीजके निकर्षके कारण क्रमसे प्रा-  
प्त होता है ऐसे क्षत्रियसे और वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्नको उत्कर्ष अपकर्ष जानै और  
क्षत्रियसे उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें जानना चाहिये और वैश्यसे उ-  
त्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष तीसरे जन्ममें जानने योग्य है इसी न्यायसे ब्राह्मणसे वै-  
श्यामें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें और क्षत्रियामें उत्पन्नके तीसरेमें  
और क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्नके तीसरेहीमें जानने योग्य हैं ॥ ६५ ॥ एक विना  
व्याही हुई भी शूद्रामें ब्राह्मणसे यह च्छा करि उत्पन्न और दूसरा ब्राह्मणीमें शूद्रसे  
उत्पन्न इन दोनोंमें कौनसा उत्पन्न अच्छा है कभी यह संदेह होय और संशयका  
कारण तो जैसे बीजकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न साधु शूद्र होता है ऐ-  
सेही क्षेत्रकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणीमें भी शूद्रसे उत्पन्न यह क्या बात है जो सा-  
धु शूद्र न होय ॥ ६६ ॥

जातो नार्यामनार्यायामार्यार्दायो भवेद्गुणैः ॥ जातोऽप्यनार्यार्दा  
र्यायामनार्य इति निश्चयः ॥ ६७ ॥ तावुं भावप्यसंस्कार्याविति ध  
र्मो व्यवस्थितः ॥ वैगुण्याज्जन्मनः पूर्वं उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥

टीका—वहां निश्चय करते हैं ॥ शूद्रास्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न स्मृतिमें कहे हुए  
किये गये पाक यज्ञ आदि गुणों करिके युक्त श्रेष्ठ होता है और शूद्रसे ब्राह्मणीमें  
उत्पन्न प्रतिलोमतासे उत्पन्न होनेके कारण शूद्रोंके धर्ममेंभी अधिकारी न होनेसे  
श्रेष्ठ नहीं है यह निश्चय है ६७ पारशव और चांडाल दोनो यज्ञोपवीत करनेयोग्य  
नहीं हैं यह शास्त्रकी मर्यादा व्यवस्थित है पहला पारशव शूद्रासे उत्पन्न होनेके  
कारण जातिकी विगुणतासे उपनयन करनेयोग्य नहीं है प्रतिलोमतासे शूद्र  
करि ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेसे दूसरा हुआ इस्से उपनयन योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

सुबीजं चैवं सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ॥ तथाऽर्यार्जात आर्यायां  
सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥ बीजमे'के प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ॥  
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रे'यं तु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥

टीका—जैसे सुंदर बीज सुंदर खेतमें उत्पन्न भरापूरा होता है ऐसेही द्विजा-  
तसे सवर्णा, द्विजातिकी स्त्रीमें अनुलोमतासे क्षत्रिया वैश्यामें उत्पन्न वह वर्णसं-  
स्कार और क्षत्रियवैश्यसंस्कार और सब श्रौत स्मार्तसंस्कारके योग्य है और  
पारशव तथा चांडाल संस्कार योग्य नहीं है यह पहले कहे हुएकी दृढताके  
लिये कहा है ॥ ६९ ॥ कोई पंडित बीजकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि हरिणी आ-  
दिमें उत्पन्न ऋष्यशृंग आदिका ब्रह्ममुनित्व देखा जाता है और दूसरे फिरि क्षे-  
त्रकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि क्षेत्रके स्वामीका पुत्रत्व देखा जाता है और अन्य  
फिरि बीज क्षेत्र दोनोकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि सुबीजकी सुक्षेत्रमें समृद्धि  
देखी जाती है इस मतभेदमें वक्ष्यमाण यह व्यवस्था जाननी चाहिये ॥ ७० ॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैर्विनिर्जयति ॥ अबीजकर्मपि क्षेत्रं केवं  
लं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥ यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋष  
योऽभवन् ॥ पूजितार्थं प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशंस्यते ॥ ७२ ॥

टीका—ऊपरके प्रदेशमें बोया हुआ बीज फलको न देकर बीचहीमें नष्ट हो-  
जाता है और सुंदरभी खेत बीज रहित केवल स्थण्डिलही होता है ध्यान्य नहीं उत्प-

न होता है तिससे प्रत्येककी निंदासे सुबीजं चैवं सुक्षेत्रे यह पहले कहा हुआ है तिससे दोनोकी मुख्यता अभिमत है ॥ ७१ ॥ अब बीजकी प्राधान्यताके पक्षमें दृष्टांत कहते हैं जिससे बीजकी प्रधानता करिके तिर्यक् जाति हरिणी आदिमें उत्पन्नभी ऋण्यशृंग आदि मुनिवृत्तको प्राप्त हुए और पूजित हुए और नमस्कारकी योग्यता आदिसे वेदके ज्ञान आदिसे प्रशस्त वाणी करि स्तुति किये गये तिससे बीजकी प्रशंसा करते हैं ऐसे बीजकी प्रधानता हुई बीज और योनिके मध्यमें बीजोत्कृष्ट जाति प्रधान होती है यह भली भांति जानना चाहिये ॥ ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्य चानार्यकर्मिणम् ॥ संप्रधार्याब्रवीद्धाता  
नं समौ नासमावि<sup>२</sup>ति ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये<sup>३</sup> स्वकर्म  
प्यवस्थिताः ॥ ते<sup>४</sup> सम्यगुपजीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ७४ ॥

टीका—द्विजातिके कर्म करनेवाले शूद्रको और शूद्रके कर्म करनेवाले द्विजातिको ब्रह्माने विचार करिके न सम हैं न असम हैं यह कहा जिससे द्विजातिके कर्म करनेवालाभी शूद्र द्विजातिके समान नहीं होता है क्योंकि उस अनधिकारीका द्विजातिके कर्मोंके करनेमें उनकी समता नहीं है ऐसेही शूद्रके कर्म करनेवालाभी द्विजाति शूद्रके समान नहीं होता है क्योंकि निषिद्धके सेवनसे जातिके उत्कर्षका नाश नहीं होता है और न असम हैं क्योंकि निषिद्ध आचरणसे दोनोकी समता होती है तिससे जिसको जो कर्म गृहीत है उसको वह न करना चाहिये यह संकर पर्यंत वर्णोंके धर्मका उपदेश है ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंके आपद्धर्मका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं ॥ जे ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्तिके कारण ब्रह्मके ध्यानमें निष्ठ है और अपने कर्मोंके करनेमें लगे हैं वे आगे कहे जायगे ऐसे अध्यापन आदि षट् कर्मोंको क्रमसे भलीभांति करें ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं वार्जनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चैवं षट् क  
र्मोप्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥ पण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि  
जीविका ॥ याजनाध्यापने चैवं विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥

टीका—उन कर्मोंको कहते हैं ॥ अंगसहित वेदका पढ़ाना तथा पढ़ना, और यजन, याजन, दान, और प्रतिग्रह ये छः कर्म ब्राह्मणके जानने योग्य हैं ॥ ७५ ॥ इस ब्राह्मणके इन अध्यापन आदि छ कर्मोंमेंसे यजन अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह ये तीनि कर्म जीविकाके लिये जानने योग्य हैं ॥ ७६ ॥

त्रयो धर्मा निर्वर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति। अध्यापनं याजनं च तृतीयं  
यश्च प्रतिग्रहः॥७७॥ वैश्यं प्रति तथैवैते निर्वर्तेरन्नि प्रति स्थितिः।  
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७८॥

टीका—ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियके अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, नाम जीविकाके अर्थ नहीं होते हैं अध्ययन, याग, दान, तौ उसके भी होते हैं॥७७॥ जैसे क्षत्रियके अध्यापन याजन और प्रतिग्रह निवृत्त होते हैं वैसेही वैश्यके भी यह शास्त्रकी व्यवस्था है जिसे मनु और प्रजापति न दोनोने क्षत्रिय वैश्योंप्रति वे जीविका निमित्त कर्म कर्त्तव्यत्वसे कहे ऐसे वैश्यके भी अध्ययन याग और दान होते हैं॥७८॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वाणिक्पशुकृषिर्विशः। आजीवनार्यं धर्मस्तु  
दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥ वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च -  
रक्षणम्। वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

टीका—शस्त्र खड्ग आदि और अस्त्र बाण आदि इनका धारण प्रजाकी रक्षाके लिये क्षत्रियका जीविकाके लिये है और वाणिज्य पशुओंकी रक्षा खेती ये कर्म वैश्यके जीविकाके लिये हैं और इन दोनोंके धर्मके लिये दान अध्ययन और यज्ञ होते हैं॥७९॥ ब्राह्मणका वेद पढ़ाना और क्षत्रियका प्रजाकी रक्षा और वैश्यका वाणिज्य तथा पशुओंकी रक्षा ये इनकी जीविकाके लिये कर्मोंमें श्रेष्ठ हैं८०

अजीवस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा। जीवेत्क्षत्रियं धर्मेण  
सह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥८१॥ उभाभ्यामप्यजीवस्तु कथं स्यादिति  
चेद्भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥

टीका—अब आपद्धर्मोंको कहते हैं॥ ब्राह्मण कहे हुए अध्यापन आदि अपने कर्मसे नित्य कर्मोंका करना और कुटुम्बके पालन पूर्वक न जीविका करि सकता हुआ ग्राम नगरकी रक्षा आदि क्षत्रियके कर्मसे जीविका करे जिसे क्षत्रियका धर्म इसकी निकट वृत्ति है ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण दोनो अपनी और क्षत्रियकी वृत्तिसे न जीविका करता हुआ किस प्रकारसे वर्त्ते यह जो संदेह होय तौ खेती और पशु रक्षाका आश्रय लेकर वैश्य वृत्तिको करे ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा। हिंसाप्राया प-  
राधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ८३ कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः

सद्विगर्हिता । भूमिं भूमिश्यांश्चैवं हन्ति काष्ठमयोर्मुखम् ॥ ८४ ॥

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य वृत्तिसेभी जीविका करता हुआ जिसमें बहुतसे जीवोंकी हिंसा अधिक होती होय ऐसी बलीवर्द आदिके पराधीन खेतीको यत्नसे त्याग करै इसीसे पशुपालन आदिके न होनेमें खेती करनी चाहिये यह देखना चाहिये क्षत्रियोपि इसके कहनेसे यह जाना गया कि क्षत्रियभी अपनी वृत्तिके न होनेपर वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करै ॥ ८३ ॥ यह अच्छी जीविकाहै कोई खेतीको ऐसा मानते हैं परंतु वह जीविका सज्जनों करि निन्दितहै कारण यह है कि हलकुदाल आदि लोहके लगे हुए काष्ठसे भूमिकी और भूमिमें स्थित जीवोंकी हत्या होती है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् । विद्विष्यमुद्धृत्तौद्धारं  
विक्रियं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥ सर्वान् रसान् पोहेत कृतान्नं च तिलैः  
सह । अश्मनो लवणं चैवं पशवो ये न्वमानुषाः ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मण और क्षत्रियको अपनी वृत्तिके न होनेपर धर्ममें कुशलताको छोड़ि जो वैश्य वेचते हैं उन वस्तुओंको आगे कही हुई वर्जन करने योग्य वस्तुओंको छोड़ धन बढ़ानेवाली वस्तु बेचनी चाहिये ॥ ८५ ॥ उन वर्जनीय वस्तुओंको कहते हैं। सब रसोंको तथा सिद्ध अन्न कहिये पूरी आदि तिल पाषाण नोन पशु मनुष्य इन सबोंको न बेचै ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शौण्डीमाविकानि च । अपि चैत्स्युररक्तानि  
फलमूले तथोषधीः ॥ ८७ ॥ अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च  
सर्वशः । क्षीरं शौद्रं दधि धृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

टीका—सब तागोंसे बने वस्त्र कुसुम आदिसे रंगे हुए न बेचै और सन तथा अलसीके तागोंसे बने हुए तथा भेड़के रोमोंसे बने हुए चाहै लालभी न होय तिसपरभी न बेचै तैसेही फल मूल और गुडूची आदिको न बेचै ॥ ८७ ॥ जस्त, लोह, विष, मांस, सोम, दूध दही, घी तेल, गुड, डाम, और सुगंध युक्त सब कपूर आदि माक्षिक, ( शहत ) मोम, इन सबोंको न बेचै ॥ ८८ ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दष्टिर्णश्च वैयांसि च ॥ मद्यं नीलिं च लै  
क्षां चैर्वीश्च कर्षांस्तथा ॥ ८९ ॥ काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्व

यमेवै कृषीवलः। विक्रीणीत तिलान्छून्द्वा नर्ममार्थमचिरस्थितान् ९०

टीका—सब जंगली पशु हाथी घोड़ा आदि और दंष्ट्री कहिये सिंह अदि और पक्षी, मद्य, लाख, और एक खुरवाले घोड़ा आदिकोंको न वेंचै ॥ ८९ ॥ किसान आप जोतनेसे उत्पन्न करि दूसरी वस्तुके साथ मिले हुए तिलोंको उत्पन्न होतेही लाभके लिये कालांतरको न देखि धर्मके निमित्त इच्छासे वेंचै ॥ ९० ॥

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानार्थेदन्यत्कुरुते तिलैः॥ कृमिभूतः श्वविष्टायां  
पितृभिः सह मज्जति ॥ ९१ ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणे  
न च ॥ त्र्यहेण शूद्री भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

टीका—भोजन उवठने तथा दानके सिवाय जौ और निषिद्ध विक्रय आदि जो तिलोंका करताहै वह उस पापसे पितरों समेत कृमि होके कुत्तेकी विष्टामें डूबताहै ॥ ९१ ॥ मांस, लाख, और नौनके वेचनेसे ब्राह्मणो उसी क्षण पतित होताहै और दूधके वेचनेसे तीन दिनोमें शूद्र होजाताहै ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः॥ ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्य  
भावं निर्यच्छति ॥ ९३ ॥ रसा रसे निर्मातव्या न त्वेव लवणं रसेः॥  
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिलं धान्येन तत्समाः ॥ ९४ ॥

टीका—ब्राह्मण कहे हुए मांस आदिकोंसे अन्य निषिद्ध वेचनेकी वस्तुओंको इच्छासे प्रमादके विना दूसरी वस्तुके साथ सात रात्रि तक वेचनेसे वैश्य होजाताहै ॥ ९३ ॥ रस कहिये गुड़ आदि घी आदि रसोंसे बदला करने योग्यहै और न नोनका दूसरे रससे बदला न करै औसिद्ध अन्नका कच्चे अन्नसे बदला करै और तिलोंका धान्यसे बदला करै और धान्यका धान्यसे अर्थात् प्रस्थ प्रमाणसे प्रस्थ इस प्रकार उनके समान बदला करै ॥ ९४ ॥

जीवेदेते न राजन्यः सर्वेणार्थ्यनयं गतः॥ न त्वेव ज्यायसीं वृत्ति  
मभिर्मन्येत कर्हिचित् ॥ ९५ ॥ यो लोभादधमो ज्ञात्या जीवेदुत्कृ  
ष्टकर्मभिः ॥ तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—आपत्तिकी प्राप्त क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये निषिद्धभी रस आदिके वेचनेसे वैश्यके समान जीविका करै और फिर ब्राह्मणकी जीविका कभी न करै के-

वल क्षत्रियही नहीं वैश्य आदिभी अन्य न करें ॥ ९६ ॥ जो निकृष्ट जाति लोभसे उत्कृष्ट जातिके लिये कहे हुए कर्मोंसे जीविका करे उसका सर्वस्व लेकर राजा उसी समय देशसे निकाल देवै ॥ ९६ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारैक्यः स्वनुष्ठितः ॥ परधर्मेण जीवन्द्दि स  
द्यः पतति जातिः ॥ ९७ ॥ वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि  
वर्त्तयेत् ॥ अनाचरन्नकार्याणि निर्वर्त्तते च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

टीका—विगुण कहिये बिगडा हुआभी अपना कर्म करनेको योग्यहै और संपूर्णभी पराया कर्म करना उचित नहीं है जिसे दूसरी जातिके लिये कहे हुए कर्मसे जीविका करता हुआ उसी क्षणसेही अपनी जातिसे पतित होताहै ॥ ९७ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविका करनेको असमर्थ वैश्य द्विजातिकी सेवारूप शूद्रकी और वृत्तिसे उच्छिष्ट भोजन आदिको न करता हुआ वरतै और आपत्तिके दूर होनेपर शूद्रकी वृत्तिसे निवृत्त होय ॥ ९८ ॥

अशकुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजैर्नमनाम् ॥ पुत्रद्वारात्ययं प्रां  
प्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यं  
न्ते द्विजातयः ॥ तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधांश्च १००

टीका—द्विजातिकी सेवा करनेको असमर्थ और क्षुधासे नष्ट होगये हैं पुत्र कलत्र जिसके ऐसा शूद्र सूपकार आदिकोंके कर्मोंसे जीवै ॥ ९९ ॥ जिन कर्मोंके करनेसे द्विजातिकी सेवा होय उन काष्ठतक्षणा आदि कामोंको और शिल्पों और चित्रवना आदि नाना प्रकारके शिल्पोंके कामोंको करै ॥ १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वपथि स्थितः ॥ अवृत्तिकर्षितः सी  
दन्नमं धर्मं समाचरेत् ॥ १ ॥ सर्वतः प्रतिगृहीयाद्ब्राह्मणस्त्वैनयं  
गतेः ॥ पवित्रं दुर्ष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ २ ॥

टीका—जीविका न होनेसे पीडित दुर्बलताको प्राप्त हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय तथै वैश्यकी वृत्तिको न करता हुआ बिगडाभी अपना धर्म श्रेष्ठ है यह कहनेके कारण अपनीही वृत्तिमें स्थित इस आगे कही हुई वृत्तिकों करै इससे बिगडा प्रतिग्रह आदि अपनी वृत्तिके न होनेपर पराई वृत्तिका आश्रय लेना जानिये ॥ १ ॥ आपत्तिमें प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब निन्दित निन्दिततर और निन्दिततम मनु-



प्रायसे क्रमसे दान लेवै जिस्से पवित्र गंगा आदि गलीके जल आदिसे दूषित होते हैं यह शास्त्रकी मर्यादासे नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

नार्ध्यापनाद्याजनाद्वा गृहिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥ दोषो भवति विप्रा-  
णां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥ ३ ॥ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमृत्ति-  
यतस्ततः ॥ आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ ४ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको आपात्ति समयमें निदित अर्ध्यापन याजन और प्रतिग्रह से अधर्म नहीं होता है कारण यह है कि वे स्वभावसे पवित्र होनेके कारण अग्नि और जलके तुल्य हैं ॥ ३ ॥ प्राणके नाशको प्राप्त जो प्रतिलोमजसे लेकर अन्न खाता है वह कीचसे आकाशके समान पापसे लिप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासपदुभुक्षितः ॥ न चालिप्यत पापेन क्षु-  
त्प्रतीकारमाचरन् ॥ ५ ॥ श्वमांसमिच्छन्नातोऽर्तुं धर्माधर्मविचक्ष-  
णः । प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ ६ ॥

टीका—अजीगर्तनाम ऋषि भूखाहो शुनःशेफनाम पुत्रको आप वेचता भया यज्ञमें सौ गौओंके लाभके लिये यज्ञस्तंभमें बांधिके मारी हुई हो मारनेका आरंभ किया क्षुधा दूर करनेके लिये न वैसे करता हुआ पापसे लिप्त हुआ यह तो शुनःशेफके आख्यानोमें बहुच ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है ॥ ५ ॥ धर्म अधर्मका जाननेवाला वामदेवनाम ऋषि क्षुधासे पीडित हो प्राणत्राणके लिये कुत्तेके मांसकी खानेकी इच्छा करता हुआ दोषसे लिप्त न हुआ ॥ ६ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने बह्वीर्गोः प्रतिजग्राह वृधो-  
स्तक्ष्णो महातपाः ॥ ७ ॥ क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्रिश्वामित्रः श्व-  
जाघनीम् । चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ ८ ॥

टीका—बड़े तपस्वी भरद्वाज मुनिने पुत्रसमेत निर्ज्जन वनमें वसिके क्षुधासे पीडित हो वृधुनाम बड़ईसे बहुतसो गौए दानमें लीं ॥ ७ ॥ धर्म अधर्मके जाननेवाले विश्वामित्र ऋषिने क्षुधासे पीडित हो चण्डालके हाथसे लेकर कुत्तेकी जांघके मांसकी खानेकी इच्छा की ॥ ८ ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य

विप्रस्य गृहितः ॥ ९ ॥ याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्म-  
नाम् । प्रतिग्रहस्तु क्रियेते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

टीका—निंदितभी अध्यापन याजन प्रतिग्रहोंमेंसे ब्राह्मणको निषिद्ध दान लेना निष्कृष्ट है और परलोकमें नरकका कारण है तिससे आपत्तिमें पहले निंदित अध्यापन और याजनमें प्रवृत्त होना चाहिये उनके असंभवमें तौ अस-  
त्प्रतिग्रह लेना चाहिये इस लिये यह कहा है ॥ ९ ॥ इसमें कारण कहते हैं ॥ याजन और अध्यापन आपत्तिमें और अनापत्तिमें उपनयनसे संस्कार किये हुए द्विजातियोंहीको कराये जाते हैं और प्रतिग्रह तौ निष्कृष्ट जाति शूद्रसेभी किया जाता है इससे यह उनसे दोनो निंदित है ॥ ११० ॥

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्या-  
गेन तपसैव च ॥ ११ ॥ शिलोच्छर्मप्याददीत विप्रोऽजीवन्यैतस्त-  
तः । प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयास्ततोऽप्युच्छः प्रशंस्यते ॥ १२ ॥

टीका—पापके ग्रहणसे असत्प्रतिग्रह याजन और अध्यापनसे जो उत्पन्न पा-  
प है वह प्रायश्चित्तके प्रकरणमें आगे कहे हुए क्रमसे जप और होमसे नाश होता है और असत्प्रतिग्रहसे उत्पन्न तौली हुई द्रव्य करिके महीने भरतक गौओंके स्था-  
नमें दूध पीकर रहै इत्यादिक आगे कहे हुए तपसे दूर होता है ॥ ११ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविकाको न करता हुआ ब्राह्मण जहां तहांसे अर्थात् उपपातकी आदि कोसेभी शिलोच्छ ग्रहण करै और उसके संभव होनेपर असत्प्रतिग्रह न करै जिससे असत्प्रतिग्रहसे शिल उत्तम है धान्यकी वालोंके बीननेको शिल कहते हैं उच्छ उ-  
स्सेभी श्रेष्ठ है एक एक धान्यबीनकर इकट्ठे करनेको उच्छ कहते हैं ॥ १२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छ द्धिर्धनं वा पृथिवीपतिः । याच्यः स्यात्स्नात  
कैर्वि प्रैर्दित्संस्त्यागमर्हति ॥ १३ ॥ अकृतं च कृताक्षेत्राक्षैरर्जा-  
विक्रमेव च । हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वपूर्वमदोषवत् ॥ १४ ॥

टीका—धन न होनेके कारण धर्मके लिये अथवा कुटुंबके लिये दुःख पाते हुए स्नातक ब्राह्मणों करि सुवर्ण चांदीसे भिन्न धान्य वस्त्र आदि कुप्य धन और वस्त्र आदिके उपयोगी सुवर्ण आदिभी आपत्तिके प्रकरणसे शास्त्रसे बाहर चल-  
नेवाला क्षत्रियभी मागनेयोग्य होता है और जो देनेकी इच्छा न करै कृपणतासे

निश्चय किया हुआ वह त्यागनेयोग्य है अर्थात् नहीं मागनेयोग्य है और मेघातिथि-गोविंदराज दोनों टीकाकार लिखते हैं कि वह त्यागके योग्य है अर्थात् उसके देशमें न बसना चाहिये ॥ १३ ॥ अकृत कहिये विना बोया हुआ खेत कृत कहिये बोये हुएसे प्रतिग्रह कहिये दान लेनेमें दोषरहित है तैसेही गो, बकरा, मेढा, सोना, धान, और सिद्धान्न कहिये परिपक्व अन्न, इनमेंसे पहिला-पहिल दोष रहित है तिससे तो इनमें पहले पहलेके न होनेमें परपर जानिये ॥ १४ ॥

संत वित्तांगमा धर्म्या दायां लाभः क्रयो जयः । प्रयोगः कर्मयोग-  
श्च संतप्रतिग्रह एव च ॥ १५ ॥ विद्या शिल्पं भूतिः सेवां गारेक्ष्यं वि-  
पणिः कूपिः । धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दशं जीवनहेतवः ॥ १६ ॥

टीका—दाय जो भाग है तिसको आदि ले करि सात प्रकारके धनके अंगम ( आमदनी ) धनके अधिकारके अनुसार धर्मयुक्त हैं उनमें दाय वंशके क्रमसे आये हुए धनको कहते हैं और लाभ निधिआदिकी प्राप्तिको अथवा मित्रता आदिसे प्राप्त धनको कहते हैं और क्रय प्रसिद्ध है ये तीनि चारो वर्णोंके धर्मसंबंधी हैं और जय धन कहिये विजय करनेसे प्राप्त क्षत्रियका धन धर्मसंबंधी है और प्रयोग वृद्धि आदिके धनका और कर्मयोग कहिये खेती और वणिज ये प्रयोग वैश्यके धर्मसंबंधी हैं और संतप्रतिग्रह ब्राह्मणका धर्मसंबंधी है ऐसे इन्होंका धर्म्यत्व वचनसे इनके अभावमें आपत्ति रहित समयमें कहे हुए अन्य जीविके कामोंमें प्रवृत्त होना चाहिये और उनके अभावमें आपत्तिमें कहे हुए ओमें प्रवृत्त होना चाहिये इस लिये यह यहां कहा है ॥ १५ ॥ आपत्तिके प्रकरण में जीवनहेतवः अर्थात् जीवनेके कारण इस कहनेसे इनके मध्यमें जिस वृत्तिसे जिसका जीवन आपत्तिरहित समयमें निषिद्ध है उस वृत्तिसे उसको आपत्तिकालमें जीवनेकी आज्ञा दी जाती है जैसे ब्राह्मणको भूति सेवा आदि ऐसेही शिल्प आदिमेंभी जानिये और विद्या कहिये वेद विद्याको छोड़के वैद्य, तर्क, विषका दूरिकरना आदि विद्या सबोंको आपत्ति कालमें जीवनेके लिये दोष नहीं है शिल्प कहिये लिखना आदि करना और भूति कहिये प्रेय्य भावसे नौकरिका द्रव्य लेना और सेवा कहिये पराई आज्ञाका करना और गौओंकी रक्षा कहिये पशुओंका पालना और विपणि कहिये दुकान करना और खेती अपने हाथसे की हुई और धृति कहिये संतोष उसके होनेपर थोड़ेसेभी जीवन होता है और भैक्ष्य कहिये भिक्षाका समूह और कुसीद कहिये व्यापक लिये धन देना इन दश जीवनेके उपायोंसे आपत्तिमें जीवना चाहिये ॥ १६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि बुद्धिर्नैव प्रयोजयेत् ॥ कामं तु खलु धर्मार्थं द्रव्यात्प्राप्यसेऽल्पिकाम् ॥ १७ ॥ चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि । प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किं लिषात्प्रतिभुच्यते १८

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय व्याज आदिके धनको आपत्तिकालमें भी न लगावै किन्तु निरुष्ट कर्म करनेवालेके लिये धर्मके निमित्त थोड़ेसेभी व्याजपर देवै ॥ १७ ॥ अब राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं ॥ राजाका धान्योंमें आठवां भाग होताहै इत्यादि कह चुके हैं वह आपत्तिकालमें धान्य आदिका चौथाभी भाग, करके लिये लेता हुआ और परमशक्तिसे प्रजाकी रक्षा करता हुआ अधिक कर लेनेके पापसे युक्त नहीं होताहै ॥ १८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य नार्हवे स्यात्पराद्धमुखः । शस्त्रेण वैश्यान्-क्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥ १९ ॥ धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विशां कार्षापणावरम् । कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा १२०

टीका—राजाका शत्रुको विजय करना स्वकाहिये अपना धर्म है और युद्धका फल विजयहै प्रजाकी रक्षामें लगे हुए राजाको जो कहींसे भय होय तो युद्धसे न हटै ऐसे वैश्योंकी चोर तथा डाकुओंसे रक्षा करके उनसे धर्मयुक्त आत्मपुरुषोंके द्वारा कर लेवै ॥ १९ ॥ कौनसा करलेवै सो कहते हैं ॥ धान्यमें बुद्धि होनेपर वैश्योंसे आठमा भाग कर लेवै धान्योंका बारहवां भाग कहाहै आपत्ति कालमें यह आठमा कहा जाताहै और बड़ीही आपत्तिमें पहले कहा हुआ चौथा भाग जानना चाहिये तैसेही कार्षापणतक सुवर्णोंका वीसमा भाग कर लेवै वहांभी पंचाशद्भाग आदेयोरान्ना पशुहिरण्ययोः अर्थात् राजा करि पशु और सुवर्णमें पचासमा भाग लेना चाहिये इत्यादिसे पचासमा भाग कहाहै आपत्तिमें यह वीसमा कहा जाताहै तैसेही शूद्र, कारु, सूपकार, आदि शिल्पी बर्द्ध आदि ये कामहीसे उपकार करते हैं इनसे आपत्तिमेंभी कर न लेना चाहिये ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिर्माकांक्षन्क्षत्रमारधयेद्यदि ॥ धनिनं वाप्युपारोध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥ २१ ॥ स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानारोध्ये येतु सः ॥ जातब्राह्मणशब्दस्य सार्द्धस्य कृतकृत्यता ॥ २२ ॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवासे जीविकाको न करता हुआ शूद्र जो वृत्तिकी चाहना करे तो क्षत्रियकी सेवा करके और उसके न होनेमें धनवान वैश्यकी से-

वा करिकैः जीवनेकी इच्छा करै द्विजातिकी सेवामें समर्थ, न होनेपर तो पहिले कहे हुए कर्मोंको करै॥२१॥स्वर्गकी प्राप्तिके लिये अथवा स्वर्गमें अपनी वृत्तिकी प्राप्तिके लिये शूद्र ब्राह्मणोंहीकी सेवा करै कारण यह है कि यह ब्राह्मणों-ही-का आश्रित उत्पन्न हुआहै और यही इसकी कृतार्थताहै ॥ २२ ॥

विप्रैःसैवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ॥ यदतोऽन्यद्भिर्कुरुते  
तद्व्यत्यस्य निष्फलम्॥२३॥ प्रकल्प्या तस्य ते वृत्तिः स्वकुटु-  
म्बाद्यर्थार्हतः॥शक्तिं चावैक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परियहम्॥२४॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवाही शूद्रको और सब कर्मोंसे शास्त्रमें श्रेष्ठ कर्म कहाहै जिसे इसको छोड़कर जिस कर्मको यह करताहै वह इसका निष्फल होताहै ॥ ॥ २३ ॥ उस सेवा करनेवाले शूद्रकी सेवामें सामर्थ्य और कर्ममें उत्साह तथा पालनेयोग्य पुत्र स्त्री आदिके परिमाणको देखि उन ब्राह्मणोंको अपने घरसे उसकी जीविका कल्पना करनी चाहिये ॥ २४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वर्सनानि च ॥ पुलंकाश्चैव धान्या-  
नां जीर्णाश्चैव परिच्छेदाः॥२५॥न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च सं-  
स्कारमर्हति॥ नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् २६॥

टीका—उस शूद्रके लिये भोजनसे वचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको देना चाहिये और जो न शूद्रायमतिदद्यान्नोच्छिष्टं अर्थात् शूद्रको मति न दे और न उच्छिष्ट दे यह निषेध, जो शूद्र, आश्रित नहीं है उसके मध्ये जानिये तथा पुराने वस्त्र और और असार धान्य पुरानी शय्या तथा औरभी सब पुराने इसको देने चाहिये ॥ २५ ॥ लसुन आदिके खानेमें शूद्रको कुछ पातक नहीं होताहै और ब्रह्म वध आदिमें तौ होताहीहैं । क्योंकि अहिंसा सत्यमस्तेयं अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारो वर्णोंको साधारणतासे कहाहै और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके योग्य नहीं है और इसका अभिहोत्र आदि कर्मोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्रको कहे हुए पाकयज्ञ आदि धर्मसे इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाकयज्ञ आदि करै ॥ २६ ॥

धर्मेऽप्यवस्तु धर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवज्र्यं न दुष्यन्ति  
प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ २७॥ यथायथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूर्य-

कः ॥ तथैतथैमं चार्मुं च लोके प्रामोत्यनिन्दितः ॥ २८ ॥

टीका—अपने धर्मके जाननेवाले जे शूद्र धर्म प्राप्तिकी कामनासे जो निषिद्ध नहीं ऐसे तीनो वर्णोंके आचारका आश्रय लेते हैं वे नमस्का मंत्रसे पंचयज्ञोंको करें और दूसरे मंत्रके विना नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञ आदि धर्मको करते हुए शूद्र दोषयुक्त नहीं होते हैं और लोकमें ख्यातिको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पराये गुणोंकी निंदा न करनेवाला शूद्र जैसे जैसे द्विजातिके निषिद्ध नहीं ऐसे आचारोंको करता है वैसा वैसा जनों करि निन्दित न हो इस लोकमें उत्कृष्ट कहा गया है और स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण नैकां यो धनसंचयः ॥ शूद्रो हि धनमासाद्य  
ब्राह्मणानेव बाधते ॥ २९ ॥ एते चतुर्णां वर्णानामापेक्षमाः प्रकी-  
र्तिताः ॥ यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो ब्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥

टीका—धनके जोड़नेमें समर्थभी शूद्रको कुटुंबके पालने और पंचयज्ञ आदि-  
के योग्य धनसे अधिक बहुतसे धनका संचय न करना चाहिये कारण यह है कि  
शूद्र धनको पाके शास्त्र न जाननेके कारण धनके मदसे, सेवा न करनेसे ब्राह्म-  
णोंहीको बाधा देता है ॥ २९ ॥ आपत्तिकालमें करनेयोग्य चारो वर्णोंके धर्म ये क-  
हे उनको भलीभांतिसे करते हुए विहितके करनेसे और निषिद्धके न करनेसे पा-  
परहित होनेके कारण ब्रह्मज्ञानके लाभसे मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त होते हैं ३०

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ॥  
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ ३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः १०

टीका—यह चारो वर्णोंका संपूर्ण आचार कहा इसके उपरान्त शुभप्रायश्चित्त-  
का अनुष्ठान कहोंगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरममुखतनयश्रीपाण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृता  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## अथ एकादशीऽध्यायः ॥ ११ ॥

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ॥ गुर्वर्थं पितृमात्रं स्था  
ध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥ नवैतान्स्नातका विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभि  
क्षुकान् ॥ निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

टीका—विवाहका प्रयोजन संतानहै इस लिये सांतानिक कहिये विवाह करणे की इच्छा वाला १ और आगे कहा हुआ अवश्य करनेयोग्य ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञ करनेकी इच्छावाला २ और अध्वग कहिये बढोही ३ औ सर्ववेदस कहिये जिसने सर्वस्व दक्षिणयुक्त विश्वजितयज्ञ किया है ४ और विद्या गुरुके भोजन वस्त्रके लिये जिसका प्रयोजन है ५ एसेही पिता माताके लियेभी ६ ७ और वेद पढ़नेके समय भोजन वस्त्र आदिका चाहनेवाला ब्रह्मचारी ८ और उपतापी कहिये रोगी ९ इन नव ब्रह्मणोंको धर्मभिक्षाशीलस्नातक जातै इन निर्दनोको जो गौ सुवर्ण आदि दिया जाय उस दानको विद्या विशेषके अनुरूप देवै ॥ १ ॥ २ ॥

एतेभ्यो हि द्विजांश्वेभ्यो देयमन्नं सदैक्षिणम् ॥ इतरेभ्यो बहिर्वेदि  
कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥ सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हप्रतिपादयेत् ॥  
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैवं दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

टीका—इन नवश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेदीके मध्यमें दक्षिणा समेत अन्न देना चाहिये और इनसे जो भिन्न होय उनको वेदीके बाहर सिद्ध अन्न देना चाहिये यह उपदेश किया जाता है और धनके देनेमें तौ नियम नहीं है ॥ ३ ॥ राजा मणि मोती आदि सब रत्नोंको और यज्ञके उपयोगी दक्षिणाके लिये धन विद्याके अनुरूप वेदके ज्ञानेवाले ब्राह्मणोंको देवै ॥ ४ ॥

कृतदासोऽपैरान्दार्शनभिक्षित्वा योऽधिगच्छति ॥ रतिमात्रं फलं  
तस्य द्रव्यदानुस्तु संततिः ॥ ५ ॥ धनानितुं यथाशक्ति विप्रेषु प्रति  
पादयेत् ॥ वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं संश्रुते ॥ ६ ॥

टीका—स्त्रीयुक्त जो संतति आदि काष्णके विना औरोंसे मागकर विवाह करता है उसको रतिमात्रही फल होता है और उससे उत्पन्न संतान धन देनेवालेके होते है तिस्से इस प्रकार धन प्राणिके दूसरा विवाह न करना चाहिये और ऐसे के लिये धन न देना चाहिये यह तात्पर्य है ॥ ५ ॥ गौ भूमि हिरण्य आदि ध-

न शक्तिके अनुसार वेदके जन्मनेवाले पवित्र और पुत्र स्त्री आदि करि युक्तब्राह्मणोंको दान करे उसके वशसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥ अर्धिकं वापि विद्येत सं सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥ अतः स्वर्णीयसि द्रव्यैः सोमं पिबति द्विजैः ॥ संपीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

टीका—जिसके अवश्य पोष्य वर्गके भरणके लिये तीन वर्षके स्वरचका पूरा अथवा उससे कुछ अधिक भोजन आदि होय वह काम्य सोमयाग करनेके योग्य है ॥ ७ ॥ तीन वर्षके व्यय योग्य धनसे थोडा धन होनेपर जो सोमयागको करता है उसका प्रथम सोमयाग नित्यभी संपन्न नहीं होता है और द्वितीय काम्य सोमयाग तो कैसे हू नहीं ॥ ८ ॥

शक्तः परंजने दाता स्वर्जने दुःखजीविनि ॥ मध्वार्पातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥ भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहि कम् ॥ तद्भवत्यसुखोदकं जीवितं च मृतस्य च ॥ १० ॥

टीका—जो बहुत धन होनेके कारण दानमें समर्थ होता हुआ अवश्य भरण करनेयोग्य पिता माता आदि ज्ञातिके जनोंको दुर्गतिसे दुःख युक्त होनेपर यशके लिये औरोंको देता है वह उसका दान विशेष धर्मका प्रतिरूप कहै धर्म नहीं है पहले यशस्कर होनेसे मधुर तो उसका आरंभ है और अंतमें नरक फल होनेसे विषका आस्वाद है तिससे यह न करना चाहिये ॥ ९ ॥ अवश्य भरण करने योग्य पुत्र स्त्री आदिको पीडा देकर जो परलोककी धर्मबुद्धिसे दान आदि करता है उस दाताके जीवतेको तथा मरेको वह दान दुःखरूप फलका देनेवाला होता है ॥ १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरूढः स्यादेकैनाङ्गेन यज्वनः ॥ ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥ यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनः कर्तुं सोमपः कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहेर्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

टीका—क्षत्रिय आदि यजमानका और विशेष करि ब्राह्मणका यज्ञ जो और अंगोंके पूर्ण होनेपर एक अंगसे पूरा न होय तो जिस वैश्यके बहुत पशु आदि धन होय और वह पाकयज्ञ आदि तथा सोमयजन आदि न करता होय उसके घरसे उस अंगके योग्य द्रव्य बलसे अथवा चोरीसे लेलेय यह तो राजाके धर्म



प्रधान होनेपर करना चाहिये वह शास्त्रके अर्थ करनेवालेको दंड नहीं देता है ११

आहरे त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वैश्मनः ॥ न हि शूद्रस्य यज्ञं मु-  
कं श्विदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥ योऽनाहिताग्निः शतं गुरयज्वा च  
सहस्रगुः ॥ तयोरपि कुटुम्बाभ्यां माहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—यज्ञके दो तीन अंगोंके विकल होनेपर उन तीन अंगोंको अथवा दो अंगोंको वैश्यसे न मिलनेपर ब्रध्नक शूद्रके घरसे बल करिके अथवा चोरीसे लेवै जिसे शूद्रका कोईभी यज्ञसे संबंध नहीं है और न ब्राह्मण यज्ञके लिये धन शूद्रसे मागे यह अंगो कहा-हुआ-निषेध शूद्र आदिकोंसे मागनेका है बलसे लेने आदिका नहीं ॥ १३ ॥ जिस अग्निहोत्र न करनेवालेके सौ गौ प्रमाण धन होय अथवा अग्निहोत्री होय और सोमयाग न करता होय उसके जो हजार गौ प्रमाण धन होय तो दोनोंके घरोंसे दोनो अथवा तीनों अंगोंके शीघ्र पूरे करनेको ब्राह्मण करि दोनोसे लेना चाहिये और ब्राह्मण क्षत्रियोंसेभी लेवै ॥ १४ ॥

आदानं नित्याच्चोदात्तुराहरेदप्रयच्छतः ॥ तथा यशोऽस्य प्रथते  
धर्मश्चैवं प्रवर्धते ॥ १५ ॥ तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडैनश्नता ॥  
अश्वस्तनूविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

टीका—आदान नित्य कहिये जिसके प्रतिग्रह आदिसे नित्य धन आवै वह जो इष्टापूर्त तथा दानसे रहित होय उससे यज्ञके दो अथवा तीन अंगोंके लिये याचना करनेपर न दे तो बलसे अथवा चोरीसे लेवै ऐसा करनेपर लेनेवालेकी ख्याति प्रकाशित होती है और धर्म बढ़ता है ॥ १५ ॥ सायंकाल और प्रातःकालके भोजनके उपदेशसे तीन दिनका उपवास होनेपर चौथे दिन प्रातःकाल सातमें भोजनकी प्राप्ति होनेपर दान आदि धर्मसे रहित एकदिनका पूर्ण भोजनके योग्य धन चोरीसे लेना चाहिये ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते ॥ आख्यातव्यं तु तत्त-  
स्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणं स्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण  
कदाचन ॥ दस्युनिष्क्रियोस्तु स्वमजीर्वहर्तुं महति ॥ १८ ॥

टीका—खलिहानसे अथवा खेतसे अथवा घरसे अथवा और किसी स्थानसेही न, धर्मसंबंधी धान्य मिले वहांसे लेना चाहिये जो यह धनका स्वामी पूछे कि तुमने

किस लिये किया तौ उससे कारण समेत चोरी आदि कहनी चाहिये ॥ १७ ॥  
कहे हुए कारणोंके होनेपरभी क्षत्रियको ब्राह्मणका धन उससेही न होनेके कारण  
न लेना चाहिये समान न्याय होनेके कारण वैश्यों तथा शूद्रोंको जंची जातिसे  
न लेना चाहिये और निषिद्धके करनेवाले और विहितके न करनेवाले ब्राह्मण  
तथा क्षत्रियसे अत्यंत आपत्तिमें क्षत्रिय लेनेके योग्य है ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ॥ सँ कृत्वा पूर्वमा.  
त्मानं संतारयति तौबुधौ ॥ १९ ॥ बद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं  
तद्विदुर्बुधाः ॥ अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

टीका—जबे हीन कर्म आदि उत्कृष्टोंसे कहे हुएभी कारणोंमें कहेके अनुरूप  
यज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये धनको लेकर साधुओंको और उत्कृष्टोंकी ऋत्तिक  
आदि है तिनको देता है वह जिसका धन लेता है उसके पापका नाश करता है  
और जिसको देता है उसको दुर्गतिसे बचाता है इस भांति आपको नाव बनाके  
दोनोंको दुःखसे छुड़ाता है ॥ १९ ॥ यज्ञ करनेवालोंका जो धन है उसको यज्ञमें लग-  
नेके कारण विद्वान् देवताओंका धन मानते हैं और यज्ञ आदिसे शून्य पुरुषोंके  
धनको यज्ञ आदिमें न लगनेके कारण आसुर कहिये असुरोंका कहते हैं इससे  
उसकोभी हरण करिके यज्ञ आदिसे देवस्वकरना चाहिये ॥ २० ॥

नैतस्मिन्धारयेद्वृद्धं धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ क्षत्रियस्य हि वालि  
इयाद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥ २१ ॥ तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्व  
कुटुम्बान्महीपातिः श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्या प्रकल्पयेत् २२

टीका—उस कहे कारणमें चोरी तथा बलात्कार करनेवालेको धर्म प्रधान रा-  
जा दंड न करे कारण यह है कि राजाकी मूढतासे ब्राह्मण क्षुधासे दुखी  
होता है ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मणके अवश्य भरण करनेयोग्य पुत्र आदि वर्ग-  
को जानि तथा शास्त्र और आचारको जानि उनके अनुरूप जीविका राजा  
अपने घरसे नियत करे ॥ २२ ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ॥ राजा हि धर्मवद्भाग-  
तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥ २३ ॥ नयज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत  
कहिंचित् ॥ यजमानो हि भिक्षित्वां चण्डालः प्रेत्य जायते ॥ २४ ॥

टीका—इस ब्राह्मणकी जीविको नियत करि सब शत्रु चौर आदिकोंसे रक्षा

करै कारण यह है कि रक्षा किये हुए ब्राह्मणसे उसके धर्मका छठा भाग पाता है ॥ २३ ॥ ब्राह्मण यज्ञको सिद्धिके लिये शूद्रसे कभी धन न मागै कारण यह है कि शूद्रसे मागिकै यज्ञको करता हुआ मरिकै चांडाल होता है इससे मागनेका निषेध करनेसे शूद्रसे विना मागे हुएभी प्राप्त हुआ धन यज्ञके लियेभी विरुद्ध नहीं है ॥ २४ ॥

यज्ञार्थं मर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ॥ संयाति भ्रासतां वि  
प्रःकाकतां वा शतं समां ॥ २५ ॥ देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोप  
हिनस्ति यः ॥ संपार्पात्मां परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥

टीका—यज्ञकी सिद्धिके लिये धनको मागिकै जो यज्ञमें सब गद्दी लगाता है वह सौवर्षतक भास कहिये नीलकंठ अथवा कौआ होता है ॥ २५ ॥ देवस्व कहिये प्रतिमा आदि देवताओंके लिये दिये हुए धनको और ब्राह्मणके धनको जो लोभसे ले लेता है वह पापस्वभाव दूसरे जन्ममें गंधकी जूठनसे जीवता है ॥ २६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ॥ कूर्तानां पशुसोमानां निष्कृ  
त्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥ आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्वि  
जः ॥ स नीप्रोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥

टीका—वर्षके समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके आरंभ होनेको अर्थात् चैत्रशुक्ल आ-  
दि वर्षकी प्रवृत्तिको वर्षपर्यंत कहते हैं उस वर्षांतरमें वैश्वानरी इष्टिको कहे हुए  
पशु सोमयागके न होनेमें उसके न करनेका दोष दूर करनेके लिये सदा शूद्र  
आदिसे कहे हुए धनके ग्रहणरूप इष्टिको करै ॥ २७ ॥ जो द्विज आपत्तिमें कही  
हुई विधिसे आपत्तिके विना धर्मको करता है उसका वह परलोकमें निष्फल हो-  
ता है यह मनु आदिकोंने विचार किया है ॥ २८ ॥

विश्वैश्वदेवैः सांध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥ आपत्सु मरणां द्वी  
तैर्विधैः प्रतिनिधिः कृतः ॥ २९ ॥ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुक  
ल्पेन वर्तते ॥ न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

टीका—विश्वदेवनाम देवोंसे और सांध्योंसे तैसेही मरनेसे डरे हुए महर्षि ब्रा-  
ह्मणों करै आपत्तिमें मुख्य विधि सोम आदिके वैश्वानरी आदि प्रति प्रतिनिधि  
किया हुआ यह मुख्यके न होनेमें करना चाहिये मुख्यके संभवमें नहीं ॥ २९ ॥

मुख्यके करनेमें समर्थ जो आपत्तिमें कहे हुए प्रतिनिधिसे अनुष्ठान करता है उस दुर्बुद्धिका परलोकसंबन्धी अभ्युदयरूप और प्रत्यवायका दूरे होनारूप फल नहीं होता है ॥ ३० ॥

न ब्राह्मणोऽवेदयत किञ्चिद्वाजनि धर्मवित् ॥ स्ववीर्येणैव तांश्छि-  
प्यान्मानवानपकारिणः ॥ ३१ ॥ स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं ब-  
लवत्तरम् ॥ तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निर्गृणहीयादरीन्द्रिजः ॥ ३२ ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण कुछभी अपकार राजासे न कहे अपितु अपनीही शक्तिसे आगे कहे हुए अभिचार आदिसे अपकार करनेवाले मनुष्यों-को दंड देवै तिससे तौ अपने धर्मके विरोध आदि प्रकृष्ट अपराध करनेपर अभि-चार आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस लिये यह कहा है कुछ अभिचारका वि-धान नहीं करते है अथवा न राजासे कहनेका निषेध करते हैं ॥ ३१ ॥ जिस्से अपनी सामर्थ्य और राजाकी सामर्थ्य इन दोहोमेंसे पराधीन राजाकी सामर्थ्य की अपेक्षा अपने आधीन होनेसे अपनाही सामर्थ्य बलवान है तिससे ब्राह्मण अ-पनेही पराक्रमसे शत्रुओंको दंड देवै ॥ ३२ ॥

श्रुतीरथवांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥ वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मण-  
स्य तेन हन्यादरीन्द्रिजः ॥ ३३ ॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदोपादमा-  
त्मनः ॥ धने न वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्रिजोत्तमः ॥ ३४ ॥

टीका—वह कौनसा अपना पराक्रम है सो कहते हैं ॥ अथर्ववेदमें देखा गया है अभिचार जिनका ऐसी आंगिरसीश्रुतियोंको बिना विचारके करै जिस्से अ-भिचारमंत्रके उच्चारणरूप ब्राह्मणकी वाणीही शस्त्रका काम करनेसे शस्त्र है उ-स्से ब्राह्मण शत्रुओंको मारे शत्रुके दंड देनेके लिये राजासे न कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ क्षत्रिय अपने बलसे शत्रुसे तिरस्काररूप अपनी आपत्तिके पार होय और वैश्य तथा शूद्र धनके देनेसे और ब्राह्मण अभिचार कहिये कारणरूप जप होमोंसे आपत्तिके पार होय ॥ ३४ ॥

विधाता शासितावक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ तस्मै नाकुशलं ब्रूया-  
न्न शुष्कां गिरमी रयेत् ॥ ३५ ॥ न वै कन्या न युवतिर्नाल्पवि-  
द्यो न बालिशः ॥ होता स्यादग्निहोत्रस्य नातो नासंस्कृतस्तथा ॥ ३६ ॥

टीका—कहे हुए कर्मोंका करनेवाला और पुत्र शिष्य आदिकोंका सिखानेवाला और

प्रायश्चित्त आदि धर्मोंका कहनेवाला और सब भूतोंकी मित्रतामें प्रधान ब्राह्मण कहा जाताहै उसके लिये दंड दो ऐसा अनिष्ट वचन न कहै और गाली आदि वाक्दंड तथा धिक्दंडरूप वाणीका उच्चारण उसके लिये न करै ॥ ३९ ॥  
कन्या विना व्याही और व्याहीभी तरुणी और थोड़ा पण हुआ मूर्ख रोग आदिसे पीडित और उपनयन कर्म रहित ये सब श्रुतिमें कहे हुए सायं प्रातः होम आदिको न करै ॥ ३६ ॥

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ॥ तस्माद्वै तानकुशलो  
होतुः स्याद्वेदपारंगः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यमर्दत्वाऽश्वमग्न्याधेय  
स्य दक्षिणाम् ॥ अनाहिताग्निर्भवंति ब्राह्मणो विभवे संति ॥ ३८ ॥

टीका—होमको करते हुए ये कन्याआदि नरकको जाते हैं और जिसकी औरसे ये अग्निहोत्र करते हैं वहभी नरकको जाताहै तिस्से श्रौतकर्ममें चतुर सब वेदोंका पढ़नेवाला, होता करना चाहिये ॥ ३७ ॥ अग्निके आधानमें ब्राह्मण संपात्तिके होनेपर प्रजापति जिसका देवताहै ऐसा अश्व दक्षिणामें दिये विना अग्निकाआधा न करनेपर आहिताग्नि नहीं होताहै और आधानके फलको नहीं पाताहै तिस्से आधानमें अश्व दक्षिणा देवै ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ॥ न त्वल्पदक्षिणैर्य  
ज्ञैर्यजन्ते ह कथंचन ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्ति  
प्रजाः पशून् ॥ हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो र्यजेत् ४० ॥

टीका—श्रद्धावान् पुरुष इंद्रियोंको वशमें करिकै यज्ञसे भिन्न तीर्थयात्रा आदि पुण्य कर्मोंको करै और शास्त्रमें कही हुई दक्षिणासे थोड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे कैसेहू यजन न करै ॥ ३९ ॥ नेत्र आदि इंद्रियोंको और जीवते हुएके ख्यातिरूप यश कीर्तिको और संततिको तथा पशुओंको थोड़ी दक्षिणाका यज्ञनाश करताहै तिस्से थोड़ी दक्षिणा देकै यज्ञ न करै ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यपि ध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ॥ चान्द्रायणं चरेन्मा  
सं वीरहृत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥ ये शूद्रादधिर्गम्यार्थमग्निहोत्रमु  
पासते ॥ ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥ ४२ ॥

टीका—अग्निहोत्री, ब्राह्मण इच्छासे अग्नियोंमें सायंकाल तथा प्रातःकालके

होमोंको न करके एक महीनेभर चांद्रायण व्रत करे जिसे यह वीरपुत्रकी हत्याके समान है ॥४१॥ जे शूद्रसे धनको पाके अथवा साधारण मागनेसे धनको लेकर आधान पूर्वक अग्निहोत्र करते हैं वे शूद्रोंहीके याजकहैं उनको उसका फल नहीं होता है इसीसे वे वेदवादियोंमें निन्दित हैं ॥ ४२ ॥

तेषां सततमज्ञानां वर्षलाग्न्युपसेविनाम् ॥ पदा मस्तकमाक्रम्य  
दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥ अकुर्वन्निहितं कर्म निन्दितं च स.  
माचरन् ॥ प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥

टीका—शूद्रके धनसे आहिताग्नि होनेलाले उन मूर्खोंके मस्तकपर पांव रखिके देनेवाला शूद्र उस दानसे सदा परलोकमें दुःखोंसे निस्तर जाता है यजमानोंका फल नहीं होता है ॥ ४३ ॥ नित्य कहे हुए संध्योपासन आदिको और नैमित्तिक जैसे स्मृतिके छूनेमें स्नान आदिको न करता हुआ और निषेध किये हुए हिंसा आदिको करता हुआ नहीं कहे हुए निषिद्ध कर्मोंमें अत्यंत आसक्तिको करता हुआ नर प्रायश्चित्ती होता है ॥ ४४ ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः । कामकारकृतेऽप्याहुं  
रेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥ अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन  
शुद्ध्यति । कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः यथंगिवधैः ॥ ४६ ॥

टीका—विना जाने किये हुए पापका प्रायश्चित्त होता है यह पंडित कहते हैं और कोई आचार्य कहते हैं कि जानके किये हुएका प्रायश्चित्त होता है यह तौ पृथक् करिके कहना प्रायश्चित्त गौरवके लिये है श्रुतिनिदर्शनात् वेदके दृष्टांतसे जैसे इंद्रोयतीन्शालावृकेभ्यः प्रायच्छततमश्च्रीलावागित्यवदत्तप्रजापतिमुपाधावत्तस्मात्तमुपहव्यंप्रायच्छत् इति इसका अर्थ यह है कि इंद्रयतियोंको बुद्धिपूर्व कुत्तोंसे खानेको देता हुआ वह प्रायश्चित्तके लिये प्रजापतिके समीप गया उसके लिये प्रजापतिने उपहव्य नाम कर्म प्रायश्चित्त दिया इसीसे जानके किये हुएमेंभी प्रायश्चित्त है ॥४५॥ इच्छाके विना किया हुआ पाप वेदके अभ्याससे शुद्ध होता है अर्थात् नाशको प्राप्त होता है और रागद्वेष आदिकी व्यामूढतासें जानकर किया हुआ पाप माना प्रकारके प्रायश्चित्त अर्थात् विद्या धन तथा तपसे शुद्ध होता है ४६

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य देवात्पूर्वकृतेन वा । न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रा-

यश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥ इह दुश्चरितैः कैचित्कैचित्पूर्वकृतै-  
स्तथा । प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

टीका—दैवात् कहिये प्रमादसे इस शरीर करि किये हुए अथवा पूर्वजन्ममें संचय किये हुए पापसे क्षयरोग आदि करि सूचितसे प्रायश्चित्ती होकर प्रायश्चित्त के विना किये साधुओंके साथ याजन आदिसे संसर्गको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ इस जन्ममें निषिद्ध काम करनेसे और कोई पूर्वजन्ममें किये हुए ओसे दुष्टस्वभाव मनुष्य कुनस्त्री आदि होना रूपके विपर्यय कहिये अन्यथा भावको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् । ब्रह्महा क्षयरोगित्वं  
दोश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥ पिशुनः पौष्टिनासिक्यं सूचकः पू-  
तिवक्त्रताम् । धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥ ५० ॥  
अन्नहर्ता मयावित्वं मौक्यं वागपहारकः । वस्त्रापहारकः श्वेद्यं  
पङ्क्ततामश्वहारकः ॥ ५१ ॥ दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको  
भवेत् ॥ हिंसया व्याघ्रिभूतस्तु स्फीतोऽन्यैस्त्वभिर्मिश्रकः ॥ ५२ ॥  
एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्भिर्गहिताः । जडमूकान्धबधिरा वि-  
कृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

टीका—सुवर्ण चुरानेवालेके नख कुत्सित होजातेहैं और निषिद्ध मद्य पी-  
नेवालेके दांत कालेजाते हैं और ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होताहै गुरूकी भार्यामें गमन  
करनेवालेका लिंग बंद नहीं होताहै खुला रहताहै और पिशुन कहिये विद्यमान दो-  
षोंके कहनेवालेकी नाकमें दुर्गंध आती है और नहीं विद्यमान दोषोंके कहनेवा-  
लेके मुखमें दुर्गंध आती है और धान्यका चोर अंगहीन होताहै और धान्य आ-  
दिकोंमें कुछ और मिलानेसे अधिक अंग होजाते हैं और अन्न चुरानेवालेकी अ-  
ग्नि मंद होजातीहै और विना आज्ञाके पढनेवाला मूक होताहै और वस्त्रोंका चुरा-  
नेवाला श्वेतकुष्टी होताहै और घोड़ेका चुरानेवाला पंगा होताहै दीपकको चुरा-  
नेवाला नेत्र इंद्रियसँ रहत अर्थात् अंध होताहै और दीपकको बुझावनेवाला का-  
ना अर्थात् एक आंखीवाला होताहै यज्ञदेवता आदिकोंके उद्देश विना केवल जि-  
ह्वाके स्वादसे जो पशुओंकी हिंसा करताहै उसको रोग बहोत होतेहैं और जो  
दूसरेके स्त्रीको वृषण करनेवाला अर्थात् संभोग आदिक करनेवाला वातसंबंधी

रोगों करिके स्थूल देहवान् होता है ऐसे बुद्धि-वाणी नेत्र-कानोंसे विकल विकृत रूप साधुओं करि निदित पूर्वजन्ममें संचय किये हुए भोगनेसे शेष रहे हुए पापोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥

निन्दैहि लक्षणैर्युक्तां जार्यन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥५४॥

टीका—अनिष्कृतैनसः कहिये जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये हैं वे परलोकमें भोगे हुए पापके शेषसे कुनसीपन आदि निन्द्य लक्षणों करि युक्त उत्पन्न होते हैं तिस्से शुद्धिके लिये अर्थात् पाप-दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त सदा करना चाहिये ॥५४॥

ब्रह्महत्यां सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥

महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥५५॥

टीका—ब्राह्मणके प्राणवियोगरूप जिसका फल है ऐसे व्यापारको ब्रह्महत्या कहते हैं वह तौ साक्षात् अश्व वा दूसरेको नियुक्त करिके तैसेही गौ भूमि और सुवर्णका लेना आदि जिसका कार्य है उसके लिये ब्राह्मणके मरनेमें ब्रह्महत्या होती है ऐसी ब्रह्महत्या और निषिद्ध सुराका पीना और स्तेय कहिये ब्राह्मणका सुवर्ण ले लेना और गुरुकी स्त्रीमें गमन करना और इनके साथ संसर्ग करना इनको महापातक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥ गुरोश्चालीकनिर्वधः  
सर्मानि ब्रह्महृत्या ॥५६॥ ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृ  
द्वधः ॥ गर्हितानाद्ययोजर्गिर्धः सुरापानसर्मानि षट् ॥५७॥

टीका—जातिकी बढाईके लिये बदकै बोलना जैसे जो ब्राह्मण नहीं है वह आपको ब्राह्मण कहै और जिसमें-उनका मरण होय ऐसा चोर आदिकोंका दोष राजासे कहना और गुरुको झूठा दोष लगाना ये सब ब्रह्महृत्याके समान हैं ५६ पढ़े हुए वेदका अभ्यास न करनेसे भूलना और असत् शास्त्रके आश्रयसे वेदकी निन्दा करना और साक्ष्य ( गवाही ) में झूठ बोलना और ब्राह्मणसे अन्यमित्रका वध और निषिद्ध लशुन आदिका खाना और अभक्ष्य विष्टा आदिका भक्षण ये सब सुरापानके समान हैं ॥ ५७ ॥

निक्षेपस्याप्रहरणं न स श्वरजतस्य च ॥ भूमिवज्रमणीनां च रुक्म



स्तेयं सप्तमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥ रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्य  
जासु च ॥ सरस्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ ५९ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न धरोहडका ले लेना तैसेही मनुष्य, घोडा, चांदी, भूमि, हीरा, और मणियोंका ले लेना ये सब सुवर्णकी चोरीके तुल्यहैं ॥ ५८ ॥ सगी बहानि, कुमारी, चांडाली, और मित्र तथा पुत्रकी स्त्रीमें वीर्यका सींचना गुरुपत्नीमें गमन करनेके समानहैं ॥ ५९ ॥

गोवर्धोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥ गुरुमातृपितृत्या  
गः स्वाध्यायाभ्युः सुतस्य च ॥ ६० ॥ परिवर्त्तितानुजेऽनू  
ढे परिवर्द्धनमेव च ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च या  
जैवम् ॥ ६१ ॥ कन्याया दूषणं चैवं वार्धुष्यं व्रतलोपन  
म् ॥ तडांगारामदारानामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥ ब्रा  
ह्मणानां बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च । भृत्याचार्य्यनादान  
मपण्यनां च विक्रयः ॥ ६३ ॥ सर्वाङ्गरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्त्त  
नम् । हिंस्रौषधीनां स्याज्जीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६४ ॥ इन्ध  
नार्थमशुष्काणां दुर्माणामवर्पातनम् । आत्मार्थं च क्रियारम्भो  
निन्दितान्नादनं तथा ॥ ६५ ॥ अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनप  
क्रिया । असंछास्त्राधिगमनं कौशील्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥ धा  
न्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधो ना  
स्तिवेयं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

टीका—अब उपपातकोंको कहते हैं ॥ गौका मारना जाति तथा कर्मसे दु  
ष्टोंको यज्ज कराना पराई स्त्रीमें गमन करना अपना बेचना माता पिता गुरु  
आदिकी सेवा न करना सदा ब्रह्मयज्ञका त्याग स्मार्त्त अग्निका त्याग और पु  
त्रका संस्कार, भ्रूण आदि न करना पहले छोटका विवाह करनेसे ज्येष्ठ परि  
वर्त्ति होता है और छोटा परिवर्त्ता होता है उन दोनोंको कन्या देना और  
उन्हीका विवाह होम आदिमें ऋत्विज होना मैथुनके बिना अंगुली आदिके  
डालनेसे कन्याको दूषित करना वृद्धि कहिये व्याजसे जीविका करना  
व्रतलोपन कहिये ब्रह्मचारीका मैथुन करना तलाव बाग भार्या और संतानका

वेंचना कालमें यज्ञोपवीत न होना ब्राह्म्यता है पितृव्य आदि बांधवोंकी अनुवृत्ति न करना नियत वेतन लेकर पढ़ाना नियत वेतन देकर पढ़ना नहीं वेंचनेयोग्य तिल आदिका वेंचना सुवर्ण आदिकी खानिमें राजाकी आज्ञासे अधिकार लेना बड़े जलके प्रवाह रोकनेके कारण पुल आदि प्रवृत्त करना औषधियोंकी हिंसा भार्या अदि स्त्रियोंको वेश्या बनाकै जीविका करना श्येन आदि यज्ञसे अमररथ रहितका मारना मंत्र औषध आदिसे वशीकरण करना ईधनके लिये हरित वृक्षका काटना रोगरहितका देवता पितृ आदिके उद्देश विना पाक आदिका करना निन्दित अन्न लशुन आदिका एकवार इच्छाके विना खाना अधिकार होनेपर अग्निहोत्र न करना सुवर्णसे अन्यसार द्रव्यका हरण करना तीन प्रकारके ऋणोंका न दूर करना श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध शास्त्रका सिखाना नाचने गाने बजानेका सेवन करना धान्नकी तांबे लोहे आदिकी और पशुओंकी चोरी करना द्विजातियोंका मद्य पीनेवाली स्त्रीमें गमन करना शूद्र वैश्य और क्षत्रियका मारना और नास्तिक्य कहिये अदृष्टार्थ कर्ममें अभावकी बुद्धि होना ये प्रत्येक उपपातक हैं ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्यां प्रातिरघ्रे यमद्योः ॥ जैह्वयं च मैथुनं पुं  
सिं जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥ खराश्वोभ्रमृगेभानामजावि  
कवधस्तथा ॥ संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

टीका—ब्राह्मणको दंड कहिये दंडा और हाथ आदिसे पीडा देना और अत्यंत दुर्गंध होनेके कारण न सूघनेयोग्य लशुन पुरीष आदिकी तथा मृगकी गंधका सूघना और कुटिलता और पुरुषकी गुदा आदिमें मैथुन ये एक एक जातिके भ्रंश करनेवाले हैं ॥ ६८ ॥ गधा, घोडा, ऊंट, मृग, हाथी, बकड़ा, मेढा, मछली, सांप, भैंसा, इनमेंसे प्रत्येकका मारना संकरी करण जानिये ॥ ६९ ॥

निन्दितेभ्यो धनोदानं वाणिज्यं शूद्रसेर्वनम् ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेयं  
मसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥ कृषिकीटवयोहत्या मद्भानुगतभो  
जनम् ॥ फैलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्योसे धनका दानं लेना, वाणिज्य, शूद्रकी टहल, और शूद्र बोलना, ये प्रत्येक अपात्र करनेवाले हैं ॥ ७० ॥ कृषि कहिये क्षुद्र जीव तिनसे

कुछ स्थूल कीट तिनका और पक्षियोंका वध और मद्यके साथ एक पिटारीमें धरि कै लाये हुए शाक आदि भोज्य वस्तुका भोजन और फलकाष्ठ तथा फूलोंकी चोरी करना और थोड़ीभी हानिमें बहु व्याकुल होना ये प्रत्येक मलिनकरनेवाले हैं ७१

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥ यैर्यैर्व्रतैरपोद्धन्ते  
तानि संभ्यद्विबोधत ॥ ७२ ॥ ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा  
वने वसेत् । भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शर्वशिरोध्वजम् ७३

टीका—भेदसे कहे हुए ये सब ब्रह्महत्या आदि पापोंका जिन जिन प्रायश्चित्त रूप व्रतोंसे नाश होताहै उनको यथावत् सुनिये ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला वनमें कुटी बनायकै मारे हुएके शिरके कपालको अथवा उसके न होनेमें और किसीका चिन्हकरिकै भिक्षा खाता हुआ अपने पापके दूरि करनेके लिये बारह वर्ष वनमें बसे और व्रत करै ॥ ७३ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः । प्रस्येदात्मानं  
गौ वा समिद्धे त्रिवृत्वाविच्छराः ॥ ७४ ॥ यजेत वा श्वमेधेन स्वर्जिता  
गोसवेन वा । अभिजिद्विश्वजिद्धां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥ ७५ ॥

टीका—धनुषबाण आदि शस्त्रके धारण करनेवाले युद्ध करनेवालोंका ब्राह्मण वधके पापकी क्षीणताके लिये यह प्रायश्चित्तहै कि अपनी इच्छासे विद्वान् शस्त्रधारियोंके बाणका लक्ष्य ( निशाना ) होकै स्थित होय जबतक मरजाय अथवा मरेके समान होजाय तौ शुद्ध होय सोई यज्ञवल्क्यने कहाहै जैसे संग्रामेवाहतो-लक्ष्मीभूतः शुद्धिमाप्नुयाद् । मृतकल्पः प्रहारतो जीवन्नपि विशुद्ध्यति ॥ अर्थात् संग्राममें लक्ष्य होकै मारा जाय तौ शुद्धिको प्राप्त होय अथवा प्रहारोसे पीडित हो मरेके समाहोकै जीवता हुआभी शुद्ध होताहै अथवा जलती हुई अग्निमें नीचेको मु-ख करिकै तीनिवार शरीरको डारै तौ शुद्ध होय ॥ ७४ ॥ अश्वमेधसे अथवा स्वर्जिता नाम याग विशेषसे अथवा गोमेधसे अथवा अभिजित्तयज्ञसे अथवा विश्वजित्तसे त्रिवृतासे अथवा अग्निष्टुतसे यजन करै ये अज्ञानसे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त हैं ॥ ७५ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् । ब्रह्महत्यापनोदाय मि-  
तमुद्भिर्यतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥ सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोषर्पादये

तु ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥

टीका—वेदोंमेंसे एक वेदको अपता हुआ स्वल्प आहार और जितेंद्रिय हो-  
ब्रह्महत्याके पापके दूर करनेके लिये सौ योजन अर्थात् चारसौ कौस चला जा-  
य यह भी अज्ञानसे किये हुए जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें तीनोवर्णोंका प्रायश्चित्त  
है ॥ ७६ ॥ अथवा वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर देवै जितना ध-  
न उसके जीवनेके लिये समर्थ होय अथवा गृह और घरकी उपयोगी सब धन-  
धान्य आदि वस्तुओं समेत इसीसे सर्वस्व अथवा सब सामान समेत घर देवै जी-  
वनाय अलं इस वचनसे जीवनेके लिये पूर्ण सर्वस्व अथवा घर देवै उस्से थोड़ा न  
होय यह तौ अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणका प्रायश्चित्त है सोई भ-  
विष्य पुराणमें लिखा है जैसे जातिमात्रं यदा हन्यात् ब्राह्मणं ब्राह्मणो गृह ॥ वेदा-  
भ्यासविहीनो वै धनवानग्निर्वाजितः ॥ प्रायश्चित्तं तदा कुर्याद्विदं पापविशुद्धये ॥ धनं  
वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ अर्थ ॥ हेकार्तिकेय जो ब्राह्मण जातिमात्र  
ब्राह्मणको मारै वेदाभ्याससे हीन होय धनवान् होय अग्नि करि वाजित होय तौ  
वह शुद्धिके लिये इस प्रायश्चित्तको करै अर्थात् जीवनेके लिये पूर्ण धन अथवा  
धान्य आदि सामग्री समेत घर देवै ॥ ७७ ॥

हविष्यं भुग्वां ऽर्जुनं सरस्वतीं प्रति सरस्वतीम् ॥ जपेद्वा नियताहार  
स्त्रिं वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७८ ॥ कृतवापनो निर्वसेद्ग्रामान्ते गो  
व्रजे ऽपि वा ॥ आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७९ ॥

टीका—नीवार आदि हविष्य अन्नका भोजन करनेवाला विख्यात भुक्षस्व-  
णसे लगाकै पश्चिम समुद्रके स्रोताके प्रति सरस्वतीकों जाय यह तौ प्रायश्चित्त  
जातिमात्र ब्राह्मणके ज्ञानपूर्वक वधमें ब्राह्मणके लिये कहा है अथवा परिमित  
कहिये थोड़ासा आहार करिकें तीन वार वेदकी संहिताको जपै संहिता शब्द-  
से पदक्रमका व्युदास हुआ ॥ ७८ ॥ अथवा वारहैं वर्षके सम्पन्न होनेपर इसकी  
उपस्थित होनेपर द्वादशवार्षिकका विशेष कहते हैं कटे हैं केश नख ढाड़ी  
मूच्छ जिसके ऐसा तथा गौ ब्राह्मणके हितमें लगा हुआ अर्थात् गौ ब्राह्मणका  
हित करता हुआ ग्रामके समीप गौओंके स्थानमें वृक्षके नीचे इनमेंसे कहीं रहै  
वृत्तेकुटीरकृत्य इसका यह विकल्प है ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणार्थे गैवार्थे वा सर्वे प्राणान्परित्यजेत् ॥ मुच्यते ब्रह्महत्यां

या गोप्तां गोत्रोद्धारणस्य च ॥८०॥ त्रिवारं प्रतिरोद्धां वा सर्वस्वमव  
जित्यं वा ॥ विप्रस्य तन्निमित्ति वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

टीका—बारह वर्षके आरंभ होनेपर बीचमें अग्नि जल तथा हिंसक आदि-  
कों करि दवाये हुए ब्राह्मणकी अथवा गौकी रक्षाके लिये प्राणोंको छोड़ता हुआ  
ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै गौ अथवा ब्राह्मणको उनसे बचाकै जीवता हुआ  
भी बारह वर्षोंके न समाप्त होनेपरभी ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै ॥८०॥ चोर आ-  
दिकों करि ब्राह्मणका सर्वस्व हरि लेनेपर उसके लानेके लिये कपटको छोड़िकै  
प्रथाशक्ति यत्नकरै वहां तीर्निवार युद्धमें प्रवृत्तहो सर्वस्वके न लानेपरभी ब्रह्मह-  
त्याके पापसे छूटि जाताहै अथवा पहलीवार हरै हुए ब्राह्मणके सर्वस्वको जीतिकै  
जो देताहै वह ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै अथवा धनके हरि जानेके कष्टसे ब्राह्मण  
आपही युद्धसे मरनेमें प्रवृत्त होय तब यद्यपि हरै हुए धनके बराबर देनेसे  
उसको जिवाता है तबभी उसके निमित्त उसका प्राणालाभ होनेपर ब्रह्महत्याके  
पापसे छूटि जाता है ॥ ८१ ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्म  
हत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥ शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमांगमे ॥  
स्वमेनोऽदभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे सदा नियमयुक्त स्त्रीसंयोग आदिसे रहित म-  
नको रोकै हुए बारह वर्षके समाप्त होनेपर ब्रह्महत्याके पापको नाश करताहै  
॥ ८२ ॥ अश्वमेध यज्ञमें ऋत्विज ब्राह्मणोंके और यजमान क्षत्रियके समागम  
होनेपर ब्रह्महत्याके पापको निवेदन करिकै यज्ञांतस्नानमें नहाया हुआ ब्रह्मह-  
त्याके पापसे छूटि जाताहै ॥ ८३ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राज्ञ्य उच्यते ॥ तस्मात्समांगमे तेषां  
मेनो विख्याप्य शुध्यति ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि  
दैवतम् ॥ प्रमार्ण चैवं लोकेस्य ब्रह्मैव हि कारणम् ॥ ८५ ॥

टीका—जिस्से ब्राह्मण धर्मका कारणहै ब्राह्मण करि धर्मका उपदेश करनेपर  
धर्मके करनेसे राजा उस धर्मका आगेका भाग मनु आदिकों करि कहा ग-  
याहै उन दोनो ब्राह्मण क्षत्रियों करि मूलसाहित धर्मरूप वृक्षकी सिद्धि होती है  
जिस्से उनके समागयरूप अश्वमेधमें पापका निवेदन करि अश्वमेधमें नहाया

हुवा शुद्ध होतहै॥८४॥ ब्राह्मण उत्पत्तिमात्रहीसे देवताओंकाभी पूज्यहै और श्रु-  
त आदि करि संपन्न होय तौ फिरि क्या कहनाहै मनुष्योंका और लोकका तौ  
बहुतही पूज्यहै क्योंकि उसके उपदेशकी प्रामाण्यताहै जिस्से उसमें वेदही का-  
रणहै और उपदेशका मूल वेदहै ॥८५॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ॥ सां तेषां पावनाय  
स्योत्पत्तिं विदुषां हि वाक् ॥८६॥ अतोऽन्यतममास्थाय विधिं  
विप्रः समोहितः । ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥८७॥

टीका—उन विद्वान् ब्राह्मणोंमेंसे वेदके जाननेवाले तीनभी अधिक होय तौ  
फिरि क्या कहनाहै पाप दूर करनेके लिये जिस प्रायश्चित्तको कहैं वह पापियों-  
की शुद्धिके लिये होताहै कारण यह है कि विद्वानोकी वाणी प्रविष्ट करनेवाली  
होती है तिससे प्रकाश प्रायश्चित्तके लिये पंडितोंकीभी सभा अवश्य करनी च  
हिये और रहस्य कहिये गुप्त प्रायश्चित्तमें तौ यह नहीं है ॥ ८६ ॥ इस प्रायश्चि-  
त्तके समूहसे किसी एक प्रायश्चित्तका आश्रय लेकर सावधानमन ब्राह्मण आदि  
प्रशस्ततासे ब्रह्महत्यासे किये हुए पापको दूर करतहै ॥ ८७॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेवं ब्रतं चरेत् ॥ राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रे  
यमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥ उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं  
तथा ॥ अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्बधम् ॥ ८९ ॥

टीका—स्त्री पुरुष तथा नपुंसकपनसे न जाने हुए ब्राह्मणके गर्भको मारिकै  
और यज्ञ करनेमें लगे हुए क्षत्रिय तथा वैश्यको और आत्रेयी कहिये रजस्वला  
ब्राह्मणी स्त्रीको मारिकै इसी ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८८ ॥ हिरण्यभूमि  
आदि युक्त साक्षमें झूठ बोलकै और गुरुको मिथ्या दूषण देकै और धरोहडका  
ब्राह्मणके सुवर्णको छोडि अन्य रजत आदि द्रव्यका और क्षत्रिय आदिके सुव-  
र्णकाभी अपहरण करिकै और कहे हुए स्त्री वधको करिकै और ब्राह्मण नहीं ऐसे  
मित्रको मारिकै ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमोप्याकामतो द्विर्जम् ॥ कामतो ब्राह्मणवधे  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥ सुरां पीत्वा द्विजो मोहोद भिर्वर्णा  
सुरां पिबेत् ॥ तर्था सकाये निर्दग्धे मुच्यते किं लिषात्ततः ॥ ९१ ॥

टीका—यह प्रायश्चित्त अकामसे ब्राह्मणके वधमें कहाहै और कामसे ब्राह्मण-

के वधमें यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इसे द्विगुण करनारूप है यह प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है कुछ प्रायश्चित्तके अभावके लिये नहीं है ॥ ९० ॥ द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अज्ञानसे सुराका पान करिके अभिवर्ण सुराका पान करै उस सुरासे शरीरके दग्ध होनेपर द्विज उस पापसे छूटि जाता है यह प्रायश्चित्त गुरुत्वके कारण कामसे किये हुए सुरापानमें जानना चाहिये सोई बृहस्पतिने कहा है जैसे॥सुरापाने कामकृते ज्वलंती तां विनिःक्षिपेत्॥मुखेतयासनिर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अर्थ ॥ कामसे सुराका पान करनेपर जलती हुई सुराको मुखमें डारै उससे जलकर मरा हुआ वह शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वां पिं वेदुदकमेव वां॥पयो घृतं वां॥मरणाद्गोशं कृद्रसमेव वां ॥ ९२ ॥ कृष्णान्वां भक्षयेद्वदं पिण्याकं वां सकृन्निशि ॥ सुरापानापनुत्त्यर्थं वालंवासा जटी ध्वजी ॥ ९३ ॥

टीका—गौका मूत्र जल गौका दूध गौका घृत और गोवरका रस इनमेंसे किसी एकको अग्निसम तपाके जबतक मरै तबतक पीवै ॥ ९२ ॥ अथवा गौके रोम आदिसे बने हुए वस्त्र धारण किये हुए और जटाओंको रखाये हुए सुराके पात्रका चिन्ह लिये हुए चावलोंके किनकोंको अथवा तिलोंकी खलीको रातिमें एकवार एक वर्षतक सुरापानके पापके नाशके लिये भक्षण करै यह अशुद्धिपूर्वक अमुख्य सुरापानमें देखना चाहिये ॥ ९३ ॥

सुरा वै मलमन्त्रानां पार्ष्णा च मलमुच्यते ॥ तस्माद्ब्राह्मणराजन्या वैश्यश्चैनं सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥ गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पार्ष्ण्य द्विजोत्तमैः ॥ ९५ ॥

टीका—चावलोंके पिष्टकी बनती है इस कारण सुरा अन्नका मल है और मलशब्दसे पल्ल कहा जाता है तिससे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पैष्टी सुराको न पीवै इससे निषेध होनेपर इसके अतिक्रमसे सुरापीत्वा इस प्रायश्चित्तके विधानसे पैष्टीका निषेध तीनो वर्णोंके लिये मनुने स्फुट कहा है ॥ ९४ ॥ जी गुडसे की गई होय सो गौडी और जी पिष्टसे की गई होय सो पैष्टी और महुआके वृक्षको मधु कहते हैं उसके फूलोंसे की गई होय सो माध्वी ऐसे तीन प्रकारकी सुरा जाननी चाहिये जैसे एक पैष्टी मुख्य है तैसेही गौडी माध्वीभी द्विजोत्तमोंको न पीनी चाहिये ॥ ९५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचात्रं मद्यं मांसं सुरासर्वम् ॥ तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं  
देवानामश्रता हविः ॥ ९६ ॥ अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाण्यु  
दाहरेत् ॥ अकार्यमन्यत्कुर्याद्ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९७ ॥

टीका—ग्यारह प्रकारका मद्य मांस और तीन प्रकारकी सुरा तथा आंसव  
ये मद्य चारो. यक्ष राक्षस तथा पिशाचोंको अन्नहैं सो ये देवताओंकी हवि खाने-  
वाले ब्राह्मणको न खाने चाहिये यहा कोई कहते हैं कि देवानामश्रताहविः वह  
जो पुंल्लिगका लिखनाहै तिस्से पुरुषही ब्राह्मणको मद्यपानका निषेधहै स्त्रीको  
नहीं सो अच्छा नहीं है क्योंकि ब्राह्मणवल्क्य आदि स्मृतियोंमें लिखाहै जैसे पति-  
लोकंनसायाति ब्राह्मणीयासुरांपिबेत् ॥ इहैवसाशुनीगृध्रांशुकरीचोपजायते ॥ अ-  
र्थ ॥ जो ब्राह्मणी सुराको पीती है वह पतिके लोकको नहीं जाती यही वह कु-  
तिया गीधनी तथा सुअरिया होती है ॥ ९६ ॥ ब्राह्मण मद्यपान करिके मदसे  
मूढबुद्धि हो अशुद्ध स्थानमें गिरै अथवा वेदके वाक्योंका उच्चारण करै अथवा  
नहीं करनेयोग्य ब्रह्महत्या आदिको करै इस्से उसको मद्यपान न करना चाहिये ९७

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ॥ तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं  
शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ९८ ॥ एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य  
निष्कृतिः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९९ ॥

टीका—जिस ब्राह्मणके शरीरमें स्थित वेद अर्थात् संस्काररूपसे स्थित एक-  
वारभी मद्यसे डुबाये जाय अर्थात् एकवारभी जो ब्राह्मण मद्यको पीताहै उसका  
ब्राह्मणत्व चला जाताहै और वह शूद्रताको प्राप्त होताहै तिस्से सर्वथा मद्य न पी-  
ना चाहिये ॥ ९८ ॥ यह सुरापानसे उत्पन्न पापका नाना प्रकारका प्रायश्चित्त  
कहा तिस्से प्रे अब सुवर्णका चुरानेके पापका प्रायश्चित्त कहौंगा ॥ ९९ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्भिप्रोः राजानमभिगम्य तु ॥ सर्वकर्म ख्यापयन्भूयान्मां  
भवाननुशास्तिर्विति ॥ १०० ॥ गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु  
तं स्वयम् ॥ वधेन शूद्रयति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाके ब्राह्म-  
णके सुवर्ण चुरानेरूप अपने कर्मको कहता हुआ मुझे दंड दीजिये ऐसे कहे ॥  
॥ १०० ॥ चोर कंधेपर मूसल रखके राजाके समीप जाय तब राजा उसके दिये



हुए मूसलसे चोरको एकवार आप मारै वह चोर मूसलकी चोटसे मारा हुआ मं  
अथवा न मारै मरेके समान होजीवै तौभी शुद्ध होय अर्थात् उस पापसे छुटि जा  
और ब्राह्मण तौ तपहीसे शुद्ध होता है सोई कहा है जैसे॥न जातु ब्राह्मण हन्या  
सर्व पापेष्ववस्थितम् इति॥अर्थ सब पापोंमें स्थितभी ब्राह्मणको कभी न मारै॥१॥

तपसाऽपनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ॥ चिरंवासा द्विजोऽरण्ये  
चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥२॥ एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥  
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ३ ॥

टीका—उसी तपको कहते हैं ॥ तबसे सुवर्णकी चोरीके पापको दूर किया  
चाहता द्विज बलकलवस्त्रोंको धारण करि वनमें वसिके ब्रह्महत्यारेके लिये कहे हुये  
व्रतको करै ॥२॥ ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको इन व्रतोंसे द्विज  
दूर करै और गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेके पापको तौ इन आगे कहे हुए  
प्रायश्चित्तोंसे दूर करै ॥ ३ ॥

गुरुतल्प्यभिर्भाष्यैर्नस्तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ सूमीं ज्वलन्तीं स्वा  
शिष्येन्मृत्युना सं विशुद्धयति ॥ ४ ॥ स्वयं वा शिश्रवृषणावुत्कृ  
त्याधाय चाञ्जलीं नैर्ऋतीं दिशंमार्तिं ष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥५॥

टीका—गुरुतल्पजो गुरुकी भार्या है तिसमें गमन करनेवाला गुरुभार्यामें ग-  
मन करनेसे उत्पन्न पापको विख्यात करिके लोहेकी तत्ती सेजपर सोवै और  
लोहेकी वृत्ती हुई जलती स्त्रीकी प्रातिमाका आलिंगन करि वह मरनेसे शुद्ध हो-  
तहै ॥४॥ अथवा आपही अपने लिंग और वृषणो काटिके अंजलीमें रखि ज-  
वतक शरीर न गिरै तब तक सीधा दक्षिण पश्चिम दिशाको चला जायये कहे हुए  
दोनों प्रायश्चित्त भारी होनेके कारण सुवर्ण, गुरुकी भार्यामें ज्ञानसे वीर्यके त्याग-  
पर्यंत मैथुनके मध्ये जानने चाहिये ॥ ५ ॥

खट्वाङ्गी चिरंवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ॥ प्रांजापत्यं च रेत्कृच्छ्र  
मन्दमेकं सम्महितः ॥ ६ ॥ चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येत्रियं  
तेन्द्रियः ॥ हविष्येण यवाग्वावां गुरुतल्पापनुत्तये ॥ ७ ॥

टीका—खट्वाङ्गको धारण किये हुए कपड़ोंके चीथरोंको पहिरे हुए केश नख लो-  
म और डाढी मूँछोंको रसाये हुए सावधान मन निर्जन वनमें एकवर्षतक प्राजा-

पत्य व्रतको करै यह तौ आगे कहे हुए प्रायश्चित्तकी लघुतासे अपनी भार्याके भ्र-  
मसे अज्ञान विषयक जानना चाहिये ॥ ६ ॥ अथवा गुरु भार्यामें गमन करनेसे उ-  
त्पन्न पापको दूर करनेके लिये इंद्रियोंको वशमें करि फल मूल आदिसे अथवा  
हविष्य नीवार आदिसे की हुई न्यवाणूसे तीनि महीने चांद्रायणोंको करै यह तौ  
पहले कहे हुएसेभी लघु होनेसे असाध्वी वा असवर्णामें गमन करनेसे  
जानना चाहिये ॥ ७ ॥

एतैर्व्रतैरपो हेयुर्महापातकिनो मलम् ॥ उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्ना  
नाविधैर्व्रतैः ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मांसं यवान्पिबेत् ॥  
कूर्तवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ९ ॥ चतुर्थकालमंश्री-  
यादक्षारं लवणं मितम् ॥ गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मांसौ निर्यतेन्द्रि-  
यः ॥ १० ॥ दिवानुगच्छेद्गोस्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ॥  
शुष्पित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥ ११ ॥ तिष्ठन्ती-  
ष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ॥ आसीनासु तंथासीनो निर्यं-  
तो वीरमत्सरः ॥ १२ ॥ आतुरामभिश्चस्तां वा चौरव्याघ्रादिभि-  
र्भयैः ॥ पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ १३ ॥ उष्णे  
वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मनस्त्राणं  
गोरकुर्वीतुं शक्तितः ॥ १४ ॥ आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षे-  
त्रेऽथवा खले ॥ भक्षयन्ती न कैथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम्  
॥ १५ ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ॥ स गोहं-  
त्याकृतं प्रापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ १६ ॥

टीका—इन कहे हुए व्रतोंसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले पाप-  
को दूर करै और गोवध आदि उपपातकोंके करनेवाले तौ आगे कहे हुए प्रका-  
रसे अनेकरूप व्रतों करिके पापको दूर करै ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तः यहाँसे  
अनेनविधिनायस्तु यहाँ तक कुलकहै ॥ उपपातक युक्त गौका मारनेवाला जव-  
की पतली दलिया पहले महीनेमें पीवै और शिखासमेत मूड मुडवा और डाढ़ी  
मूछोंको मुडवा उस मारी हुई गौके चर्मसे शरीरको ढके हुये तीनि महीनेतक  
गोष्ठ कहिये गौओंके रहनेके स्थानमें वसै और गोमूत्रसे स्नान करै जितेंद्रिय हो

बनाये हुए नोनके बिना हविष्य अन्नको एक दिन खायकै दूसरे दिन सायंकाल थोड़ा दूसरे तीसरे महीनोंमें खाय ऐसे तीनि महीनि करै और दिनमें सबेर उँन गौओंके साथ जाय उन गौओंके खुरोंसे उठी हुई घूलिको खडे होकै खाय और खुजाने आदिसे उनकी सेवा करिकै और प्रणाम करिकै रातिमें भीति आदिका सहारा लेकर बैठा रहै तथा शुद्ध और क्रोध रहित हो गौओंके उठनेपर चीछे उठै और वनमें घूमतियोंके पीछे घूमै और गौओंके बैठनेपर बैठे और रोगिणीको तथा चोर व्याघ्र आदिके भयके कारणोंसे दवाई हुईको गिरी हुईको अथवा कीचसे लिसी हुईको शक्तिके अनुसार छुड़ावै तथा उदय सूर्यके तपनेपर मेघके वस्त्रनेपर और शीतके उपस्थित होनेपर और फव्वनेके बहुत चलनेपर गौकी यथाशक्ति रक्षा न करकै अपनी रक्षा न करै तैसेही अपने तथा औरोंके घरमें खेतमें और खलिहानमें अन्न आदि खाती हुई गौको और दूध पीते हुए बछड़ेको न कहै इस कहै हुए विधानसे जो गौका मारनेवाला गौओंकी सेवा करताहै वह गौके मारनेसे उत्पन्न पापको तीनि महीनोंमें दूर करताहै ॥९॥११०॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

वृषभैकादशा गाँश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ॥

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो नि वेदयेत् ॥१७॥

टीका—सम्यक् प्रकारसे व्रत करनेवाला ग्यारहवां है बैल जिनमें ऐसी दश गौओंका दान करै जो इतना धन न होय तो वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्वका दान करै ॥ १७ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ॥ अवकीर्णिवज्रं शुद्धं चरुं  
चांद्रायणमर्थापि वा ॥ १८ ॥ अवकीर्णीं तु काणेन गर्दभेन चतु  
ष्पथं ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निर्ऋतिं ॥ १९ ॥

टीका—और तो उपपातकी आगे जो कहा जायगा ऐसे अवकीर्णीको छोड़कर पापके दूर करनेके लिये इसी गोवधके प्रायश्चित्तको अथवा चांद्रायण व्रतको कहै चांद्रायण तो नष्ट है इस लिये छोटे उपपातकमें करना चाहिये अथवा जाति शक्ती गुण आदिकी अपेक्षासे योजित करने योग्य है ॥ १८ ॥ आगे कहा हुआ अवकीर्णीं तो काने गंधेसे रातिमें चौराहेमें पाकयज्ञके मंत्रसे निर्ऋतिनाम देवताका यजन करै ॥ १९ ॥

हुत्वाभौ विधिवद्भोमानन्ततश्च समेत्युवा ॥ वातेन्द्रगुरुवह्नीनां

जुहुयात्सर्पिषाहुतीः॥१२०॥ कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजं  
न्मचः॥ अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ २१ ॥

टीका—तिसपीछ निरुक्तिके लिये चौराहेमें गर्दभरूप आदि हाँमोंको यथाव-  
त् करिकै उसके अंतमें समासिञ्चन्तुमरुतः इस ऋचासे मरुत, इंद्र, बृहस्पति,  
तथा अग्निके लिये घीसे आहुती होमे ॥ १२० ॥ असिद्ध न होनेके कारण अवकी-  
र्णीका लक्षण कहते हैं ॥ इच्छासे ब्रह्मचारी द्विजस्त्रीमें वीर्यको सींचिकै अवकी-  
र्णी होताहै इस वचनसे स्त्रीकी मोनिमें शुक्रका त्याग करिकै ब्रह्मचर्यका अतिक्र-  
म अवकीर्ण रूप सर्वज्ञ वेदके वेत्ता कहते हैं ॥ २१ ॥

मार्सुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ॥ चतुरो व्रतिनोऽभ्येति  
ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः॥२२॥ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते कसित्वा गर्द  
भजिनम् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ २३ ॥

टीका—ब्रह्मचारीका वेद पढ़नेके नियमके करनेसे उत्पन्न हुआ तेज अवकी-  
र्णी होनेपर मरुत, इंद्र, बृहस्पति, और अग्नि, इन चारोंमें चला जाताहै इससे  
उनके लिये घीकी आहुतियाँ होमे ॥ २२ ॥ इस अवकीर्णनाम पापके उत्पन्न हो-  
नेपर पहले कहे हुए गर्दभ माग आदिकों करिकै गर्दभचर्मको ओढ़े हुए मैं अवकी-  
र्णी हूँ ऐसे अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंमें भीख माँगै उनसे पाये हुए  
भीखके अन्नसे एकवार खायकै रहै ॥ २३ ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥ उपस्पृशं स्त्रिष्वणं  
त्वन्देनं स विशुद्ध्यति॥२४॥ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममि  
च्छया॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया॥२५॥

टीका—उन सात घरोंसे मिले हुए भिक्षाके अन्नसे एककाल आहार करता हुआ  
संध्या सवेरे और दुपहरमें स्नान करता हुआ वह अवकीर्णी एक वर्षमें शुद्ध होता  
है ॥ २४ ॥ ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा इत्यादिसे जातिके भ्रंश करनेवाले कर्म कह आये है  
उनमेंसे किसीको इच्छासे करिकै सात दिनतक करनेयोग्य सन्तपन व्रतको करै  
और इच्छाके विना करिकै आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करै ॥ २५ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मांसं शोधनमैन्दवम् ॥ मलिनं करणीयेषु तप्तः  
स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ २६ ॥ तुरियो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वर्षे

स्मृतः ॥ वैश्येष्टर्मांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥२७॥

टीका—खराश्वोष्ट्र इत्यादि करिके संकरी करण कहे हैं उनमेंसे एकको इच्छासे करिके शुद्धके लिये एक महीनेतक चांद्रायण करे और कृमिकीटवयोहत्या इत्यादिसे मूलिनीकरण कहे हैं उनमेंसे एककोभी इच्छासे करिके तीनि रात्रितक कथिता यवागूको खाय ॥ २६॥ ब्रह्महत्याका चौथा भाग अर्थात् बारह वर्षकी चौधई तीनिवर्षरूप प्रायश्चित्त स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियके वधमें कहाहै उपपातकत्व करिके कहे हुए त्रैमासिककी अपेक्षा गुरुत्व होनेसे वृत्तमें स्थित क्षत्रियके कामसे किये हुए वधमें देखना चाहिये और साधु आचारवाले वैश्यके कामसे वधमें आठवां भाग अर्थात् डेढ़ वर्षका व्रत और व्रतस्थ शूद्रके कामनासे मारनेपर सोलहवां भाग अर्थात् नव महीनेका देखना चाहिये ॥ २७॥

अकामतस्तु रज्जन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ॥

वृषभैकसहस्रा गां दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ २८ ॥

टीका—अबुद्धिपूर्वक कहिये विना जाने हुए क्षत्रियको मारकै एक बैल करि अधिक गौओंका सहस्र अर्थात् एक हजार गौ और एक बैल अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणोंको दान करे ॥ २८ ॥

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महृणो व्रतम् ॥ वसन्दूरतरे ग्रामादृक्ष-

मूलनिकेतनः ॥२९॥ एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ॥

प्रमाण्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकं शतं गवाम् ॥ १३० ॥

टीका—अथवा नियमयुक्तहो जटाओंको धारण किये हुए ग्रामसे दूर वृक्षके नीचे निवास करता हुआ ब्रह्महत्याके लिये जो व्रत कहाहै ब्रह्महादादशसमा इत्यादि वह तीनि वर्ष तुरीयोब्रह्महत्याया इससे पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि जटीदूरतरे ग्रामादृक्षमूलनिकेतनः इस वचनमें कहे हुएसे ज्यतिरिक्त शवके शिरका ध्वजाको धारण आदि सब धर्मोंकी निवृत्तिके लिये होनेसे और अकारसे यह अकाममें जानना चाहिये ॥ २९॥ इसी बारह वर्षके व्रतको विना कामनाके साधु आचारवाले वैश्यको मारिकै एकवर्ष ब्राह्मण आदि करै अथवा एक सौ एक गौओंका दान करे ॥ १३० ॥

एतदेव व्रतं कूर्त्स्नं षण्मासाच्छूद्रहा चरेत् ॥ वृषभैकादशा वार्षि दद्याच्चैकं शतं गवाम् ॥३१॥ मांजरीनकुलौ हत्वा चापं मण्डूक-

मेव च ॥ श्वंगोधोलूककाकांश्च शूद्रंहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३२ ॥

टीका—कामनाके बिना शूद्रको मारनेवाला इसी व्रतको छ महीने करै और दश सपेद गौएँ और एक बैल ब्राह्मणको दान करै ॥ ३१ ॥ बिलाव नौला चाफ मेढक कुत्ता गोह उल्लू कौआ इनमेंसे किसीएकको मारिकै शूद्रकी हत्याके व्रतकौ करै ॥ ३२ ॥

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो ब्रजेत् ॥

उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा मूक्तं वाब्देवतं जपेत् ॥ ३३ ॥

टीका—त्रिना जाने मार्जर आदिके बधमें तीनि रातितक दूध पीवै जो मंदाग्नि आदिसे समर्थ न होय तौ तीनि रातितक एक-योजन अर्थात् चारकोश मार्ग चलै इसमें अशक्त होय तौ तीनि राति नदीमें स्नान करै उसमेंभी अशक्त होय तौ आपोहिष्ठा इत्यादि सूक्तको जपै यथोत्तर लघु होनेसे पूर्व पूर्वके असंभवमें आगे आगेका परिग्रहहै विकल्प नहीं है ॥ ३३ ॥

अग्निं कौष्ण्यासीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ॥ पलालभारकं  
पण्डे सैसकं चैकमांषकम् ॥ ३४ ॥ धृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं  
तु तित्तिरौ ॥ शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायणम् ॥ ३५ ॥

टीका—सर्पको मारिकै ब्राह्मणके लिये तीक्ष्णहै अग्र जिसका ऐसा लोहका दंड देवै और नपुंसकको मारिकै पयारका भार और एकमासे सीसा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३४ ॥ शूकरके मारनेपर घीका भरा घट ब्राह्मणीको देवै तीतरके मारनेपर चारि आढक प्रमाण तिलोको दान करै शुकके मारनेमें दोवर्षका वछरा और क्रौंच पक्षीको मारिकै तीनिवर्षका वछरा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३५ ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ॥ वानरं श्येनं भासौ च रूपं  
श्येनब्राह्मणाय गौम् ॥ ३६ ॥ वासो दद्याद्भयं हत्वा पञ्च नीलान्वृ  
षान्गर्जम् ॥ अजमेषावनं द्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ ३७ ॥

टीका—हंस, बलाका, बक, भयूर, वान, श्येन, और भास, इन पक्षियोंमेंसे किसीको मारै तौ ब्राह्मणको गोदान करै ॥ ३६ ॥ घोडेको मारिकै बल्लका दान करै हाथीको मारिकै पांच नीले बैल दान करै बकरे तथा मेढे मारै तौ एक बैल दान करै गधेको मारिकै एक वर्षका वछरा दान करै ॥ ३७ ॥

ऋग्व्यादास्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ अक्रव्यादात्वं  
त्सतरीमुष्टं हत्वा तु कृष्णलम् ॥३८॥ जीनकामुकवस्तावीन्पृथ  
ग्दद्याद्विशुद्धये ॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽर्नवस्थिताः ॥३९॥

टीका—कच्चे मांसके खानेवाले मृगों अर्थात् व्याघ्र आदिको मारिके बहूत दू-  
धकी गौ देवे और मांसके न खानेवाले हरिण आदिकोंको मारिके जर्मानवछिया  
देवे और ऊंटको मारिके सुवर्णकी रत्तीका दान करै ॥३७॥ लोभसे उत्कृष्ट अ-  
पकृष्ट पुरुषोंमें व्यभिचार कहनेवाली ब्राह्मण आदि वर्णोंकी स्त्रियोंको मारिके ब्रा-  
ह्मण आदिके क्रमसे चर्मपुट, धनुष, छाग, मेढा, इनका शुद्धिकेलिये दान करै ३८

दानेन वंधनिर्णेकं सर्पादीनामशुक्लवन् ॥

एकैकशश्चैरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥१४०॥

टीका—अग्नि आदिकोंके न होनेसे दान करि संपूर्ण पाप दूर करनेको अ-  
समर्थ ब्राह्मण आदि प्रत्येकके वधमें कृच्छ्रकी प्रथमतासे द्विज पाप दूर करनेके  
लिये प्राजापत्यकी करै और सर्प आदिक तौ अग्निकाष्ण्यायसीदद्यात् इस्से ल-  
गाकै यहांतक ग्रहण किये जाते है ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ॥ पूर्णे चार्नस्यनस्थान्  
तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ किञ्चिदेवं तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वं-  
धे ॥ अर्नस्थान् चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४२ ॥

टीका—हड्डीवाले ककलास ( गिर्गट ) आदि हजार जीवोंके वधमें शूद्रके व-  
धका प्रायश्चित्त करै और अस्थि रहित खटमल आदिकोंके छकड़े प्रमाण मारने  
में उसी प्रायश्चित्तको करै ॥४१॥ हड्डीवाले ककलास आदि क्षुद्र जीवोंके प्रत्येकके  
वधमें कुछ थोड़ासा दे देवे अस्थिमतांवधेपणोदेयः अर्थात् हड्डीवालोंके वधमें प-  
णदेना चाहिये इस सुमंतुके वचनसे किंचिदेवसे पण जानना चाहिये और बिना  
हड्डीके जं खटमल आदिकोंमें प्रत्येकके वधमें प्राणायामसे शुद्ध होता है और प्रा-  
णायाम तौ व्याहृतियोंसमेत प्रणवसहित सावित्रीका शिरसमेत तीनवार  
जपहै जैसे त्रिःपदेदायतप्राणः प्राणायामेस्स उच्यते अर्थात् प्राणोंको चढाकै  
तीनवार पढ़ै उसकरे प्राणायाम कहते हैं यह वशिष्ठ करि कहे हुए लक्षणोंका  
जानना चाहिये ॥ १४२ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृकशतम् ॥ गुल्मवल्लीलतानां

च पुष्पिनानां च वीरुधाम् ॥ ४३ ॥ अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां  
च सर्वशः ॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशेषनम् ॥ ४४ ॥

टीका—फल्लोंके देनेवाले आम्र आदि वृक्षोंके और कुल्लक आदि गुल्मोंके और बल्लियोंके तथा गुडूची आदि लताओंके और वृक्षोंकी शाखाओंमें लिपटी हुई पुष्पित वीरुधोंके कूष्माण्ड आदिकोंमें प्रत्येकके काटनेमें पाप दूर करनेके लिये सावित्री आदि सो ऋचा जपनी चाहिये इधनार्थमशुष्काणां दुमाणामवपातनं इत्यादि उपपातकोंके मध्यमें पड़े हुका गुरू प्रायश्चित्तके कहनेसे यह फलवाले वृक्षोंके काटनेमें लघुप्रायश्चित्त एकवारके अबुद्धि पूर्वक करनेमें जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ अन्न आदिकोंमें उत्पन्न और गुड आदिके रसोंमें उत्पन्न और गूलर आदिके फलोंमें उत्पन्न और महुआदिके फूलोंमें उत्पन्न हुए सब प्राणियोंके वधमें धीका खाना पापका शोधनेवाला है ॥ ४४ ॥

कृष्टज्ञानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने । वृथालम्भेऽनुगच्छेद्वा ।  
दिनमेकं प्रयोव्रतः ॥ ४५ ॥ एतैर्व्रतैरपोह्य स्यादेनो हिंसासमुद्भव-  
म् ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतार्नाद्यभक्षणे ॥ ४६ ॥

टीका—जोतनेसे उत्पन्न हुई औषधी साठी आदिके और वनमें आपसे उत्पन्न हुए नीवार आदिके विना प्रयोजन काटनेमें एकदिन दूधका आहार गौओंका अनुगमन करै ॥ ४५ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे हिंसासे उत्पन्न ज्ञान तथा अज्ञानसे किये हुये पाप दूर करने चाहिये अब अभक्ष्यभक्षणका प्रायश्चित्त जो आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ४६ ॥

अज्ञानाद्गौरुणी पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ॥ मतिपूर्वमनिर्दे-  
श्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ४७ अपः सुराभाजनस्था मद्यभा-  
ण्डस्थितास्तथा ॥ प्रश्नरात्रं पिवेत्पीत्वा शङ्खपुष्पश्रितं पर्यः ४८

टीका—अज्ञानसे गौड़ी तथा माध्वीको पीकर गोतमका कहा हुआ तप्तकृच्छ्र सातपन व्रत करके फिर पुनः संस्कारसेही शुद्ध होता है सोई गोतमने कहा है ॥ जै से अमत्यामद्यपाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रतिष्यहं तप्तकृच्छ्रः तबोऽस्य संस्कारः ॥ अर्थ । विना जाने मद्य पीनेमें दूध घी पानी और पवन प्रतिष्यहं अर्थात् तीन दिन बराबर एक एक पीवै फिर तप्तकृच्छ्र करे तिस पीछे इसका संस्कार कराना चाहिये



भविष्य पुराणमें भी ऐसा ही व्याख्यान किया है जैसे ॥ अकर्मतः कृते पाने गौडी-  
माध्व्यो न रारिषीत् ॥ तप्तकृच्छ्रविधानं स्याद्गौतमेन यथोदितम् इति ॥ अर्थ हैनराधिपु-  
कामनाके बिना गौडीमाध्वीका पान करने पर तप्तकृच्छ्रका विधान होता है जैसा गौ-  
तमने कहा है इति । और बुद्धिपूर्वकतौ पैछीसे भिन्न मद्य पीनेमें प्राणांतिक अनिर्देश्य  
दंड चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है तैसेही ज्ञानसे गौडी माध्वीके पीने पर मरणके  
निषेधसे और अन्यमद्योंकी अपेक्षासे और गुरुत्वसे मनुकाही कही कणान्वाभक्षये-  
ददं अर्थात् अथवा वर्षभर कणोंका भक्षण करै यह प्रायश्चित्त कहा है इसीसे गौ-  
डी तथा माध्वीके, ज्ञानसे पीनेमें भविष्य पुराणका वचन है अथवा इसी विषय-  
में मनुसंबंधी करै जैसे कणान्वा भक्षयेददं पिण्याकं वासकृन्निशि ॥ सुरापानापनु-  
त्यर्थं ताल्वासाजटीध्वजी इति ॥ अर्थ एकवर्षतक कणोंका भक्षण करै अथवा  
रातिमें एकवार तिलकी खली खाय सुरापानके पाप दूरि करनेके लिये तालके  
वस्त्र पहिरै जटा रखाये रहै और मद्यका ध्वजा लिये रहै इति ॥ ४७ ॥ पैछी सुराके  
पात्रमें अथवा उस्से अन्यसुराके पात्रमें रक्खे हुए सुराके रस तथा गंधसे रहित  
जलको पीकै शंखाहूली नाम औषधिको डाल औटायके पांचरातितक दूध पीवै ४८

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मंदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ॥ शूद्रोच्छिष्टार्थं पी-  
त्वापः कुशवारि पिबेन्न्यहम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमा-  
घ्राय सोमपः ॥ प्राणानप्सु त्रिरात्रं मय धृतं प्रांश्य विशुद्ध्यति १५० ॥

टीका—सुराको झूके देकै और स्वस्तिवचन पूर्वक दान लेकै और शूद्रका उ-  
च्छिष्ट जल पीके ब्राह्मण दर्भ डालकै औटाए हुए जलको तीन दिन पीवै ४९  
सोमयाग करनेवाला ब्राह्मण सुरा पीनेवालेके मुखके गंधको सूंघि और जलके  
मध्य तीन प्राणायाम करि घी खायकै शुद्ध होता है ॥ १५० ॥

अज्ञानात्प्रांश्य विष्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥ पुनः संस्कारमर्हन्ति  
त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ५१ ॥ वर्षेन मेखलादण्डो भैक्षं चर्या व्रतानि  
च ॥ निर्वर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ ५२ ॥

टीका—बिना ज्ञाने मनुष्यके मूत्र तथा पुरीष खायकै और सुरा करि स्पर्श  
केये हुए भक्त आदिके रसको खायकै द्विजाति तीनो वर्ण फिर यज्ञोपवीत क-  
नेयोग्य होते हैं ॥ ५१ ॥ शिरका मुडना मेखलाका धारण दंडधारण और भै-  
क्षचर्याव्रत प्रभु मांस स्त्रीवर्जनकरि युक्त ये सब प्रायश्चित्तके लिये दूसरीवा-  
यज्ञोपवीत करनेमें द्विजातियोंके नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वा त्रिंस्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेवं च ॥ जग्ध्वा मांसम-  
भक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पि वेत् ॥ ५३ ॥ शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा  
मेध्यान्यपि द्विजः ॥ तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्त्रं व्रजत्यधः ॥ ५४ ॥

टीका—अश्रोत्रियकृतेयज्ञे इत्यादि करि कहे हुए अभोज्य जिनका अन्न है ऐ-  
सोंका अन्न खाकर जलसे मिले हुए सतुओंके रूपसे अथवा गूजोदलिया है  
तिसके रूपसे यवोंको पीनेयोग्य करिके सातरात्रि पीवे इसी विषयमें मत्स्या  
भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं अर्थात् जानिके खायेके कृच्छ्र करे यह चौथे अध्यायमें क-  
हा है उसके साथ विकल्पित है विकल्प तो कर्त्ताको शक्तिकी अपेक्षासे होता है तै-  
सैही द्विजातिकी स्त्रियोंका उच्छिष्ट अथवा शूद्रका उच्छिष्ट खायेके इसी व्रत-  
को करे तैसैही क्रव्यादशूकरघोषाणां इत्यादिसे जो विशेष प्रायश्चित्त कहा है सौ  
निषेद्ध मांसको खायेके इसी प्रायश्चित्तको करे ॥ ५३ ॥ जे स्वभावसे मधुर आ-  
दि रस हैं और कालके योगसे जलमें वास आदिसे खटे होजाते हैं वे शुक्त हैं और  
कषाय कहिये बहेडा आदिको और नहीं निषेध किये हुएभी कथितोंको पीकर  
जबतक न पचिजाय तबतक पुरुष अशुद्ध होता है ॥ ५४ ॥

विद्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥ प्राश्य मूत्रपुरीषाणि  
द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५५ ॥ शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमा  
नि कवकांनि च ॥ अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेवं व्रतं चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका—गांवका सुअर, गधा, ऊंट, स्यार, वानर, कौवा, इनके मूत्र अथ-  
वा विष्टाको द्विजाति खायेके चांद्रायण व्रत करे ॥ ५५ ॥ पवन आदि करि सु-  
खाये गये मांसोंको खायेके और भूमि आदिमें अथवा वृक्षमें उत्पन्न हुए छत्रा-  
कोंको जो खाते हैं उनको ब्रह्मघाती जानै इससे यमने वृक्षमें उत्पन्नकाभी निषेध  
किया है । हरिणका मांस है अथवा भैंसेका मांस है इस प्रकार भक्ष्य अभक्ष्यके वि-  
ना जाने हिंसाके स्थानसे लाये हुए मांसको खायेके चांद्रायणही करे ॥ ५६ ॥

क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां कुंकुटानां च भक्षणे ॥ नरकाकखराणां च त-  
प्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ ५७ ॥ मांसिकान्नं तु योऽश्रीयादसंमार्तको  
द्विजः ॥ स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ ५८ ॥

टीका—कच्चे मांसके खानेवालोंका और गांवके शूकर, ऊंट, और गांवके मुरगे-  
का तथा मनुष्य, कौवा, गधा इनमेंसे जानिके किसीका मांस खानेसे आगे कहा

हुआ तप्त कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहा है और ग्राम्य शूकर तथा कुकुटके ज्ञानके खानेमें पांचमें अध्यार्यमें पतित होना कहा है सो तो अभ्यासमें व्याख्यान किया गया है वह तो अभ्यासमें तप्तकृच्छ्र कहा है यह अविरोध हुआ ॥ ५७ ॥ जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण मासिकश्राद्धके अन्नको खाता है यह तो सपिंडी करनेसे पहले एको-दिष्ट श्राद्धके अन्नका उपलक्षण है वह तीनिराति उपवासकरै तीनिरातिके मध्यमें एकदिन जलमें वैसे ॥ ५८ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्रीयान्मर्धु मांसं कथंचन ॥ स कृत्वा प्राकृतं कृं  
च्छ्रं व्रतशेषं ममापयेत् ॥ ५९ ॥ विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा  
श्वनकुलस्य च ॥ केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवचलाम् ॥ ६० ॥

टीका—जो ब्रह्मचारी शहत अथवा मांसको अनिच्छासे अथवा आपत्तिमें स्वा-  
य वह प्राजापत्यको करिके आरंभ किये हुए ब्रह्मचर्य व्रतके शेषको समाप्त करै  
॥ ५९ ॥ बिलाव, कौवा, मूसा, कुत्ता, और नौला, इनके उच्छिष्टको अथवा केश  
कीटरूप संसर्गसे दूषितको एकवार मिट्टी डालनेसे शुद्ध ज्ञानि सायकै ब्रह्मसुव-  
चलासंज्ञक कथित जलको पीवै ॥ ६० ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥ अज्ञानभुक्तं तू-  
त्तार्य शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥ ६१ ॥ एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रता  
नां विविधो विधिः ॥ स्तेयदोषापहर्तृणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥ ६२ ॥

टीका—अपनी शुद्धि चाहनेवाले पुरुषको निषिद्ध अन्न न खाना चाहिये  
और प्रमादसे खाया हुआ वमन कर देना चाहिये उसके असंभवमें प्रायश्चित्तोंसे  
शीघ्र शोधन करना चाहिये वमनके पक्षमें तो लघु प्रायश्चित्त होता ही है और  
ज्ञानसे पहले कहा हुआ प्रायश्चित्त है ॥ ६१ ॥ अभक्ष्यके भक्षणमें जे प्रायश्चित्त है  
तिनका यह नाना प्रकारका विधान कहा अब चोरीके पापोंके दूर करनेवालों-  
का विधान सुनिये ॥ ६२ ॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्विजोत्तमः ॥ स्वजातीयगृहादेव  
कृच्छ्राब्देन निशुद्धयति ॥ ६३ ॥ मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृह-  
स्य च ॥ कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

टीका—ब्राह्मण ब्राह्मणके घरसे धान्य भोजन आदिकी चोरीको इच्छासे करिके  
अपनेके भ्रमसे नहीं लेकर एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ ६३ ॥

पुरुष स्त्रीं खेत घरं इनमेसे किंसीके हरनेमें और कुआके जलके तथा • बावड़ीके सब जलके हरि लेनेमें चांद्रायण व्रत मनु आदिकोंन प्रायश्चित्त कहा है ॥ ६४ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यैवेष्टमतः ॥ चरेत्सान्तपनं  
कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्ध्यै ॥ ६५ ॥ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्या  
सनस्य च ॥ पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ६६ ॥

टीका—जिनका मूल्य थोडा है और जिनका प्रयोजनभी कम पडता है और जिनका प्रायश्चित्त विशेषभी नहीं कहा है ऐसी रांगर सीसा आदि वस्तुओंके पराये घरसे चुराके वह चुराया हुआ द्रव्य उसके स्वामीको दे करि सांतपन कृच्छ्र जो आगे कहा जायगा उसको अपनी शुद्धिके लिये करै ॥ ६५ ॥ लड्डू आदि भक्ष्यके और स्त्री आदि भोज्यके और शकट आदि यानके और शय्या तथा आसनके और पुष्प मूल फल इनमेसे प्रत्येकके चुरानेमें पंचगव्यका पीना शोधन है ॥ ६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ॥ चेलचर्मामिषाणां च  
त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ६७ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रज  
तस्य च ॥ अर्थः कांस्योपलानां च द्वादशहं कर्णान्नता ॥ ६८ ॥

टीका—तृणकाष्ठ तथा वृक्षोंके और चामल आदि सूखे अन्नके चुरानेमें और भारी वस्त्र चर्म तथा मांस इनमेसे एककेभी चुरानेमें तीन रात्रि उपवास करै ॥ ६७ ॥ मणि, मोती, मृगा, तामा, रूपा, लोह, कांसा और उपल इनमेसे एककेभी चुरानेमें बारह दिन तक चामलोंके कनोंका खाना करै ॥ ६८ ॥

कर्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥ पक्षिगन्धौषधीनां च  
रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ ६९ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेर्त पापं स्तेयकृतं द्वि-  
जः ॥ अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिर्पानुदेत् ॥ १७० ॥

टीका—कपास रेशम तथा ऊनके वस्त्रोंके और दो खुरके तथा एक खुरके गौ घोडा आदिके और तोता आदि पक्षियोंके और चंदन आदि गंधोंके और रस्सीके इनमें प्रत्येकके चुरानेमें तीन दिन दूधका आहार करै ॥ ६९ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे द्विजाति चोरीसे उत्पन्न पापको दूर करै और नहीं गमन करने योग्यमें गमन करनेसे उत्पन्नको तो इन आगे कहे हुए व्रतोंसे दूर करै ॥ १७० ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषां सरव्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु  
कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥७१॥ पतृष्वसेर्या भगिनीं स्वस्त्रीयां मातु  
रेव च ॥ मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥७२॥

टीका—सगी बहिनीमें तैसेही मित्रकी भार्याओंमें और गुरुकी पत्नियोंमें कुमा-  
रियोंमें और चांडालियोंमें इन सबोंमेंसे प्रत्येकमें वीर्यको सींचिकै गुरुभार्याके  
गमनका प्रायश्चित्त करै ॥ ७१ ॥ पिताके बहिनिकी तथा माताकी बहिनकी पु-  
त्रीबहिनमें और माताके सगे भाईकी पुत्रीमें जिनका गमन सगी बहिनिके स-  
मान निषिद्ध है उनमें गमन करिकै चांद्रायण व्रत करै एकवार अज्ञानसे करने-  
में यह प्रायश्चित्त है ॥ ७२ ॥

एतास्तिष्ठन्तु भार्याथे नोपर्यच्छेत्तु बुद्धिमान् ॥ ज्ञातित्वेनानुपे-  
यास्ताः पतति ह्युपर्यन्नर्थः ॥७३॥ अमानुषीषु पुरुष उदक्याया-  
मयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥७४॥

टीका—तीनि ये पिताकी बहिनिकी पुत्री आदिकोंको भार्याके निमित्त पंडित  
न व्याहै ज्ञातिघनसे और बांधवपनसे ये गमन करनेयोग्य नहीं हैं जिसे इनको  
व्याहि गमन करता हुआ नरकको जाता है ॥ ७३ ॥ अमानुषी कहिये गौको छो-  
डिकै घोड़ी आदिमें गौओंमें अबकीणी एकवर्ष प्रजापत्य करै यह शंखलिखित  
आदिकोंने भारी प्रायश्चित्त कहा है तथा राजस्वलोंमें और योनिसे अन्यत्र स्त्रीमें औ-  
र जलमें वीर्यसेचन करिकै पुरुष सांतपन कृच्छ्र करै ॥ ७४ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः गोयानेऽप्सु दिवा चैव  
सर्वासाः स्नानमाचरेत् ॥७५॥ चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च  
प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥७६॥

टीका—जिस किसी स्थानमें पुरुषमें अथवा स्त्रीमें मैथुनका सेवन करि अथ-  
वा बैलोंकी सवारी डेकडे आदिमें जलमें और दिनमें मैथुनका सेवन करि सचै-  
ल स्नान करै ॥७५॥ चांडालकी और अंत्यजोंकी और म्लेच्छ शबर आदि-  
कोंकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण अज्ञानसे गमन करिकै और उनका अन्न खायकै और उ-  
नसे दान ले करि पतित होता है वह पतितका प्रायश्चित्त करै यह तो गुरुत्वसे और  
अभ्याससे भोजन और प्रतिग्रहविषयक है और ज्ञानसे तो उनकी स्त्रीमें गम-

न करिकै समाजताको प्राप्त होताहै यह तौ प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है ॥ ७६ ॥

विप्रैर्दुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेर्कवैश्मनि ॥ यत्पुंसः परंदारेषु त-  
च्चैनां चारयेद्रतम् ॥ ७७ ॥ सां चेतुनः प्रदुष्येत्तु सदैशेनोपय-  
न्त्रिता ॥ कुच्छं चांद्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

टीका—विशेष करि प्रदुष्ट अर्थात् इच्छासे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको भ-  
र्तारोके अर्थात् पत्नीके कामोंसे निवृत्त करिकै बेरियोमे बंधीके समान एक घरमें  
रक्खै जो तौ पुरुषके सजातीय पराईदाराके गमनमें प्रायश्चित्तहै वही इस्से करावै  
तिस पीछे तौ स्त्रीणामर्द्धप्रदातव्यं अर्थात् स्त्रियोंको आधा-देना चाहिये यह वसि-  
ष्ठ आदिकोंने कहाहै सो अनिच्छासे व्यभिचारमें करना चाहिये ॥ ७७ ॥ सजाती  
यके गमनसे एकवार दूषित और कियाहै प्रायश्चित्त जिसने ऐसी यह स्त्री जो फि-  
रि सजातीय करि प्रार्थित हुई उस्से गमन करै तौ इसका प्रायश्चित्त प्राजापत्य  
और कुच्छ चांद्रायण शोधनेवाला मनु आदिकोंने कहाहै ॥ ७८ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्विजः ॥ तद्रैक्षभुर्गपन्नित्यं त्रिं  
भिर्वैष्यपोहति ॥ ७९ ॥ एषा पापकृतमुक्ता चतुर्णामपि नि  
ष्कृतिः ॥ पतितैः संप्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतीः ॥ १८० ॥

टीका—चांडालीमें गमनसे ब्राह्मण जिस पापका एक रात्रिमें संचय करताहै  
उसको भिक्षाका खानेवाला और नित्य सावित्री आदिका जप करता हुआ ती-  
निवर्षमें दूर करताहै ॥ ७९ ॥ हिंसा अभक्ष्य भक्षण चोरी अगम्यागमन करनेवा-  
ले इन चारो पाप करनेवालोंकी यह विशुद्धि कही अब साक्षात्पाप करनेवालोंके  
साथ संसर्ग करनेवालोंके लिये इन आंगे कही हुई शुद्धियोंको सुनिये ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौनां त्रुं तु  
यानासनाशनात् ॥ ८१ ॥ यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ॥  
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ८२ ॥

टीका—पतितके साथ संसर्ग करता हुआ मनुष्य अर्थात् एक स्ववारीमें जाना  
एक आसनपर बैठना और एक पंक्तिमें भोजनरूप संसर्गोंको करता हुआ एक  
संवत्सरमें पतित होताहै और याजन अध्यापन तथा यौनसंबंधसे संवत्सरमें नहीं  
पतित होता है किंतु शीघ्रही पतित होताहै अध्यापन यहां उपनयन पूर्वक सा-

वित्री मंत्रका सुनानाहे ॥८१॥ इन् पतितोमें जो जिस पाप करनेवालेके साथ पहले कहे हुए संसर्गको करताहै वह इस संसर्गके शुद्धिके लिये उसीके व्रतरूप प्रायश्चित्तको करै मरणांतिक न करै यह कहा गया ॥ ८२ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ॥ निन्दितेऽहं नि साया  
ह्वे ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ ८३ ॥ दासी घटमपां पूर्ण पर्यस्येत्प्रेतव  
त्पदा ॥ अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥ ८४ ॥

टीका—सपिण्ड और समानोदकोंको जीवतेही मंहा पातकी प्रेतक्रिया आगे कही हुई रीतिसे ग्रामके बाहर जाकै ऋत्विक् और गुरुके निकट रिक्ता नवमी-तिथिमें संध्या समय करनी चाहिये ॥ ८३ ॥ सपिण्ड समानोदकों करि प्रेरणाकी हुई दासी जलसे भरे हुए घटको प्रेतवत् ऐसे कहिकै दक्षिणको मुख करि लातसे मारै जैसे धई निरुदकहोजाय अर्थात् तर्पणके योग्य न रहै तिस पीछे वे सपिण्ड समानोदकों समेत एक रातिदिनका आशौच करें ॥ ८४ ॥

निर्वर्तरेऽथ तस्मात्तु संभाषणसहासने ॥ दास्यस्य प्रदानं च यात्रा  
चैव हि लौकिकी ॥ ८५ ॥ ज्येष्ठता च निर्वर्तते ज्येष्ठावाप्यं च य  
द्धनम् ॥ ज्येष्ठांशं प्राभुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ ८६ ॥

टीका—उस पतितसे सपिण्ड आदिकोंका बोलना एक आसनपर बैठना और उसके लिये हिस्सा देना और सांवत्सरिक आदिमें निमंत्रण आदि लोकव्यवहार में सब दूर होजाते हैं ॥ ८५ ॥ जेठका जो प्रत्युत्थान आदि किया जाताहै सो इस पतितका न करना चाहिये और जेठके मिलने योग्य जो उसका वीस उद्धार आदिका धनहै सोभी उसको न देना चाहिये यद्यपि भाग देनेके निषेध हीसे उद्धारका निषेध सिद्धहै तिसपरभी छोटेको उसके पानेके लिये कहा जाताहै उसी जेठके धनको उद्धार समेत गुणमें अधिक उसका छोटा भाई पाताहै ॥ ८६ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । ते नैत्रं सार्धं प्रांस्येयुः  
स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ ८७ ॥ स त्वंस्मृतं घटं प्रांस्य प्रविश्य भ  
वनं स्वकम् । सर्वाणि ज्ञातिकायाणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—पतितके प्रायश्चित्त करनेपर सपिण्ड और समानोदक उसी प्रायश्चित्त किये हुएके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करिकै जलसे भरे हुए नवीन घटको

ढाल दें ॥८७॥ जिसने प्रायश्चित्त किया है वह उस पहले कहे हुए घटको जलमें डालके तिसप्रीछे अपने घरमें आके पहलेके समान सब ज्ञातिके कर्मोंको करे ॥८८॥

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥ वस्त्रान्नपानं देयं तु  
वस्येयुश्च गृहान्तिके ॥८९॥ एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थ किञ्चित्सह  
चरेत् ॥ कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत् कर्हिचित् ॥ १९० ॥ —

टीका—पतित स्त्रियोंमेंभी ऐसेही पतितस्योदककार्य इत्यादि विधिको भर्त्ता आदि सपिंड और समानोदक समूह करै और इनको भोजन वस्त्र देने चाहिये और घरके समीप इनको रहनेके लिये कुटी देनी चाहिये ॥ ८९ ॥ जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये है ऐसे पाप करनेवालोंके साथ दानं प्रतिग्रह आदि अर्थ-कुछ भी न करै और जिन्होंने प्रामश्चित्त किया है उनकी पहले किये हुए पापसे कभी निंदा न करै पहलेके समान व्यवहार करै ॥ १९० ॥

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ॥ शरणागतहतंश्च स्त्री  
हन्तृश्च न संवसेत् ॥ ११ ॥ येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथा  
विधि ॥ तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥ १२ ॥

टीका—जिसने बालकको मारा और जिसने किये हुए उपकारको अपकार करनेसे नाश किया और प्राणोंकी रक्षाके लिये आये हुएको और स्त्रीको जिसने मारा होय इनको यथायोग्य प्रायश्चित्त करनेपरभी संसर्ग करिके समीप न वसवै ॥ ११ ॥ जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गौणकालमेंभी शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत न किया गया उनको तीनि प्राजापत्य करवाके शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत करै ॥ १२ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ॥ ब्रह्मणा च परि  
त्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ १३ ॥ यद्ब्रह्मतेनार्जयन्ति कर्मणा  
ब्राह्मणां धनम् ॥ तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥ १४ ॥

टीका—जे निषिद्ध शूद्रकी सेवा करनेवाले द्विजहैं वे यज्ञोपवीत होंनेपरभी वेदको न पढे हुए जो प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करै तो उनकोभी यह तीनि प्राजापत्य करनेका उपदेश करै ॥ १३ ॥ निंदित कर्मसे अर्थात् निषिद्ध बुरे प्रतिग्रह आदिसे ब्राह्मण जिस धनको जोडते हैं उस धनके त्यागसे और आगे कहे हुए



जप और रूपसे शुद्ध होतेहैं क्योंकि धनकात्यागही प्रायश्चित्तका विधान है ॥ ९४ ॥

जपित्वा त्रीणि सौवित्र्याः सहस्राणि समाहितः ॥ मांसं गोष्ठे प्रय-  
पित्वा मुच्यतेऽसंप्रतिग्रहात् ॥ ९५ ॥ उपवासकृशं तं तु गोव्रजा-  
त्पुनरागतम् प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ॥ ९६ ॥

टीका—सावित्रीका तीनि हजार जप करिके गौओंके स्थानमें वास करि दु-  
ग्धका आहार करनेवाला बुरे दानके लेनेसे उत्पन्न पापसे छूटि जाता है शुद्धकर्म-  
प्रतिग्रह आदिमेंभी यही पायश्चित्त है ॥ ९५ ॥ केवल दूधके आहारसे और अन्यभो-  
जन न करनेसे दुर्बल जिसका देह गौओंके स्थानसे लौटे हुए नमस्कार करते न-  
भ्र उस मनुष्यसे पूछै कि हमारे साथ बराबरी चाहता है फिर बुरा दान लेगा ऐ-  
से धर्मको ब्राह्मण पूछै ॥ ९६ ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यर्वसं गवाम्। गोभिः प्रवर्तिते तीर्थ-  
कुयुस्तस्य परिग्रहम् ॥ ९७ ॥ ब्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्य-  
कर्म च ॥ अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छैर्व्यपोहेति ॥ ९८ ॥

टीका—यह सत्य है फिर बुरे दानको न लेउगा ऐसे ब्राह्मणोंमें कहिके गौओंको  
घास डारै उस घास खा हुए पवित्रीभूतस्थानमें ब्राह्मण उसको व्यवहारमें अंगीकार  
करै ॥ ९७ ॥ ब्रात्यस्तोम आदि याजन कराकै और पिता गुरु आदिसे भिन्नो-  
का निषिद्ध और्ध्वदेहिक दाह श्राद्ध आदि करिके और अभिचार तथा अहीनया-  
गनिशेष करिके तीनि कृच्छ्रोंसे शुद्ध होता है ॥ ९८ ॥

शरणागतं परित्यज्य वेदं विष्ठाव्य च द्विजः। संवत्सरं यवाहारस्तं  
त्पापमपसेधति ॥ ९९ ॥ श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्विरेव च ॥  
नराश्वोष्ट्वराहैश्च प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २०० ॥

टीका—रक्षाके लिये शरणमें आये हुएको जो समर्थ होनेपर त्याग करता है  
और द्विजाति नहीं पढ़ानेयोग्यको वेद पढ़ाकै उससे उत्पन्न हुए पापको एक वर्ष  
तर्क जबका आहार दूर करता है ॥ ९९ ॥ कुत्ता, स्यार, गधा, नर, अश्व, वारा-  
ह आदि ग्रामके और कच्चे मांसके खानेवाले विलाव आदि करि काटा हुआ पु-  
रुष प्राणायामसे शुद्ध होता है ॥ २०० ॥

षष्ठान्नकालता मांसं संहिताजप एवं वा। होमार्थं सकृच्छा नित्यम्

पाङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥ १ ॥ उप्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामं  
व्रतः ॥ स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २ ॥

टीका—विशेष करि जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है ऐसे पंक्तिसे बारह जो  
स्तेन, पतित, छीब आदिकोंका १ मासतक दो दिन न खाके तीसरे दिन सायंका  
लके समय भोजन करना और वेदकी संहिताका जप और देवकृतस्थैनसोऽव-  
यजनमसि इत्यादिक आठ मंत्रोंसे आठ होम प्रत्येक करै यह समुदित पापका  
शोधन है ॥१॥ ऊंट जिसमें जुते हैं ऐसा छकड़ा आदि यान. (सवारी) में और  
र गधेके यानमें इच्छासे बढिकै और ऊंट तथा गधेपर चढिकै चलनेमें बहुतसे प्रा-  
णायामोंके करने और नंगे होकै स्नान करि प्राणायामसे शुद्ध होता है ॥ २ ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यातः शरीरं सन्निवेश्य च ॥ सचै लो बहिराभ्यु-  
त्थ्य गामालभ्य विशुद्धयति ॥ ३ ॥ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां सम-  
तिक्रमे ॥ स्नातकं व्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ ४ ॥

टीका—जलके समीप न होनेपर अथवा जलमें वेगसे पीछित हो मूत्र अथवा  
पुरीषको करके गांवके बाहर नदी आदिमें सचैल स्नान करि गौको छूके शुद्ध हो-  
ता है ॥३॥ वेदमें कहे हुए और जिनके न करनेका प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा है  
ऐसे अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मोंके लोप होनेपर और चौथे अध्यायमें कहे हुए  
स्नातक व्रतोंके अतिक्रम होनेपर एक रातिदिनका उपवास प्रायश्चित्त कहा है ॥४॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ॥ स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषम्  
भिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्य वा  
ससा ॥ विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—हूं चुप बैठिये ऐसे ब्राह्मणका आक्षेप करिकै और विद्या आदिमें अ-  
धिकको तु ऐसे कहिकै उस कहनेके समयसे लगाके जितना दिन बाकी होय उस-  
में भोजन न करै और पावोंमें पड़के उसको कोपरहित करै ॥५॥ ब्राह्मणको ति-  
नकेसे मारिकै अथवा गलेमें कपड़ेसे बांधिकै अथवा बातोंके कलहमें जीतिकै  
प्रणाम करिकै प्रसन्न करै ॥ ६ ॥

अवगूर्य त्वद्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥ जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं  
प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ॥ तां  
वन्त्यर्द्धसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥ ८ ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे डंडेको उठाकै सौ वर्षतक नरकमें रह-  
ताहै और दंड आदिसे ताडन करिकै हजार वर्षतक नरकमें रहताहै ॥ ७ ॥ म-  
हार किये हुए ब्राह्मणका रुधिर जितने घूलिके कर्णोंको भूमिमें भिगोयकै पिंड  
करता है उतनीही वर्षोंतक वह रुधिर निकालनेवाला नरकमें बसताहै ॥ ८ ॥

अवगूर्यं चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत  
विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ ९ ॥ अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपि  
नुत्तये ॥ शक्तिं च वेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंड आदिके उठानेमें कृच्छ्र करै और  
दंड आदिके मार देनेमें आगे कहे हुए अतिकृच्छ्रको करै और रुधिरको उत्पन्न  
करिकै कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करै ॥ ९ ॥ जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ऐसे प्रतिलो  
मज आदिके बधसे किये हुए पापोंके दूर करनेके लिये करनेवाले शरीर और  
घन आदिकी सामर्थ्यको देखिकै और पापको ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे अथवा  
एकवारका किया हुआ जानकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करै ॥ २१० ॥

यैरेभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ॥ तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्या  
मि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ ११ ॥ त्र्यहं प्रातरुह्यहं सायं त्र्यहमद्यादं  
याचितम् ॥ त्र्यहं परं च नान्श्रियात्प्राजापत्यं चरन्द्भिजः ॥ १२ ॥

टीका—जिन कारणोंसे मनुष्य पापको दूर करता है उन पापके नाश  
करनेवाले और देवता ऋषि तथा पितरों करि किये हुये कारणोंको तु-  
मसे कहोंगा ॥ ११ ॥ प्राजापत्य व्रतको करता हुआ द्विजाति पहले ती-  
नि दिन प्रातःकाल भोजन करै प्रातःसब्द यहां भोजनोंकी उचिततासे  
प्राप्त दिनके कालका सूचकहै इसीसे वसिष्ठने कहाहै ॥ जैसे त्र्यहंदिवाभुंक्ते  
नक्तमर्चिचत्र्यहं त्र्यहं अयाचितव्रतं त्र्यहं नभुंक्ते इति कृच्छ्रः ॥ अर्थ ॥ तीनि दिन  
दिनमें खाताहै और तीनि दिन रातिमें और तीनिदिन अयाचित खाताहै और  
तीनि दिन नहीं खाताहै यह कृच्छ्रहै ॥ आपस्तम्बनेभी कहाहै ॥ त्र्यहंनक्ताशी दिवाशी  
च तत्रुह्यहं त्र्यहमयाचितव्रतुरुह्यहं नाश्नाति किञ्चन इति ॥ अर्थ ॥ तीनि दिन रातिमें  
न खाय और तीनि दिनमें न खाय और तीनि दिन अयाचित खाय और ती-  
नि दिन कुछ न खाय इस भांति कृच्छ्रकी बारह रात्रिकी विधि है ॥ अपरंच  
दिनत्रयंसायंसंध्यामतीतायां भुंजीत अन्यदिनत्रयमयाचितंतावद्व्रंभुंजीतशेषंच-  
दिनत्रयंनकिंचिदश्रियात् इसका वही अभिप्रायहै यहां ग्रासकी संख्या और परि-

माणकी अपेक्षामें पराशरने कहा है जैसे ॥ सायं द्वात्रिंशतिग्रासाः प्रातःषड्विंशति  
स्तथा ॥ अयाचिते चतुर्विंशं परं शानशनं स्मृतम् ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं च यावांश्च प्रविशे-  
न्मुखं ॥ एतंग्रासं विजानीयात् शुद्धचर्चकाय शोधनम् ॥ हविष्यं चान्नमश्रीयाद्यथारा-  
त्रौ तथा दिवा ॥ त्रींस्त्रीण्यहानि शास्त्रीयाप्नोति ग्रासान्संख्याकृतान्यथा ॥ अयाचितं तथैवा-  
द्यादुपवाससंख्यं हं भवेत् ॥ अर्थ ॥ संध्याको बत्तीस ग्रास और सवेरे छव्वीस  
और अयाचितमें चौबीस तिसके पीछे न खाना कहा है कुक्कुटके अंडके बराबर  
और जितना मुखमें समाय शुद्धिके लिये शरीरका शोधनेवाला यह ग्रास जानि-  
ये । हविष्य अब खाय जैसे रात्रिमें वैसेही दिनमें तीनि तीनि दिन शास्त्रमें कहे  
हुए ग्रासोंको संख्याके समान खावे तैसेही तीनि दिन अयाचित खावे और ती-  
नि दिन उपवास करे ॥ १२ ॥

गोमूत्रं गोमेयं क्षीरं दधि सर्पिः कुंशोदकम् ॥ एकं रात्रौ प्रवासं च कृ-  
च्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ १३ ॥ एकैकं ग्रासं मश्रीयात्र्यहानि त्रीणि  
पूर्ववत् ॥ त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरेन्द्भिजः ॥ १४ ॥

टीका—गोमूत्र गोवर गौका दूध तथा दही घी और कुशोंका जल इन स-  
बोंको मिलाके एकदिन भक्षण करे और कुछ न खाए और दूसरे दिन उपवास  
यह सांतपन कृच्छ्र है जब तौ गोमूत्र आदि छः प्रत्येक छः दिन स्वायके सातमें दिन  
तौ उपवास करे तौ महासांतपन होता है सोई याज्ञवल्क्यने कहा है जैसे । कुंशोद-  
कं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृदघृतम् जग्ध्वा परे ह्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ पृथक्-  
सान्तपनद्रव्यैः षडहस्सोपवासिकः ॥ सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ॥  
इति ॥ अर्थ ॥ कुशोंका जल गौका दूध तथा दही मूत्र गोवर और घी इनको स्वाय-  
के कृच्छ्र सांतपनको करता हुआ पुरुष दूसरे दिन उपवास करे और जुदी जुदी  
सांतपनकी वस्तुओंको छ दिन स्वायके सातमें दिन उपवास करे तौ सातदिनमें  
यह कृच्छ्र महासांतपन होता है इति ॥ १३ ॥ अतिकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति  
प्रातःकाल सायंकाल अयाचित आदिके रूपसे एक एक ग्रास ऐसे तीनि, तीनि  
दिन पहलेके समान खाय और पिछले तीनि दिन कुछ न खाय ॥ १४ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरेन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्र्यहं प्रिवेदुष्णा  
न्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ १५ ॥ यत्तात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहम्  
भोजनम् ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ १६ ॥

टीका—तप्तकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति तीनि दिन उष्णजल और तीनि

दिनं गौक्ष उष्ण दूध औस्तीनि दिनं उष्ण घी और तीनि दिनं उष्ण पवन और एकवार स्नान करिकै नियमवान् हाँकै पीवै यह पराशरका कहा हुआ विशेष है ॥ जैसे ॥ षट्पलंतुपिबेदम्भस्त्रिपलंतुपयः पिबेत् ॥ पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ इति ॥ अर्थ ॥ जल तौ छ पल पीवै और दूध तीनिपल पीवै और घी एक पल पीवै यह तप्त कृच्छ्रका विधानहै ॥ १५ ॥ स्वस्थचित्त और संयुतेंद्रिय पुरुषका बारह दिनोतक न भोजन करनाही पराकनाम कृच्छ्रहै एकवार अथवा आवृत्ति करनेसे भारी तथा हलके पापका दूर करनेवालाहै ॥ १६ ॥

एकैकं हांसयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणमे तच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १७ ॥ एतमेवं विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ॥ शुक्लपक्षादिन्नियतश्चरंश्चान्द्रायणं वर्तम् ॥ १८ ॥

टीका—सायंकाल प्रातःकाल और मध्याह्नमें स्नान करता हुआ पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको सायंकै तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके क्रमसे एक एक ग्रास घटावै ऐसे चतुर्दशीको एकग्रास साय तिस पीछे अमावास्याको व्रत करिकै शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लगाकै एक एक ग्रास बढ़ाता जाय ऐसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं यह पिण्डीलिकामध्यनाम चान्द्रायण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ इसीको पिण्डके घटाने और बढ़ाने तथा तीनिवार स्नानरूप विधानको यवमध्यनाम चान्द्रायणमें शुक्लपक्षकी आदिसे करिकै जितेंद्रिय चान्द्रायणको करता हुआ आचरण करै तिस पीछे तौ शुक्ल प्रतिपदाका आरंभ करिकै एक एक पिण्ड को बढ़ावै जैसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका आरंभ करिकै एक एक पिण्ड घटावै जैसे अमावास्याको उपवास होय ॥ १८ ॥

अष्टौवष्टौ समं श्रीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ १९ ॥ चतुरः प्रातरश्रीयात्पिण्डान्निम्नः समाहितः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतं २० ॥

टीका—यतिचान्द्रायणको करता हुआ शुक्लपक्षसे अथवा कृष्णपक्षसे लगाकै एक महीनेतक जितेंद्रिय हो मध्याह्नके समय प्रतिदिन आठ ग्रास साय मध्यदिनका कहना गृहस्थ और ब्रह्मचारीकी सायंकालमें भोजनकी निवृत्तिके लिये है १९ प्रातःकाल चारिग्रास साय और सूर्यके अस्त होनेपर चारि ग्रासोंका भोजन करै यह शिशुचान्द्रायण मुनियोंने कहाहै ॥ २० ॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतोऽसमाहितः ॥ मासेर्नाश्रन्ह  
विष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् २१ एतद्द्रुद्रास्तथादित्या व  
सर्वश्चाचरेन्नव्रतम् ॥ सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥ २२ ॥

टीका—नीवार आदि हविष्यके ग्रासोंको दोसोचालीस कभी दश कभी पं-  
च और कभी सोलह और कभी उपवास इत्यादि, नियमसे जैसे कैसेहू पिण्डों-  
को एक महीनेमें जितेंद्रियहो खाता हुआ चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होताहै व-  
ैसेही पापके क्षयके लिये और अभ्युदयके लिये यह कहाहै इसीसे याज्ञवल्क्यने  
कहाहै । जैसे ॥ धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥ कृच्छ्रकृतशर्मकामस्तु-  
महर्षिप्रियमाप्नुयात् ॥ अर्थ ॥ जो इस व्रतको धर्मके लिये करताहै वह चंद्रकी स-  
लोकताको प्राप्त होताहै और जो कृच्छ्रका करनेवाला सुख चाहताहै वह बड़ी  
लक्ष्मीको प्राप्त होताहै इति ॥ इससे प्राजापत्य आदि कृच्छ्रभी अभ्युदयरूप फ-  
लका देनेवाला है यह याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ २१ ॥ इस चांद्रायणनाम व्रतको  
ऋषियोंसमेत रुद्र आदित्य वसु और मरुतोंने सब पापोंके नाशके लिये गुरु ल-  
घु पापोंकी अपेक्षासे एकवार आवृत्तिके प्रकारसे किया ॥ २२ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहेम् ॥ अहिंसा सत्यमक्रो-  
धमार्जवं च समाचरेत् ॥ २३ ॥ त्रिरहस्त्रिर्निशायां च सर्वासा जलमा  
विशेत् ॥ स्त्रीशूद्रपतितांश्चैवं नाभिर्भाषेत कर्हिचित् ॥ २४ ॥

टीका—भूर्भुवःस्वः इन महाव्याहृतियोंसे आज्य जो घी है तिस्से प्रतिदिन  
होमकरै ओर अहिंसा सत्य अक्रोध और कुटिलता न करना इन सर्वोंको करै ध-  
द्यपि ये पुरुषार्थतासे विहितहैं तिसपरभी व्रतके अंगपनसे कहे गये है ॥ २३ ॥ दि-  
नमें अथवा रातिमें आदि मध्य तथा अंतमें स्नानके लिये वस्त्रोंसमेत नदी आदि-  
के जलमें प्रवेश करै यह तो पिपीलिकामध्य और यवमध्य चांद्रायणसे अन्य  
चांद्रायणके मध्ये है क्योंकि उनमें आचमन और तीनिवार स्नान कहाहै और स्त्री  
शूद्र तथा पतितांके साथ जबतक व्रत करै तबतक संभाषण न करै ॥ २४ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽर्धः शयीत वा ॥ ब्रह्मचारी व्रती च  
स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २५ ॥ सांवित्री च जपेन्नित्यं पवित्राणि च  
शक्तितः ॥ सर्वेष्वेवं व्रतेष्वेवं प्रीयश्चित्तार्थमादृतः ॥ २६ ॥

टीका—दिनमें और रातिमें उठा हुआतथा बैठा हुआ रहै सोवै नक्ष असमर्थ

होनेपर तौ भूमिमें सोवै खट्वा आदिमें न सोवै ब्रह्मचारी स्त्रीके संयोगसे रहित व्रती मौंजी दंड आदि करि युक्त गुरुदेवता और ब्राह्मणोंका पूजक होय ॥ २९ ॥ सा-  
वित्रीको सदा जपै और पवित्र अघमर्षण आदिकोंको शक्तिके अनुसार जपै यह  
तौ जैसे चांद्रायण आदिमें है वैसेही प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमेंभी यत्नवाला  
प्रायश्चित्तके लिये करै ॥ २६ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैः सः अनारविष्कृतपापास्तुं म-  
न्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ २७ ॥ ख्यापनेनानुतापेन तर्पसाध्ययनेन  
च ॥ पापकृन्मुच्यते पापात्तर्पणं दानेन चार्पादि ॥ २८ ॥

टीका—लोकमें विदित पापोंसे द्विजाति इन कहे हुए प्रायश्चित्तों करि आगे  
कही हुई परिषद् कहिये सभाकरि शोधनेयोग्यहैं और अपकाशित पापोंको तौ  
मंत्रोत्तम होम्नोंसे सभाही शोधन करै यद्यपि परिषद्में निवेदन करनेसे रहस्य पन-  
का नाश होताहै तिसपरभी लोकमें नहीं विदित ऐसे इस पापके किसीके करनेपर  
क्या प्रायश्चित्त होताहै इस भांति सामान्यतासे मूँछनेमें कुछ विरोध नहीं है ॥ २७ ॥  
पाप करनेवाला अनुष्य लोकमें अपना पाप कहनेसे और मुझ पाप करनेवालेको  
धिकारहै इस भांति पश्चात्ताप करनेसे शुद्ध होताहै और उग्ररूप तपसे तथा सावि-  
त्रीके जप आदि करि पापसे शुद्ध होताहै और तपमें असमर्थ होय तौ आपत्तिमें  
दान करनेसेभी पापसे मुक्त होताहै ॥ २८ ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वा नुभाषते ॥ तथार्तथा त्वचेर्वाहि<sup>१३</sup>  
स्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २९ ॥ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्ह-  
ति ॥ तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ३० ॥

टीका—मनुष्य पापको करिकै जैसे जैसे पापको लोकमें कहताहै वैसे वैसे उ-  
स पापसे जीर्ण त्वचा करि सापके समान मुक्त होताहै ॥ २९ ॥ उस पाप करने-  
वालेका मन जैसे जैसे बुरे कर्मकी निंदा करताहै वैसे वैसे उसका शरीर जीवा-  
त्मा उस अधर्मसे मुक्त होताहै ॥ ३० ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते । नैव कुर्यात्पुनरि-  
ति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ ३१ ॥ एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफ-  
लोदयम् ॥ मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ ३२ ॥

टीका—पापको करिकै पीछे संतापयुक्त होनेसे उस पापसे छूटि जाताहै जब

पश्चात्ताप युक्तहो ऐसे कहता है कि मैं फिर कभी ऐसा न करौंगा तब तौ बहुत-ही उस पापसे पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शुभ अशुभ कर्मोंका परलोकमें इष्ट अनिष्ट फलको मनसे विचारिके मन वाणी और शरीरसे सब-शुभही करै क्योंकि उसका फल दृष्ट है और नरक आदि दुःखका कारण होनेसे अशुभ कर्म न करै ॥ ३२ ॥

अज्ञानार्थदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विर्णाहृतम् ॥ तस्माद्रिमुक्तिम्  
निच्छन्द्वितीयं न समोचरेत् ३३ यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः  
स्यादलार्धवम् ॥ तस्मिन्स्तावत्तपः कुर्याद्वावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ ३४ ॥

टीका—भूलसे अथवा इच्छासे निषिद्ध कर्म करिके उस पापसे मुक्तिको चाहता हुआ फिर उसको न करै यह तौ फिर करनेमें प्रायश्चित्तकी गुरुताके लिये है ॥ ३३ ॥ जिस प्रायश्चित्त नाम कर्मके करनेपर इस पाप करनेवालेको संतोष न होय तौ उसमें उसी प्रायश्चित्तको तबतक लौटावै जबतक मनका संतोष और प्रसन्नता होय ॥ ३४ ॥

तपोर्मूलमिदं सर्वं देवं मानुषकं सुखम् ॥ तपोर्मध्यं बुधैः प्रोक्तं त  
पोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्ष  
णम् ॥ वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ ३६ ॥

टीका—इस सब देवताओं और मनुष्योंके सुखका कारण तपही है और तप-हीसे उसकी स्थिति है और तपही मध्य है यह पंडितोंने कहा है और तपही अंत-है यह वेदका अर्थ जाननेवाले कहते हैं ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणका ब्रह्मचर्यरूप जो वेदांतका ज्ञान है वही तप है और क्षत्रियका रक्षा करना तप है और वैश्यका खेती वाणिज्य और पशुओं पालना आदि तप है और शूद्रका ब्राह्मणकी सेवा तप है यह वर्णविशेषसे उत्कर्ष सूचनके लिये है ॥ ३६ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः । तपसैव प्रपद्यन्ति त्रै  
लोक्यं सचराचरम् ॥ ३७ ॥ औषधान्यगदो विद्या देवी च विविधा  
स्थितिः । तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि सार्धनम् ॥ ३८ ॥

टीका—वाणी मन और कायके नियमों करि युक्त फल मूल तथा वायुके खानेवाले ऋषि तपहीसे जंगम स्थावर संहित पृथिवी आकाश स्वर्गरूप तीनों लोकोंको एकस्थानमें बैठे हुए पापरहित अंतःकरणसे प्रकर्ष करि देखते हैं ॥



॥ ३७ ॥ रोगकी शांतिके कारणरूप औषध और नीरोग होना तथा ब्रह्मकर्मरूप वेदके अर्थका जानना और वेदसंबंधी विद्या और नाना रूप स्वर्ग आदि स्थिति ये सब तपहीसे प्राप्त होते हैं जिसे तपही इनकी प्राप्ति का कारण है ॥ ३८

ग्रहस्तरे यदुरापं यदुर्गं यच्च दुष्करम् । सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुस्तिर्कमम् ॥ ३९ ॥ महापातकिनश्चैवं शेषाश्चाकार्यकारिणः । तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषाक्षतः ॥ ४० ॥

टीका—जो दुःखसे पार होने योग्य है जैसे ग्रहोंके दोषसे सूचित आपत्ति आदि, और जो दुःखसे क्षत्रिय आदिकों करि प्राप्त होने योग्य है जैसे विश्वामित्रक उसी शरीरसे ब्राह्मणत्वका पाना और जो दुःखसे ज्ञानने योग्य है जैसे सुमेरुक शिखर और जो दुःखसे करने योग्य है जैसे गौओंका बहुतसा दान आदि सो सब तपसे सोप्य करि सकते हैं जिसे अतिकठिण कार्यके करनेमें तपकी शक्ति का कोई उल्लंघन नहीं करि सकता है ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्या आदि पातकोंके करनेवाले तथा उपपातक आदि नहीं करने योग्यके करनेवाले उत्तरूपहीके करनेसे उस पापसे छूटि जाते हैं कहे हुए का फिर कहना प्रायश्चित्तकी प्रशंसाके लिये है ॥ ४०

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयंसि च । स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥ ४१ ॥ यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्जनाः ॥ तत्सर्वं निर्दहन्त्याहुं तपसैव तपोधनाः ॥ ४२ ॥

टीका—कीड़े, साँप, पतंगे, पशु, पक्षी, और वृक्ष, गुल्म, आदि स्थावर आदि सब भूत तपके माहात्म्यसे स्वर्गको जाते हैं इतिहास आदिकोंमें कपोतोंके उपाख्यान आदिमें पक्षी अग्निमें प्रवेश आदि तपको करिके और कीटोंका उनकी जातिका स्वाभाविक दुःखका सहना तप है उससे क्षीणपापहो विकार रहित जन्मंतरमें किये हुए सुकृतसे स्वर्गको जाते हैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य मन वाणी और देहसे जो कुछ पाप करते हैं उस सब पापको तपोधन तपहीसे जलादेते हैं ॥ ४२ ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ॥ इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ४३ प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवामृतप्रभुः ॥ तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ ४४ ॥

टीका—प्रायश्चित्तरूप तपसे क्षीणपाप ब्राह्मणके यज्ञमें देवता हविको ग्रहण करते हैं और वांछित अर्थको देते हैं ॥ ४३ ॥ संपूर्ण लोककी उत्पत्तिस्थिति औ-

र प्रलयमें समर्थ हिरण्यगर्भ पहले तपको करिकै ही इस ग्रंथको बनाते भये तैसे वसिष्ठ आदि ऋषि तपहीसे मंत्र ब्राह्मणरूप वेदोंको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

इत्येतत्तपसो देवां महाभाग्यं पचक्षते ॥ सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्त-  
पसः पुण्यमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्यता महार्यज्ञक्रि-  
या क्षमा ॥ नार्शयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ४६ ॥

टीका—इस सब संसारके जीवोंका जो दुर्लभ जन्महै सो तपहीसे होताहै इ-  
सको देखते हुए देवता तपोमूलमिदंसर्व इत्यदि तपके माहात्म्यको कहते हैं ॥  
॥ ४५ ॥ शक्तिके अनुसार प्रतिदिन वेदका पढना और पंचयज्ञोंका करना औ-  
र अपराधका सहनशील होना ये महापातकसे उत्पन्न पापोंको शीघ्रही नाश कर  
देते हैं और पापोंकी तौ क्या चलाई है ॥ ४६ ॥

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ॥ तथा ज्ञानाग्निना पां-  
पं सर्वं दहति वेदवित् ॥ ४७ ॥ इत्येतदेनं सामुक्तं प्रायश्चित्तं यथावि-  
धि ॥ अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका—जैसे अग्निसमीपके काष्ठोंको तेजसे निःशेष करि देती है तैसेही वेदके  
अर्थका जाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानरूपी अग्निसे सब पापोंको नाश करि देताहै ॥  
॥ ४७ ॥ यह ब्रह्महत्या आदि प्रकाश पापोंका प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा इस-  
के उपरान्त अप्रकाश कहिये गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त मूनिषे ॥ ४८ ॥

सव्याहतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भूणहर्षं मां  
सात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ ४९ ॥ कौत्सं जैत्वापि इत्येतद्वासिष्ठं च प्र-  
तीत्यृचम् ॥ मांहित्रं शुद्धैवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्धयति ॥ २५० ॥

टीका—व्याहृतियों तथा प्रणव करि युक्त और सावित्रीशिर करि युक्त पूरक  
कुंभक रेचक आदिकी विधिसे प्रतिदिन किये हुए सोलह प्राणायाम एक महीने-  
में भूणहृत्यारेकोभी पापहरित करदेते हैं ॥ ४९ ॥ कौत्सऋषि कर्म देखे हुए अ-  
पनःशोशुचदधं इस सूक्तको और वसिष्ठऋषिकरि देखे हुए प्रतिस्तोमेभिरुषंसं-  
वसिष्ठा इस ऋचाको और माहित्र कहिये महित्रीणामवोस्तु इस सूक्तको और शु-  
द्धवत्येतोन्विन्द्रस्तवाम इन तीनि ऋचाओंको एक महीनेभर प्रतिदिन सोलह वा-  
रभी जपिकै सुराका पीनेवालाभी शुद्ध होताहै ॥ २५० ॥

सकृज्जैत्वास्यर्वामीयं शिवसंकल्पमेव च ॥ अपहृत्य सुवर्णं तु क्षं

णाद्भवंति निर्मलः ॥ ५१ ॥ हविष्पांतीयमभ्यस्य नतमंहइतीति  
च ॥ जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्लेखः ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णको चुराकै अस्यवामीयंअस्यवामस्यपलितस्य इस सूक्तको एक महीने प्रतिदिन एकवारभी जपिकै और शिवसंकल्प यज्जाग्रतोदूर इसको जो वाजसनेयकमें पढाहै जपिकै सुवर्णको चुरायकै शीघ्रही पापरहित होताहै ॥ ५१ ॥ हविष्पांतिमञ्जरंस्वाविदि इन उन्नीस ऋचाओंको और नतमंहोनदुरितं इन आठको अथवा हविष्पत इसको और मेमनःशिशवसंकल्पमस्तु इस सूक्तको और सहस्रशीर्षापुरुष इस षोडश ऋचा सूक्तकों एकमहीने प्रतिदिन सोलहवारके अभ्याससे जपिकै गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला उस पापसे छूटि जाताहै ॥ ५२ ॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ॥ अवेत्यृचं जपेदब्दं  
यत्किञ्चेदमितीति वा ॥ ५३ ॥ प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचात्रं वि  
गर्हितम् ॥ जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्यहात् ॥ ५४ ॥

टीका—स्थूलपाप जे महापातकहैं उनके और सूक्ष्म जे उपपातकहैं तिसके दूरि करनेकी इच्छा करता हुआ अवेतेहोव्यवर्णनमोमिः इस ऋचाको और यत्किञ्चेदं वरुणदेव्येजने इस ऋचाको और इतिवा इतिमेमनः इस सूक्तको एकवर्ष प्रतिदिन जपे ५३ स्वरूपसे महापातकिके ध्वन आदिके कारण नही लेनेयोग्य प्रतिग्रहको लेकरि और स्वभाव काल तथा प्रतिग्रहके संसर्गसे दुष्ट अन्नको खायकै तरत्समन्दीयावाति इनचारि ऋचाओंको तीनिदिन जपिकै मनुष्य उस पापसे पवित्र होताहै ॥ ५४ ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेना मांसमभ्यस्य शुद्धयति ॥ सर्वन्त्यामां चरन्त्यां  
नमर्यग्भेणामि ति च तृचम् ॥ ५५ ॥ अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सं  
तकं जपेत् ॥ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मांसमासीत भैक्षभुक् ॥ ५६ ॥

टीका—सोमारुद्राधारयेथामसूर्य इन चारि ऋचाओंको और अर्यमणंदरुणमि-  
त्रं इन तीनि ऋचाओंका नदीमें स्नान करि एक महीने ग्रत्येकका अभ्यास क-  
रिकै बहुतपापवाला शुद्ध होताहै ॥ ५५ ॥ एनस्वीकहिये पाप करनेवाला मनुष्य  
सब पापोंमें इन्द्रमित्रंवरुणमग्निभूतये इन सातऋचाओंका छः महीने जप करै और  
अप्रशस्त मूत्रपुरीष आदिका त्याग जलमें करिकै एक महीनेभरभिक्षाका भोजन  
करनेवाला होय ॥ ५६ ॥

मन्त्रैः शार्कलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजैः ॥ सुगुर्वप्यर्पहन्त्येनो<sup>१३</sup>  
जित्वा वा नर्म इत्यृचम् ॥ ५७ ॥ महापातकसंयुक्तोऽनुर्गच्छेद्ग्राः स  
मोहितः ॥ अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भिक्षाहारो विशुद्धयति ॥ ५८ ॥

टीका—देवकृतस्य इत्यादि शाकल होममंत्रोंसे एकवर्ष घीका होम करिकै न-  
मइन्द्रश्च इस ऋचाका एक वर्ष जप करिकै महापातकसे उत्पन्नभी पापको द्वि-  
जाति नाश करताहै ॥ ५७ ॥ ब्रह्महत्या आदि महा पातकोंसे युक्त पाई हुई भिक्षासे  
आहार करता हुआ एक वर्ष जितेंद्रिय हो गौओंका अनुगमन करता हुआ पा-  
वमानी ऋचाओंका प्रतिदिन जुप करता हुआ उस पापसे शुद्ध होताहै ॥ ५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैः  
पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥ ५९ ॥ त्र्यहं तू पर्वसे युक्तस्त्रिरहोऽभ्युपय-  
न्नयः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिजर्पित्वाऽधमर्षणम् ॥ २६० ॥

टीका—तीनि पराकों करि शुद्ध मंत्रब्राह्मणरूप वेदकी संहिताका वनमें तीनिवार  
अभ्यास करि प्रयत्न कहिये बाहरी भीतरी शौच करि युक्त सब महापात-  
कोंसे छूटि जाताहै ॥ ५९ ॥ तीनि रात्रि उपवास करता हुआ जितेंद्रिय प्रतिदिन  
प्रातःकाल मध्यान्ह और सायंकाल स्नान कर्ता हुआ तीनिवार स्नानके समय-  
हीमें जलमें गोता लगाकै ऋतंचसत्यंच इस सूक्तसे अघमर्षण तीनि आवृत्तिसे  
जपिकै सब पापोंसे छूटि जाताहै ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधैः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनम् । तथाऽधमर्ष सूक्तं सर्वपा-  
पापनोदनम् ॥ ६१ ॥ हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्त-  
तः ॥ ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नै नः प्रीप्नोति किञ्चन ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे अश्वमेधयज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है और सब पापोंके क्षयका का-  
रणहै तैसेही अघमर्षण सूक्तभी सब पापोंके क्षयका कारणहै ॥ ६१ ॥ भू आदि  
तीनो लोकोंकोभी मरिक्के और महापातकी आदिकोंकाभी अन्न खाता हुआ  
ऋग्वेदको धारण किये हुए विप्र आदि किंचितभी पापको नही प्राप्त होताहै ऋ-  
ग्वेदका धारण तौ रहस्य प्रायश्चित्तके लिये कहाहै तिससे रहस्य पापके करनेपर  
मंत्रब्राह्मणरूप ऋक्संहिताका अभ्यास करै ॥ ६२ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ॥ सार्धं वा सरहस्या

नां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६३ ॥ यथा महोद्वेदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ॥ तथा दुश्चरितं सर्ववेदे त्रिवृत्ति मज्जति ॥ ६४ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप ऋग्वेदकी संहिताका केवल मंत्रात्मिकाहीका नहीं अथवा यजुर्वेदकी मंत्रब्राह्मणरूप संहिताका अथवा सामवेदकी मंत्रब्राह्मण, उपनिषदरूप संहिताका तीनिवार अभ्यास करिकै सबपापोंसे छूटि जाताहै ॥ ६३ ऋक आदि रूपसे जो तीनिवार लौटै उसको त्रिवृत् कहते हैं ॥ जैसे बड़े कुंडमें प्राप्त होकै महीका-डेल विसर जाताहै तैसे सबपाप त्रिवृत्वेदमें नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च ॥ एष ज्ञेयस्त्रिवृद्धे दोषो वेदे न संवेदवित् ॥ ६५ ॥ आद्यं यद्व्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठितौ ॥ स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्धे दोयस्तं वेदं संवेदवित् ॥ ६६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः ११

टीका—त्रिवृत्तर्पणको कहते हैं ॥ ऋग्वेदके मंत्र और यजुके मंत्र और बृहद्रथंतर आदि नाना प्रकारके साम और परस्पर तीनोंके पृथक् पृथक् मंत्र ब्राह्मण यह त्रिवृद्धेद जानना चाहिये जो इसको जानताहै वह वेदका वेत्ता होताहै ॥ ६५ ॥ सब वेदोंका आद्य कहिये प्राथमिक और सब वेदोंका सार अकार उकार मकार रूपसे तीनि अक्षरका जो ब्रह्म है उसमें तीनों वेद स्थितहैं सो दूसरा त्रिवृद्धेद प्रणवनाम गुह्य वेदके मंत्रोंमें श्रेष्ठ होनेसे छुपाने योग्यहै परमार्थका कहनेवालाहै ॥ इससे और परमार्थक होनेसे धारण तथा जपसे मोक्षका कारण है जो उसको स्वरूपसे जानताहै वह वेदका जाननेवालाहै ॥ ६६ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरमसुखतनयपाण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः १२

चातुर्वर्ण्यस्य कर्तृस्त्रोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानव ॥ कर्मणां फलनिवृत्तिं शंसं नस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥ स तानुवाच धर्मात्मा महर्षिन्मानवो भृगुः ॥ अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

टीका—हे पापराहित, ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंका और अन्तरप्रभवोंका यह

धर्म तुमने कहा अब कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी प्राप्तिको और परां कहिये जन्मान्तरमें हुई परमार्थरूपको हमसे कहौ, महर्षियोंने यह भृगुसे कहा ॥ १ ॥ वह धर्मप्रधान मनुका पुत्र भृगु इस सबकर्म संबंधके फलके निश्चयको सुनिये यह उन महर्षियोंसे बोला ॥ २ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् । कर्मजां गतयो नृणामुत्तमा  
धर्ममध्यमाः ॥ ३ ॥ तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनेः ॥  
दशलक्षणयुक्तस्य मनोविधात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

टीका—मन वाणी देह जिसका कारण ऐसां सुखदुःखरूप फलका देनेवाला विहित निषिद्धरूप कर्म और उसीसे उत्पन्न मनुष्य त्रिधक् आदिके भावसे उत्कृष्ट मध्यम, और अधमकी अपेक्षा मनुष्योंकी गति अर्थात् जन्मान्तरोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३ ॥ उस देहीके कर्मकी उत्कृष्ट मध्यम अधमतासे, तीनि प्रकारके मन वाणी तथा कायके आश्रित और आगे कहे हुए दश लक्षणोंकरि युक्त कर्मका मनही प्रवर्तक जानना चाहिये मन करि संकल्प किया हुआ कहा जाता है और किया जाताहै सोई तैत्तिरीय उपनिषदमें कहाहै जैसे तस्मात् यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचावदति तत्कर्मणा करोति इति । अर्थ तिससे पुरुष जिसको मनसे जानताहै उसको वाणीसे कहताहै और कर्मसे करताहै ॥ ४ ॥

षट्द्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥ वितर्थाभिनिवेशश्च त्रि-  
विधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ॥  
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

टीका—उन दशलक्षणोंके कर्म दिखानेको कहते हैं ॥ कैसे कि पराये धनको अन्यायसे ले लों इस भांति सोचना और मनसे ब्रह्मवध आदिकी निषिद्ध इच्छा और परलोक नहीं है देहही आत्माहै इस भांति तीनि प्रकारका अशुभ फल मानस कर्म ये तीनों और विपरीत बुद्धि तीनि प्रकारका शुभफल मानस कर्म है ॥ ५ ॥ अप्रियका कहना झूठ बोलना पीछे पीछे पराये दूष्णोंका कहना और सत्यभी राजा देश और पुरवासियोंकी वार्त्ता आदिका विना प्रयोजन वर्णन करना इस भांति चारि प्रकारका अशुभ फल वाचिक कर्म होताहै इससे विपरीत प्रिय सत्य और पशुणोंका कहना और श्रुति पुराण आदिमें राजा आदिकोंके चरित्रका कहना शुभफल है ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च शारी

१०० त्रिविधं स्मृतम् ॥७॥ मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥  
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कारिकम् ॥ ८ ॥

टीका—अन्यायकरिके पराये द्रव्यका, हरणकरना, वेदादिक शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसाका करना, और पराये स्त्रीके साथ संभोग करना, इन तीन प्रकारका अशुभफल देनेवाला शारीरकर्म होता है और इनसे विपरीत अर्थात् न्यायसे द्रव्यका संग्रहकरना वेदादिकशास्त्रोंसे यज्ञादिकोंमें विहित पशुओंकी हिंसा करना, और अपने स्त्रीके साथ ऋतुकालमें संभोग करना ए तीन प्रकारका शुभफल देनेवाला शारीर कर्म होता है ॥ ७ ॥  
मन करिके जो मुकुत अथवा दुष्कृत कर्म किया उसका फल सुखदुःखरूप इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें मनसेही यह भोगता है ऐसे वाणी करि किया हुआ शुभ अशुभ वाणीके द्वारा मधुर, गद्गद, बोलने आदिसे और शरीर संबंधी शुभ अशुभ शरीरके द्वारा स्रक् चंदन आदि प्रियाके उपभोगसे व्याधित आदि होनेसे भोगताहै तिस्से यत्न करिके शारीर मानस; और वाचिक धर्मरहित, और धर्मजनक कर्मोंको छोड़े तथा करै ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्यातिः स्थावरतां नरैः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां  
मानसैरन्त्यर्जातिताम् ॥ ९ ॥ वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डः  
स्तथैव च ॥ यैस्ते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डी ॥ तिसं उच्यते ॥ १० ॥

टीका—यद्यपि पापिष्ठोंके शारीर, वाचिक, और मानसिकही तीन पाप होते हैं तिसपरूभी वह जो बहुधा अधर्मही करै धर्म थोडा करै तौ बाहुल्यके अभिप्रायसे यह व्याख्यान कियाहै जैसे अधिकतासे शरीरके कर्मोंसे उत्पन्न पापों करि युक्त मनुष्य स्थावरत्वको प्राप्त होताहै और बाहुल्यसे वाणी करि किये हुए ओंसे पक्षीभाव और मृगभावको अथवा बाहुल्यसे मनकरि किये हुएओंसे चांडालआदिके भावको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ वाणीका दंड, मनका दंड, तैसेही कायदंड ये तीनो दंड जिसकी बुद्धिमें स्थितहै वह त्रिदंडी कहा जाताहै और तीन दंडोंके धारणमात्रसे त्रिदंडी नहीं होताहै ॥ १० ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवैः ॥ कामक्रोधौ तु संयम्य तं  
तः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥ योऽस्यात्मनः कारयित्वा तं क्षेत्रज्ञं  
प्रचक्षते ॥ यः करोति सं कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

टीका—इस निषिद्ध वाणी आदिकोंकां सब भूतोंकी गोचरतासे दमन करि कै और इन्हींके दमनके लिये काम तथा क्रोधको रोकिकै तिसपीछे मनुष्य मोक्षप्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥११॥ कौन सिद्धिको प्राप्त होताहै सो कहत हैं ॥ जो इस लोक सिद्धशरीरनाम आत्माका कर्मोंमें प्रवृत्त करानेवालाहै उसको पंडित क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जो यह व्यापारोंको करताहै वह शरीरनामहै ब्रह्म पृथिवी आदि भूतोंसे बननेके कारण पंडितों करि, भूतात्मा कहा जाताहै ॥१२॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ॥ येन वेदयते सर्वं  
सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥ तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव  
च ॥ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥१४॥

टीका—शरीर तथा क्षेत्रज्ञसे भिन्न शरीरके भीतर आत्मा नाम होनेसे आत्मा जीवनामसे क्षेत्रज्ञोंको सहज आत्मानामकी प्राप्ति है क्योंकि उनसे दूसका विनियोगहै अहंकार और इंद्रियोंके रूपसे परिणामको प्राप्त कारणभूत जिस जीवात्माकरि क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्ममें सुख और दुःखकी अनुभव करताहै ॥ १३ ॥ वे दोनो महत् और क्षेत्रज्ञ पृथिवी आदि पांच भूतोंसे मिले हुए आंगे जो कहा जायगा और सब लोकमें तथा वेद स्मृति और पुराण आदिमें प्रसिद्ध होनेसे जो तंशब्दसे निर्देश किया गया, और उत्कृष्ट अपकृष्टजीवोंमें स्थित ऐसे परमात्माको आश्रय लेकर दोनो स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥

असंख्यां मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ॥ उच्चावचानि भूतानि  
संततं चेष्टयन्ति याः ॥१५॥ पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृति  
नां नृणाम् ॥ शरीरं यातनार्थमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

टीका—इस परमात्माके शरीरसे असंख्यहै मूर्तियां जिनकी ऐसे जो क्षेत्रज्ञ शब्दसे पीछे कही हुई लिंगशरीरमें स्थित और वेदांतके कहे हुए प्रकारसे आगिकीचिनगारियोंके समान जे मूर्तियां निकली वे देहरूपसे परिणामको प्राप्त उत्कृष्ट अपकृष्ट जीवोंको सदा कर्मोंमें प्रेरणा करती हैं ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पांचही भूतोंके भागोंसे दुष्कृत करनेवाले मनुष्योंको पीडाका अनुभव करानेवाले जरायुज आदि देहोंसे भिन्न दुःख सहनेवाला शरीर परलोकमें उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥

तेनानुभूय तां यामीः शरीरेणेहं घातनाः ॥ तांस्त्वेवं भूतमात्रांसु प्र  
लीयन्ते विभंगिणः ॥१७॥ सोऽनुभूयांसुखोदकान्दोषां निषयसंग



जान् ॥ व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावैवाभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

टीका—उस निकले हुए शरीरसे पापी जीव उभयकी की हुई यातनाओंको भोगिके स्थूल-शरीरके नाश होनेपर उन्हीं आरंभ करनेवाले भूतोंके भागोंमें जो जिसका भागहै वह उसमें इस क्रमसे लीन होजाताहै अर्थात् उन भूतोंके संयोगी होकर स्थित रहता है ॥ १७ ॥ वह शरीरी भूत सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें स्थित ही निषिद्ध शब्दस्पर्शरूपरसगंधनाम विषयोंके भोगसे उत्पन्न यमलोकके दुख आदिको भोगिके तिसपीछे अनंतर भोगसे नाश हुएहैं पाप जिसके ऐसा हो उन्हीं बड़े पराक्रमी दोनो महत् और परमात्माका आश्रय लेताहै ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥ याभ्यां प्राप्नोति सं  
पुक्तः प्रेत्येह च सुखं सुखम् ॥ १९ ॥ यद्यचरति धर्मं स प्रायशोऽ  
धर्ममल्पशः ॥ तै रेव चावृतौ भूतैः स्वर्गे सुखमुपांश्रुते ॥ २० ॥

टीका—वे दोनौ महत् और परमात्मा आलस्य रहित हो उस जीवके धर्मको और भोगनेसे वाकी रहे पापका साथ विचार करते हैं जिन धर्म अधर्मों करि युक्त जीव परलोक और इसलोकमें सुख तथा दुःखको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ वह जीव जो मनुष्यकी दशममें अधिकतासे धर्मको करताहै और थोडा अधर्म तब स्थूल शरीरके रूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं पृथिवी आदि भूतों करि युक्त-स्वर्गके सुखको भोगताहै ॥ २० ॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ॥ तैर्भूतैः स परित्यक्तो  
यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥ २१ ॥ यामीस्तां यातनाः प्राप्य स जीवो  
वीतकल्मषः ॥ तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥

टीका—जो वह जीव मनुष्यकी दशममें अधिकतासे पाप करताहै और पुण्य थोडा तब मनुष्यके देहरूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं भूतोंकरि त्याग किया हुआ मृत्तिके पीछे पाचोंही मात्राओंसे उक्तीति करि यातनां भोगनेके योग्य हुआहै कठिन देह जिसका ऐसाहो यमकी पीडाओंको भोगताहै ॥ २१ ॥ वह जीव यमकी उन यातनाओंको उस कठिन देहसे भोगिके उसके भोगसे पापरहित हो उन जरायुज आदि शरीरोंके आरंभकरनेवाले पृथिवी आदि भूतोंके भागोंमें अधिष्ठितहो मनुष्य आदिके शरीरको ग्रहण करताहै ॥ २२ ॥

एतां दृष्ट्वास्य जीवस्य गन्त्रीः स्वेनैव चेतसा ॥ धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मः

मे दध्यात्सदा मनः ॥२३॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैवं त्रीन्विद्यादात्मनो  
गुणान् ॥ यैर्व्याप्यमान् स्थितो भावान्महान्तस्मान्शेषतः ॥२४॥

टीका—धर्म अधर्म है कारण जिनका ऐसी इस देहकी स्वर्ग नरक आदिके भोगनेके उचित प्रिय अप्रिय देहकी प्राप्तिओंको अंतःकरणमें जानिके धर्ममें मनको सदा लगावै ॥ २३ ॥ जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे सत्त्व रज तम आदि तीन गुणोंको आत्माके उपकारक होनेसे आत्मा जो महत् है उसके गुणोंको जानि जिन करिके व्याप्त महान् इन स्थावर जंगमरूप सब पदार्थोंमें व्याप्त होके स्थित है ॥ २४ ॥

यो यदैषां गुणो देहे सार्कल्येनातिरिच्यते ॥ स तदा तद्गुणप्राप्य तं  
क्ररोति शरीरिणम् ॥२५॥ सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषो रजः  
स्मृतम् ॥ एतद्गुणातिमंदतेषां सर्वभूतान्श्रितं वपुः ॥ २६॥

टीका—यद्यपि यह सब त्रिगुणमय है तिसपरभी जिस देहमें इन गुणोंमेंसे जो गुण सकलरूपसे अधिक होता है तब उस गुणके बहुत हैं लक्षण जिसमें ऐसे उस देहकी करता है ॥ २५ ॥ अब सत्त्व आदिकोंके लक्षण कहते हैं ॥ यथार्थका जो अवभास ज्ञान है वह सत्त्वका लक्षण है इससे विपरीत जो अज्ञान है वह तमका लक्षण है विषयोंका अभिलाषरूप जो मनका कार्य है वह रजोगुणका लक्षण है और सत्त्व रज तमका स्वरूप तौ प्रीति अप्रीति और विषादरूप है सोई पढ़ते हैं जैसे प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशवृत्तिनियमार्थाः अन्योन्याभिभवजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ॥ इति ॥ अर्थ ॥ प्रीति अप्रीति और विषादरूप तथा प्रकाश वृत्ति का नियम है अर्थ जिनका और आपसमें अभिभवका करना और मैथुन वृत्तिगुण है इति ॥ यह तौ इनका स्वरूप आगेके तीन श्लोकोंसे कहेंगे इन सत्त्व आदि गुणोंका यह सब ज्ञान आदि सब प्राणियोंमें व्याप्त लक्षण है ॥ २६ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ॥ प्रशान्तमिदं शुद्धं  
भं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥२७॥ यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमा  
त्मनः ॥ तद्गुणोऽप्रतिषं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥२८॥

टीका—उस आत्मामें जो कुछ संवेदन प्रीतियुक्त लक्षित होय क्लेशनामको न होय शान्त तथा शुद्धरूप होय उसको सत्त्व जानिये ॥ २७ ॥ जो तौ दुःख करि युक्त और आत्माकी प्रीतिका नहीं उत्पन्न करनेवाला और सदा विषयोंमें

शरीरियोंकी इच्छाके उत्पन्न करनेवाले उसके दुर्निवार होनेसे सत्वगुणके प्र-  
तिपक्षको रज जानो ॥ २८ ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं  
तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणानां यः फलो  
द्वयः ॥ अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

टीका—जो सत् असत्के विचारसे शून्य और नही प्रकट है विषयोंके आ-  
कारका स्वभाव जिसमें और नही तर्क करने योग्य है स्वरूप जिसका और अंतः-  
करण वही करणोंसे जो नही जातनेयोग्य उसको तम जानिये इन गुणोंके स्वरूप-  
का कहना इसलिये है कि मनुष्यको सत्त्ववृत्तिमें स्थित होनेको यत्न करना चा-  
हिये ॥ २९ ॥ इन सत्त्व आदि तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम अधमरूप जो फलका  
उत्पन्न करनेवाला है उसको विशेष करके कहोंगा ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ता च  
सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥ आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्यपरि-  
ग्रहः ॥ विषयोपसेवा चोर्जसं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

टीका—वेदमें अभ्यास और प्राजापत्य आदिका करना और शास्त्रके अर्थ-  
का ज्ञान और मिट्टी जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना और दान आ-  
दि धर्मोंका करना और आत्माके ध्यानमें तत्पर होना ये सत्त्वनाम गुणके कार्य  
हैं ॥ ३१ ॥ फलके लिये कर्मोंका करना और थोड़ेभी अर्थमें व्याकुल होना और  
निषिद्ध कर्मोंका करना और सदा शब्द आदि विषयोंका भोगना यह रजनाम  
गुणका कार्य है ॥ ३२ ॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ॥ याचिष्णुता  
प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणानां  
त्रिषु तिष्ठताम् ॥ ईदं सामांसिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

टीका—अधिक अधिक धनकी इच्छा, अधिक सोना, कातरपन, क्रूरता, और  
नास्तिक्य कहिये परलोकके न होनेकी बुद्धि, और आचारका लोप, और या-  
चनका स्वभाव होना, और प्रमाद कहिये संभव होनेपरभी धर्म आदिकोंमें मनका  
न लगाना, ये तामसनाम गुणके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ इन सत्त्व आदि तीनोंही गु-

ज्योंका भूत भविष्यन्त और वर्तमान इन तीनोंकालोंमें विद्यमानोंका यह आगे जो कहा जायगा वह संक्षेपके क्रमसे लक्षण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वन्श्च करिष्यन्श्चैवं लज्जति ॥ तंज्ञेयं विदुषा सं  
र्वानामसं गुणलक्षणम् ॥ ३५ ॥ येनास्मिन्कर्मणां लोके ख्यातिमि-  
च्छति पुष्कलाम् ॥ न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ ३६ ॥

टीका—जिस कर्मकों करिके करता हुआ और आगे करनेकी इच्छा करता हुआ लज्जित होय तौ वह सब तमका कार्य होनेसे तमहै नाम जिसका ऐसे गुण-  
का लक्षण शास्त्रके जाननेवालेकी जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ इस लोकमें बड़ी-  
ख्यातिको प्राप्त होंइ इस लियेही जो जिस कर्मको करताहै परलोकके लिये नहीं  
और उस कर्मके फलके न होनेपर दुखी होताहै वह रजका कार्य होनेसे रजो-  
गुणका लक्षण जानिये ॥ ३६ ॥

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ॥ येन तुष्यति चात्मा  
स्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥ तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्व  
र्थ उच्यते ॥ सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठचरैर्षां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

टीका—जो कर्म सब प्रकारसे वेदके अर्थकी जाननेकी इच्छा करताहै और  
जिस कर्मको करता हुआ तीनों कालमें भी लज्जित नहीं होताहै और जिस जिस  
कर्मसे इसके आत्माको संतोष होय वह सत्त्वनाम गुणका लक्षण जानना चाहिये  
॥ ३७ ॥ कामकी प्रधानता होना यह तमका लक्षण है और धनमें निष्ठ होना रज-  
का लक्षणहै धर्मकी प्रधानता होना यह सत्त्वगुणका लक्षणहै इन काम आदिकोंमें  
आगे आगे वालीकी श्रेष्ठताहै कामसे अर्थ श्रेष्ठहै क्योंकि कामका अर्थ मूलहै और  
उन दोनोंसे धर्म श्रेष्ठहै क्योंकि इन दोनोंका वही मूलहै ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ॥ तान्सर्मासेन वक्ष्यामि स  
र्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च  
राजसाः ॥ तिर्यक्तत्वं तामसा नित्यमित्येषां त्रिविधा गतिः ॥ ४० ॥

टीका—इन सत्त्व आदि गुणोंमेंसे जिसके गुणसे जीव जिन गतियोंको प्राप्त  
होताहै इस जगत्की उन सब गतियोंको संक्षेपसे क्रम करि कहौंगा ॥ ३९ ॥ जे  
सतोगुणकी वृत्तिमें स्थितहै वे देवत्वको प्राप्त होते हैं और जे तौ रजोवृत्तिमें स्थि-

तहैं वे मनुष्यत्वको और जें तमोवृत्तिमें स्थितहैं वे तिर्यक् योनिंको प्राप्त होते हैं यह तीनिप्रकारकी जन्मकी प्राप्ति है ॥ ४० ॥

त्रिविधात्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ॥ अधमा मध्यमा  
त्र्या च कर्मविद्या विशेषतः ॥ ४१ ॥ स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः  
सर्पाः सक्कच्छपाः ॥ पशवश्च मृगाश्चैवं जघन्या तामसी गतिः ४२

टीका—सत्त्व आदि तीनि गुणहैं कारण जिसके ऐसी तीनि प्रकारकी जन्मातरोंकी प्राप्ति कही वह देशकाल आदिके भेदसे और संसारके कारण भूत कर्मोंके भेदसे और ज्ञानके भेदसे अधम मध्यम उत्तम इन भेदोंसे तीनिप्रकारकी जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥ स्थावर वृक्ष आदि कृमि सूक्ष्म प्राणी उनसे कुछ मोटे कीट तथा मछली, साँप, कछुआ, और मृगों तक यह सब तमोगुणहैं कारण जिसका ऐसी जघन्य कहिये अधम गति है ॥ ४२ ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः । सिंहा व्याघ्रां वरा-  
हाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ४३ ॥ चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषा-  
श्चैवं दाम्भिकाः । रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूतमा गतिः ॥ ४४ ॥

टीका—हथी, घोडा, शूद्र और गर्हित, म्लेच्छ, सिंह, बाघ, सुअर, यह तमोगुणहैं कारण जिसका ऐसी यह मध्यम गति है ॥ ४३ ॥ चारण, नट, आदि और सुवर्णपक्षी और कपटसे धर्म करनेवाले पुरुष और राक्षस तथा पिशाच यह तामसी गतियोंमें उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

शल्लो मल्लो नैटाश्चैवं पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः । द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघ-  
न्या राजसी गतिः ॥ ४५ ॥ राजानः क्षत्रियाश्चैवं राज्ञश्चैवं पुरो-  
हिताः । वांद्युद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥

टीका—जात्य क्षत्रियसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न दशम अध्यायमें कहे हुए शल्ल मल्ल उनमें लाठी धारण करनेवाले ( छडीवरदार ) और मल्ल बाणोंसे युद्ध करनेवाले, और रंगभूमिमें उतरनेवाले नट, और शस्त्रोंसे जीविका करनेवाले और जुवामें तथा मद्यके पीनेमें लगे हुए पुरुष यह अधम राजसीगति जाननी चाहिये ॥ ४५ ॥ राजा कहिये अभिषेक किये हुए देशके स्वामी, तैसेही क्षत्रिय, और राजाके पुरोहित, और जिनको शास्त्रार्थ तथा कलह प्यारा है, यह राजसी गति मध्यम जानिये ॥ ४६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुधराश्च ये । तथैवाप्सराः सर्वा  
राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४७ ॥ तापसा यतयो विप्रा ये च वैमा-  
निका गणाः । नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सांत्विकी गतिः ॥ ४८ ॥

टीका—गंधर्व, गुह्यक, यक्ष, देवता, और उनके अनुचर विद्याधर आदि और  
अप्सरा, सब ये राजसीमें उत्तम गति हैं ॥ ४७ ॥ वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मण,  
और जे विमानमें चलनेवाले अप्सराओंसे भिन्न, पुण्यक आदि विमानमें चलने-  
वाले, और नक्षत्र, तथा दैत्य, यह सत्त्व निमित्त अधम गति जाननी चाहिये ४८

यज्वान ऋषयो देवा वेदं ज्योतीषि वत्सराः ॥ पितरश्चैव सांध्य-  
श्च द्वितीया सांत्विकी गतिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महान्  
व्यक्तमेव च ॥ उत्तमां सांत्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञ करनेवाले तथा ऋषि और देवता, और वेदके अभिमानी, देव-  
ता, और ध्रुव आदि ज्योति कहिये तारागण, और वत्सर कहिये इतिहासमें दे-  
खे हुए विग्रहवाले, और पितर कहिये सोमपा आदि, और देवयोनि विशेष  
साध्य, यह सत्त्वनिमित्त मध्यम गति जानिये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा कहिये चतुर्मुख,  
और विश्वसृज कहिये मरीचि आदि, और देह धारण किये हुए धर्म और म-  
हान् तथा अव्यक्त सांख्यमें प्रसिद्ध दो तत्व उनके अधिष्ठाता, दोनों देवता, इस  
चतुर्मुखआदिरूप सृष्टिको सांत्विक निमित्त उत्कृष्ट गति पंडित कहते हैं ॥ ५० ॥

एष सर्वः समुद्दिष्ट स्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ॥ त्रिविधस्त्रिविधः कृ-  
त्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥ इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेव  
नेन च ॥ पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥

टीका—यह मन, वाणी, और कायरूप, तीनि साधनोंके भेदसे तीनि प्रकारके  
कर्म सत्त्व रज तमके भेदसे फिरितीनि प्रकारका फिरि प्रथम मध्यम उत्तमके भेदसे  
तीनि प्रकारका सब प्राणियोंमें स्थित गति विशेष संपूर्णतासे कहा और सार्वभौ-  
तिक इस कहनेसे नही कहीहुई भी गतियां देखनी चाहिये और उक्त गतियां तौ  
दिखानेके लिये हैं ॥ ५१ ॥ इन्द्रियोके विषयोंमें लगनेसे और निषिद्ध आचर-  
णसे और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके न करनेसे मूढ मनुष्योंमें नीच कुत्सित गति-  
योंको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा॥कर्मशो यति लो<sup>१२</sup>  
केऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥ बहुन्वर्षगणान्घोरात्ररक्ता  
न्प्राप्य तत्क्षयात्संसारां प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ५४

टीका—यह जीव जिस जिस किये हुए पाप कर्मसे इस लोकमें जिस जिस जन्म-  
को प्राप्त होता है उस सबके क्रमसे सुनिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकों-  
के करनेवाले बहुतसे वर्षोंके समूहोंके भयंकर नरकोंमें प्राप्त हो उनके भोगके  
पूरे होनेपर पापके शेषसे आगे कहे हुए जन्म विशेषोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणां भोजविमृगपक्षिणाम् ॥ चण्डालपुच्छसानां च  
ब्रह्मर्हा यो निमृच्छति ॥ ५५ ॥ कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पं  
क्षिणाम् ॥ हिंसाणां चैव संत्वाणां सुराणो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ ५६ ॥

टीका—कुत्ता, सुअर, गधा, ऊँट गौ, बकरा, मेढा, मृग, पक्षी, चांडाल,  
और जो निषादसे शूद्रमें उत्पन्न व पुच्छस इनकी योनिमें ब्रह्महत्या जन्म लेता-  
ता है यहां शेष पार्थकी गुरुता और लघुताकी अपेक्षासे क्रमसे सब योनियोंकी  
प्राप्ति जाननी चाहिये ऐसही आगेभी जानिये ॥ ५५ ॥ कृमि, कीट, पतंग, और  
विष्टा खानेवाले पक्षी, और हिंसा करनेवाले व्याघ्र आदि इनकी जातिमें सुरा  
प्रीनेवाला ब्राह्मण उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ॥ हिंसाणां च पिशा  
चानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥ तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां  
दंष्ट्रिणामपि ॥ क्रूरकर्मकृतां चैव शैलशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

टीका—मकड़ी, साँफ, गिरगट, और जलमें विचरनेवाले पक्षी, और हिंसा  
करनेवाले पिशाच आदि, इनकी योनिमें सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण हजारों-  
वार प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ दूब, तृणोंकी, औ गुल्मोंकी, और गुडूची आदि ल-  
ताओंकी, और कच्चा मांस खानेवाले गीघ आदिकी, और सिंह आदि दंष्ट्रियों-  
की, और क्रूरकर्म करनेवाले वधशील व्याघ्र आदिकोंकी जातिमें, सौवार गुरु-  
की स्त्रीमें गमन करनेवाला प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

हिंसा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः परस्परान्तिनः स्ते  
नाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५९ ॥ संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च

योषितम् ॥ अपंहृत्य च विप्रस्यं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

टीका—जे प्रणिषोंके बंध करनेवाले हैं वे कच्चे मांसके खानेवाले विलाव आदिकी योनिमें उत्पन्न होतेहैं और जे अभक्ष्यभक्षीहैं वे कृमि होते हैं और जे महापातकियोंसे भिन्न चोरहैं वे आपसमें मांस खानेवाले होते हैं और जे चांडाल आदिकी स्त्रीमें गमन करनेवाले हैं वे प्रेत नाम प्राणीविशेष होतेहैं ॥५९॥ जितने कालमें पतितके संयोगसे पतित होताहै उतने कालतक ब्रह्मघाती आदि चारिके साथ संसर्गको करिके और औरोंकी स्त्रीमें गमन करिके और ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न अन्यवस्तुको चुराकै एकएक पाप करनेसे ब्रह्मराक्षस प्राणीविशेष होताहै ६०

मणिमुक्ताप्रवलानि हृत्वा लोभेन मानवः ॥ विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥ धान्यं हृत्वा भवत्यास्रः कांस्थं हंसो जलं पृथ्वः ॥ मधु दंशः पयः कांको रंसं श्वानं कुलो घृतम् ॥ ६२ ॥

टीका—माणिक्य आदि मणियोंको, मोती मूगोंको, और नाना प्रकारके वैदूर्य हिरा आदि रत्नोंको, अपनेके भ्रमविना लोभसे चुराकै सुवर्णकारकी योनिमें उत्पन्न होताहै कोईतौ हेमकार पक्षीको कहतेहैं ॥ ६१ ॥ धान्यको चुरायकै मूसा होताहै और कांसेको चुरायकै हंस होताहै और जलको चुरायकै प्रवनाम पक्षी होताहै और शहत चुरायकै डांस और दूध चुरायकै कौआ और विशेष करि कहे हुए गुड नोन आदिसे भिन्न ईस आदिके रसको चुरायकै कुत्ता होताहै और घी चुरायकै न्योला होताहै ॥ ६२ ॥

मांसं गृध्रो वर्षां मधुस्तैलं तैलपकः खगः ॥ चीरिवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिं दधि ॥ ६३ ॥ क्रोशेयं तित्तिरिहृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दंडुरः ॥ कर्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोर्ध्रां गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

टीका—मांस चुरायकै गीध होताहै और बसा ( चरवी ) को चुरायकै मधुनाम जलचर पक्षी होताहै और तेल चुरायकै तैलपायिकनाम पक्षी और नोन चुरायकै चीरिवाक नाम ऊंचे स्वरवाला कीट और दही चुरायकै बलाकानाम पक्षी होताहै ॥६३॥ रेशमी वस्त्र चुरायकै तीतरनाम पक्षी होताहै और क्षौमसे बने हुए वस्त्रको चुरायकै मेढक और कपासके बने हुए वस्त्रको चुरायकै कौच नाम प्राणी और गौको चुरायकै गोह और गुडको चुरायकै वाग्गुदनाम पक्षी होताहै ॥६४॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशकं तु बर्हिणः ॥ श्वारित्कृत्तान्नं वि



विधेमकृतात्रं तु शल्यकः ॥६५॥ वैको भवति हृत्वाग्निं गृहकं प्री  
ह्युपस्करम् ॥ स्तूतानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजोवकः ॥६६॥

टीका—कस्तूरी आदि सुगंध द्रव्योंको चुरायकै छछंदरि होता है वधु आदि पत्र शाकोको चुरायकै मोर और लड्डू सक्क आदि नाना प्रकारके सिद्ध अन्न चुरायकै स्वाविधनाम प्राणी और विनाकिये हुए अन्न धान जव आदि चुरायकै शल्यकनाम होता है ॥ ६५ ॥ अग्निको चुरायकै बकनाम पक्षी होता है और घरके उपयोगी सूप मूसल आदि चुरायकै भीति आदि मिट्टीका घर बनानेवाला परो करि युक्त कीट अर्थात् कुह्लरकीड़ा होता है कसुंभ आदिसे रंगे वस्त्रोंको चुरायकै न्नकोरनाम पक्षी होता है ॥ ६६ ॥

वैको मृगेभं व्याघ्रोऽथं फलमूलं तु मंकटः ॥ स्त्रीमृशः स्तोकेको  
वारि यन्मन्युः पशून्जः ॥६७॥ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बला  
न्नरः ॥ अवश्यं याति तिर्यक्तं जग्वा चैवाहुंत हविः ॥ ६८ ॥

टीका—मृग अथवा हाथीको चुरायकै भेडियानांम हिंसक पशु होता है और घोडा चुरायकै व्याघ्र होता है और फल मूल चुरायकै बंदर होता है और स्त्रीको चुरायकै रीछ होता है और पीनेके लिये जल चुरायकै चातकनाम पक्षी होता है और शकट आदि यानोंको चुरायकै ऊंट होता है और कहे हुए पशुओंसे अन्य पशुओंको चुरायकै बकरा होता है ॥ ६७ ॥ यत्किंचित् असारंभी पराई वस्तुको इच्छासे चुरायकै और विना होमे हुए पुरोडास आदिको स्वायकै मनुष्य निश्चय तिर्यक् योनिमें प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हत्वा दोषमवाप्नुयुः ॥ एतेषामेवं जन्तूनां  
भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥ स्वर्भ्यः स्वर्भ्यस्तु कर्मभ्यश्च्यु  
ता वर्णा ह्यनानादि ॥ पापान्संमृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ७०

टीका—स्त्रियांभी इसी प्रकारसे इच्छा करिकै पराई वस्तुको चुरायकै पापको प्राप्त होती हैं और उस पापसे कहे हुए जीवोंकी स्त्री होती हैं ॥ ६९ ॥ इस भांति निषिद्ध काम करनेके फलोंको कहिकै अब कहे हुएके न करनेके फलका परिपाक कहते हैं ब्राह्मण आदि चारोवर्ण आपत्तिके विना पंचकर्मोंके त्याग करनेसे आगे कही हुई कुत्सित योनियोंको प्राप्त हो तिस पीछे दूसरे जन्ममें शत्रुके दास भावको प्राप्त होते हैं ॥ ७० ॥

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्युतः ॥ अंभेध्याकुण  
पाशीं च क्षत्रियः कटपूतनः ॥७५॥ मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो  
भवति पूयभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्युतः ७२

टीका—अपने कर्मसे भ्रष्ट और वातका खानेवाला ब्राह्मण, ज्वालामुख, मा-  
म एक भ्रांतिका प्रेत होताहै और अपने कर्मसे नष्ट क्षत्रिय विष्टा खानेवाला,  
कटपूतन, नाम एक भ्रांतिका प्रेत होताहै ॥ ७१ ॥ अपने कर्मसे भ्रष्ट वैश्य, मै-  
त्राक्ष ज्योतिक, नाम पीवका खानेवाला प्रेत दूसरे जन्ममें होताहै और अपने  
कर्मसे भ्रष्ट शूद्र चैलाशक, नाम प्रेत होताहै ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषया निषयात्मकाः ॥ तथा तथा कुशलता  
तेषां तेषूपजायते ॥७३॥ तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबु  
द्धयः ॥ संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तामुतास्विहं योनिषु ॥ ७४ ॥

टीका—विषयोंमें लोभी जैसे जैसे शब्द आदि विषयोंको सदा सेवन करतेहैं  
तैसे तैसे उनकी विषयोंमें प्रवीणता होतीहै ॥७३॥ वे अल्पबुद्धिवाले उन निषिद्ध  
विषयोंके उपभोगके अभ्याससे उन उन निंदिततर और निंदिततम तिर्यक् आ-  
दि योनियोंमें दुःखको भोगते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ॥ असिपत्रवनादीनि व  
न्धनच्छेदनानि च ॥७५॥ विविधांश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भ  
क्षणम् ॥ करम्भवालुकातार्पान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥७६॥

टीका—तामिस्र आदि चौथे अध्यायमें कहे हुए घोर नरकमें दुःखके अनु-  
भवको प्राप्त होतेहैं तैसेही असिपत्रवन आदि बंधन च्छेदनरूप नरकोंको प्राप्त होते  
हैं ॥७५॥ नाना प्रकारकी पीडाओंको और कौआ उलूक आदिसे खाया जाना  
और तप्त वालुका आदि तथा कुम्भीपाक आदि दारुण नरकोंमें प्राप्त होतेहैं ॥७६॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायोऽमु नित्यंशः ॥ शीततपाभिघातां  
श्च विविधानि भयानि च ॥७७॥ असंकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दा  
रुणम् ॥ बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

टीका—जिनमें दुःख बहुतहै ऐसी तिर्यक् आदि योनियोंमें उत्पन्न होना उन  
शीत घाम आदिकी पीडा आदिसे नाना प्रकारके दुःखों और भयोंको प्राप्त हो-

ते हैं ॥ ७७ ॥ वारंवार गर्भस्थानोंमें बसनेको और योनि यंत्र आदिकोंसे वृत्त देनेवाली उत्पत्तिको और संकल आदिसे बंधनेकी झीझको प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

चन्धुप्रियविद्योगांश्च संवांसं चैवं दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नांशं च  
मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥ ७९ ॥ जरां चैवं प्रतीकारां व्याधिभिश्चो  
पपीडनम् ॥ क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेवं च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

टीका—वांधवों और मित्रोंसे विर्यागोंको और दुष्टोंके साथ एक स्थानमें रहनेको और धन जोड़नेके श्रमको और धनके नाशको और कष्टसे मित्रके अर्जनको और शत्रुके प्रकट होनेको प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी वृद्ध अवस्थाको और रोमोंसे तथा भूख व्यास आदिसे पीड़ित होनेको और नाना प्रकारके क्लेशोंको और जो रुक नहीं सकती ऐसी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥

यादृशेन ह्यभावेन यद्यत्कर्म निषेवते ॥ तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलं  
लभुषांश्रुते ॥ ८१ ॥ एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वै फलोदयः ॥ नै  
श्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥ ८२ ॥

टीका—जिस प्रकारके सात्त्विक राजस अथवा तामस चित्तसे स्नान दान योग आदि जिस कर्मको करताहै वैसेही सत्त्वअधिक रजअधिक अथवा तम- अधिक शरीरसे उस उस स्नान आदिके फलको भोगताहै ॥ ८१ ॥ यह तुमसे विहित और प्रतिषिद्ध कर्मोंके फलके उदयको संपूर्ण कहां अब ब्राह्मणके कल्याणके लिये तथा मोक्षके लिये हितकारी कर्मोंको करना जो आगे कहा जायगा उसको सुनिये ॥ ८२ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ अहिंसां गुरुसेवां च  
निःश्रेयसकरं परम् ॥ ८३ ॥ सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणां  
म् ॥ किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

टीका—उपनिषद् आदि वेदका ग्रंथसे और अर्थसे आवृत्ति करना और कृच्छ्र आदि तप और ब्रह्मविषयक ज्ञान और इन्द्रियोंका बंध करना और नहीं कही हुई हिंसाका न करना और गुरुकी सेवा ये उत्कृष्ट मोक्षके साधन हैं ॥ ८३ ॥ इन सब वेदाभ्यास आदिक शुभकर्मोंमें कुछ कर्म अतिशय करिके मोक्षका साधन होय यह वितर्क होनेपर ऋषियोंकी जिज्ञासा विशेषसे आगेके श्लोकसे निर्णय कहते हैं ॥ ८४ ॥

सर्वेषामपि च तेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ तद्ध्येयं सर्वविद्यानां  
प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥ षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य च  
हं च ॥ श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

टीका—इन वेदाभ्यास आदि सर्वोंमेंसे उपनिषद् करि कहा हुआ परमात्माका ज्ञान उत्कृष्ट कहा है जिसे सब विद्याओंका प्रधान है इसीमें हेतु कहते हैं कि जि-  
स्से उसके द्वारा मोक्ष मिलता है ॥ ८५ ॥ पहले कहे हुए इन वेदाभ्यास आदि छ-  
कर्मोंमें परमात्म ज्ञानरूप वैदिक कर्म इस लोक तथा परलोकमें अत्यन्त कल्याण  
करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तु  
स्मिन्स्मिन्क्रियाविधौ ॥ ८७ ॥ सुखाभ्युदयिकं चैवं नैःश्रेयसि  
कमेव च ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

टीका—अब आत्मज्ञानका इस लोक तथा परलोकमें श्रेयका साधन होना  
स्पष्ट करते हैं ॥ परमात्माकी उपासनारूप वैदिक कर्मयोगमें ये सब पहले श्रे-  
यों-  
कमें कहे हुए इस लोक तथा परलोकके श्रेय उस उस उपासना विधिमें क्रमसे  
संभवित होते हैं ॥ ८७ ॥ वैदिक कर्म यहां ज्योतिष्ठोम आदि और प्रतीकोपासना  
आदि ग्रहण किये जाते हैं क्योंकि स्वर्ग आदिके सुखका देनेवाला संसारकी प्रवृ-  
त्तिका कारण है इससे वैदिक कर्मका प्रवृत्तनाम है नैःश्रेयस, मोक्षको कहते हैं  
उसके लिये जो कर्म है उसको नैःश्रेयसिक कहते हैं क्योंकि वह संसारकी निवृत्तिका  
कारण है इससे प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकारका वैदिक कर्म जानना चाहिये ॥ ८८ ॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु  
निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तं कर्म संसेव्यं देवानामेति साम्यता  
म् ॥ निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥ ९० ॥

टीका—इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इस लोकमें कामनाका साधन करनेवाला  
यज्ञ आदि और परस्वर्ग आदिका साधन ज्योतिष्ठोम आदि जो कामनासे किया  
जाता है वह संसारकी प्रवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्त कहा जाता है और दृष्ट अदृष्ट  
फलकी कामना रहित ब्रह्मज्ञानके अभ्यासपूर्वक किया जाता है वह संसारकी निवृ-  
त्तिका कारण होनेसे निवृत्त कहा जाता है ॥ ८९ ॥ प्रवृत्त कर्मके अभ्याससे देवता-  
ओंके समान गतिस्वको अर्थात् उसके फलको कर्मसे प्राप्त होता है यह तो प्रदर्श-  
नके लिये है अन्यफलके देनेवाले कर्मके प्रवृत्त होनेसे दूसरा फलभी प्राप्त होता

है और निवृत्त कर्मके अभ्याससे शरीरके आरंभ करनेवाले मंचभूतोंको अतिक्रमण करजाताहै अर्थात् भोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ९७॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि ॥ समं पश्यन्नात्मयाजी  
स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९९ ॥ यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहोय द्वि  
जोत्तमः ॥ आत्मज्ञाने श्मे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ १०० ॥

टीका—स्थावरजंगमरूप सब जीवोंमें मैही आत्मारूप सही और परमात्माके परिणामसे सिद्ध सब जीव मुझपरमात्मामें हैं सामान्यतासे यह जानता हुआ आत्माका यजन करनेवाला ब्रह्ममें अर्पण करनेके न्यायसे ज्योतिष्टोमादिकोंको करता हुआ स्वजो ब्रह्म है तिससे प्रकाशित होताहै स्वराज्य ब्रह्मको कहते हैं तिसके भावको स्वाराज्य अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त होताहै अर्थात् भोक्षको प्राप्त होताहै ८९ वेद करि प्रेरणा किये गयेभी अग्निहोत्र आदि कर्मोंको त्याग करिके ब्रह्मके ध्यानमें इंद्रियोंसे उद्ब्रज प्रणव और उपनिषद् आदि वेदके अभ्यासमें ब्राह्मण यत्न करे ८२

एतद्धि जन्मसौफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ प्राप्येतत्कृतकृत्यो  
हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ १०३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः स  
नातनम् ॥ अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ १०४ ॥

टीका—यह आत्मज्ञान और वेदका अभ्यास आदि द्विजातिके जन्मकी सफलताका करनेवालाहै जिस्से द्विजाति इसको प्राप्त होके कृतार्थ होताहै और भांति नहीं ॥ ८३ ॥ अब वेदहीसे ब्रह्म जाननेयोग्यहै यह दिखानेके लिये वेदकी प्रशंसा कहते हैं ॥ पितृ देवता और मनुष्योंका हव्यकव्यके दानोंमें वेदही चक्षुके समान अविनाशी चक्षुहै और वेदशास्त्र करनेको अशक्यहै इससे वेदकी अपौरुषेयता कही गई और अप्रमेय कहिये मीमांसा तथा न्यायशास्त्रके विना इसका प्रमेय नहीं जाना जासकताहै यह व्यवस्थाहै तिससे मीमांसा करिके और व्याकरण आदि अंगोंसे कर्म तथा ब्रह्मरूप वेदके अर्थको जानै यह कहा गया ॥ १०४ ॥

यां वेदब्रह्माः स्मृतयो याश्च कर्माश्च कृदृष्टयः ॥ सर्वास्तां निष्फलाः  
प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः १०५ उत्पद्यन्ते चैवान्यतो  
ऽन्यानि कानिचित् ॥ तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च

टीका—जो स्मृतियां वेदसे बाह्य हैं अर्थात् वेद नहीं हैं जैसे चैत्यकी बंदना करनेसे स्वर्ग मिलताहै इत्यादि दृष्टार्थ वाक्य हैं और जो देवताओंका अपूर्व निराकरणरूप असत्त्वमूल हैं और जो वेदविरुद्ध चार्वाकोंके शास्त्र हैं वे सब परलो-

कर्मनिष्फलहैं वे सब मनु आदिकों करि नरकरूप फलके देनेवाले कहे गये हैं २९  
इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इहो वेदसे अन्य जिनका मूलहै ऐसे जे कोई शास्त्रहैं  
वे पौरुषेय कहिये पुरुषोंके बनाये हुए होनेसे उत्पन्न होते हैं और शीघ्रही नष्ट  
होजाते हैं वे आधुनिक होनेसे निष्फल और असत्यरूपहैं और स्मृति आदिकों  
का त्रौ वेदमूल होनेसे प्रामाण्यहै ॥ ९६ ॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं  
च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥ ९७ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च  
पञ्चमः ॥ वेदादेर्वै प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ ९८ ॥

टीका—ब्राह्मणोऽस्यमुखमसीत् इत्यादि वेदहीसे चारोंवर्ण सिद्ध होतेहैं त्रि-  
सेही स्वर्ग आदि तीनों लोकभी वेदहीसे प्रसिद्धहैं ऐसे ब्रह्मचर्य्य आदि चारो  
आश्रमभी वेदमूलक होनेहीसे प्रसिद्धहैं बहुत कहनेसे क्याहैं जो कुछ भूत वर्त्तमा-  
न और भविष्यहै वह सब अंग्रौप्रास्ताहुतिःसम्यक् इत्यादि न्यायसे वेदहीसे प्र-  
सिद्ध होताहै ॥ ९७ ॥ जो इस लोकमें और परलोकमें शब्द आदि विषय उप-  
योगी होतेहैं वे प्रसूतिगुण सत्त्व रज तमोरूप वेदहीसे प्रसिद्ध होतेहैं ॥ ९८ ॥

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्मादेतत्परं मन्ये यं  
जन्तोरस्य साधनम् ॥ ९९ ॥ सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव  
च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्वति ॥ १०० ॥

टीका—वेदशास्त्र नित्य सब भूतोंको धारण करताहै सोई कहतेहैं कि हविअग्निमें  
होमी जातीहै उसको अग्नि सूर्यके लिये पहुंचातीहै उसको सूर्य किरणोंसे बरस-  
ते हैं विस्से अन्न होता है अथेहभूतानामुत्पत्तिस्थितिश्चेतिहविजीयते यह ब्राह्मणमें  
लिखाहै अर्थ इस पीछे यहां भूतोंकी उत्पत्ति और स्थिति हवि होतीहै इति ॥ तस्से  
वेदशास्त्र इस जंतुके वैदिक कर्ममें अधिकारी पुरुषके मरुष्ट पुरुषार्थको साधन जान-  
ते है ९९ सेनाका पति होना राजदंडका करना और सब भूमिका स्वामी होना यह  
सब जिसका प्रयोजन कहचुके हैं वेदरूप शास्त्रके जाननेवालेही योग्यहैं ॥ १०० ॥

यथा जातबला बन्धिर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ॥ तथा दहति वेदज्ञः  
कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे वस-  
न् ॥ इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयान्कल्पते ॥ २ ॥

टीका—जैसे बन्दी हुई अग्नि गीलेभी वृक्षोंको जलादेतीहै ऐसेही अर्थसे तथा  
अर्थसे वेदका जाननेवाला निषेध किये हुए कर्मोंके करनेसे उत्पन्न पापोंका आ-

प नाश करता है ऐसे तौ वेदके बल स्वर्ग अपवर्ग आदिहीका हेतु नहीं है किं अहितकानाश करनेवाला भी है १ जिसे जो कर्म औ ब्रह्मात्मक वेदको और उस अर्थको तत्त्वसे जानता है वह नित्यनैमित्तिक कर्मों करि अनुगृहीत ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मचार आदिके आश्रममें स्थित इसी लोकमें रहता हुआ ब्रह्मत्वके लिये समर्थ होता है ।

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठां ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः॥ धारिभ्यो ज्ञानि  
नः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसंयिनः ३ तपो विद्यां च विप्रस्य निःश्रेय  
संकरं परम्॥ तपसां किल्बिषं हन्ति विद्यांऽमृतमश्नुते ॥ ४ ॥

टीका—जे थोड़ा पढ़े है वे अज्ञ हैं उनसे संपूर्ण वेदके पढ़नेवाले श्रेष्ठ हैं उनसे पढ़े हुए ग्रंथके धारणमें समर्थ श्रेष्ठ हैं और धारण करनेवालोंसे पढ़े हुए ग्रंथके अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ हैं और उनसे करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ तपः कदिये आश्रमव लिये विहित कर्म औ विद्या कहिये आत्मज्ञान ये दोनों ब्राह्मणको पर कहिये उ त्कृष्ट निःश्रेष्ठसकर अर्थात् मोक्षका साधन हैं उनमेंसे तपसे पापको नाश करता है और ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधांगमम्॥ त्रयं सुविदितं कार्यं  
धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥ ५ ॥ आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधि  
ना ॥ यस्तैर्केणानुसंधत्ते स धर्मं देदं नेतरः ॥ ६ ॥

टीका—धर्मके तत्त्वको जानना चाहता पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमान और स्मृति आदि नाना प्रकारके वेदमूलक शास्त्र धर्मका मूल जाननेके लिये सुविदित कहिये भलीभांतिसे ज्ञान करना चाहिये येही तीनो प्रमाण मनुको अभिमत हैं उपमान और अर्थापत्ति आदिकोंका अनुमानमें अंतर्भाव है ॥ ५ ॥ ऋषियों करि सेवित होनेसे आर्ष जो वेद है तिसको और धर्मके उपदेशको और धर्ममूलक स्मृति आदिको जो धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसे मीमांसा आदि न्यायसे जो विचार करता है वह धर्मको जानता है और मीमांसाका न जाननेवाला नहीं जानता है ॥ ६ ॥

नैःश्रेयसं मिदं कर्म यथोदितमशेषतः॥ मानवस्यास्य शास्त्रस्य र  
हस्यमुपदिश्यते ॥ ७ ॥ अनाप्रातेषु धर्मेषु कैथं स्यादिति चेद्  
वैतर्क्यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ ८ ॥

टीका—यह कल्याणका साधन कर्म संपूर्णतासे यथावत् कहा इसके उपरांत इस मानव शास्त्रके छपानेयोग्य इस वेदसमाण रहस्यको सुनिये ॥ ७ ॥ इस शास्त्रका सब धर्मोंके न कहनेकी शंका करिके इस सामान्य उक्तिसे समग्र धर्मका उपदेश करना सूचित करते हैं ॥ सामान्य विधिसे प्राप्त और विशेष करि नहीं

कहे गये धर्ममें कैसे करना चाहिये यह जो संदेह होय तो जिस धर्मको जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे शिष्टब्राह्मण कहें वह वहां निश्चित धर्म होय ॥८॥

धर्मेणाधिगता येस्तु वेदः सपरिवृंहणः ॥ ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥९॥ दशावरा वा परिषद्ध्यं धर्मं परिकल्पयेत् ॥

त्र्यवरा वाऽपि वृत्तस्था न धर्मं न विचारयेत् ॥१०॥

टीका—ब्रह्मचर्य आदि कहे हुए धर्मसे जिन्होंने अंग मीमांसा धर्मशास्त्र, और पुराण, आदि करि उपबृंहित वेद पढाहैं वे ब्राह्मण श्रुतिके प्रत्यक्ष करनेमें कारण है और जे श्रुतिको पढिकै उसके अर्थका उपदेश करतहैं वे शिष्ट जात्रने चाहिये ॥९॥ जो बहुतसे इकट्ठे न होंय तौ कमसे कम दश अथवा कमसे कम तीन जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे जिसमें सदाचार होय वह परिषत् कहिये सभा जिस धर्मका निश्चय करै अर्थात् धर्मत्वसे स्वीकार करै उसमें विवाद न करै ॥१०॥

त्रैविद्या हेतुकस्तर्का निरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे प रिषत्स्योद्देशावरा ॥११॥ ऋग्वेदविद्युर्विच्च सामवेदविदेर्वचं ॥ त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥१२॥

टीका—तीनोवेदोंकी तीन शाखाओंका पढनेवाला, और श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध नहीं ऐसे न्यायशास्त्रके जाननेवाले और मीमांसात्मक तर्कोंके जाननेवाले और निरुक्तके ज्ञाता, और मानव आदि धर्मशास्त्रोंके वेत्ता, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, तथा वानप्रस्थ, यह कमसे कम दशकी सभा होय ॥११॥ ऋक् यजु और सामवेदकी शाखाओंके पढनेवाले और उनके अर्थके जाननेवाले तीन ब्राह्मण जिसमें होय वह धर्म संदेह दूर करनेके लिये त्र्यवरापरिषत् जाननी चाहिये ॥१२॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं व्यवस्येद्विज्ञोत्तमः ॥ स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानांमुदि तोऽयुतैः ॥१३॥ अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपनिषिनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥१४॥

टीका—एकभी वेदके अर्थ और धर्मका जाननेवाला जिस धर्मका निश्चय करै वह ब्रह्मचर्य धर्म जानना चाहिये और वेदके न जाननेवालोंके दशसहस्रोंसेभी युक्त परिषत् नहीं होती है यह वेदवित् शब्द वेदका अर्थ और धर्मज्ञको कहताहै यह तौ उपलक्षण है स्मृति पुराण मीमांसा तथा न्यायशास्त्रका ज्ञाताभी गुरुपरंपरासे उपदेशका वेत्ताभी जानना चाहिये तथा केवलशास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ॥ युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायत इति ॥ अर्थ ॥ केवल शास्त्रका आश्रय लेक-



र निर्णय न करना चाहिये युक्तिसे हीन विचारमें तौ धर्मकी हानि होती है इति॥  
तिस्से बहुतसी स्मृतियोंका जाननेवालाभी जो भलीभांतिसे प्रयश्चित्त आदि ध-  
र्मको जानता होय तौ उस एक करिकैभी कहा हुआ धर्म उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये  
इसीसे यमने कहा है जैसे॥ एकोद्वौवात्रयोवापि यद्वयुर्धर्मपाठकाः॥ सधर्म इति विज्ञेयो  
नेतेरेषां स ह्यस्रशः । इति ॥ अर्थ ॥ एक दो अथवा तीन धर्मपाठक जो कहें वह धर्म  
जाना चाहिये औरोंके हजारों नहीं १३ सावित्री आदि ब्रह्मचारीके व्रतों करि रहितों  
और मंत्रवेदाध्ययन रहितोंके तथा ब्राह्मण जातिमात्रके धारण करनेवाले हजा-  
रोंके मिलनेका परिषद्भाव नहीं होती है धर्मके निर्णयका अभाव होनेसे ॥ १४ ॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा  
तद्वक्तृननुगच्छति ॥ १५ ॥ एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परं  
म् ॥ अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

टीका—इमोगुण है बहुत जिनमें ऐसे मूर्ख धर्मका प्रमाण और वेदका अर्थ न  
जाननेवाले होते हैं इसीसे प्रश्न विषयधर्मके न जाननेवाले जिस-प्रायश्चित्त आदि  
धर्मका उपदेश करते हैं उसका पाप सौगुना होकरि बहुतसे कहनेवालोंमें जाता-  
है ॥ १५ ॥ यह कल्याणका साधन उत्कृष्ट धर्म आदि सब तुमसे कहा इसको  
करता हुआ ब्राह्मण आदि स्वर्ग अपवर्गरूप परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकांनां हितकाम्यया ॥ धर्मस्य परमं गुह्यं  
ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥ १७ ॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्स चासच्च समा  
हितः ॥ सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्ना धर्मं कुरुते मनः ॥ १८ ॥

टीका—वह भगवान् ऐश्वर्य आदि करि युक्त देवमनुने नहीं सुननेकी इच्छा  
वाले शिष्योंसे छुपानेयोग्य यह सब धर्मका परमार्थ लोकके हितकी इच्छासे मेरे  
लिये कहा भृगु महर्षियोंसे कहते हैं ॥ १७ ॥ ऐसे उपसंहार करिकै महर्षियोंके  
हितके लिये कहे हुएभी आत्माके ज्ञानको प्रकृष्ट मोक्षका उपकारक होनेसे जु-  
दा करिकै कहते हैं॥ सद्भाव और असद्भाव इस सब ब्रह्मको जानता हुआ अपनेमें  
अप्रस्थित ब्रह्मके स्वरूपको तद्रूप एकाग्र मनहो ध्यानके प्रकर्षसे साक्षात् करै जिस्से  
सबको आत्मत्वसे देखता हुआ रागद्वेषके न होनेसे अधर्ममें मनको नहीं करता है १८

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥

आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ १९ ॥

टीका—इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इंद्र आदि सब देवता परमात्माही हैं परमां  
के सर्वात्मा होनेसे सब जगत् आत्माहीमें अवस्थित हैं क्योंकि परमात्माका परि-

णामहै जिस्से परमात्माही इन क्षेत्रज्ञ आदिकोंके कर्मसंबंधको उत्पन्न करताहै १९॥

संनिवेशयेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ॥ पक्तिदृष्ट्योः परं ते  
जः स्नेहोऽपो गां च मूर्तिषु ॥ १२० ॥ मनसोन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते  
विष्णुं बले हरम् ॥ वाच्याग्नि मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥ १२१ ॥

टीका—वक्ष्यमाण ब्रह्मके ध्यानविशेषका उपयोगी होनेके कारण देहमें स्थित आकाश आदिकोंमें बाहरी आकाश आदिकोंका लय कहते हैं ॥ बाहरी आकाशको पेट आदिमें स्थित देहके आकाशमें लीन करे अर्थात् एकतासे धारण करे तैसेही चेष्टा और स्पर्श कारणभूत वायुमें बाहरी वायुको और उदरके तथा नेत्रोंके तेजमें बाहरी अग्नि तथा सूर्यके उत्कृष्ट तेजको और देहके जलमें बाहरी जलको और शरीरसंबंधी पृथिवीके भागोंमें बाहरी पृथिवीको और मनमें चंद्रमणको और कानमें दिशाओंको और पाद इंद्रियमें विष्णुको और बलमें हरको और वाक् इंद्रियमें अग्निको और पायुइंद्रियमें मित्रको और उपस्थ इंद्रियमें प्रजापतिको लीन कहिये एकतासे भावना करे ऐसेही आत्मामें स्थित भूतादिकोंमें बाहरी भूतादिकोंको लीन करि अर्थात् एकतासे भावना करि जो यह अग्नि आदि कोंका दैहिक आदि नियमहै और जो कर्मोंका प्रतिनियत फलहै उस सबको आत्माके आधीन करे ॥ १२० ॥ १२१ ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥

रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं उरुषं परम् ॥ १२२ ॥

टीका—ब्रह्माको आदिले स्तंभ पर्यंत सब चेतन अचेतन अर्थात् जडचैतन्य जातिका प्रशासिता कहिये नियंता और अणोरणीयांस अर्थात् छोटेसेभी बहुत छोटाहै सोई श्रुति कहतीहै जैसे ॥ बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च ॥ भागो जीवितिविज्ञेयः स चानंत्यायकल्पते इति ॥ अर्थः ॥ बालकी नोकका जो सौभाग्यहै उसके सौभाग्य कल्पना करनेसे जो भाग होय वह जीव जानबा चाहिये वही अनंत होजाताहै इति और रुक्माभं यद्यपि शब्दरहित स्पर्शरहित अविनाशहीन विशेषणोंसे उपनिषदने परमात्माके रूपका निषेध कियाहै तिसपरभी उपासना विशेषमें शुद्ध सुवर्णके समान कांतिहै इसीसे यूपोन्नरादित्येहिरण्यमयः अर्थात् जो यह सूर्यके भीतर सुवर्णमयहै इत्यादि छांदोग्य उपनिषदमें लिखाहै और स्वप्नधीगम्यं यह दृष्टान्तहै स्वप्नकी बुद्धिके समान ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्यहै जैसे स्वप्नकी बुद्धि चक्षु आदि बाहरी इंद्रियोंके उपराममें मग्नमात्रसे उत्पन्न होताहै ऐसे आत्मबुद्धिभी जानिये इसीसे व्यासने कहाहै जैसे ॥ नैवासौचक्षुषाग्राह्यो न च शिष्टैरपीन्द्रियैः ॥ मनसांतु प्रसवेन गृह्यते सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ अर्थ ॥ यह नेत्रोंसे

ग्रहण करनेयोग्य नहीं है और शेष इंद्रियों करिकेभी नहीं ग्रहण किया जाता है सूक्ष्म दृष्टिवाले मनुष्यों करि प्रसन्न मनसे ग्रहण किया जाता है ॥ इस प्रकारके परमात्माका त्रितवन करे ॥ २२ ॥

एतन्मेके वर्दन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इन्द्रमेके परं प्रौणमपं  
रे ब्रह्मं शीश्रुतम् ॥ २३ ॥ एषं सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्ति  
भिः ॥ जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ २४ ॥

टीका—कोई याज्ञिक इस परमात्माकी अग्निभांसे उपासना करते हैं और फिर मनुमन्य प्रजापतिके रूपसे उपासना करते हैं और कोई फिर ऐश्वर्यके योग आदि-से इंद्ररूपसे उपासना करते हैं अपर फिर प्राणभाक्से उपासना करते हैं अपर फिर अप्रपत प्रपंचात्मक सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी उपासना करते हैं मूर्ति और अ-मूर्तिमान् स्वरूप ब्रह्ममें श्रुतिप्रसिद्ध सबही उपासना होती हैं ॥ २१ ॥ यह आत्मा सब प्राणियोंको शरीरके आरंभ करनेवाले पृथिवी आदि पांच महाभूतोंसे ग्रहण करिके पूर्वजन्मके अजित कर्मोंकी अपेक्षासे उत्पत्ति स्थिति विनाशोंसे रथ आ-दिके चक्रके समान वारंवार फिरनेसे मोक्षतक संसारी करता है ॥ २४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ स सर्वसमतामेत्य  
ब्रह्माभ्येति प्रं पदम् ॥ २५ ॥ इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठं  
द्विजः ॥ भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टं प्रमुयाद्भतिम् ॥ २६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

टीका—अब मोक्षके कारण भावसे कहे हुए सब धर्मोंकी श्रेष्ठतासे सर्वत्र परमात्माके दर्शनकी अनुष्ठेयतासे उपसंहार करते हैं ॥ इस भांति सब जीवोंमें आत्माको इत्यादिक-हे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंमें स्थित आत्माको आत्माकरि देखता है वह ब्रह्मके सा-क्षात्कारसे परश्रेष्ठस्थान जो ब्रह्म है तिसको प्राप्त होता है उसमें अत्यंत लीन होजाता है अर्थात् मुक्त होजाता है २५ इति शब्द समाप्तिके लिये है यह स्मृतिशास्त्र भृगुने प्रकर्ष-करि कहा द्विजाति इसको पढता हुआ विहितके करने और निषेध किये हुएके त्या-गनेरूप आत्मारवान् होता है जैसे चाही हुई स्वर्ग अपवर्गरूप गतिको प्राप्त होय २६ इति श्रीमत्पण्डितवर्यश्रीपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादभट्टमहोदय-विद्वेदि-

कृतार्थकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ द्वादशोऽध्यायस्समाप्तः

॥ १२ ॥ तर्काऽध्यक्षनिशाकराङ्गगणितवर्षशुभेवैक्रममाधेमास्यसितेदले

संहतिथीनीतासमाप्तिमया ॥ श्रीमन्मानवधर्मशास्त्रविवृतिनृपांगिरा

स्वच्छाश्रीमत्केशवशर्म्माणोऽगर्गलपुरेश्रीभानुजाभूषित ॥ १ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णु खेमराज, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस मुंबई.

